CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पण्डित नित्यानन्द शास्त्री दाधीच
विरचित

रामकथा-कल्पलता

(महाकाव्य)

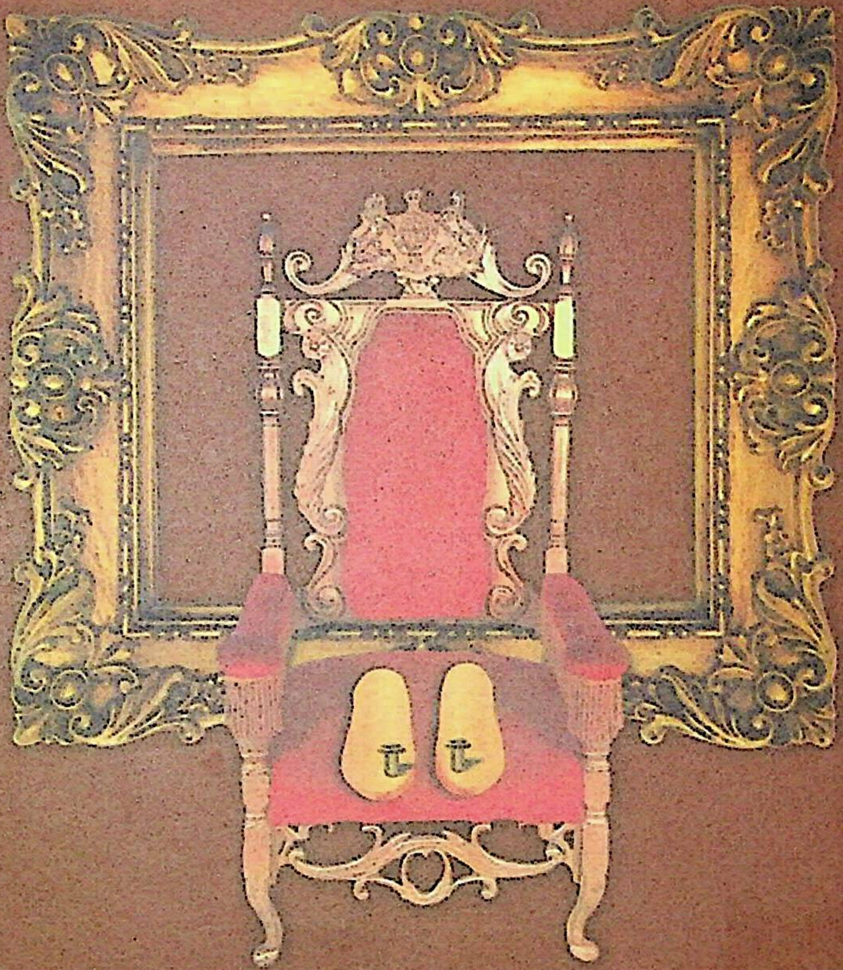

डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3-3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पण्डित नित्यानन्द शास्त्री दाधीच
विरचित

रामकथा-कल्पलता

(महाकाव्य)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

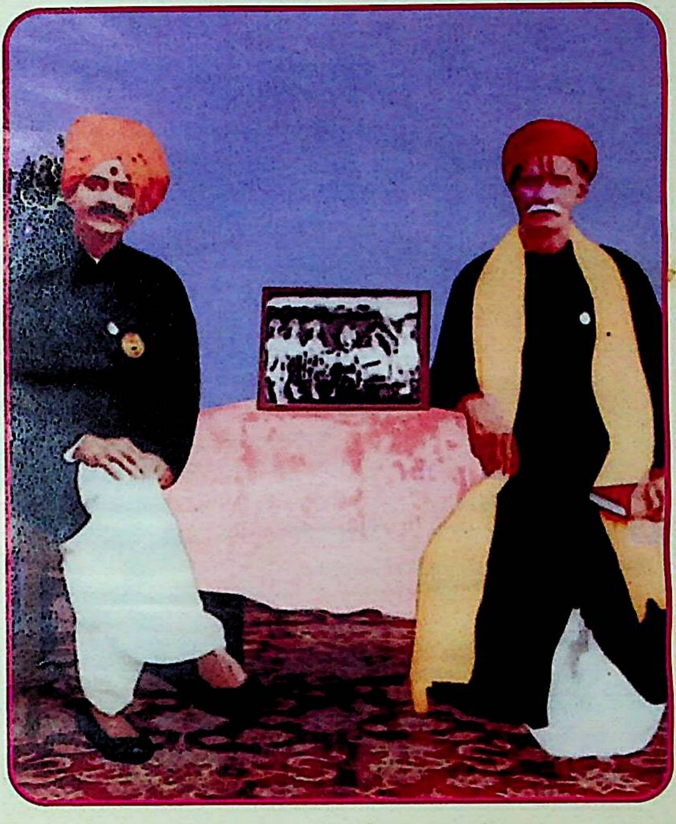

कविराज, आशुकवि
पं. श्री नित्यानन्द शास्त्री
ग्रन्थकार

विद्याभूषण
पं. श्री भगवतीलाल शास्त्री
संस्कृत व्याख्याकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पण्डित नित्यानन्द शास्त्री दाधीच
विरचित

रामकथा-कल्पलता

(महाकाव्य)

टिप्पणीकार : पं. भगवतीलाल विद्याभूषण

प्रधान सम्पादक
डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

प्रबन्ध सम्पादक मण्डल
ओम्प्रकाश आचार्य
अमरदत्त व्यास दाधीच
श्रीमती विमला आचार्य
श्री राम मोहन लखोटिया

प्रकाशक
आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान
गिरिजा निकेतन, ए-१३६, लेक.गार्डन्स
कोलकाता-७०००४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक :
आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान,
गिरिजा निकेतन, ए-१३६, लेक गार्डन्स
कोलकाता-७०००४५

© श्री ओमप्रकाश आचार्य - न्यासी सचिव

द्वितीय संस्करण : २००५

मूल्य : ७००/- रुपये

मुद्रक :
एल बी टेक्नोलोजी
एल बी हाउस, १६२/ए/१०७/१, लेक गार्डन्स
कोलकाता - ७०००४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय - भाव-मञ्जरी	(८)
२.	भाव-किसलय	(२१)
३.	भाव-प्रसून	(२५)
४.	आत्मनिवेदन	(२९)
५.	नित्य-भावना	(३४)
६.	मङ्गल-दोहावली	१-३
७.	पहला प्रतान	४-१६
८	दूसरा प्रतान	१७-३०
९	तीसरा प्रतान	३१-४१
१०.	चौथा प्रतान	४२-५३
११.	पाँचवाँ प्रतान	५४-६३
१२.	छठा प्रतान	६४-७३
१३.	सातवाँ प्रतान	७४-८५
१४.	आठवाँ प्रतान	८६-१०१
१५.	नवाँ प्रतान	१०२-११४
१६.	दसवाँ प्रतान	११५-१२७
१७.	ग्यारहवाँ प्रतान	१२८-१४२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१८.	बारहवाँ प्रतान	१४३-१५३
१९.	तेरहवाँ प्रतान	१५४-१६३
२०.	चौदहवाँ प्रतान	१६४-१७८
२१.	पन्द्रहवाँ प्रतान	१७९-१९२
२२.	सोलहवाँ प्रतान	१९३-२१५
२३.	सत्रहवाँ प्रतान	२१६-२३२
२४.	अठारहवाँ प्रतान	२३३-२५३
२५.	उन्नीसवाँ प्रतान	२५४-२७४
२६.	बीसवाँ प्रतान	२७५-२९३
२७.	इक्कीसवाँ प्रतान	२९४-३१४
२८.	बाईसवाँ प्रतान	३१५-३४६
२९.	तेईसवाँ प्रतान	३४७-३८३
३०.	चौबीसवाँ प्रतान	३८४-४१९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ

कालजयी है रामकथा की नित्य-प्रणीता कल्पलता

शब्द-अर्थ-गाम्भीर्य, रुचिरता, सहज काव्य-रस-कोमलता,
सत्यं शिवं सुन्दरं छविमय-भावाञ्जलि की प्राञ्जलता ।
पावन भक्ति निहित है जिसमें, चित्र-विपुलता, मञ्जुलता,
कालजयी है रामकथा की नित्य - प्रणीता कल्पलता ॥

-सम्पादक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पादकीय

श्रीरामकथा-कल्पलता
भाव-मञ्जरी

सद्यः हृदयस्पर्शी कविता का प्रमुख गुण है प्रसाद। किन्तु उसका अलङ्करण है उक्ति-वैचित्र्य। सहज कविता सतत अभ्यास और साधना, ध्वन्यार्थ-गर्भित आलङ्कारिक योजना आदि से गौरवान्वित और प्रतिष्ठित होती है। इसीलिए अभिव्यञ्जना के प्रभावोत्कर्ष में लक्षणा और व्यञ्जना की अतिशय महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 'नारिकेलरस' के समान चित्रकाव्य की सरसता श्रमसाध्य होने पर भी आह्लादकारी और स्फूर्तिदायक होती है।

रामकथा-कल्पलता जैसे उत्कृष्ट महाकाव्य के प्रणेता आशुकवि पं. नित्यानन्द शास्त्री दाधीच (१८८९-१९६१) की काव्य-कला का वैशिष्ट्य भी ऐसा ही है। उनके काव्य-माधुर्य में वैदुष्य-जन्य प्रातिभ-नैपुण्य की रमणीयता है, शब्द-लालित्य की रुचिरता है, निहितार्थ-सौष्ठव की सरसता है, दार्शनिक चिन्तन की गम्भीरता है एवं भावपूर्ण भक्ति की पावनता है।

भगवत्कथा में कवि-कर्म की सार्थकता

सच्चे कवि-कर्म की सफलता एवं सार्थकता परब्रह्म के अवतार भगवान श्रीराम के पावन गुणगान में है। श्रीराम की सर्वमङ्गलमयी कथा कल्याण-राशि का आगार है। संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कालजयी कृति 'रामचरितमानस' में इस तथ्य को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है:-

"भगति हेतु बिधि भवन बिहाई । सुमिरत सारद आवति धाई ।।
राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ । सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ ।।
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी । गावहिं हरि जस कलिमलहारी ।।
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपनी लोकप्रिय रचना 'साकेत' में प्रकारान्तर से इसी तथ्य को इस प्रकार कहा है:-

"राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है ।।"

आशुकवि पं. नित्यानन्द शास्त्री ने अपने महाकाव्य 'रामकथा-कल्पलता' में श्रीरामकथा को प्रतिपाद्य विषय बनाकर अपनी काव्य-प्रतिभा की सार्थकता सिद्ध कर दी है। 'मङ्गल-दोहावली' में उन्होंने लिखा है:-

"सुरसार्थान्वित स्वर्ग-सम बनता काव्य-शरीर ।
जिनके चरित बखान से, वे मम प्रिय रघुवीर ।।"

आत्मनिवेदन में भी उनका कथन है :-

"मैं तो वाद-विवाद-बादल मिटा स्वीयान्तराकाश में ।
सीताराम-गुणानुवाद रचता भावादरोल्लास में ।।"

एक अन्य स्थान पर इसी बात को कवि ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :-

"योगी का-सा सुकवि-जन का ध्यान एकाग्र होता,
योगी जैसे पर वह तभी पुण्य-सद्-बीज बोता ।
जो भव्या हो भणिति उसकी ईश-हेतु-प्रयुक्ता..."

रामकथा-कल्पलता का समग्र महाकाव्यत्व

महाकाव्य की समस्त काव्य-शास्त्रीय विशेषताओं को निरूपित करने वाली इस श्रेष्ठ काव्य रचना में भक्ति है, शृङ्गार है, रीति है, नीति है, प्रीति है, प्रतीति है, नवरस-परिपाक है, छन्दों की विविधता है, अलङ्कारों की विपुलता है, काव्यगत चित्रात्मक वैचित्र्य है। प्रतानों के प्रारम्भ में सारभूत अवलोकन के रूप में लिखी गई 'प्रवेशिका' के अन्तर्गत इन विशेषताओं का यथास्थान संक्षिप्त संकेत कर दिया गया है।

'रामकथा-कल्पलता' के कवि को इस बात का बोध है कि महाकाव्य की रचना सरल कार्य नहीं है, किन्तु श्रीराम की कृपा से यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुलभ है। इस सम्बन्ध में उनके ये शब्द अत्यन्त सारगर्भित हैं:-

"महाकाव्य रच देना कोई हँसी-खेल की बात नहीं ।
राम-कृपा यदि साथ रही तो कवि-प्रतिभा हो ज्ञात नहीं ।।
कवि-प्रतिभा चाहे न ज्ञात हो, राम-कृपा ही ज्ञात सही ।
राम-कृपा को गौरव देते कवि ही की गुरु बात रही ।।"

समाधिस्थ मानस की स्फुरणा

'रामकथा-कल्पलता' उच्च कोटि की भावस्थ समाधि-मानस की स्फुरणा है। ग्रन्थ में ऐसे अनेकों भाव-संदर्भ हैं जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। उदाहरण के लिए पञ्चवटी में कवि का यह भावलोक-आत्मदर्शन अत्यन्त आनन्ददायक है :-

"एक नित्य-सेवक वहीं प्रभु-प्रसाद-कविताप्त ।
स्वयं गुनगुनाया किया लख-लख अवसर-प्राप्त ।।"

इसी प्रकार भगवती सीता का शुकरूपी आशुकवि को गोद में बिठाकर, भगवान श्रीराम को यह पद सुनाना भक्तिरस का मधुरिम उद्रेक है:-

"तब आ शुक विज्ञात द्विज बोला जय सप्रणाम,
गोद बिठा बोलीं सिया, सुना किये श्रीराम ।

अहो! मम नित्य सुनन्दन कीर!,
कल कण्ठी तब गले बिराजे तुलसी-रङ्ग शरीर ।
भव-पञ्जर से मुक्त हुआ तू होना अब न अधीर,
आत्माराम! राम में रमना, जय स्वच्छन्द उदीर ।
विचर कहीं कोशल-कुञ्जों में, चाहे सरयू-तीर,
सिद्धि-प्रिया-कर के फल चखना, पीना अमृत-सुनीर ।
रामकथामय कल्पलता में रमना द्विज-कुल-हीर,
नित्य जानकी-सम्मुख रटना राम राम रघुवीर ।।"

इस भावस्थ तन्मयता का माङ्गलिक परिणाम यह है कि कवि की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभूत, स्वतः स्फूर्त इस काव्य-रचना से रघुपूत द्रवित हो जाते हैं, सहज आनन्द की वृष्टि हो जाती है :-

"दुखिया नित्यानन्द ने रच, पढ़, कर अनुभूत ।
किया प्रकट; इस स्तोत्र को पढ़े, द्रवें रघुपूत ।।"

ग्रन्थ की अनुपमता

शैली एवं अभिव्यञ्जना, कलित कल्पना एवं मौलिक उद्भावना, उदात्त कथानक-सुगठित ग्रन्थन, काव्यशास्त्र-सिद्धान्त-अनुपालन, सजीव शब्द-चित्राङ्कन एवं उक्ति-वैचित्र्य-सम्पादन आदि की दृष्टि से 'रामकथा-कल्पलता' एक अद्भुत काव्य-ग्रन्थ है। जिन भाव-संदर्भों से इस ग्रन्थ की अनुपमता सम्पुष्ट होती है, उनमें कतिपय उल्लेखनीय इस प्रकार हैं :-

मङ्गलाचरण-वैशिष्ट्य

मङ्गल-दोहावली में वैदिक मंत्र- विश्वानि देव सवितर् दुरितानि परासुव, यद् भद्रं तन्न आसुव – के प्रथमाक्षरों पर विरचित २४ दोहे और उन दोहों से क्रमशः २४ प्रतानों के श्रीगणेश की परिकल्पना इस महाकाव्य की विचित्रता का द्योतक है।

अप्रतिमउद्भावनाएँ

क्षीर-सागर में त्रिदेव-विनोद-गोष्ठी, श्रीराम जन्म-महोत्सव के आनन्दातिरेक में एक वनिता का संभ्रमवश उल्टा कञ्चुक पहनना, बालराम की कौतुकलीला, जनकपुरी में कुँवर-कलेवा-सरस विनोद, वनगमन के पूर्व श्रीलक्ष्मण-उर्मिला-मिलन, वनगमन-क्रम में महर्षि दधीचि के आश्रम का वर्णन, चित्रकूट में श्री-कैकेयी-राम-मिलन, षट्ऋतुवर्णन, मारवाड़-महिमा-अभिनन्दना, स्वर्ग-भूमि और भारत-भूमि का संस्कृत-हिन्दी में संलाप-ये सभी विलक्षण कल्पना के द्योतक हैं।

प्रतानों की प्रवेशिका में इन सभी का यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। अप्रतिम उद्भावना और उक्ति-वैचित्र्य के कुछ उदाहरण यहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत हैं :-

षट्-ऋतु वर्णन में क्रम से दस तक की संख्या का संकेत है :-

"अहो! एक-दो दिवस हुए, तीनों को सेने,
चतुर्वदन ने पञ्चवटी में यश को लेने ।
षट ऋतुओं को सप्त-रूप प्रकटा सरसाया,
अष्ट-सिद्धि-नवनिधि-युत दश-दिशि रच दरसाया ।।"

देवनदी गङ्गा के वर्णन में कवि की यह विलक्षण कल्पना मन को मुग्ध कर देती है :-

"इस भू-घर में हिम-भूधर को विधि ने दृढ़ मोंम-प्रदीप बनाया,
जिसके शिर पै रवि-मण्डल को छवि-मण्डल-मण्डित ज्वाल जताया ।
जन-हेतु पसीज-पसीज वही यह-देव-नदी-जल है, मन भाया,
यह भव्य छटा दिखला-दिखला, ध्रुव से मिल पूर्व दशा पर आया ।।"

अर्थात् जैसे मोमबत्ती पसीज-पसीज कर फिर गाढ़ी बन जाती है उसी तरह हिमालय का हिम पसीज-पसीज कर गङ्गा जल बनता हुआ सागर में मिलकर दक्षिणी ध्रुव तक पहुँच फिर जम जाता है।

'मिलाप' के निहित गूढार्थ अभिव्यञ्जना के लिए :-

"माया, लिप्त, परेश की दे प्रथमाक्षर-छाप ।
आद्य-युगल-मात्रा पलट विधि ने रचा 'मिलाप' ।।"

अर्थात् माया, लिप्त (जीव) और परमेश्वर इनके प्रथमाक्षर की छाप देकर अर्थात् 'मा लि, प' इन्हें लेकर इनमें पहले दो जो माया और लिप्त हैं, उनके प्रथमाक्षर की आपस की मात्रा पलटकर अर्थात् 'मालि' का 'मिला, बनाकर विधाता ने 'मिलाप' रचा है। अर्थात् संसार का कारण 'मिलाप' ही तो है।

सीताजी और रावण के हितार्थ शुक का यह गूढ़ कथन :-

"रच निजर हार आ, हृदय-हित शारदा ! ।
पद पलट मार है, मम वचन सार है" ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यों आ शुक विख्यात द्विज दोनों के हित-अर्थ ।
रटा किया, पर कर दिया होनहार ने व्यर्थ ।।''

अर्थात् सीता और रावण के हितार्थ शुक द्विज-पक्षी तोता (ध्वनितार्थ आशुकवि ब्राह्मण) जो चित्रकूट से प्रभु के साथ आया था, पास आकर यों कह रहा है:-

हे शारदा! (मेरे लिए सरस्वतीरूप सीता!) आकर हृदय, में धरने के लिए, निजर=अजर हार बना। कदम पलट दे। मार=घात है। चौथा चरण स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त वह 'पद पलट' इस से यह मर्म सुझा रहा है कि हृदय के हित-कारक प्रथम चरण के पदों को पलट हे; अर्थात् आ रहा रजनिचर।

रावण की ओर:- हे सरस्वती! आकर इस रावण के हृदय के लिए हार (ज्ञान-रूप) रचदे। हे रावण! तू पद पलट अर्थात् लौट जा, मार=घात है अथवा मार (काम-प्रभाव) है)। ध्वनितार्थ:-पद पलटकर 'मार (अर्थात् रमा=लक्ष्मी है, सामान्य स्त्री नहीं ।

अनूठेशब्द-चित्र

'रामकथा-कल्पलता' में शब्द-चित्रों का सौन्दर्य अद्भुत है। पूरे ग्रन्थ में शब्द-चित्रों का मोहक लालित्य है। उदाहरण के लिए जनकपुरी में माली द्वारा श्रीराम-लक्ष्मण के लिए वर्णित वाटिका की शोभा मानस-पटल पर सजीव चित्र अङ्कित कर देती है :-

''आते रहिए बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रिय दर्शन! मनमोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।''

अद्भुतकाव्य-कौशल

रामकथा-कल्पलता में कवि-कर्म-पटुता सर्वत्र दृष्टव्य है। केवल उदाहरण के लिए २ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत हैं :-

श्रीराम की बाल-लीला के संदर्भ में निम्नलिखित २ पद्यों में 'र' और 'म' की बारहखरी का वैशिष्ट्य विलक्षण है :-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"रसिया राम रिझाते भारी गुरुजी ! रूप-विमोहन
सुरेश से जो भी परैश्वर्य के हेतु दयामृत-दोहन
भव कुरोग के गुणकारौषध रंक-जनों के जीवन-
छिपते गृह की उरः-स्थली में जिनको न लख सकें जन ॥

महा मान्य ! मिथ्या-भ्रमी वृथा मुझ-से मूढ़ विचरते-
बाहिर ही, घर के गुरु से नहिं मेल न मैत्री करते ।
मोह-रूप मौलिक अपमंगल तमः-पुञ्ज में पड़ते,
अन्ध हुए तब ही तो घर की वस्तु पकड़ते अड़ते ॥

व्यावहारिककाव्यशास्त्र

'रामकथा-कल्पलता' की एक विशेषता यह भी है कि इसमें व्यावहारिक काव्यशास्त्र का प्रतिपादन है। छन्दों, अलङ्कारों, ध्वन्यार्थ आदि काव्य के अङ्गों को इसमें लाक्षणिक रूप में परिभाषित करके उदाहृत कर दिया गया है। इस सम्बन्ध में स्वयं कवि का कथन अत्यन्त सारगर्भित है :-

"काव्य के सर्ग भर में जब लम्बा एक ही छन्द जारी रहता है, तब पाठकों का मन प्रायः ऊब जाता है। यही जान लेखक ने इस काव्य में प्रायः प्रसङ्ग-प्रसङ्ग पर छन्दों के परिवर्तन को उचित समझा। इसके चौथे प्रतान में घुड़-दौड़-प्रसङ्ग पर एक जगह "द्रुतविलम्बित पाद न भी भरे" ऐसे 'द्रुतविलम्बित' छन्द का एक चरण अनायास लिखने में आ गया। जब रेखाङ्कित चारों अक्षरों पर ध्यान पहुँचा, तब ज्ञात हुआ कि 'न भी भरे' इन अक्षरों से इस छन्द का लक्षण भी इसी में झलक पड़ा है, जैसे नगण, भगण, रगण से 'द्रुतविलम्बित' का चरण बनता है। इसी प्रकार यदि अन्यान्य छन्दों के लक्षण सतत (लगातार) आये हुए अक्षरों से प्रकट कर दिये जाएँ तो वे छात्रों के लिए अति उपयोगी सिद्ध होंगे। इस धुन पर लेखक ने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध बहुत से छन्दों के लक्षणों को सूचित कर दिया है। इसके साथ-साथ इस बात का भी पूरा ध्यान रखा गया है कि छन्दों के गण-सूचक और लघु-गुरु-सूचक अक्षर उसी ढंग पर लगातार ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आने चाहिए, जिससे उन्हें पहिचानने की सुविधा रहे। इसी प्रकार साथ-साथ बहुत से मात्रा-छन्दों के लक्षण झलकाये गये हैं। जैसे १९वें प्रतान में अनसूया-सीता-प्रसङ्ग पर दोहा-लक्षण :-

"सीता बोली, यहाँ आने मनाये अति देवता,
वह बोलीं, तुम्हें पाने मनाये पति-देवता ।"

★ ★ ★

"त्रिदश-कलाश्रय विषम में, सम में, केवल ईश,
यों इच्छित दोहा करें सज्जन बिस्वे बीस ।"

दोहे का स्पष्टार्थ और छन्दोविषय-विवेचन टिप्पणी में देखिए।"

साहित्यिक अनुष्ठान

साहित्य-सेवा का एक महत्त्वपूर्ण स्वरूप है गवेष्णात्मक शोध। इस शोध का मूल उद्देश्य होना चाहिए उच्चकोटि के समर्पित, अल्पज्ञात-अज्ञात कृतिकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रकाश में लाना। प्रख्यात कृतिकारों के सम्बन्ध में सूचना-सामग्री सुगमता से और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो जाती है। किन्तु परिस्थिति-जन्य अनेक कारणों से अल्पज्ञात अथवा अज्ञात कृतिकारों की रचनाओं, उनकी रचना-प्रक्रिया, उनके अवदान आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है। आवश्यक सामग्री के अभाव में कभी-कभी तो अत्यन्त बहुमूल्य ज्ञान-राशि काल के गर्त में समाहित हो जाती है।

इस दृष्टि से 'रामकथा-कल्पलता' का यह संस्करण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि आज से लगभग ५६ वर्ष पूर्व इस महाकाव्य की रचना हुई थी, जिसका समुचित प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया था। अतः ऐसे श्रेष्ठ महाकाव्य को पाठकों के लिए सुलभ कराने के उद्देश्य से यह संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। साहित्य-सेवा का यह विनम्र प्रयास है।

सुखद संयोग

मार्च्च २००२ में एक दिन पं. नित्यानन्द शास्त्री के दौहित्र कोलकाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवासी श्री ओम्प्रकाश आचार्य हमारे घर पधारे। उन्हें जयपुर में संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान, देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने मेरे सम्बन्ध में बताया था। कलानाथ जी मेरे अनुज डॉ. नरेन्द्र 'कुसुम' के परम आत्मीय हैं और इसी नाते मेरे भी अत्यन्त सन्निकट।

श्री ओम्प्रकाश आचार्य जी सरल और भावुक व्यक्ति हैं। भारतीय जीवन-दर्शन, धर्म एवं संस्कृति में उनकी अगाध आस्था और निष्ठा है। इनके मूल में उनकी पत्नी विमला जी का विशेष योगदान है।

अपने पूज्य नानाजी पं. नित्यानन्द शास्त्री जी की पुण्य स्मृति में ओम्प्रकाश जी ने 'आचार्य नित्यानन्द शास्त्री स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान' की स्थापना की है। संस्थान के माध्यम से वे अपने नाना जी की रचनाओं के अभिनव संस्करण प्रकाशित करके उनका व्यापक प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं।

कोलकाता लौटकर ओम्प्रकाशजी ने निम्नलिखित कृतियों की दुर्लभ प्रतियाँ मुझे भिजवा दीं :–

१. श्री रामचरिताब्धिरत्नम् –(महाचित्रकाव्य)–संस्कृत
२. रामकथा-कल्पलता – (महाकाव्य) हिन्दी
३. श्री हनूमद्दूतम्.– (हिन्दी पद्यानुवाद सहित संस्कृत-काव्य)

इन ग्रन्थों को पढ़कर मैं कृतिकार के संस्कृत-वैदुष्य और हिन्दी के उनके असाधारण अधिकार, उनकी विलक्षण काव्य-प्रतिभा, उनकी भक्ति-भावना, उनकी साहित्य-साधना, साहित्य के प्रति उनकी समर्पणशीलता, उनकी मौलिक उद्भावनाओं आदि से अभिभूत हो गया।

संस्कृत के ग्रन्थों को सरसरी दृष्टि से देखा और पढ़ा। मन ही मन उनकी सराहना की, आनन्दित हुआ।

हिन्दी के महाकाव्य 'रामकथा-कल्पलता' का अनेक बार पारायण किया। यह ग्रन्थ है ही ऐसा। ज्यों-ज्यों उसे पढ़ा, मन उसे और पढ़ने को प्रेरित करता। पाठकों को सुलभ कराने के लिए इस संस्करण की आवश्यकता अनुभूत हुई। परिणामतः यह ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मिक सुख का साधन

आज के अशान्त, ईर्ष्या-द्वेष से आक्रान्त, अति-भौतिकवादी वातावरण में सुख, शान्ति, सौहार्द-समरसता आदि प्राप्त करने के लिए 'रामकथा कल्पलता' जैसे सरस, भावपूर्ण काव्य-ग्रन्थों की महती आवश्यकता है।

प्रायः कहा जाता है कि आधुनिक युग में कविता की प्रासंगिकता समाप्त हो गई है। किन्तु जैसा मैंने 'पल में वर्ष' कविता-संकलन की भूमिका में लिखा है :- 'मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कविता का आकर्षण एवं प्रभाव सार्वकालिक एवं सार्वभौम है। उसकी प्रासंगिकता के सम्बन्ध में प्रश्न करना ही अप्रासंगिक है। जब तक मनोभावों का स्पन्दन है, कविता का स्फुरण बना रहेगा। कविता के सहज स्फुरण से अन्तःकरण सदैव रससिक्त होता रहेगा। कविता का आश्रय सदैव आत्मिक सुख प्रदान करता रहेगा।'

सारभूत अवलोकन

कवि के ज्येष्ठ भ्राता पं. भगवतीलाल ने गूढ़ार्थ-दीपिका के रूप में टिप्पणी लिखकर ग्रन्थ को सहज-बोधगम्य बना दिया है। उनके निधन के पश्चात् कृतिकार के पुत्र-द्वय सर्वश्री श्याममनोहर शर्मा एवं बालकृष्ण शर्मा ने, जो इस कार्य से पहले से ही जुड़े हुए थे, इस कार्य को पूर्णता प्रदान की। ग्रन्थ-गरिमा में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कवि ने 'आत्म-निवेदन' के रूप में ग्रन्थ-रचना की पृष्ठभूमि को सुस्पष्ट कर दिया है।

कवि का संक्षिप्त परिचय

पं. नित्यानत्द शास्त्री के पूर्वज मूलतः मारवाड़ में जैतारण के निवासी थे। उच्च विद्याध्ययन के लिए उनके पिताजी पं. माधव कवीन्द्र जयपुर चले गए, जहाँ उन्होंने समाज में अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की। कालान्तर में किसी कारणवश वे जयपुर से जोधपुर आ गए। वहीं वि. सं. १९४६ (सन् १८८९ ई.) में नित्यानन्द जी का जन्म हुआ। जब वे मात्र ७ वर्ष के ही थे, तभी उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। बालक नित्यानन्द की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिक्षा-दीक्षा उनके ज्येष्ठ भ्राता, संस्कृत के विद्वान पं. भगवतीलाल जी के संरक्षण में पूरी हुई। विद्याव्यसनी, प्रतिभावान नित्यानन्द जी ने पंजाब विश्वविद्यालय से संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में अपना अध्ययन पूरा किया। प्रारम्भ से ही काव्य-रचना में उनकी विशेष अभिरुचि थी। समस्या-पूर्ति में वे सिद्धहस्त थे। व्याकरण और साहित्य में उनकी अद्‌भुत प्रतिभा थी।

लाहौर में शिक्षा पूरी करने के पश्चात् शास्त्री जी बम्बई के प्रसिद्ध श्रीवेंकटेश्वर प्रेस में ग्रन्थ-सम्पादन का कार्य करने लगे। साथ ही वहाँ के महावीर कालेज में संस्कृत के शिक्षक के पद पर उनकी नियुक्ति हो गई। बम्बई में उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। अतः वे अधिक समय तक वहाँ नहीं रह पाए।

बम्बई के पश्चात् कुछ समय के लिए शास्त्री जी भावनगर (गुजरात) में रहे, जहाँ उन्होंने 'जैन आत्मानन्द ग्रन्थमाला' के प्रधान सम्पादक के रूप में कार्य किया।

कुछ समय पश्चात् जब १९१२ ई० में जोधपुर के राजपूत नोबल्स स्कूल को हाई स्कूल बना दिया गया तब वहाँ शास्त्री जी को हिन्दी-संस्कृत के प्रधान अध्यापक पद पर नियुक्त कर दिया गया। २५ वर्षों तक वहाँ रहकर उन्होंने जिस तत्परता और निष्ठा से अध्यापन-कार्य किया, उससे न केवल विद्यार्थी-वर्ग प्रत्युत सभी आपके प्रशंसक हो गए। उनकी विद्वत्ता और काव्य-कला की ख्याति सर्वत्र फैल गई। यहाँ तक कि जर्मनी के बौन विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक पद पर भी आने के लिए उनसे प्रार्थना की गई किन्तु स्वदेश छोड़कर वे कहीं नहीं गए।

सन १९३८ में शास्त्री जी के ज्येष्ठ भ्राता पं० भगवतीलाल शर्मा का स्वर्गवास हो गया। उनके स्थान पर नित्यानन्द जी को 'पुस्तक प्रकाश राजकीय हस्तलिखित पुस्तकालय' का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया।

शास्त्री जी ने 'दधिमती' पत्रिका और 'सनातन' नामक पत्र का भी सफल सम्पादन किया।

पं० नित्यानन्द शास्त्री ने विपुल साहित्य का सृजन किया। उनके द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिखे गए ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

संस्कृत – मारुतिस्तव, लघुश्छन्दोऽलङ्कार-दर्पण, हनूमद्दूतम्, श्रीरामचरिताब्धिरत्नम्, आर्यामुक्तावली, कृष्णाष्टप्रास, आर्यानक्षत्रमाला, बालकृष्ण नक्षत्रमाला, पुष्पचरित, आत्मारामपञ्चरङ्ग, विविधदेवस्तवसंग्रह ।

हिन्दी– द्विजदशादर्पण, आदिशक्तिवैभव, ऋतुविलास, कुरीतिबत्तीसी, उन्नतिदिग्दर्शन (गद्य) मुक्तक-कविता-कलाप, हनूमद्दूत, श्रीरामकथा-कल्पलता, श्री दधीचि-चरित (काव्य)।

इनके अतिरिक्त शास्त्रीजी ने अनेक ग्रन्थों का संशोधन और सम्पादन किया। सन् १९६१ ई. में आपका स्वर्गवास हो गया। उस समय आपकी अवस्था ७२ वर्ष की थी।

कवि ने अपना विस्तृत परिचय रामकथा-कल्पलता के अन्त में दे दिया है।

कृतज्ञता-ज्ञापन

श्री ओम्प्रकाश आचार्य ने इस ग्रन्थ के सम्पादन का दायित्व मुझे सौंपकर, तथा उसकी प्रगति-प्रक्रिया में निरन्तर अभिरुचि अभिव्यक्त कर जो प्रोत्साहन प्रदान किया है, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

पत्नी मिथिलेश के सतत, प्रीतिसिक्त सहयोग से ही मैं अपना समस्त साहित्यिक कार्य-स्वाध्याय और लेखन-सम्पन्न कर पाता हूँ। इसी क्रम में इस ग्रन्थ के सम्पादन में भी उनका मौन किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। मिथिलेश की इस निःस्वार्थ सेवा के लिए मैं उनका नित्य कृतज्ञ हूँ।

अनुज डॉ. नरेन्द्र 'कुसुम' ने समय-समय पर मुझे जो अतिशय उपयोगी, व्यावहारिक सुझाव दिए हैं, उनसे मुझे इस ग्रन्थ के सम्पादन में पर्याप्त सहायता मिली है। मैं उन्हें आशीर्वाद देते हुए उनके यशस्वी कृतित्व के लिए प्रभुजी से प्रार्थना करता हूँ।

विद्वद्वर श्री कलानाथ शास्त्री इस योजना के प्रवर्तक हैं। उनके सौहार्द के लिए मैं उनका आभारी हूँ।

प्रख्यात लेखक, साहित्य-संस्कृति के मनीषी विचारक, हिन्दी अकादमी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिल्ली के पूर्व सचिव, डॉ. रामशरण गौड़ मेरे अभिन्न सहयोगी और मित्र हैं। उन्होंने जब इस ग्रन्थ को देखा, यत्र-तत्र उसे पढ़ा, तो वे बहुत ही आनन्दित हुए। उन्होंने इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की। मैं उनके इस नैतिक समर्थन के लिए उनका आभार मानता हूँ।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के संस्कृत-विद्वान पद्मश्री प्रो. सत्यव्रत शास्त्री समय-समय पर मार्गदर्शन करके मुझे प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं, इसके लिए मैं उनका अनुगृहीत हूँ।

निवेदन

आज आवश्यकता इस बात की है कि शास्त्री जी के व्यक्तित्व, एवं कृतित्व, उनके साहित्यिक अवदान, रामकाव्य-परम्परा में उनके कृतित्व की समीक्षा आदि पर शोध किए जाएँ। विभिन्न पाठ्यक्रमों में इस ग्रन्थ का समावेश किया जाए। यह पुस्तक साहित्य के विद्यार्थियों के लिए छन्द, अलङ्कारों, व्याकरण, कोश आदि के व्यावहारिक ज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी है। काव्य-विधा-सम्वर्धन में इसकी अतिशय महत्त्वपूर्ण भूमिका रहेगी।

मनीषी शब्द-साधक, संस्कृत और हिन्दी के निष्ठावान साहित्यकार, सिद्धहस्त सम्पादक पं० नित्यानन्द शास्त्री दाधीच के प्रति हमारी यही सच्ची श्रद्धाँजलि होगी और यही होगा हमारा विनम्र दायित्व-निर्वाहन।

विनयावनत,

डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

विजया दशमी वि. सं. २०६०

डी २१३, इला एपार्टमेंट्स,
बी-७, वसुन्धरा एन्क्लेव,
दिल्ली-११००९६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाव-किसलय

ओमप्रकाश आचार्य, प्रबन्ध-सम्पादक

जब मैं युवा अवस्था में प्रवेश कर रहा था, उस समय (१९५४) में पं. नित्यानन्द जी, जो मेरे नाना थे, जिन्हें मैं नानासा कहकर पुकारता था, 'रामकथा-कल्पलता' के निर्माण में लगे हुए थे। वे उस समय 'पुस्तक प्रकाश' (महाराजा जोधपुर घराने का) से अवकाशप्राप्त थे, और पंजाब, बम्बई, मद्रास, भावनगर, जयपुर आदि स्थानों में अपने साहित्यिक कार्य-कलापों से धाक जमा चुके थे। जोधपुर के राजघराने से उनका बड़ा घनिष्ठ रिश्ता था। महाराजा के परिवारजन एवं साहित्यिक जगत की ऊँची-ऊँची विभूतियों का उनके यहाँ जमघट लगा रहता था। इसमें प्रतिष्ठित संस्कृत-हिन्दी विद्वान्, साहित्य-जगत में प्रवेश करने वाले नये चेहरे, जैन साधु (जो हेमकोश की जिज्ञासाओं का समाधान करने आते), राजस्थान-कोश का निर्माण करने वालों की टोली (जिनमें श्री सीताराम लालस प्रमुख थे) और ऐसे लोग ही ज्यादा आते थे।

नानासा छन्द, अलङ्कार व व्याकरण-शुद्धता अपनाने वाले कवियों को अधिक प्रोत्साहन देते थे। इसका कारण यह था कि उन दिनों वे कवि अत्यन्त ऊँचाई पर थे जो छन्द, अलङ्कार आदि के प्रयोग में ही साहित्यिक सेवा मानते थे।

उन दिनों संस्कृत-हिन्दी के विद्वानों का वेतन कम होता था जिससे वे अपना जीवन सुविधापूर्वक चलाने में असमर्थ हो रहे थे। समय की गति के कारण राजा-महाराजाओं का आश्रय मिलना समाप्त हो चुका था। लेखकों को प्रोत्साहन देने वाली संस्थाओं का पूर्ण अभाव था। अतः साहित्यकार या तो केवल प्रकाशकों पर आश्रित रहते थे अथवा साहित्य निर्माण की रुचि को ही दबा लिया करते थे। उनके घरों में आर्थिक समस्या के कारण कई कठिनाइयाँ रहती थीं। अतः पण्डितगण अपने बच्चों को साहित्य-क्षेत्र में जाने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते थे। ऐसा ही नानासा के परिवार में भी हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतना होने पर भी घर का वातावरण आनन्द, उत्साह एवं ऊर्जा से भरा रहता था। मायूसी, आर्थिक संकट, सम्पन्न वर्ग से असंतोष कभी नानासा की लेखनी में नहीं आया। वे हमेशा प्रसन्न रहते थे। स्वयं शास्त्र-मत से चलते और दूसरों को भी (बिना गलतियाँ, दोष देखे) शास्त्र-मत को अपनाने की प्रेरणा देते थे।

पिता-तुल्य भाई (पं. भगवतीलालजी), स्नेहपात्र भतीजे (श्री राममनोहर जी) एवं पुत्री गिरिजाबाई (मेरी माँ) के आकस्मिक निधन व खानदेश की जमींदारी समाप्त हो जाने पर भी उन्होंने मानसिक सन्तुलन नहीं खोया। दर्शनशास्त्र के मन्दिर तथा शिक्षण-संस्थाओं को व्यावसायिक होते देख उन्हें दुःख अवश्य होता था। फिर भी ट्रस्टीगणों से (वहाँ दुकान चलाने की) शिकायत नहीं करते। उनका मत था कि शिक्षा के मन्दिरों / संस्थानों में विद्वान, साधु व अनुभवी व्यक्ति जो धन से दूरी रखते हों, ट्रस्टी होने के पद से जुड़े रहें। वे 'गीता प्रेस' जैसी संस्थाओं के हिमायती थे।

अन्त समय में नानासा मेरे लिए आशीर्वाद के अनेक शुभ-वचन कहते-कहते (१९६१) परलोक गमन कर गये। मैं उन दिनों बम्बई में चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट के प्रशिक्षण में लगा हुआ था।

उनके परलोक गमन के बाद, परिवार में साहित्यप्रेमी नहीं रहे। अतः मुझे योग्य 'सेवक' समझकर मेरे पिताजी वैद्य पं. बुद्धिप्रकाश जी ने मुझे नानासा के ग्रन्थों के प्रकाशन, पुनः प्रकाशन के लिए प्रेरित किया।

नानासा मुझे व श्री बालकृष्ण जी (मामाजी) तथा शान्तिबाई (उनके बड़े भाई पं. भगवतीलाल जी की पौत्री) को 'रामकथा-कल्पलता' के कुछ प्रसंग सुनाते। वे चाहते थे कि उनकी संस्कृत-हिन्दी रचनाएँ विद्वत् जगत में पहुँचती रहें। उन्होंने यह दायित्व तीनों को दिया। उन्होंने 'रामकथा-कल्पलता' के २४वें प्रतान में इस इच्छा का संकेत भी किया है :-

'बालकृष्ण का, शान्ति, ओम् का जो अवलम्ब तुम्हारा ।'

नानासा अपने जीवन-काल में आर्थिक दृष्टिकोण से विरक्त रहे। जब मैं अपने व्यवसाय में कुछ ठीक-ठाक हुआ तो मेरे पूज्य पिताजी (वैद्य पं. बुद्धिप्रकाश जी) ने मेरे नानासा की इच्छा का मुझे स्मरण दिलाया।

'रामकथा-कल्पलता' मेरे एवं मेरे योग्य सहयोगियों के प्रयासों का सुपरिणाम है। मुझे स्वनामधन्य डॉ. वीरेन्द्रजी शर्मा की प्रेरणा मिली। वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तन-मन-धन से, बिना स्वार्थ ही मेरे साथ जुट गये। मैं उनको ज़ितना धन्यवाद दूँ वह कम ही पड़ेगा। मुझे उनकी पत्नी श्रीमती मिथिलेश जी ने, जिनमें मैं अपनी माताजी का दर्शन पाता हूँ, खूब ढाढ़स दिलाया, खूब स्नेह-प्रेम दिया। नानासा के आशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न होते देख मेरा मन गद्‌गद् है। प्रभु 'राम' श्री वीरेन्द्र जी की कान्ति और यश आगे बढ़ाएँ, यही प्रार्थना है।

मेरे नानासा की इच्छा थी कि मैं एक संस्था बनाकर साहित्यिक कार्य में जुटे परिवारों की सेवा करूँ। संस्कृत साहित्य में छिपे दुर्लभ ज्ञान की खोज उन संस्कृत विद्वानों से करवाऊँ जिन्हें अँग्रेजी तथा अन्य भाषाओं का भी ज्ञान है उन वैज्ञानिकों को जिनकी भारतीय संस्कृति में गहरी रुचि है, संस्कृत साहित्य, जिसमें विज्ञान का प्रचुर भण्डार है, से परिचय करवाऊँ।

नानासा एवं पिताजी की आज्ञा शिरोधार्य रखकर मैंने 'आचार्य नित्यानन्द-स्मृति-संस्कृत-शिक्षा एवं शोध संस्थान' नामक संस्था बनाई। इसमें मुझे जयपुर के पं. कलानाथ शास्त्री, पं. मोहनलाल पांडेय, श्री अमरदत्त व्यास दाधीच, डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम', दिल्ली के महामहोपाध्याय डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, श्री सतकोटी मुखोपाध्याय, डॉ. वाचस्पति उपाध्याय एवं डॉ. वीरेन्द्र शर्मा, वाराणसी के डॉ. भोलाशंकर व्यास, डॉ. वागेश शास्त्री, श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी, अहमदाबाद के श्री अम्बालाल नागर, श्री जयकिशनदास सादानी, श्री वागीश शुक्ल (दिल्ली), डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी (उज्जैन) एवं कलकत्ते के पं. रमारंजन मुखर्जी, डॉ. मानवेन्दु बनर्जी, पं. ध्यानेश नारायण चक्रवर्ती, श्री वासुदेव पोद्दार, श्रीमती वसुन्धरा मिश्रा एवं श्री नवरत्नमल भण्डारी, श्रीमती विद्या भण्डारी तथा सत्साहित्यानुरागी श्री रामचन्द्र मिश्र का भरपूर समर्थन मिला है। मैं इन सभी के प्रति कृतज्ञ हूँ।

भारतीय भाषा-परिषद, भारतीय संस्कृति-संसद जैसी विख्यात संस्थाओं से सम्बद्ध, भाषा, साहित्य, संस्कृति के उन्नायक, उदारमना श्री परमानन्द चूड़ीवाल के प्रोत्साहन एवं समर्थन के लिए मैं हृदय से उनका आभारी हूँ।

महाराजा जोधपुर श्री गजसिंहजी साहब से भी अत्यन्त सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ जिसके लिए हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। महाराजा साहब की प्रेरणा से चौपासनी स्कूल जोधपुर में, जहाँ नानासा राजपरिवारों को शिक्षा प्रदान किया करते थे, उनकी स्मृति में "आचार्य नित्यानन्द स्मृति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान'' द्वारा एक संस्कृत-कक्ष का निर्माण कराया गया है। इसके अतिरिक्त ''आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान'' और ''महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश मेहरानगढ जोधपुर'' (जहाँ मेरे दोनों नानासा कार्यरत थे) ने मिलकर संयुक्त रूप से संस्कृत छात्रवृत्ति आचार्य नित्यानन्दजी के नाम से प्रारम्भ कर दी है। इस पुनीत कार्य में जोधपुर के डॉ. महेन्द्रसिंहजी नगगड़ का पर्याप्त सहयोग मिला, तदर्थ धन्यवाद।

सन्तोष की बात है कि आचार्य नित्यानन्द-स्मृति-संस्कृत-शिक्षा एवं शोध-संस्थान 'श्री हनूमद्दूतम्', 'श्री रामचरिताब्धिरत्नम्', 'रामकथा- कल्पलता', 'श्री बालकृष्ण नक्षत्रमाला' के पुनः प्रकाशन में संलग्न है।

'रामकथा-कल्पलता' की सामग्री मुझे कथाभट्ट सुबोध कुमार जी जयपुर / सिंगापुर के सौजन्य से प्राप्त हुई। उन्होंने मुझे प्रेरणा भी दी। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

मेरी पत्नी विमला, पुत्र राजीव एवं पुत्रियाँ शैलजा तथा शालिनी से मुझे निरंतर सहयोग और समर्थन मिला है। विमला के प्रति मैं नित्य कृतज्ञ हूँ एवं पुत्र-पुत्रियों के लिए हृदय से आशीर्वाद देता हूँ।

प्रभुजी से प्रार्थना है कि संस्थान के कार्य-कलापों में निरन्तर प्रगति होती रहे।

न्यासी सचिव

आचार्यनित्यानन्द-स्मृति-संस्कृत-शिक्षाएवंशोध-संस्थान

गिरिजा निकेतन, ए-१३६, लेक गार्डन्स

कोलकाता-७०००४५.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाव प्रसून

अमरदत्त व्यास दाधीच, सहसम्पादक

प्रतिभा एवं पाण्डित्य, प्रौढ़ि एवं लालित्य, शील एवं वैदुष्य का अपूर्व मणिकाञ्चन-संयोग-संश्लिष्ट पण्डित नित्यानन्द शास्त्री ऐसे सिद्धहस्त कवि हैं जिनका देववाणी संस्कृत और जनवाणी हिन्दी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है। उन्होंने अपनी रचनाओं से संस्कृत-वाङ्मय और हिन्दी-साहित्य दोनों को समृद्ध और गौरवान्वित किया है।

पण्डित नित्यानन्द ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा-सम्पन्न पुण्यात्मा पुरुष थे। उन पर जहाँ अपने आराध्य भगवान राम का सदा ही अनवरत अनुग्रह रहा, वहीं वाग्देवी माँ सरस्वती भी सदैव उनकी जिह्वा पर विराजती रही। उनको काव्य रचना नहीं पड़ता अपितु अविच्छिन्न धाराप्रवाहवत् काव्य स्वतः ही बनता चला जाता था। स्वयं उन्होंने मुझे बताया था कि जब वे लेखन में प्रवृत्त होते हैं तो उन्हें सोचने-विचारने में कुछ भी समय व्यय नहीं करना पड़ता। अपितु जैसे पीछे से कोई धकेलता हो अथवा जैसे लहरों पर लहरें उठती जाती हों, वैसे ही लेखनी स्वतः सरपट दौड़ने लग जाती है और काव्य-निर्माण अनायास ही होता चला जाता है। इसे उनकी प्रभु-प्रदत्त दिव्य-प्रतिभा नहीं तो और क्या कहा जाय?

पण्डित नित्यानन्दजी की यशस्वी लेखनी से प्रसूत संस्कृत और हिन्दी भाषा में अनेक रचनाएँ हैं, जिनमें से शीर्षस्थ तीन इस प्रकार हैं:-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् (महाकाव्य)

संस्कृत भाषा में विरचित श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् महाकाव्य संस्कृत की रामकाव्य-परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी होने के साथ-साथ चित्र काव्य परम्परा एवं महाकाव्यपरम्परा का अनूठा निदर्शन भी है।

(२) श्रीहनुमद्दूतम् (दूतकाव्य)

कवि का हनुमद्दूतम् संज्ञक संदेशकाव्य भी इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण शब्द-शिल्प से अभिमण्डित है जिसमें उन्होंने कालिदास के 'मेघदूत' की परिकल्पना से प्रेरित होकर हनुमान की लङ्का यात्रा को पूर्वपक्षीय बनाकर उसके उत्तर पक्ष के रूप में राम का सन्देश ज्ञापित कराया है।

(३) रामकथा-कल्पलता (महाकाव्य)-हिन्दी

प्रायः संस्कृत-पण्डित हिन्दी में रचना नहीं करते। परन्तु शब्द-शिल्पी आशुकवि पण्डित नित्यानन्द शास्त्री ने हिन्दी भाषा में भी श्रेष्ठ काव्य-रचना कर विद्वत् समुदाय के समक्ष लोकहिताय हिन्दी में रचना की उपादेयता प्रतिपादित की है। इस काव्य की कुछ विशेषताओं की ओर विशेष ध्यान आकर्षण करने के लिए अपने कुछ उद्गार प्रकट करता हूँ।

हिन्दी काव्योद्यान की यह कल्पलता निःसन्देह विशिष्ट और असामान्य है। देववाणी संस्कृत में रचित श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् के समान ही यह हिन्दी भाषा में अनुपम कृति है। कवि ने अपनी कृति द्वारा मानवता का शाश्वत सन्देश दिया है। अद्वितीय काव्यकौशल, कल्पना की चारु-चमत्कृति, अनूठी रसाभिव्यक्ति, अवसरोपयुक्त रस निष्पत्ति, अपनी संस्कृति और नीति का मुखर प्रतिबिम्ब, परमभावगम्य और विचारपूर्ण नीति विषयक सदुपदेश, दार्शनिकता की अन्तर्गूढ़ता, शब्द-शक्ति का अद्भुत चमत्कार, अनुपम रचना कौशल आदि कवि के अनेकानेक दिव्यगुणों से आलोकित है यह महाकाव्य। इसमें स्थान-स्थान पर गुम्फित चमत्कारों को देखकर चित्त का आश्चर्यचकित और आनन्दविभोर हो जाना स्वाभाविक है। वस्तुतः इसका प्रत्येक स्थल चमत्कारों से ओतप्रोत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पण्डितजी के जीवन के दो प्रसंग यद्यपि व्यक्तिगत हैं परन्तु सर्वजनहिताय की दृष्टि से उनका उल्लेख यहाँ करना अनुचित नहीं होगा। आज से लगभग ४३ वर्ष पूर्व सन् १९६० की बात है जब पण्डितजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। मैं प्रायः उनसे मिलने जाता रहता था और तब वे अपने कनिष्ठ पुत्र स्व. श्री बालकृष्णजी और मुझको, चारपाई पर लेटे-लेटे ही अपनी 'रामकथा-कल्पलता' के पदों का सन्दर्भ सहित व्याख्या करके अर्थ समझाया करते थे। एक दिन मेरी उपस्थिति में ही उनके दौहित्र श्री ओम्प्रकाश आचार्य, जो राजस्थान से बाहर रहते थे, अपने रूग्ण नानाजी से मिलने आ गये। पण्डितजी तब आत्मीयता से द्रवीभूत हो अपने दौहित्र पर पर्याप्त समय तक स्नेहसिक्त शुभाशीर्वचनों की वर्षा करते रहे और श्री आचार्य भी श्रद्धावनत नतमस्तक होकर वे अनमोल अमृतकण अपने अङ्क में समाहित करते रहे। लगता है कि अपने पूज्य नानाजी की यशोरक्षा हेतु उनकी रचनाओं को पुनः प्रकाश में लाने का बीजारोपण श्री ओम्प्रकाश के हृदय में तभी हो गया था जो इतने वर्ष उपरान्त और वह भी कदाचित् स्वयं पण्डितजी की प्रेरणा से अब जाकर साकार रूप ले पाया है।

एक अन्य अवसर पर श्री बालकृष्णजी और मैं, पण्डितजी की काव्य-रचनाओं की प्रशंसा में कतिपय विद्वानों के आये हुए पत्रों का अवलोकन कर रहे थे, तभी पण्डितजी ने कहा था कि प्रायः देखा जाता है कि व्यक्ति के जीवनकाल में उसके कार्यों का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाता है और मुझे लगता है कि मेरी साहित्य-साधना का भी यथोचित मूल्यांकन मेरी मृत्यु के लगभग ५० वर्ष पश्चात् हो पाएगा। आज उनके निधन के ४२ वर्ष पश्चात् उनकी कृतियों का उनके दौहित्र श्री ओम्प्रकाश आचार्य के सत्प्रयासों से पुनः प्रकाशन होता देखकर लगता है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पण्डितजी की उस समय की गई टिप्पणी कितनी यथार्थ और सटीक थी।

पण्डित नित्यानन्द शास्त्री का व्यक्तित्व और कृतित्व केवल अपने प्रदेश अथवा भारत देश के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संस्कृत और हिन्दी जगत के लिये गौरव की वस्तु है।

जी-२६,हर्षपथ,श्यामनगर,
अजमेररोड,जयपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।। श्रीरामः सर्वमङ्गलम् ।।

आत्म निवेदन

दीनों के दुख से दुखी, न कि निजात्मा के दुखों से दुखी,
दीनों के सुख से सुखी, न कि निजात्मा के सुखों से सुखी ।
लोकों का उपकार एक जिनके, उद्देश्य का सार है,
जाने दो सब बात, पूर्व उनको मेरा नमस्कार है ।।

कोई बारह–तेरह वर्ष हुए, मैंने एक 'रामचरिताब्धिरत्न'–नामक महाकाव्य संस्कृत में रचा था। इस ग्रंथ के टिप्पणीकार मेरे ज्येष्ठ–भ्राता ही उसके टीकाकार थे। उन्हीं दिनों जब वह "श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई" से छपकर प्रकाशित हुआ; उसे देखनेवाले सर्व–साधारण सज्जनों ने, (जो स्वकृत हिन्दी–पद्यानुवाद–सहित मेरे 'हनुमद्दूत' नामक खण्ड–काव्य को देख चुके थे), उस ग्रन्थ का वैसा ही हिन्दी–पद्यानुवाद्र न पाकर उलहना देते हुए फिर भी उसको रच देने का बार–बार मुझसे अनुरोध किया। किन्तु कुछ समय उस अनुरोध पर मुझे आनाकानी करनी पड़ी। क्योंकि मुझे उस समय इस बात का पूरा अनुभव हो चुका था कि, संस्कृत के श्लेषादि जटिल विषय को हिन्दी–पद्यानुवाद यथावत् समझा नहीं सकता। इसलिए मैंने दूसरे ही स्वतंत्र रामचरित का लिख डालना अधिक श्रेयस्कर समझा।

सच पूछिए तो इस महाकाव्य की रचना में प्रवृत्त होने का यही मुख्य कारण उत्पन्न हुआ। दूसरा सांसारिक प्रपञ्चों से अवकाश पाकर कुछ–न–कुछ लिखने का व्यसन भी तो लगा हुआ था। वह भी भगवत्कृपा से प्रायः

---

*यहाँ इस बात का उल्लेख करना समीचीन होगा कि पं. भगवतीलाल शर्मा विद्याभूषण के निधन के पश्चात् कृतिकार के पुत्र–द्वय सर्वश्री श्याममनोहर शर्मा एवं बालकृष्ण शर्मा ने, जो इस कार्य से पहले से ही जुडे हुए थे, टिप्पणी के कार्य को पूर्णता प्रदान की। – सं.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकवि श्री नित्यानन्द शास्त्री
(१८८९–१९६१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवद्-विषयक संदर्भ लिखने ही का रहा। अतएव सौभाग्य है, श्रीराम-कृपा से आज यह महाकाव्य सुसंपन्न हो गया। जहाँ-जहाँ संस्कृत-चरितमानस के भाव प्रतिबिम्बित हो गए हैं, वहाँ-वहाँ पर वहाँ के स्थल की सूचना भी कर दी गई है।

लेखक ने यद्यपि पहले-पहले ब्रजभाषादि- मिश्रित हिन्दी में भी रचनाएँ लिखी हैं, किन्तु बाद में उसे भाषा-वैशद्य के लिए खड़ी बोली ही को अपनाना पड़ा। काव्य के सर्ग भर में जब लंबा एक ही छन्द जारी रहता है, तब पाठकों का मन प्रायः ऊब जाता है, यही जान लेखक ने इस काव्य में प्रायः प्रसङ्ग-प्रसङ्ग पर छन्दों के परिवर्तन को उचित समझा। इसके चौथे प्रतान में घुड़-दौड़ प्रसङ्ग पर एक जगह "द्रुत विलम्बित पाद न भी भरे" ऐसे 'द्रुतविलम्बित' छन्द का एक चरण अनायास लिखने में आ गया, जब रेखाङ्कित चारों अक्षरों पर ध्यान पहुँचा, तब ज्ञात हुआ कि 'न भी भरे' इन अक्षरों से इस छन्द का लक्षण भी इसी में झलक पड़ा है. जैसे नगण, भगण, रगण से 'द्रुत विलम्बित' का चरण बनता है. इसी प्रकार यदि अन्यान्य छन्दों के लक्षण सतत् (लगातार) आये हुए अक्षरों से प्रकट कर दिये जाएँ तो वे छात्रों के लिए अति उपयोगी सिद्ध होंगे; इस धुन पर लेखक ने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध बहुत से छन्दों के लक्षणों को सूचित कर दिया है। इसके साथ-साथ इस बात का भी पूरा ध्यान रखा गया है कि छन्दों के गण-सूचक और लघु-गुरु-सूचक अक्षर उसी ढंग पर लगातार ही आने चाहिए। जिससे उन्हें पहिचानने की सुविधा रहे। इसी प्रकार साथ-साथ बहुत से मात्रा-छन्दों के लक्षण झलकाये गये हैं। जैसे १९वें प्रतान में अनसूया-सीता-प्रसङ्ग पर दोहा-लक्षण-

सीता बोली, यहाँ आने मनाये अति देवता ।
वह बोलीं, तुम्हें पाने मनाये पति-देवता ।।

★ ★ ★

"त्रिदश-कलाश्रय विषय में, सम में, केवल ईश ।
यों इच्छित दोहा करें सज्जन बिस्वे बीस "।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोहे का स्पष्टार्थ और छन्दोविषय-विवेचन टिप्पणी में देखिए। इसके अतिरिक्त महाकाव्य में रही हुई अन्यान्य साहित्य-सामग्री के उपस्थित करने में लेखक का कुछ कहना व्यर्थ-सा है, विद्वान् स्वयं देखेंगे ।

शक्ति-भर ध्यान रखते हुए भी मानव-धर्म से यदि कहीं त्रुटि रह गई हो, तो विज्ञ-जन मुझ पर क्षमा करते हुए उसे सुधार लें। विशेष सुधार के लिए यदि लेखक को उसकी सूचना मिल जायेगी तो वह अगले संस्करण में कृतज्ञता-प्रकाशन के साथ सुधार दी जाएगी।

छाया-वाद रहस्य-वाद जिनके सन्दर्भ का स्वाद है,
मेरा है अभिवाद पूर्व उनको, मेरी कथा वाद है ।
मैं तो वाद-विवाद-बादल मिटा स्वीयान्तराकाश में,
सीताराम-गुणानुवाद रचता भावादरोल्लास में ।।

विज्ञो ! काव्य-शरीर की विरचना है सिन्धु के नीर की-
लाना थाह, समीर की लहर का लेना न, जो तीर की ।
अज्ञों को फिर हीर की परख क्या, ज्यों शुद्ध काश्मीर की,
हाँ, हो श्रीरघुवीर की यदि कृपा, हो पूछ आभीर की ।।

रामकथा-कल्पलता सुजन ! लीजिए,
जो कुछ मम पत्र-कुसुम ग्रहण कीजिए ।
जो परखे प्रीति-रखे सदुपहार को,
वनमालिक दे कालिक फल उदार को ।।

विनीत
नित्यानन्द

विजया दशमी वि. सं. २००४
चाँद बावड़ी,
जोधपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथा राम की

विश्वामित्रेष्टिरक्षा शिवधनुदलनं सीतयोद्वाहनं च
प्रारब्धे यौवराज्ये वनमभिगमनं रक्षसां ध्वंसनं च ।
पश्चात् सीतापहारः कपि-समुपगमो बालि-विध्वंसनं च
सीताप्ती रावणान्तस्तिलकमिति कथां विद्धि रामायणस्य ।।

[रक्षा कौशिक-यज्ञकी, धनुष की भञ्जा, सिया-ब्याहना,
छोड़े यौवन-राज्य के वन-गति, कव्याद्-विध्वंसना ।
सीता-चोरण, वानरेन्द्र-मिलना, बालि-क्षिया, जानकी-
प्राप्ति, ध्वंस सुरारि का, तिलक यों जानो कथा राम की ।।]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीरामः सर्वमङ्गलम्

नित्य-भावना

मूक होइ वाचाल, पङ्गु चढे गिरिवर गहन ।
जासु कृपा, सो दयाल द्रवै छीरसागर-शयन ॥

मूरख अजान आपका बखान क्या करूँ ?,
कर जोड़ आँख मूँद, मूर्ति को हिये धरूँ ।
हो आप सर्वजान क्या स्व-बीनती करूँ ?,
इसको करें सफल प्रभो! भवाब्धि को तरूँ ।।१।।

वासार्थ कुछ न चाहिए, पादाब्ज में रहूँ ।
चाहूँ यही कि भक्ति-दिव्य-सिन्धु में बहूँ !
लम्बी भले बहे, मिलायगी अथाह से,
पङ्कादि का वहाँ न भय, बहूँ उछाह से ।।२।।

गुरु, मात, तात, भ्रात, मित्र भी हितैषिता,
चल त्याग मानता तुम्हें अचल जगत्पिता! ।
ढेरों भरा महान धन अहो! बढ़ा-चढ़ा-
गिरता अनित्य, नित्य धन तुम्हीं, यही पढ़ा ।।३।।

रिक्ता रहे न चित्त-वृत्ति राम-भक्ति से,
वर नाथ! दीजिए यही दयानुरक्ति से ।
रमता रहूँ चराचरैक-ब्रह्म-बाग में,
गति भृङ्ग की रहे, पतङ्ग की न आग में ।।४।।

हतभाग्य हो रहूँ न मैं भवान्धकूप में,
नर भी रहूँ भले, परन्तु आत्म-रूप में ।
जाग्रत् रहूँ स्व-ध्यान में, न स्वप्न में रहूँ,
सु-सुषुप्ति पा पुनः समाधि-पूर में बहूँ ।।५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृपया मुझे रखें प्रभो! स्वकीय सङ्ग में,
पादारविन्द में रखें, रहूँ उमङ्ग में।
सोहूँ रमेश! नित्य दास हो प्रमोद में,
दरसाँय बाल पै दया, रखें स्व-गोद में ॥६॥

यात्रा भवाम्बुराशि की तभी सुहावनी,
लक्ष्मीश-भक्ति नाव जो सहाय पावनी।
द्रव्यादि सद्-विचार आदि नष्ट हों नहीं,
वैरी मदादि दूर ही रहें, भगें कहीं ॥७॥

छीनी न जाय भक्ति-नाव, क्योंकि साथ हो,
रक्षक महान एक ही त्रिलोकनाथ हो।
साथी सुजन अनेक हों, परेश-भक्त हों,
गहरे विचारवान हों, गुणानुरक्त हों ॥८॥

रघुवंशनाथ! नित्य की कृपा बनी रहे,
शरणागत स्वभक्त क्या भव-व्यथा सहे।
यदि हो महापराध भी किसी प्रकार से,
न उसे निहारिए कृपा-निधान! प्यार से ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

मङ्गल-दोहावली

प्रवेशिका

प्राचीन परम्परा के अनुरूप **श्रीरामकथा-कल्पलता** का प्रारम्भ **मङ्गल-दोहावली** के रूप में **मङ्गलाचरण** से किया गया है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण करने से ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति होती है तथा उसकी गरिमा कल्याणकारी हो जाती है।

यह मङ्गलाचरण जिस वैदिक मंत्र से किया गया है, वह इस प्रकार है:- विश्वानि देव सवितर् दुरितानि परासुव, यद् भद्रं तन्न आसुव। इसमें परमपिता परमेश्वर से दुर्गुणों को दूर करके शुभ गुण प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। इस मंत्र में २४ अक्षर हैं जिनको लेकर मङ्गल-दोहावली में २४ दोहे हैं। ग्रन्थ में प्रतान की संख्या भी २४ ही है।

कवि के इष्टदेव भगवान श्रीराम हैं। अतः मङ्गलाचरण का श्रीगणेश श्रीराम के स्तवन से किया गया है :-

विश्व-वरद विश्राम के एक कुञ्ज शुभधाम ।
अभयद-कर-पुष्कर-प्रसर जय जय जय श्रीराम ।।

ग्रंथ का समर्पण भी भगवान श्रीराम के श्री चरणों में ही है:-

सुरसार्थान्वित स्वर्ग-सम बनता काव्य-शरीर ।
जिनके चरित बखान से, वे मम प्रिय रघुवीर ।।
वसन, अशन नव, पान नव, तन, मन, धन सब वस्तु ।
वचन-रचन, संयम-नियम श्रीरामार्पणमस्तु ।।

वैदिक मंत्र के प्रथमाक्षरों से विरचित दोहों की परिकल्पना से महाकाव्य की विचित्रता भी आभासित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम:

मङ्गल-दोहावली

* विश्वानि देव सवितर् दुरितानि परासुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव ॥

विश्व-वरद विश्राम के एक कुञ्ज शुभधाम ।
अभयद-कर-पुष्कर-प्रसर जय जय जय श्रीराम ॥१॥
श्वापद, विषधर, नीरचर; खेचर, दस्यु, नरेश ।
अनल, सलिल क्या कर सकें, जिनके हृदय रमेश ॥२॥
निकट निकटतर निकटतम होते भी फिर साथ ।
दूर दूरतर दूरतम गहते छिन क्यों नाथ!? ॥३॥
देन-लेन ही का करें आप काम यदि साथ ।
भवासक्ति ले लीजिए भक्ति दीजिए नाथ! ॥४॥
वशीभूत यदि राम को किया चाहते आप ।
वशीभूत हो जाइए पहले अपने आप ॥५॥
सविता त्रिभुवन-प्रसविता जिनके हों नित साथ ।
उनके क्योंकर हो नहीं विघ्न-तिमिर-उन्माथ ॥६॥
विद्यामय विद्योत दें राम-चरण-नखरांशु ।
जिस को दे सकता कभी, न अखरांशु न खरांशु ॥७॥
तर्क नहीं कुछ काम दे, शास्त्रों का न सुझाव ।
अन्तर्यामिन् ! निज पता दें स्वानुभव-प्रभाव ॥८॥
दुख को दुख मत मानिए, फिर सुख को सुख भी न ।
जान पड़ेंगें जानकी -पति तब निकटासीन ॥९॥
रिक्त सभी संसार है रघुवर से अतिरिक्त ।
यदि तन्मय ही समझ लें, सबको, सभी अरिक्त ॥१०॥
तात ! सनातन है नहीं तात, तात रघुनाथ ।
माता भी माता वही, यों लख बनो सनाथ ॥११॥

* मङ्गल-दोहावली के प्रथमाक्षरों से यह मन्त्र निकलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्निमेष लखते रहें संध्याकाश-प्रकाश ।
सीता-राघव-युगल को तो हम हों पूर्णाश ।।१२।।
परम पुनीत पदार्थमय रामनाम अविराम ।
जो रटते कटते दिवस, तो पटते सब काम ।।१३।।
राम-जानकी-युग अनुग श्रीसौमित्रि-समेत ।
चन्द्र-चन्द्रिका ज्यों सबुध, मन को करें निकेत ।।१४।।
सुजन-सुखद शर-चापधर रुचिर-चीर रघुवीर ।
जयति धीरजन-हीर-मणि नीरदनील-शरीर ।।१५।।
वन्दन यदि करते रहें रघुनन्दन-पद प्राय ।
हरिचन्दन से कम नहीं, रसस्यन्दन फल पाँय ।।१६।।
यद्वा-तद्वा कर रहा, अखर रहा कुछ भी न ।
यदि दयालु न करें दया, उदयाशा हो लीन ।।१७।।
भद्र-भावना यदि रखो, रामभद्र का नाम-
स्मरण करो अशरण-शरण शरण करो अभिराम ।।१८।।
रंक-राव को एक-सम राम-नाममय रत्न ।
लूट सको तो, लूट-लो, करना पड़े न यत्न ।।१९।।
तन्द्रा को तजिए तनिक, चन्द्रालोक समान ।
लखिए सब संसार को, रखिए प्रभु-शशि-ध्यान ।।२०।।
नर-जनि में ही द्योत कर दर्श किया आदर्श ।
रामचन्द्र ही अद्भुत न, यह भी पादस्पर्श ।।२१।।
आप अचापल चाप-धर सप्रताप गत-ताप ।
प्रभु! मैं क्या गुण गा सकूँ थके चतुर्मुख आप ।।२२।।
सुरसार्थान्वित स्वर्ग-सम बनता काव्य-शरीर ।
जिनके चरित बखान से, वे मम प्रिय रघुवीर ।।२३।।
वसन, अशन नव, पान नव, तन, मन, धन सब वस्तु ।
वचन-रचन, संयम-नियम श्रीरामार्पणमस्तु ।।२४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

पहला प्रतान

प्रवेशिका

इस प्रतान में कवि ने श्रीराम, सीताजी, आदि शक्ति, दाधीचों की कुलदेवी, दधिमथि, पवनसुत हनुमान, महर्षि वाल्मीकि, कविवर तुलसीदास की वन्दना की है। इसके पश्चात् उन्होंने पिता माधवजी, ज्येष्ठ भ्राता भगवतीलालजी एवं गुरुवर शिवदत्त जी का पावन स्मरण किया है।

प्रतान में सरयू के तट पर अवस्थित मुक्तिनगरी अयोध्या की भव्यता एवं नरेश दशरथ के सुशासन का विशद वर्णन है। वयोवृद्ध होने पर भी निःसंतान होने के कारण राजा दशरथ को एक दिन अत्यन्त चिन्तामग्न देखकर मुनि वसिष्ठ ने ध्यानस्थ होकर नरेश को सान्त्वना दी और कहा–राजन्, पुत्रेष्टि यज्ञ के अनुष्ठान से सन्तति-प्राप्ति का सुयोग है। प्रतान में सुतेष्टि यज्ञ के सम्पन्न होने और देवताओं के उसमें भाग लेने का भी वर्णन है।

विशेष (स्थानीय रंजन) – कवि की अन्तश्चेतना पर परिवेशगत विशेषताओं का अमिट प्रभाव रहता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी रचनाओं में वे अवसर-अनुसार प्रतिबिम्बित हो जाती हैं। अयोध्या के बाजारों का वर्णन करते हुए कवि ने इस प्रतान में **चौपड़** शब्द का सहज रूप से प्रयोग करके राजस्थान के वैशिष्ट्य को अनुपम गरिमा प्रदान कर दी है:–

'चारु चौपड़ के सदृश बाजार चौपड़ था वहाँ ।'

दधीच-वंशी होने के कारण कवि द्वारा अनादि शक्ति दधिमथी तथा दधीच-वंश परम्परा का प्रसंग भी अतिशय भावपूर्ण है।

ध्वनि-सौंदर्य- 'शब्दार्थ तोले, मधुरत्व घोले, खोले मनोद्वार सुमन्त्र बोले ।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीरामः सर्वमङ्गलम् ॥

श्रीरामकथा-कल्पलता

पहला प्रतान

[१]विश्व-वरद विश्राम के एक कुञ्ज शुभधाम ।
अभयद-कर-पुष्कर-प्रसर जय जय जय श्रीराम ॥१॥

श्रीरामचन्द्र - मुखचन्द्र प्रसन्न मेरे--
हृद्धाम में उदय पा हर लें अँधेरे ।
सद्बुद्धि हो अति-विकस्वर चन्द्रिका-सी,
अज्ञान-चौर भग जायँ वृथा-प्रयासी ॥१॥

किया [२]विषादन आपने किन्तु विषाद न अल्प ।
करें शम्भु ! [३]उदयायतन ! [४]दया-यतन-संकल्प ॥२॥

गया-बीता, रीता, मृतक-सम भी ताप-हरणी--
तुम्हारी सुस्फीता दृग-निधि पुनीतार्थ-भरणी ।
सुधा-सीपा, [५]जीता यदि, वह न [६]जीता कब अहो ?
अये माता सीता ! स्व-सुत पर प्रीता तुम रहो ॥३॥

क्षीरोदधि - क्षीर - दधि मथके पीयूष-रूप
दिव्य नवनीत भव्य जिसने निकाला था ;

गूढार्थदीपिका ।

श्रीमाधव को प्रणति कर भक्त भगवतीलाल ।
रामकथा-सुरवल्लि के स्फुट करता पद-जाल ॥

१ इस पद्य में एककुञ्ज=एकदन्त (गणेश) का अर्थ भी झलकता है। धाम=तेज और स्थान। कर-पुष्कर=कर कमल और सूँड का सिरा। प्रसर=फैलाव। श्रीराम=शोभा से सुन्दर (गणेश की ओर)। श्री (लक्ष्मी) जिनके रामा (स्त्री) है, इस अर्थ की झलक से राम और विष्णु की एकता भी समझना। २ विष (गरल) का अदन=भक्षण। ३ उदयों के आयतन=घर। ४ दया करने का प्रण। ५ जी जाता है। ६ जय पाई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोहिनी-स्वरूप धर न्यायी सुर - बालों बीच
सब का विभाग कर मातृ - भाव पाला था ।
जिसको अराधकर पुत्र - रत्न साधकर
[१]अर्थग अथर्व ने [२]'दधीच' नाम टाला था ;
वही तू अनादि-शक्ति [३]दधिमथि ! दे सु- युक्ति,
तुही ने दधीचि-वंश जग में उजाला था ।।४।।
जनक - नृप - कुमारी-राम - पादाब्ज - चारी -
मधुप दनुजनारी - काम - क्यारी - विदारी ।
पवनसुत ! तुम्हारी मूर्ति प्यारी हमारी-
सुमति - मणि - पिटारी, बात साधे विचारी ।।५।।
कवीन्द्रमाता अयि देवि शारदे !
विशारदे ! काव्य - समुद्र - पारदे !
पुनः कृपा - कल्पलता खिलाइए,
खिलाइए सत् - फल - राशि, लाइए ।।६।।
संस्कृत - सत्साहित्य - सरोवर-सुकवि-सरोरुह-बन्धु
जयति आदिकवि-सविता कविता-[४]रुचि-सविता मति-सिन्धु ।
हिन्दी - सत्साहित्य - सरोवर-कविकुल-कैरवबन्धु
जय जय तुलसी-पूर्णचन्द्रमा रामरसामृत-सिन्धु ।।७।।
न उन [५]वाल्मिकि से हम मन्द-से-
अनृण हों, जिनके मुख-चन्द से ।

१-२ अर्थ के जानकार (अथर्व-ऋषि) या अर्थानुसारी 'दधीच'-नाम (टाला था=चुना था)। जिस देवता की आराधना से जो पुत्र प्राप्त होता है, पिता उस (पुत्र) का नाम उस (देवता) के नाम से अंकित करता है। जैसे शिव की कृपा से प्राप्त पुत्र का नाम शिव-सेवक इत्यादि। यहाँ पर द्धधि अर्थात दधिमथी का अञ्च=पूजक, दोनों की संधि से 'दध्यञ्च' होता है । इसी से 'दधीच' और 'दधीचि' इसी के पर्याय-शब्द सिद्ध होते हैं। इन्हीं शब्दों से अण् प्रत्यय लगाने से दाधीच (अर्थात् दधीच वंशी) सिद्ध होता है। वही 'दधिमथी'-उपासक कहा जाय तो दाधिन्मथ (दाहिमा) कहलाता है। ३ दाधीचों की कुलदेवी हैं दधिमथी ! मतुप् प्रत्यय लगाने से 'दधिमती' भी। ४ कविता रूप कान्ति या कविता की इच्छा को उत्पन्न करने वाले। ५ यह शब्द ह्रस्वमध्य भी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमरताप्रद रामकथामयी
नव सुधा वसुधा पर छा गयी ।।८।।
सुर-[१]मणी रमणीय, त्रिताप की-
प्रहरणी, हरणी भव - पाप की ।
सुजननी जन - नीति - कलाप की,
अतुल-सी तुलसी ! कृति आप की ।।९।।
[२]शिक्षा-जीवन-वल्लि के वाप-पोष-फलकार ।
माधव; [३]भगवतिलाल, शिवदत्त फलें क्रमवार ।।१०।।

★ ★ ★

श्री अयोध्या मुक्ति-नगरी भव्य भारतवर्ष की-
मुख्य थी तब राजधानी कोटि थी उत्कर्ष की ।
नित्य जिसके पाद सरयू क्या पखार-पखारके-
पा चुकी है लाभ इच्छित-दानमय अधिकार के ? ।।११।।
क्या अयोध्या-वैभवों के कोश को पाकर अहा !
ऋद्ध कोशल-देश कोशल-नाम से विश्रुत रहा ?
ज्यों कलेवर में कलित कर मुख- कलानिधि की [५]कला,
उत्तमाङ्ग-सुनाम से विख्यात मस्तक हो चला ।।१२।।
दुर्ग संसाराब्धि के तरणार्थ जो है दृढ़ तरी,
शुद्ध सात्त्विक पुण्य-भाजन सज्जनों से ही भरी ।
स्वर्ग से भी अधिक है, जो वासियों को फिर यहाँ-
लौटना पड़ता न, जाते किन्तु अक्षय सुख जहाँ ।।१३।।
क्यों न हो ऐसी, जहाँ श्रीराम-पद-पावित हुए-
स्थान, उनके भव्यतामय भाव से भावित हुए ।
रस-भरे उनके मधुर गुण-गान से गुञ्जित हुए,
पूर्ण-पद के प्राप्ति-पोषक पुण्य से [६]पुञ्जित हुए ।।१४।।

---

१ चिन्तामणि। २ शिक्षा और जीवनरूप बेल के-वापकार (बोनेवाले अर्थात् प्रथम शिक्षक और जन्मदाता पिता माधव जी (कवीन्द्र), पोषकार ज्येष्ठ भ्राता भगवतीलाल जी (विद्याभूषण), फलकार गुरु शिवदत्तजी (महामहोपाध्याय)। ३ संज्ञावाची शब्द के पूर्वपदों के स्त्रीत्वबोधक आ व ई ह्रस्व भी हो जाता है; जैसे कालिदास और गंगदत्त। ४ धारण कर वा लेकर। ५ करतूत। ६ पूर्ण (भरे)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानवेश्वर मान्य मनु ने चाव से जिसको रचा,
पूर्ण रचना के अनन्तर दिव्य साधन जो बचा ।
क्या उसी से विश्वपति ने सुरपुरी निर्माण की!
मुक्ति-दायक कर इसे यह बात भी सप्रमाण की ।।१५।।
खूब चौड़े और लम्बे क्या अहा! बाजार थे,
चित्रशाली शिल्पवाली [१]कान्ति के आधार थे ।
दीखते चलते जहाँ नित विविध रथ भूमी-तले,
मध्य में [२]नर-यान, नभ में वायु-यान भले-भले ।।१६।।
[३]राज-वीथी थी मनोहर [४]पण्य-वीथी से सजी,
पण्यवीथी पण्य- [५]शाला-द्वार-वीथी से सजी ।
पण्यशाला द्वार [६]आमूलान्त पण्यों से भरे,
पण्य मणि-भूषण-वसन-धान्यादि नाना छवि धरे ।।१७।।
विविध वैदेशिक वणिक निज देश से आकर [७]यहाँ,
वस्तुओं का क्रय तथा विक्रय किया करते जहाँ ।
विविध भावों से रिझा इस देश को गुण सीखती-
[८]जाति गौराङ्गी सफल हो घर बनाये दीखती ।।१८।।
*राजपथ के मध्य-मध्यग पौर-पथ मन-भावने,
पौरपथ में सम-घटित सुविशाल गेह सुहावने ।
गेह गेह भरा हुआ था भव्य लोगों से महा,
लोग थे देवानुकारी सब सदाचारी अहा! ।।१९।।
पण्य-पथ में कोस-भर के अन्त [९]धारायन्त्र थे,
पान्थ मन को मुग्ध करने के लिए वे मन्त्र थे ।
चारु चौपड़ के सदृश बाजार चौपड़ था वहाँ,
था मिलन नर-नारियों का शारियों का-सा जहाँ ।। २०।।

---

१ शोभा। २ पालकी आदि। ३ मुख्य बाजार। ४ व्यापार-बाजार। ५ पण्यशालाओं (माल के घरों=दूकानों) की द्वार-वीथी (दरवाजों की कतार)। ६ शुरू से अखीर तक। *यहाँ एकावलि अलंकार है। ७ भारत में। आगे जहाँ अयोध्या के लिए प्रयुक्त है। ८ गौरांगी जाति-युरोपीय (ध्वनित स्त्री-जाति) ९ फुहारे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्योमचुम्बी रत्न-राजित स्वर्णमय प्रासाद थे,
विश्वकर्मा-दत्त क्या [१]आकारवान प्रसाद थे।
देख वैमानिक जिन्हें वासार्थ कुछ सज्जित हुए,
किन्तु जान सुमेरू से भी अत्यधिक, लज्जित हुए ।।२१।।

पा [२]नरोत्तम-संघ इसमें वास श्री ने स्थिर किया,
लख [३]सपद्मासन उसे, [४]स्थिति शारदा को थी प्रिया ।
लोक में श्री-शारदा का वैर जो विश्रुत हुआ,
वह अयोध्या पुण्य-पुर से पाप ज्यो [५]विद्रुत हुआ ।।२२।।

वज्र-से दृढ़ संघटित परिखानुगत प्राकार थे,
दीर्घ गाढ-कपाट-भूषित उच्च नगर-द्वार थे ।
सूर्यवंशी वीर भूपति - वर्ग से रक्षित हुई,
विश्व में तब ही [६]'अयोध्या' नाम से लक्षित हुई ।।२३।।

यज्ञशाला पाठशाला शिल्पिशाला थी कहीं,
धर्मशाला वैद्यशाला [७]ज्ञानिशाला थी वहीं ।
हस्तिशाला अश्वशाला शस्त्रशाला थी कहीं,
औ विशाला [८]ऽऽश्चर्यशाला नाट्यशाला थी वहीं ।।२४।।

[९]पथ बताना मुनिवरों के, न कि गृहस्थों के यहाँ,
पीठ देना गृहिजनों के, न रण-वीरों के यहाँ ।

---

१ आकृति वाले और आकार की मात्रा वाले। पुंलिंग शब्द होने के कारण दकार में 'आ' की मात्रा बढ़ाने का तो अवकाश नहीं, इसलिए 'प्र' में 'आ' की मात्रा लगाने से 'प्रसाद' ही प्रासाद हो जाता है। उत्प्रेक्षा की गई है कि प्रासाद (महल) क्या थे, मानों देवशिल्पी के दिये हुए आकारवान (आकृति वाले) प्रसाद (अनुग्रह) थे। २ पुरुषों में श्रेष्ठ और विष्णु। ३ उन्हीं पुरुषोत्तमों को पद्मासन लगाये (देख) और पद्मासन-ब्रह्मा-सहित (देख)। ४ निवास। ५ भाग गया। ६ जिस पर लड़ा न जा सके। ७ ज्योतिषियों की यन्त्रशाला। ८ अजायब-घर। ९ इस पद्य में —पथ बताना=मार्गोपदेश करना और लौटा देना इत्यादि दो दो अर्थ हैं। उन में पहला, एक के लिए गुण, दूसरा दूसरे के लिए दोष समझना। परिसंख्या अलंकार है। पीठ देना=आसन देना, भाग छूटना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]माँग रखना रमणियों के, भिक्षु लोगों के नहीं,
काम में रुचि कर्मियों की थी, न ऋषियों की कहीं ।।२५।।
नगर बाहिर रम्य अति वापी-सरोवर सोहते,
सरस सरयू के सुभग सन्तान बन मन मोहते ।
क्यों कि उससे पुष्ट हो हंस-स्वरों से बोलते,
नाचते लहरी-करों से, पद्म-दृग वे खोलते ।।२६।।
सर्वदा पुष्पित-फलित शोभा-कलित उद्यान थे,
कीर-केकी-कलरवों से कान्त कलरववान थे ।
यत्र-तत्र हरे-भरे [२]सहकार-तरु घन-पत्र थे,
पान्थ-गण के [३]सत्र थे, वन-देव के वे छत्र थे ।।२७।।
मधुर [४]गायन-गीत जिसकी कीर्तिमय गुण- [५]गीतिका-
चाव से सुनते, कहीं स्वविमान वैमानिक [६]टिका ।
प्रतिरवित ध्वज-वंश [७]उसको सौध-शिखरों पर [८]रहे,
सुरपुरी-पति-कर्ण तक पहुँचाँय; क्या कवि यश कहे ।।२८।।

★ ★ ★

उस पुण्यपुर में उस समय दशरथ नरेश प्रसिद्ध थे,
दश-धर्मधुर धरणार्थ जो रथ ही धुरन्धर सिद्ध थे ।
सब क्षत्रकुल नक्षत्रकुल के पूर्ण नक्षत्रेश थे,
श्री सूर्यकुल के सूर्य थे, भू-राज्य के क्षत्रेश थे ।।२९।।
जिनने समुद्रों से विमुद्रित मेदिनी को हाथ में,
रख [९]पाकशासन के सुशासन-सम सुशासन साथ में ।
परवा सहस्त्रों प्राप्त भोगों की न की, श्रम ही किया,
निःशेष-भूधर शेष को [१०]सविशेष नीचा कर दिया ।।३०।।

---

१ माँग रखना=बालों की बनावट, माँग के इकट्ठा करना। काम में रुचि=कार्य करने का चाव, भोग विलासों में इच्छा २ आम के पेड़। ३ सदाबरत । ४ गवैये की गाई हुई। ५ गुणगान। गीतिका शब्द से अन्त में छन्द का नाम दरसाया गया है। मुद्रालंकार है। ६ ठहराकर (धरतीपर विमान को)। ७ गुणगीतिका को। ८ यह ध्वजवंश का विशेषण। ९-१० शेष ने तो भूमण्डल को शिर पर धार कर सहस्र भोगों=फणों की परवा की और उन्होंने भू-मण्डल को हाथ में रखकर भी सहस्रों भोगों (स्त्रीसुखादिकों) की परवा नहीं की; इसलिए शेष को नीचा कर दिखाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरलोक-सम नरलोक का जो न्याय से शासन किया,
तब ही जिन्हें सुरराज ने कह 'मित्र' उच्चासन दिया ।
यह क्या अधिक, हरि ने उसे बस [१]अनुज बन मानित किया,
नरराज को तो भक्ति के वश तनुज बन मानित किया ।।३१।।
ज्यों ही कि जिनसे विजयलक्ष्मी सर्वथा संगत हुई,
त्यों ही यश श्री व्याप्त होकर सिन्धु-पारंगत हुई ।
जैसे अखण्डित चन्द्र-मण्डल से त्रियामा जब मिले,
तब चन्द्रिका अति चारु चारों ओर विस्तृत हो खिले ।।३२।।
जिनके लिए-जब चाहते-संमुख सभी थी सिद्धियाँ,
निःशेष निधियाँ और उनकी सहचरी सब ऋद्धियाँ ।
हाँ, क्यों न हो ऐसा भला, जिनके हृदय में स्थायिनी
निधि-ऋद्धि-सिद्धि-विधायिनी हरि-भक्ति हो अनपायिनी ।।३३।।
चाहे बड़े रण-दक्ष हों, चाहे बली समकक्ष हों,
चाहे गणन में लक्ष हों, पर संमुखी न विपक्ष हों ।
जिनसे चकित हो भाग जाते थे वनों में भट तभी,
[२]उनको वहाँ पर सिंह का भी भय न लगता था कभी ।।३४।।
जिनका प्रतापादित्य इतना दीप्यमान रहा भला!,
जिससे गहन गिरि की गुहा में गुप्त भी रिपु-गण जला ।
हाँ, वह वहाँ पर सूर्य के तो ताप से निःशङ्क था,
पर कोशलेश-प्रताप के संताप से [३]सातङ्क था ।।३५।।
गम्भीरता, अति-धीरता, रण-वीरतादि गुणावली,
स्थिरवास का सुख जान जिनमें वास करती थी भली ।
जैसे कि लक्ष्मी चपल होकर भी सरस सौरभ-भरे-
मानस-सरोवर के सरोरुह में सदन स्थायी करे ।।३६।।

★ ★ ★

एक दिवस वे राज्य कार्य से निवृत्त होकर,
सुखासीन एकान्त-वास में श्रम को खोकर ।

---

१ हरि=भगवान् इन्द्रानुज कहलाते हैं। २ उन भटों में। ३ सशङ्क या दुखी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगे सोचने?, कठिन कार्य यह चला सका हूँ—
इस शरीर से, करते-करते किन्तु थका हूँ ।।
बस, अहो! देखते-देखते शक्ति देह से जा रही ।
क्या इसे वृद्धता-राक्षसी धीरे-धीरे खा रही ।।३७।।
चला सकूँगा कार्य समय कुछ, मैंने माना,
किन्तु अन्त में इस शरीर का निश्चित जाना ।
मेरे उत्तर कौन राज्य-रथ को चलायगा,
कौन बुझे इस कुल-दीपक को फिर जलायगा? ।।
क्या इस निर्मल रघुवंश का दशरथ तक ही अन्त है?
पर इस पर कुल-गुरु सूर्य का सु-प्रसाद अत्यन्त है ।।३८।।
तो, मैं निज-कुल-वृद्धि-हेतु उद्योग करूँगा,
भोग तजूँगा, नियम धरूँगा, योग धरूँगा ।
कठिन तपस्या करने चाहे वन विचरूँगा,
कन्द-मूल-फल केवल खाकर उदर भरूँगा ।।
पर साधनीय निज साध्य को सिद्धि बिना छोड़ूँ नहीं ।
जब तक इस तन में प्राण हैं, व्रत से मुख मोड़ूँ नहीं ।।३९।।

★ ★ ★

ज्यों ही विचार करते यह भूप सारे,
त्यों ही महामुनि वसिष्ठ वहाँ पधारे ।
मानो मनः- स्फुरित भावमयी लता के—
मीठे मिले फल तपोनिधिता बनाके ।।४०।।
पादाभिवादन किया नृप ने त्वरा से,
आशीष दी सु-मुनि ने परिपूर्णता से ।
भूपाल ने हृदय-गुप्त कथा निकाली,
फुल्लाब्ज ने भ्रमर-पंक्ति यथा निकाली ।।४१।।
हे योगिराज ! लखते-लखते तुम्हारे,
वृद्धत्व ने पद क्रम-क्रम से पसारे ।
स्वोत्सङ्ग में रख जिसे दिन एक चूमा,
वार्धक्य हाय ! उसके शिर आज घूमा ।।४२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाँ, काल के निकलते लगता भला ! क्या?,
कल्पान्त जायँ, दिन, वर्ष, घड़ी, कला क्या? !
बाँधा जगत् समय की इस [१]वागुरा ने,
जो आज हों नव, वही बनते पुराने ।।४३।।

मध्यायु, दीर्घ-सुचिरायु कि हो मितायु,
जो काल आय, निकले झट प्राण-वायु ।
किंचित् करे नृपति-दूत कभी प्रतीक्षा,
क्या काल-दूत करता पल भी प्रतीक्षा? ।।४४।।

योगी स्वयोगबल से तुम-से चिरायु,
प्राणी अहो ! जगत में सब अस्थिरायु ।
[२]पर्याप्ति से चमकते मणि-दीप, तारे,
तैलानुसार बस अन्य प्रदीप सारे ।।४५।।

काल-स्वभाव यह ईश-अधीन जाना,
मैंने जरा-मरण का भय ही न माना ।
है चूसती पर शरीर [३]शुचा-जलौका,
हा ! कौन खेय मरणोत्तर वंश-नौका? ।।४६।।

देवर्षि-[४]पित्र्य-ऋण का क्रम से चुकाना-
कर्तव्य है मनुज का, किसने न माना? ।
संसार में न जिसने ऋण को चुकाया,
मानुष्य-जीवन वृथा उसने गँवाया ।।४७।।

ज्यों विज्ञ को कुमति-मन्दकथा न भाती,
अन्तःपुर- प्रिय - गिरा न मुझे सुहाती ।

---

१ जाल। २ भरपूर। ३ शोक (चिन्ता) रूपी जोंक ४ देव, ऋषि और पितृ-संबंधी ऋण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्पुत्र हो न जिसमें, वह [१]गेहिता क्या ?,
हों प्राप्त जो न फल, तो वह [२]स्वर्लता क्या ? ।।४८।।

बोले वशिष्ठ, इस हेतु न हों हताश,
मैं योग के बल अभी करता प्रकाश ।
यों सान्त्वना कर समाधि वहीं लगाई,
[३]योगाग्नि योगनिधि ने झट ही जगाई ।।४९।।

साश्चर्य साञ्जलि नृपाल वहीं खड़े थे,
निस्तेज रत्न सब कंकर-से पड़े थे ।
योगेन्दु से जगमगाकर [५]सौध सारा,
ज्यों चाँदनी छिटक जाय, गया निहारा ।।५०।।

सूर्य-प्रकाश मुनिराज-प्रबन्ध में था,
मानों कि सूर्य-शुक पञ्जर-बन्ध में था ।
योगीन्द्र ने निज समाधि-समृद्धि सारी,
निःश्वास के क्रमिक मोचन से उतारी ।।५१।।

भूपाल ने चरण में अभिवन्दना की,
साफल्य-हेतु उनकी [६]अभिनन्दना की ।
बोले मुनीश्वर, विषाद करो न प्यारे !,
होंगे मनोरथ सुसिद्ध सभी तुम्हारे ।।५२।।

मैंने अतीत भव का कुछ पाप देखा,
ज्यों चंद्र में अणुक-मात्र कलङ्क-रेखा ।
है रोकता वह सुताप्ति, तभी न होती,
[७]शान्ता-अनन्तर न तो तब ही न होती ? ।।५३।।

---

१ गृहस्थपन। २ कल्पलता। ३ योगरूपी आग। ४ हाथ जोड़े। ५ महल। ६ वर्धापन (बधाई)। ७ (नहीं तो) शान्ता नामक कन्या के बाद ही (क्या तब ही न होती); यहाँ कांकूक्ति (स्वर-विशेष के उच्चारण) से प्रश्न झलक उठता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः न चिंता करिए जरा भी, [१]पुत्रेष्टि से हों झट पुत्र-लाभी ।
[२]निदान ही दुर्लभ है दुखों का, उपाय है द्वार पुनः सूखों का ।।५४।।

प्रातः नदी-उत्तर-तीर सारा, यज्ञार्थ हो आश्रम-सा सँवारा ।
आमन्त्रणा दो सब को त्वरा से, [३]शुभार्थ है हानि विलम्बना से ।।५५।।

पुनः हमारे वह [४]नैन-तारे, श्रीऋष्यश्रृङ्गर्षि यहाँ पधारें ।
सारे तुम्हारे [५]क्रतु-कार्य प्यारे!–वही सुधारें पद मुख्य धारे ।।५६।।

शब्दार्थ तोले, मधुरत्व घोले, खोले मनोद्वार सुमन्त्र बोले ।
योगीश की बात समाधि-भोगी होगी सही, सिद्धि नरेश! होगी ।।५७।।

मन्त्री हुए [६]व्यापृत, क्या विलम्ब था, जो भूप को योगिजनावलम्ब था ।
यज्ञार्थ [७]संभार रचे नये-नये, श्रीऋष्यश्रृङ्गर्षि तुरन्त आ गये ।।५८।।

★ ★ ★

अतिमहा सरयूत्तर-तीर था, निकट ही बहता शुचि नीर था ।
नद-वनी-रस संगत काम्य था, पवन को, वन को, इति [८]साम्य था ।।५९।।

निकट ज्यों चल केसर-क्यारियाँ, सलिल थीं भरती कुल नारियाँ ।
कनक-गौर मनोहर वेश की, कमल-कोमल कोशल-देश की ।।६०।।

विपिन में अलि-कोकिल गूँजते, सलिल में बक-सारस कूजते ।
[९]क्रतु-प्रशंसन की करते कथा, विहरते हरते मन की व्यथा ।।६१।।

अटल राज्य-प्रबन्ध-विशेष से, अभय हो [१०]स्व-निवृत्ति-प्रवेश से ।
शश, कुरङ्ग यथारुचि पास में, विचरते चरते कुछ घास में ।।६२।।

---

१ पुत्र-कामना के यज्ञ से। २ आदि-कारण निकालना। ३ शुभ कार्य के लिए। ४ ऐसा कहने से जामाता का नाता झलकता है। ५ यज्ञ । ६ कार्यलग्न । ७ तैयारियाँ। ८ इति (इस प्रकार का इसलिए) पवन का और वन का साम्य (बराबरी) था-पवन को गन्धवाही होने के कारण संगत (मिला हुआ) नद का और वनी का रस काम्य (प्रिय) था। वन को-'न दव नीरस', संगत काम्य था' अर्थात् नीरस दव (दावाग्नि) संगत (मिला हुआ) काम्य नहीं था। वनी का रस=प्रेम इस अर्थ से और भी उत्कर्ष बढ़ जाता है। ९ यहाँ 'मानों' न कह कर 'उत्प्रेक्षा' दिखाई गई है (गम्योत्प्रेक्षा)। १० अपने लौटने और घुसने के कारण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुभ वहीं पर याज्ञिक वाट था, मति-विमण्डित-पण्डित-ठाट था ।
सकल आँगन गोमय-लिप्त था, हरित [१]सारित साधु सुगन्ध था ।।६३।।

द्विज-समूह वहाँ गत-स्वार्थ थे, विमल सात्त्विक होम-पदार्थ थे ।
मृदुल थी [२]भरती-मन को टिका रसिकता, [३]सिकतामय वेद का ।।६४।।

विमल नाभि यथा तन-मध्य में, हवन के [४]सु-निवेशन-मध्य में ।
न जिसका फिर दक्षिण तुण्ड था, वह बना हवनार्थ सु-कुण्ड था ।।६५।।

मुनि-परीक्षित ईंधन थे कहीं, सुहवनोचित भाजन थे कहीं ।
[५]अहत पल्लव थे मख क्यों नहीं सफल हो, फल होम [६]-निमित्त ही ।।६६।।

सुमुनि-पंक्ति ऋचा पढ़ने लगी, ज्वलित अग्नि-शिखा बढ़ने लगी ।
घृत-भरी बलि भी चढ़ने लगी, बहुत से हुत से [७]मढ़ने लगी ।।६७।।

इधर याग-क्रिया चलती रही उधर पाक-क्रिया चलती रही ।
प्रबल कारण के वश भी कहीं, सच रुका [८]चरु का पकना नहीं ।।६८।।

सकल [९]कर्मठ कर्मठ-भाव से मख-क्रिया करते अति चाव से ।
सुयजमान-सुयाजक जो मिलें, यजन-योजन-योग न क्यों खिलें ? ।।६९।।

अमर-नायक, निस्तुल देवता, नगर-दैवत औ कुल-देवता ।
सब सुतृप्त हुए, शिव फूलते-हविष से विष-सेवन भूलते ।।७०।।

न कुछ दुर्लभता-प्रतिबन्ध था, नृपति का सब भाँति प्रबन्ध था ।
फिर सुतेष्टि-लता यह क्यों न हो फलित, पालित पालक की अहो ! ।।७१।।

दशरथ-नृप ने यों पूर्णता से रचा था-
वह हवन, धरा में कौन आते बचा था ?
उस मख-महिमा को क्या कहें, देवता भी-
तज अमृत टिके थे यज्ञ से पूर्ण-लाभी ।। ७२।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता प्रथम प्रतान समाप्त ।

---

१ सँवारा । २ मन को टिका (निश्चल) कर रसिकता भरती अर्थात् रसिक बनाती। ३ बालू की । ४ गृह में। ५ अखंडित। ६ केवल होम के लिए उपयुक्त फल थे। ७ यहाँ प्रकरण से 'अग्नि-शिखा को' कर्म समझना। ८ चरु=यज्ञान्न; यह ताज़ा ही हवन के काम में आता है, बासी नहीं, अतएव ऐसा कहा गया है। ९ कर्म-काण्डी (कर्मठ-भाव से कार्य में संलग्न होते हुए।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

दूसरा प्रतान

प्रवेशिका

राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं की उपस्थिति से स्वर्ग सूना हो गया। अवसर पाकर देव-शत्रु लङ्केश रावण ने आक्रमण कर दिया। समाचार पाकर इन्द्र का स्वर्ग को लौटना, इन्द्र-रावण-युद्ध, देवगुरु बृहस्पति का शुभागमन, रावण के उस समय स्वर्ग से भाग जाने आदि का इस प्रतान में वर्णन है। गुरु वाचस्पति ने इन्द्र को सततजागरुकता का जो कल्याणकारी उपदेश दिया, उसका इस प्रतान में विस्तृत उल्लेख है।

देवगुरु के आदेशानुसार इन्द्र ने ब्रह्माजी, शङ्करजी आदि देवों की सभा का आयोजन किया। देव-सभा का निर्णय हुआ कि लङ्केश का वध स्वयं जगदीश ही कर सकते हैं। अतः सभी देवता क्षीर-सागर में पहुँचे। इस प्रतान में क्षीरसागर-वैभव का सुन्दर चित्रण है। देवताओं द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति में कवि का आत्मनिवेदन अत्यंत भावपूर्ण है। देवताओं से रावण के अत्याचारों को सुनकर विष्णु भगवान का क्रुद्ध होना, मनुज-अवतार लेकर उसके संहार का उल्लेख इस प्रतान में है। अन्त में भगवान शङ्कर जी कहते हैं कि राजा दशरथ भक्त हैं, पुत्रकामी हैं, प्रभो, आप उन्हीं के पुत्र बनकर दुष्टों का संहार करें। भगवान विष्णु के एवमस्तु कहने पर देवता स्वर्ग लौट जाते हैं।

विशेष : श्री गोविन्द और भगवती लक्ष्मी की प्रेम-गोष्ठी तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश की विनोद-गोष्ठी कवि की विलक्षण काव्य-प्रतिभा के प्रतीक हैं।

व्यावहारिक काव्य शास्त्र : दोहा-रोला कुण्डलित छंद का लाक्षणिक निदर्शन व्यावहारिक काव्य रचना का द्योतक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा प्रतान

श्वापद, विषधर, नीरचर; खेचर, दस्यु, नरेश ।
अनल, सलिल क्या कर सकें, जिनके हृदय रमेश ।।२।।

[१]ऐसा पाके अवसर पुरा-शत्रु लङ्केश ने हा !
[२]मन्दाक्रान्ता कर सुर-पुरी, छान ली शून्य गेहा ।
[३]मारा छापा उस विधि कि जो वाटिका को उजाड़ा,
[४]दोर्दण्डों से अमर-गज को खूब ताड़ा पछाड़ा ।।१।।

दूत-द्वारा अमर-पति ने ये समाचार पाये-
ज्यों ही, त्यों ही भय-चकित-से हो वहाँ शीघ्र आये ।
देखा ज्यों ही दशवदन को, वज्र ले, जा भिड़े वे,
दोनों दीखे समद गज-से युद्ध-लीला छिड़े वे ।।२।।

बीते भी थे दिन बहुत-से, वे न जीते, न हारे,
आये वाचस्पति तब वहाँ शान्ति-शंखाम्बु धारे ।
ज्यों ही देखा वह अहित ने, [५]श्रीदधीचास्थि जाना,
मानाऽमानात्मक मति न की, भागना शीघ्र ठाना ।।३।।

'भागा मानो भय सतनु, जो दुष्ट भागा अभागा',
ऐसे जाना त्रिदिवपति ने, शत्रु ज्यों ही कि भागा ।
बोले श्रीमान् गुरु तब उन्हें, ईश ही की कृपा ने
रक्षा की है, बस सुरपते ! क्या हुआ कौन जाने? ।।४।।

---

१ यज्ञ रसिक देवों के द्वारा अयोध्या में डेरा डालने का। २ कुछ दबाकर। इस छन्द की सूचना से मुद्राऽलंकार है। ३ डाका डाला। ४ भुज रूप दण्डो से । ५ दधीचि ऋषि की हड्डी, जिसका वज्र बनाया जाकर इन्द्र ने वृत्र को मारा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु स्वर्ग-प्रभुवर ! इसी से नहीं फूल जाना,
लौटेगा ही अवसर मिले, सो नहीं भूल जाना ।
बैरी भागे यदपि रण से प्राण प्यारे बचाने,
आते ही हैं तदपि दृढ़ हो युद्ध पूरा मचाने ।।५।।

★ ★ ★

धरो अभी से बस सावधानी, सूनी न छोड़ो निज राजधानी ।
ज्ञानी वही है, जिसने स्व-ठानी असावधानी पर हानि मानी ।।६।।

अब ही निज - शत्रु - बाधना - हित साधे सदुपाय-साधना ।
उमड़े जल-सेतु बाँधना, कितनी है [1]जड़ता, विचारना ! ।।७।।

रिपु छिद्र सदा निहारते—रहते हैं, मन में विचारते ।
उनको मति-हीन छिद्र दें, बुध तो निष्फलता [2]अनिद्र दें ।।८।।

नृप की रिपु है विलासिता, फिर हैं मिश्र [3]क्रियाभिलाषिता ।
उससे गिरना सुसाध्य है, इससे तो बढ़ना सुसाध्य है ।।९।।

यह वासव ! स्वर्ग-संपदा, रिपु को है हिम-तुल्य कम्पदा ।
इससे वह [4]पद्म ज्यों अहो ! जलता है, रहता न [5]शीत हो ।।१०।।

सहता परकीय संपदा—नहि कोई, रिपु तो सहे कदा ।
शुक ज्यों पिक-आम्रमञ्जरी—तकता है, वह भी इसे भरी ।।११।।

कर पै कर को भले दिये चुप बैठे रहिए, बिना किये ।
हम भी [6]मघवन् ! निहारते, फिर कैसे बच जायँ हारते ।।१२।।

शिर पै चिर-शत्रु घूमता, मुख है बाल-कपोल चूमता ।
यह मोह तुम्हें बिगाड़ता, निज-कर्तव्य-लता उखाड़ता ।।१३।।

तुमने कितना बिता दिया, बस यों ही चिर-काल, क्या किया ।
मुझ से प्रभु की हितैषिता, कहलाती कटु भी गिरा हिता ।।१४।।

★ ★ ★

---

१ मूर्खता। २ सजग (बुध=विद्वान् तो)। ३ काम करने का चाव। ४ कमल भी हिम से जलता है। ५ ठंडा (सुस्त) होकर नहीं रहता। ६ इंद्र ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]तक्षा-बेधन खोलता तुरत ही ज्यों छिद्र रुद्राक्ष के,
त्यों ही वागीश्वर-वाक्य ने नयन भी खोले सहस्राक्ष के।
तागे का वह योग पाकर पुनः ज्यों [२]मण्डली में मिले,
त्यों देवेश सुबुद्धि-योग धरके विज्ञावली में खिले ।।१५।।

श्रद्धा से गुरु को प्रणाम करके बोले सुराधीशिता,
मैं हूँ पुत्र-समान हे सुरगुरो ! हैं आप मेरे पिता ।
शिक्षा-वाक्य अनन्य था सुगुरु का, उद्द्योत ही धन्य था,
मेरा दुर्मति-[३]जन्य था तिमिर जो, सो क्यों मिटे अन्यथा ।।१६।।

जो यक्षेश विमान से विचरता आकाश में मान से,
अन्धा है अभिमान से, समद है जो अप्सरा-ग़ान से ।
जो दिक्-पाल-बखान से बिहरता, उद्-दृप्त उत्थान से,
ब्रह्मा के वर-दान से वह छका लंकेश अज्ञान से ।।१७।।

★ ★ ★

बोले बृहस्पति, प्रजेश्वर को बुलाओ-
संमन्त्रणार्थ फिर शंकर को बुलाओ ।
जो वे बतायँ सदुपाय वही करेंगे,
आपत्ति-सिन्धु उनके बल ही तरेंगे ।।१८।।
मैं स्वस्ति-पाठ करलूँ जबलों सुरेश !
निश्चिन्त आप करलें विधियाँ अशेष ।
आचार्य यों कह निजाश्रम को सिधारे,
देवेश ने वह किये निज कृत्य सारे ।।१९।।
ब्रह्मा पधारे निज ब्रह्म-लोक से, श्रीरुद्र भी साथ स्व-रुद्रलोक से ।
अन्योन्य संमान-परम्परा हुई, प्रस्ताव-निर्वाचन की त्वरा हुई ।।२०।।
प्रस्ताव निश्चित हुआ कि दशास्य-जैसे त्रैलोक्य-तापक रिपु क्षय पायँ कैसे ?
है कार्य साध्य यह तो जगदीश ही के, जावें सभी हम समीप अभी उन्हींके ।।२१।।

★ ★ ★

यों ठान दन्तिमुख को सबने मनाया, इन्द्रादि देवगण क्षीर-समुद्र आया ।
[४]जो विष्णु को स्व-जन-तुल्य झुला रहा था, कल्लोल-चामर अतीव डुला रहा था ।।२२।।

---

१ बढ़ई की बींधनी। २ दूसरे मनकों की पंक्ति में। ३ दुर्बुद्धि से पैदा हुआ (तिमिर=अँधेरा)।
४ क्षीर-समुद्र ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्दाकिनी सहचरी लहरा रही थी, [1]रम्भा-ध्वजा विजय की फहरा रही थी ।
जो नारिकेल तल-ऊपर सोहते थे, क्रीडार्थ कन्दुक यथा मन मोहते थे ।।२३।।

था पारिजात-वन दिव्य-सुगन्धशाली, मन्दार-आलि अलि-आवलि से न खाली ।
संतान, कल्पविटपी, हरिचन्दनों की-श्रेणी छटा धर रही वह-[2]नन्दनों की ।।२४।।

था शेष-शायि-हरि-कौस्तुभ का उजेरा, मानो कि कुण्डलित चन्द्र पयोद-घेरा ।
श्री थी [3]समीपतर ज्यों चपला [4]अकम्पा, वा ज्यों तमालतरु-पास सुवर्ण-चंपा।।२५।।

आत्मा के [5]मुख-मौलि-रत्न-चय की कान्ति-च्छटा से रँगे,
श्रीशेषोरग के सहस्र-फण की छत्रच्छवी से पगे ।
श्रीगोविन्द समन्दहास सब के थे चित्त को मोहते,
जैसे केकि-शिखण्ड-छत्र-छवि से [6]श्रीस्कन्द हों सोहते ।।२६।।

स्वामी-नेत्र सुधाभिषिक्त करते, क्या हो पयः-स्नान से,
जो स्वामी-कर-पद्म आदर करें, क्या पद्म-संमान से ।
यों साम्राज्य-सुचिन्ह-भूत उनको त्यागे हुए सोहती-
लक्ष्मी संमुख भ्रू-विलास लखती, थीं विष्णु को मोहती ।।२७।।

स्वामी के इस हाथ में यह रखा क्या है, कहें तो सही
हे प्राणेश्वरि ! है सुदर्शन, न क्या सद्-दर्श हैं आप ही ।
है मुग्धे ! यह एक [7]चक्र, रथ है क्या सूर्य का, नो प्रिया !,
है दैत्यान्तक अस्त्र, यों युगल की थी प्रेम-गोष्ठी-क्रिया ।।२८।।

★ ★ ★

इन्द्रादि देव पहले अनिमेष थे ही,
हन्नेत्र से फिर हुए अनिमेष स्नेही ।
इच्छा हुई यह उन्हें कि यहीं रहेंगे,
लक्ष्मीश से विनय से यह भी कहेंगे, ।।२९।।

ऐसे-प्रेम-विनोद थे छिड़ रहे, श्री-श्रीश के बीच में,
लक्ष्मी को पति-नेत्र [8]भासित हुए ध्यानस्थ-से बीच में ।

---

१ केले का पत्र-रूप। २ बहुत से नन्दन-वनों की। ३ बहुत निकट। ४ स्थायिनी (सदा चमकती रहने वाली चपला=बिजली)। ५ अपने मुख और मुकुट के रत्न समूह की। ६ स्वामि-कार्त्तिक। ७ लक्ष्मी के कथन में इसी को समासान्त 'एकचक्र=एक पहिया वाला' जानना। ८ प्रतीत हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूछा हेतु प्रसङ्ग छोड़ उनने, हैं कौन से ध्यान में,
बोले यों [१]वनमालिक, [२]द्विप घुसा त्रैलोक्य-उद्यान में ।।३०।।

हो साश्चर्य [३]अहो ! तुरन्त उनकी [४]लीला-नटी ने कहा,
कैसे वृत्त यहाँ त्रिलोक-भर का विज्ञात है हो रहा ।
[५]अन्तर्यामिक ने कहा, हृदय की तन्त्री हमारी हिली–
त्रैलोक्य-स्थित लोक के हृदय के तन्त्री-गुणों से मिली ।।३१।।

★ ★ ★

इतने में तो दीख पड़े वे सब सुर संमुख
जय जय जय जय सविनय बोले प्रथम चतुर्मुख ।
त्रिलोक-[६]नायक - दंपति तो वे बोले अविरत–
स्वागत स्वागत स्वागत स्वागत स्वागत स्वागत ।।३२।।

पहले करके शुभ दर्शन का अमृतास्वादन,
किया उन्होंने अति-विनीत हो पदाभिवादन ।
ऐसे करने लगे पुनः वे स्तुति-संपादन,
नारद करने लगे साथ ही वीणा-वादन ।।३३।।

दयामय जय जय जय परमेश !
वेदगम्य [७]निर्वेदगम्य हो निकट दूरतम देश ।।
जग-नाटक के सूत्रधार हो तुम्हीं नाथ ! सविशेष ।
प्रकृति-नटी को अगुआ करके धरते दर्शक-वेष ।।
विधि-हरि-हर नट धरते रचना-स्थापन-अन्त-[८]निदेश ।
इसमें तारा-मौक्तिक-मण्डित गगन [९]वितान-विशेष ।।
सूर्य-चन्द्रमय दीपक करते पूर्ण-प्रकाश-निवेश ।
इनके निजनिज-कार्य-क्रम में नहिं अन्तर लव-लेश ।।

---

१ वनमाला। (तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात और कमल की माला के पहिरनेवाले विष्णु ।) दूसरा अर्थ है, वन के माली । २ हायी (यहाँ रावण के लिए आया है) । ३ कवि ने अपनी ओर का आश्चर्य प्रकट करने के लिए 'अहो' रखा । ४ लक्ष्मी । ५ घट-घट की जानने वाले (परमात्मा) । ६ लक्ष्मी-नारायण । (दोनों के मुख से ब्रह्मादि तीनों मुख्य देवों के लिए । 'स्वागत' छः वेर उच्चारित हुआ) । ७ वैराग्य से मिल सकने योग्य (बिना वेद ही) इस अर्थ के झलकने से विरोधाभास अलंकार भी समझना । ८ आज्ञा (रुख) ९ चँदुवा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्त-समय में प्रकृति-नटी धर निज-परिवार अशेष ।
प्रभु ही के तो अन्तःपुर में करती पूर्ण प्रवेश ।।
क्या हम प्रभु की महिमा गावें, थके शारदा शेष ।
रमा-रमण हे नाथ ! नित्य का अब तो काटो क्लेश ।।३४।।

★ ★ ★

माधव मृदु मुसकान से करा सुधारस-पान ।
बोले, विधि-हर को निरख तीनों हम सु-[१]समान ।
तीनों हम सु-समान मान मुझ ही को देते ।
अहो ! इसी से निज महिमा को स्फुट कर लेते ।।
केवल मुझ से सब कर लेना कैसे संभव ?,
मौन धरे रहते हो, कहते क्यों न [२]उमाधव ! ।।३५।।

शंकर बोले, भक्त-जन- [३]शंकर सुमतिनिधान ।
अंकुर प्रतिअंकुर तथा क्या हों बीज-समान ।।
क्या हों बीज-समान, मानलो, बीज न होता ।
क्योंकर अंकुर प्रति-अंकुर से तरू-वन होता ।
होते नहीं परेश ! बीज तुम यदि अभयङ्कर !,
होते क्योंकर अंकुर-प्रतिअंकुर विधि-शंकर ।।३६।।

ब्रह्मा बोले, सत्त्व ही रहा शुद्धतम [४]सत्त्व ।
तत्-सद्-ब्रह्म कहाय जो वही परमतम तत्त्व ।।
वही परमतम तत्त्व तत्त्वविद् जानें उसको,
अमित अनादि अनन्त अदूषित मानें उसको ।
जिसके कारण अन्तर दृग को खोले ब्रह्मा,
प्रभु महिमा का पार नहीं है, बोले ब्रह्मा ।।३७।।

गुरु बोले शब्दार्थ को तोले वाक्य-विशेष ।
तीनों में जब दो न थे, एक तुम्हीं थे शेष ।।३८।।

दोहा-रोला-कुण्डलित ज्यों कि कुण्डलित छन्द ।
त्यों ब्रह्मा-शिव-मिलित भी आप रहे [५]स्वच्छन्द ।।३९।।

---

१ ठीक, बराबर । २ महादेव । ३ कल्याण-कारी । ४ सार । ५ स्वतन्त्र और स्वयं-छन्द ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]वहाँ सार ज्यों छानते [२]अक्षर मिले [३]निदान ।
[४]यहाँ सार त्यों छानते [५]अक्षर मिले [६]निदान ।।४०।।
इस [७]रामायण का यहीं [८]पारायण हो पूर्ण ।
नारायण बोले, कहो निज-श्रम-कारण [९]तूर्ण ।।४१।।

★ ★ ★

बोले तब [१०]लोकनाथ शिव से, तुम्हारे हाथ--
सिद्धि, तुम एक-साथ कह दो रमेश से;
किन्तु चतुरानन के एक-एक आनन से,
वही शब्द चारों ओर निकले आवेश से ।
अतएव अन्य ओर उमड़े सुरों को देख,
ठहरो न कहो ऐसे बोले विधि [११]श्लेष से;
दुविधा में पड़े और खड़े हुए देव अड़े,
लक्ष्मी हँसी चतुर्मुख-कौतुक-विशेष से ।।४२।।

शिव बोले विधि [१२]से सविधि, कह दो तुम्हीं प्रजेश !।
[१३]चार मुखों की बात को, सुन लेंगे [१४]कमलेश ।।४३।।

चतुरानन चतुराग्रणी बोले लख परिणाम ।
[१५]नीलकण्ठ की उक्ति पर क्या न करे [१६]घनश्याम ।।४४।।

सुन मराल-वाहन-गिरा गुण-[१७]गाहन-विख्यात ।
खगपतिवाहन से कही वृषवाहन ने बात ।।४५।।

आराधन और ध्यान-साधन महान ठान
विधि को अनेक-विधि साधक रिझाते हैं;
अन्त में यथेष्ट वर इन्हीं से वे प्राप्त कर
दीन-दुःख-दान-द्वारा इन्ही को दुखाते हैं ।

---

१ छन्द की ओर । २ वर्ण । ३ अन्त में । ४ तीनों देवों में । ५ क्षर-हीन (अनन्त) । ६ आदिनारायण । ७ वचन-विस्तार । ८ चालू पाठ । ९ शीघ्र । १० ब्रह्मा । ११ 'ठहरो, न कहो और ठहरो न, कहो' इस प्रकार दोनों अर्थों के मिलान से । १२ सविधि और विधि से पुनरुक्तवदाभास अलङ्कार है। १३ चार=गुप्त चरों की यह भी अर्थ । १४ 'कम-लेश' थोड़ी-बहुत यह व्यंग्यार्थ भी । १५ शिव और मोर । १६ विष्णु भी । काला बादल । १७ गुणों के चुनने में और सत्व आदि तीनों गुणों के मथन करने में प्रसिद्ध ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीर-मानी धीर-मानी रावण-से स्वाभिमानी
मन-मानी ठानकर जग को सताते हैं;
भीम-भव-सिन्धु-सेतो ! नाथ ! खगनाथ-केतो !
कहते ये इसी से तो तुम्हें सकुचाते हैं ।।४६।।

यों सुन विरञ्चि बोले, कौन भला भेद खोले,
इतने हैं शम्भु भोले ज्यों ही वर देते हैं;
पुष्कर-[१]पयोद जैसे शुष्क मरु-दुःस्थली को,
दीन-हीन-मण्डली को खूब भर देते हैं ।
देखिए, त्रिलोकनाथ ! कम क्या हैं भूतनाथ,
कामना से एकसाथ भूरितर देते हैं;
आप भी तो कहें तात ! नम्र पूछूँ एक बात,
किंकर को आत्म-[२]सात कौन कर देते हैं ।।४७।।

स्मेर-[३]मुख-दन्त-कुन्द वाक्य बोले श्रीमुकुन्द,
ज्यों न मन्द सूर्य-चन्द नियम-[४]विधान में;
दाता यथाशक्ति शक्त, लाता यथाभक्ति शक्त,
प्रकृति-नियम-द्वारा वर-[५]दानाऽऽदान में ।
दुष्ट दशकण्ठ-जैसे कितना ही क्यों न माँगें,
किन्तु स्वतः अन्तराय पायँ [६]अवधान में;
होके रहे होनहार, कौन उपचार-कार,
नर हो लगूँगा बस, दुष्ट-दण्डदान में ।।४८।।

बोलते-बोलते ऐसे तुण्ड-व्योमखण्ड-बीच
भौहें चढ़ आईं घोर भादों-मेघ-माला ज्यों;
होठ लगे फरकने देव लगे सरकने
[७]औग्रय छाया [८]आस्य पर पद्म पर पाला ज्यों ।
दीप्यमान दीप-सम क्रोध-रक्त लोचनों से
बही उष्ण नीर-धार तैल-बिन्दु काला ज्यों;

---

१ पुष्करावर्त्त मेघ । २ आत्ममय (अपनी ही आत्मा) । ३ विकस्वर मुख और दन्तरूप कुन्द वाले । ४ नियम-पालन में । ५ वर के देने और लेने में । ६ सावधानी में । अर्थात् दुष्ट लोग सावधानी रखते हुए भी स्वतः=आप ही विघ्न पा बैठते हैं। इसी से वर-ग्रहण में उसने नर-वानरों का नाम न लिया। ७ उग्रता (कठोरता) । ८ मुख।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैनतेय-[1]वाहन तो दीप्त [2]हव्यवाहन-से-
दीख पड़े, लक्ष्मी तब दीख पड़ी ज्वाला ज्यों ।।४९।।

★ ★ ★

क्षमा क्षमा क्षमा क्षमा प्रजेश ने कहा,
सुशान्ति शान्ति शान्ति हो महेश ने कहा ।
कृपा कृपा कृपा कृपा [3]गिरेश ने कहा
दया दया दया दया सुरेश ने कहा ।।५०।।
संध्या के योग से ज्यों गगन अरुण भी हो, पुनः नील दीखे;
त्यों स्वामी [4]अक्षमा के विवश अरुण भी हो, पुनः नील दीखे ।
हाँ, चाहे कारणों से यदि जल तपता, अन्त में शीत होता
क्या यत्नों से सदाकी प्रकृति पलटती, सत्त्व [5]तामस्य खोता ।।५१।।
था विष्णु का मुख निशा-मुख के सरीखा,
बालेन्दु-सा फिर वहीं मृदु-हास दीखा ।
मानों सुधा निरखने निकले निराले-
[6]उल्लास ने फिर निजाधर आ सम्हाले ।।५२।।
लक्ष्मी हुईं स्मितमुखी प्रिय-सौम्यता से,
ज्यों चन्द्रिका विमल, निर्मल चन्द्रमा से ।
कस्तूरिका-तिलक कुङ्कुम की छटा से-
ज्यों त्यों सुशोभित हुए हरि वल्लभा से ।।५३।।

★ ★ ★

इन्द्रादि के मन विहार-निमित्त डोले,
ज्यों ही कि यों लख पड़ा, भगवान बोले ।
उद्यान में विहरिए, करिए न चिन्ता,
जो हो सुधीर, वह व्यर्थ करे न चिन्ता ।।५४।।
इन्द्रादि बाट यह ही बस जोहते थे,
हाँ, नेत्र दिव्य [7]परमामृत दोहते थे ।

---

१ विष्णु । २ अग्नि- समान । ३ वाचस्पति (गुरु) ने। ४ क्रोध। ५ सत्व गुण तमो-गुण के विकार को मिटा देता है। ६ प्रसन्नता । ७ यद्यपि उनके नेत्र दिव्य (स्वर्गीय) से भी परम-उत्कृष्ट अमृत को दोह रहे थे। स्वतः स्रुत ब्रह्मानन्दामृत से तो वे वञ्चितं ही रहा करते हैं। वस्तु तो वहाँ पर भी वही थी, पर वह उन्हें दोहन द्वारा कुछ समय मिल सकती थी। यही बात चौथे चरण के अर्थान्तर से स्फुट की गई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या था विलम्ब कर वन्दन वे सिधारे,
स्वर्गान्त सौख्य सुर पा सकते विचारे ॥५५॥

★ ★ ★

होने लगी विधि–हरीश्वर–मित्र–[१]गोष्ठी,
होने लगी चिर–विमुक्त विचित्र [२]गोष्ठी ।
श्री [३]ब्याज लेकर लगीं करने किनारा,
'माता ! न हों विमुख' यों विधि ने निवारा ॥५६॥
लोकेश के हृदय–इङ्गित को जताते–
बोले महेश हरि से सबको रिझाते ।
श्री ने तुम्हें वश किया, ससुराल ही में–
जो आ बसे, पिक यथा [४]सु–रसाल ही में ॥५७॥
क्षीराब्धि का युवक पुत्र शशी तुम्हारा–
जो श्याल है, वह फिरे नभ में बिचारा ।
यों ही नहीं, फिर किया उसको कलङ्की,
जो लौट स्वीय मुख क्या दिखलाय शङ्की? ॥५८॥
पाई सहस्र–फण–छत्रित शेष–शय्या,
आगे करे मुरज 'धिन्तक–थय्या–थय्या' ।
देवर्षि–वीन बजती अनुकूल गाना,
श्री नित्य संमुख रहे, फिर क्या ठिकाना? ॥५९॥
है एक पुत्र रतिनाथ जिसे स्व–सेना–
देके कहा कि इससे जग जीत लेना ।
जीता जगत् न उसने, जगदीश को भी,
त्रैलोक्य पाय यदि, जाय न लोभ तो भी ॥६०॥
ऐसे समृद्ध – ससुराल – सुखोपयोगी,
क्या हों तुरन्त दुख–दारुण–कर्मयोगी ।
आठों भुजों खटखटाय न जो विधाता–
श्रीमान के श्रुति–कपाट, सुना न जाता ॥६१॥

---

१ सभा । २ बात । ३ मिष । लक्ष्मी–नारायण की सहवास–सेवा का सुख और भी दुर्लभ है, यह बात यहाँ पर जताई गई है। ४ सुर–साल (सुरशाला) देवों का निवास–स्थान वा कल्पतरु। कोकिल–पक्ष में सु–रसाल (अच्छा आम्रवृक्ष) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकान्त ने तब [१]तदुत्तर यों उचारे,
भोले कहा न घटते तुम भी स्मरारे ! ।
कैलास क्या स्वगृह है, ससुराल ही है,
गौरी-विवाह-समनन्तर तो वही है ।।६२।।

मैनाकश्याल कहलाय भला तुम्हारा,
डूबा, छिपा मुख महोदधि में बिचारा ।
क्या ही कहें, युवति-[२]कार्मण-वैदुषी को,
आधा शरीर-सु-समर्पित है उसी को ।।६३।।

भङ्गा घुटे सविधि साँझ तथा सवेरे,
हैं भूत-सैन्य-गण के सब ओर डेरे ।
है पुत्र विघ्नहर एक [३]चमूप अन्य,
क्यों आप दृष्टि-गत हों, शिव! धन्य-धन्य!! ।।६४।।

सामान्य तो, डमरु-शब्द सुना कि, भागे,
कोई नहीं फटक पाय समीप आगे ।
मैंने सुना, जब दशानन ने पसारे-
बीसों भुजा, श्रुति-कपाट खुले तुम्हारे ।।६५।।

ज्यों-ज्यों प्रहास-पद यों कढ़ते रहे ये,
त्यों-त्यों विनोद [४]सब के बढ़ते रहे वे ।
ज़्यों दुग्ध-बिन्दु स्तन से कढ़ते रहे हों,
उल्लास-हास शिशु के बढ़ते रहे हों ।।६६।।

बोलीं रमा [५]द्रुहिण से स्वकथा सुधारे-
वैकुण्ठ आप सब क्यों न भला पधारे? ।
पूरा वहाँ परम - दिव्य - समृद्धि - द्वारा,
आतिथ्य मैं सुविधि से करती तुम्हारा ।।६७।।

---

१ उनका उत्तर । २ स्त्रीं के वशीकरण की चतुराई । ३ सेनापति । (स्वामि-कार्तिक)। ४ शेषादि के। ५ ब्रह्मा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोले प्रजेश, यह क्या कम है हमारा–
आतिथ्य जो मिल रहा हृदयेष्ट सारा।
गोष्ठी-विनोद छिड़ता न वहाँ यहाँ का,
वैकुण्ठ में वह सुधा-रस है वहाँ का ।।६८।।

जाते वहाँ पर, परन्तु विमानचारी–
थे साथ में, सब नहीं गमनाधिकारी ।
आते वहाँ यदि भला ! मुझ-से अकेले,
स्वार्थी [१]जयादि करते पहले झमेले ।।६९।।

सार्वत्रिक प्रभु जहाँ, फिर क्या नहीं है?,
त्रैलोक्य-वैभव इन्हें तज क्या कहीं है ? ।
किन्तु स्वयं-गमन ही विनयी जनों का,
साफल्य-लाभ उपजाय निवेदनों का ।।७०।।

संप्रार्थना सफल की प्रभु ने हमारी,
हैं आपके त्रिजगदम्ब ! कृतज्ञ भारी ।
संतान तो कुछ कदापि बिगाड़ देती,
माता पिता-निकट बात सुधार लेती ।।७१।।

वात्सल्य-लालन हमें हटने न देते,
माता-पिता-चरण को तजने न देते ।
आज्ञानुपालन सदातन ही तुम्हारे–
प्रस्थान-बाध्य करते मन को हमारे ।।७२।।

बोले महेश्वर, दयानिधि की दया का–
पाया न पार, अथवा इस [२]सत्क्रिया का ।
जो पूज्य हो सदृश मित्र बना रहे हैं,
गोष्ठी-विनोद-विधि से अपना रहे हैं ।।७३।।

---

१ वैकुण्ठ-लोक के द्वारपाल जय-विजय शाप के कारण रावण-कुम्भकर्ण हुए थे। २ सत्कार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दे देना, सुमरायँगी यह उन्हें गोष्ठी-रसों की कथा,
यों श्री ने विधि-ईश की शिथिल की प्रस्थान्-काल-व्यथा ।।७४।।

तब सविनय बोले विष्णु से शम्भु, स्वामी !-
दशरथ-नृप पूरा भक्त है पुत्र-कामी ।
तनुज बन उसी के राम-लीला दिखा दें,
रजनिचर-वधों से धर्म-संधा सिखा दें ।।७५।।

श्री-नेत्र-संकेत हुआ कि 'अस्तु',
रमेश बोले फिर 'एवमस्तु' ।
'हरे मुरारे ! जय' शब्द धारे
सारे बिचारे पद को सिधारे ।।७६।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता द्वितीय प्रतान समाप्त ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

तीसरा प्रतान

प्रवेशिका

सरयू-तट पर पुत्रेष्टि यज्ञ में पूर्णाहुति के पश्चात् एक यज्ञ-पुरुष का प्रकट होना, रानियों के गर्भ धारण करने के लिए दिव्य पायस का कलश प्रसाद के रूप में राजा को देना, यज्ञान्त स्नान के पश्चात् पूज्य जनों को सन्तुष्ट करके और उनका आशीर्वाद लेकर राजा का महल में लौटना, रानियों को यथापद पायस-प्रदान करना, रानियों का गर्भ धारण करना, पुंसवन, सीमन्तोत्सव आदि संस्कारों का इस प्रतान में सुन्दर वर्णन है। नव संवत्सर में नवमी की पुण्य मध्यान्ह वेला में परब्रह्म के अवतार श्रीराम के जन्मोत्सव से सर्वत्र आनन्द की लहर है। दूसरे दिन भरत जी तथा तीसरे दिन लक्ष्मण-शत्रुघ्न के जन्म का वृत्तान्त है। जातकर्म, नान्दी-श्राद्ध, नामकरण आदि संस्कारों का इस प्रतान में मनोहारी वर्णन है।

विशेष : श्री रामजन्म के महोत्सव में उल्लासातिरेक से एक वनिता के संभ्रमवश नयनों में कुङ्कुम, भाल पर अञ्जन लगाने तथा उल्टा कञ्चुक पहनने के प्रसंग से कवि ने 'आत्म-विस्मृति' का जो विनोदपूर्ण दृश्य प्रस्तुत किया है, वह हृदय को गद्‌गद् कर देता है। वनिता द्वारा युवा के परिहास का उत्तर-वायु का उल्टा बहना (युवा) तथा कञ्चुक का उल्टा-सीधे एक रूप होना, अद्‌भुत काव्य-कुशलता का निदर्शन है :-

'इस पर उल्टा हुआ युवा क्या, उल्टा वायु बहा है,' *तथा*
'यों सुन उसने कहा, युवा ही से उलट दिखलाते,
अपने कञ्चुक उलटे-सीधे ऐकरूप्य सिखलाते ।'

शब्द का निहितार्थ : नामकरण के प्रसंग में शब्द के निहितार्थ की कवि ने अत्यंत सारगर्भित शैली में अभिव्यंजना प्रस्तुत कर दी है:-

'रमण, भरण, लक्ष्मीधरण शत्रु हरण के काम ।
चतुरवस्थ नृप-देह के प्रकट करें ये नाम ।।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीसरा प्रतान

निकट निकटतर निकटतम होते भी फिर साथ ।
दूर दूरतर दूरतम गहते छिन क्यों नाथ! ? ॥३॥

हे पाठको ! तुमने अहा ! सुरलोक के आनन्द को–
पाया तथा गोविन्द के [१]आलोक के आनन्द को ।
पर श्रीअयोध्या-नगर के उस रम्य सरयू-तीर को–
भूलो न, फिर भगवान के उस यज्ञ-रूप शरीर को ॥१॥
उस यज्ञ के [२]अवसान में, मुनि-वर्ग के अवधान में,
शास्त्रानुसार विधान में, श्रुति-पाठमय प्रिय गान में ।
यजमान ही के हाथ पूर्णाहुति अहा ! होने लगी,
नृप-पाणि-युगली क्या निजार्जित पङ्क को धोने लगी? ॥२॥
उस यज्ञ-नाट्य-निकेत में जो थी हवन-कुण्ड-स्थली–
जन-मण्डली से कुण्डलित रङ्ग-स्थली थी वह भली ।
उस पर चिर-स्थित अग्नि-नट जो नाट्य था दिखला रहा,
पूर्णाहुति-च्छल से वही नृप-पारितोषिक पा रहा ॥३॥
अञ्जलि-विधृत पायस-कलस को यत्न से धरता हुआ,
निज दीप्ति से देदीप्यमाना भूमि को करता हुआ ।
उस काल [३]प्राजाप्रात्य नर झट अग्नि से प्रकटित हुआ,
मानो अनल ही दूसरा स्वर्णाङ्ग से सुघटित हुआ ॥४॥
पुर-लोक अति-[४]आलोक-कर [५]आलोक कर उसको सभी,
बस हो गये [६]अनिमेष-से अनिमेष चित्रित-से तभी ।
ज्वालावली में से सुखद यों वचन वह कहने लगा,
मानो अहो ! होमाग्नि में से अमृत-रस बहने लगा ॥५॥

---

१ दर्शन । २ अन्त । ३ प्रजापति का । ४ अत्यन्त प्रकाश-कारक । ५ देखकर । ६ देवों के समान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृप ! यज्ञ-पूरुष पूर्ण आहुति आप से जो ले रहे,
मानो उसी का प्रति-[१]फलन यह दिव्य पायस दे रहे ।
लेकर इसे निज वंश की त्रुटि के निवारण के लिए,
निज देवियों को दें यथा-[२]पद गर्भ धारण के लिए ।।६।।
यों कहते ही धामनिधि नर का हुआ [३]पिधान,
किन्तु द्विगुण-तेजा हुए, तापस ज्ञानं-निधान ।।७।।

★ ★ ★

राजा ने उसका किया श्रवण क्या पीयूष मानो पिया,
सो क्या पायस ले लिया स्व-कर से सर्वस्व मानो लिया ।
पूज्यों के पद में किया नमन क्या स्व-[४]स्वान्त ही दे दिया,
क्या उत्थान किया गुरूक्ति-[५]बल से उत्थान मानो किया ? ।।८।।
पूज्यों ने शुभ-[६]दर्श होकर कहा, पुत्राप्ति का हर्ष हो,
आयुः-श्री बहुवर्ष हो, कुशल का सर्वत्र उत्कर्ष हो ।
राजन्! मानस-[७]तर्प हो न कुछ भी, न क्लेश का स्पर्श हो,
पूरा भाग्य-प्रकर्ष हो, भुवन में चारित्र आदर्श हो ।।९।।
राजा ने सु-विधान को कर किया यज्ञान्त के स्नान को,
पीछे गोधन-दान को कर किया ब्रह्मर्षि-संमान को ।
विप्रों ने बहुमान को कर किया आशीष-आख्यान को,
पौरों ने जय-गान को कर किया स्व-स्थान-प्रस्थान को ।।१०।।

★ ★ ★

स्वर्ग से स्वर्ग-सौन्दर्य ज्यों आया तब औध को ।
सरयू-तीर से राजा त्यों सिधारे स्व-सौध को ।।११।।
वहीं स्थिता थीं कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी ।
ब्रह्माजी के वदन को करे सदन ज्यों [८]त्रयी ।।१२।।
क्रम-स्थित उन्हीं के वे संमुखासीन हो गये ।
जगत्त्रयी के ज्यों आगे [९]पूषा उदित हो नये ।।१३।।

---

१ बदले की वस्तु । २ पदानुसार, दूसरा अर्थ यह झलकता है, उनके नाम के पद के अनुसार। अतएव 'सु-मित्रा' में दो पद हैं, इस लिए वह दो भागों में अधिकारिणी है। यह पद 'विभक्ति अन्तवाला' समझना । ३ अन्तर्धान । ४ अपना चित्त। ५ गुरुओं के आग्रह से । ६ शुभ-दृष्टि-शाली। ७ मन की इच्छा । (शेष न रहे)। ८ तीनों (ऋक्, यजुः, साम) वेद । ९ सूर्य ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौशल्या को दिया पूर्व पायसार्ध नरेश ने ।
देह का अर्ध पत्नी को ज्यों दिया प्रमथेश ने ।।१४।।
अर्ध में से अर्ध दिया सुमित्रा को धरेश ने ।
[१]अर्ध में से अर्ध दिया भूति को ज्यों महेश ने ।।१५।।
शेषार्ध का अर्ध दिया कैकेयी को जनेश ने ।
उत्तमाङ्ग दिया जैसे गङ्गा को गिरिजेश ने ।।१६।।
सुमित्रा को फिर दिया शेष भाग प्रजेश ने ।
ज्यों भूति को फिर दिया शेष भाग शिवेश ने ।।१७।।

हुईं प्रसन्न तीनों वे स्व-स्व-भाग-विशेष से ।
उज्जवला अष्टमी, षष्ठी, द्वितीया ज्यों निशेश से ।।१८।।
गर्भ को धारण किया तीनों ने वसुधेश से ।
प्रकाश धारण करे ज्यों त्रिलोकी दिनेश से ।।१९।।
क्रम से गर्भ उनका वृद्धि पाने लगा तथा ।
यथा प्रभातातप वा शुक्लपक्ष-शशी यथा ।।२०।।

★ ★ ★

प्रथम तो वह थीं कुल की स्त्रियाँ, तदनु पद्मिनियाँ फिर रानियाँ ।
तदनु गर्भभरालस थीं सभी, न गति [२]की गति कीर्तित हो तभी ।।२१।।
मृदुल पाद-सरोरुह के लिए कोमल-कोमल आँगन थे किये ।
यदपि वास विधान-विशिष्ट था, भवन से वन-सेवन इष्ट था ।।२२।।
रुचि उन्हें उपजीवन-प्रीति की, मुनिवधू-[३]उपजीवन-रीति की ।
गमन में मृदु अङ्ग प्ररोह-[४]से पर थके रथ के [५]अधिरोह से ।।२३।।

---

१ गौरी को आधा शरीर देने पर बचे आधे शरीर के आधे भाग पर जैसे शिव ने भूति=भस्म रमाली हो । क्योंकि उन्हें शिर का भाग गङ्गा के लिए छोड़ना पड़ा । शरीर के भाग पर उन्होंने फिर भस्म रमाली । यह कवि का भाव है। षोडश कलात्मक शिव-शरीर में से आधा दुर्गा को दे दिया गया। बाकी के अष्ठ-कलात्मक शरीर में द्विकलात्मक गङ्गा-निमित्त छोड़ देने से षट्कलात्मक ही शरीर भस्म रमा लेने के लिए रहा। सारा भाव अगले पद्यों से स्पष्ट होगा।
२ गमन की दशा । ३ तपस्विनियों के साथ के जीवन-प्रकार की । ४ अंकुर के समान(मृदु)।
५ सवारी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदय-वृत्ति यथा श्रम चाहती, तनु-वृत्ति तथा श्रम चाहती ।
पर रुचा उनको श्रम झेलना, प्रसरिता सरिता पर खेलना ।।२४।।

[१]अहह ! गर्भज भार विशिष्ट था, न झुकना उनको कुछ इष्ट था ।
पर गुरु-प्रिय दर्शन में वहीं नमन की मन की रुचि थी सही ।।२५।।

अभय- दान महा अभयेच्छु को, शरण-दान अहा! शरणेच्छु को ।
प्रथम से तब भूरि उन्हें खरा रुचित था, चित था करुणा-भरा ।।२६।।

हृदय ईश्वर से अनुरक्त था, प्रभु-पदाम्बुज का अति-भक्त था ।
वह अभी अति-मुग्ध हुआ तभी भजन में, जन में न अहो! कभी ।।२७।।

शुभ-चरित्र-कथा-श्रवणादि से, विमल-चित्र-विलोकन-आदि से ।
दिवस थे उनके अति-मोद से-प्रकटते, कटते सु-विनोद से ।।२८।।

न उनके कुछ भाव कुपथ्य थे, अशन-पान-विहार सुपथ्य थे ।
जब सदातन अन्तर था नहीं-प्रकृति में, [२]कृति में फिर हो कहीं ? ।।२९।।

जगत में कुछ वस्तु अलभ्य हो, पर मिली उनको सुख-लभ्य हो ।
अटल-शासन क्योंकि नरेश थे- सुर-सखा, रस-खान प्रदेश थे ।।३०।।

स्फुट हुआ जब [३]दोहद जो कभी, नृपति ने वह पूर्ण किया तभी ।
न उनको पल-मात्र विलम्ब हो, करण-[४]कारण का अवलम्ब हो ।।३१।।

[५]गर्भाधा - पुंसवन - मय देख प्रथम मुख-भाल ।
सीमन्तालोकन - रसिक था उस काल नृपाल ।।३२।।

नव - विकास - मय समय - प्रिय उत्सव - सहित-दिगन्त ।
सह संमुख होते लखा सम सीमन्त - वसन्त ।।३३।।

★ ★ ★

सीमन्तोत्सव भूप के भवन में वैसा मनाया गया,
पुत्रोत्पत्ति-महोत्सव प्रथम ही मानो जनाया गया ।
आशा से अवलोक लोक जिसको भूले हुए स्नेह से,
देने जन्म-बधाइयाँ चल पड़े फूले हुए गेह से ।।३४।।

---

१ आश्चर्य । २ काम । ३ गर्भिणी की इच्छा । ४ परमेश्वर । ५ गर्भाधान और पुंसवन रूप क्रम से मुख और ललाट देखकर सीमन्त (संस्कार) और केश-रचना के देखने में रसिक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुराशा-वल्ली के दल झड़ रहे देख जिसको,
शुभाशा-वल्ली के दल उठ रहे देख जिसको ।
नई वर्ष-श्री के सह सरस [१]अर्धाङ्गित रहा,
वही आया मास प्रिय प्रसव का चैत्रिक अहा! ।।३५।।

जिसे स्नेही गेही-जन उंगलियों पै गिन रहे,
दुराशा-दैत्या के दुख-दल जिसे पा छिन रहे ।
अहो ! नाना-विघ्नों रहित जिसको पा सुख हुआ,
वही पूरा-मास प्रिय-मिलन-सा संमुख हुआ ।।३६।।

नया था सो संवत्सर, ऋतु नयी, वासर नये,
नयी मास-श्री थी, सुम-दल नये, अम्बर नये ।
त्रिलोकी-शोभा जो सफल नव थी देख उसको,
नया होना सूझा द्रुततर पुराने पुरुष को ।।३७।।

भले योगों से क्या प्रकटित हुई सिद्धि परमा, ?
शुभाशा की सिद्धि-प्रद सुखद ईश-प्रियतमा ।
अहा ! सौम्या सूर्योदय-उदित [२]शुद्धाम्बर-युता,
नवीं दुर्गा आई कि तिथि नवमी [३]मङ्गल-युता, ? ।।३८।।
श्रीकौसल्या तज [४]शिखरिणी उन्नता सौध-माला,
[५]मन्दाक्रान्ता युवति-गण से आ गई सूति-शाला ।
हो आई थी कुछ खलबली दाइयों, दासियों की,
रोका किन्तु त्वरित उसको नायिका ने स्त्रियों की ।।३९।।
ज्यों ही सारा सुघटित हुआ योग उच्च-ग्रहों का,
मानो पूरा समुदाय जुटा ईश्वरानुग्रहों का ।
कौसल्या से प्रकटित हुए पुत्र-रूपी परात्मा,
ज्यों प्राची से उदित [६]दिन का रूप हो [७]द्वादशात्मा ।।४०।।

---

१ नवीन वर्ष चैत्र शुक्ला १ को लगता है; इसलिए यों कहा गया ।
२ अम्बर=वस्त्र और आकाश । ३ मंगल=कल्याण और मङ्गलवार। ४ शिखरों वाली। ५ कुछ घिरी हुई । ऊपर के शिखरिणी छन्द को छोड़कर इस मन्दाक्रान्ता छन्द के ग्रहण करने का भाव भी व्यक्त किया गया है । ६ 'दिन' भी सूर्य का पर्याय है, जैसे 'राम' परमात्मा का। ७ सूर्य ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सो ही सोही न उस शिशु के तेज से सूति-शाला,
किन्तु व्यापा जन हृदय में भी उजाला निराला ।
सोहे कोरी रवि-उदय से सु-प्रकाशा न पूर्वा,
होती किन्तु प्रति-गिरि-गुहा सु-प्रकाशा अपूर्वा ।।४१।।

बीसों दौड़ी तुरत नृप को श्रेष्ठ देने बधाई,
सो धन्या थी युवति जिसने दक्षिणा पूर्व पाई ।
देखा किन्तु प्रथम शिशु को सो वधू थी अनन्या,
सेवा किन्तु प्रथम जिसने की वही धन्य-धन्या ।।४२।।

ओहो! रक्षा-जनक शिशु के यत्न सारे नये थे,
बेचा मुट्ठी यव पर उसे, रत्न वारे गये थे ।
रत्नों में से सुत चमकता रत्न तो एक ही है,
वारे जाते जिस पर अहो ! रत्न से जो कई हैं ।।४३।।

राजा ही का घर तब नहीं किन्तु साकेत सारा–
अत्यानन्दोत्सवमय हुआ गीत-नृत्यादि-द्वारा ।
मानो आये स्वकुल-महिमा देखने अंशुमाली,
उत्साहों से गगन-पथ के [१]मध्य उद्दीप्ति-शाली ।।४४।।

उपप्रतान १
(राम-जन्मोत्सव)

महल-महल में चहल-पहल थी दिनभर राज-घराने,
उसी समय दारुण दुर्दिन था निशिचर-राज-घराने ।
दोनों स्थानों विदित न था, रवि कब ऊगा कब आँथा?,
ताड़ित हुए यहाँ के [२]आनक, रिपु का ठनका माथा ।।१।।

एक वार-वनिता [३]संभ्रम-वश नैनों कुँकुम सारे,
भव्य भाल पर अंजन धारे, अद्भुत माँग सँवारे ।
पूर्व-विसर्जित ज्यों-का-त्यों ही उल्टा कञ्चुक धारे,
धर उमङ्ग संगीत-रङ्ग में पहुँची राज-द्वारे ।।२।।

---

१ राम-जन्म मध्याह्न में हुआ था, अतएव ऐसी उत्प्रेक्षा की गई है । २ नँगाड़े । जो पीटे गये, उनका ठनकना न बतलाया जाकर शत्रु-शिर का बतलाया गया, इसलिए असंगति अलंकार है। ३ हलबली के कारण ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस हर्षोत्सव में गणिकायें यदपि सु-रूप बहुत सी–
रहीं उपस्थित, किन्तु दीखने लगी वही अद्भुत सी ।
उपवन में विकसित रहती हैं बेलें बहुत बहुत-सी,
किन्तु उन्हीं में दिखने लगती अमर-बेल अद्भुत-सी ॥३॥

उत्सव-सर की उन लहरों ने नव नव नृत्य दिखाया,
उस रसाल-वन की पिकियों ने सुमधुर गान सुनाया ।
किन्तु उसी की विचित्रता पर अधिक युवक ललचाये,
कर-संकेत परस्पर करके मन्द मन्द मुसकाये ॥४॥

तब तो वह विश्राम-समय में निज सखियों से बोली,
इस टोली में धरे ठठोली, क्यों [१]यह एक टटोली ।
इस [२]पर उल्टा हुआ युवा क्या, उल्टा [३]वायु बहा है,
बिंधा तुम्हारे दृग-शर से वह, इस पर उलट रहा है ॥५॥

तब उनमें से एक सखी ने मुख की बात छिपाते–
चतुराई से दिया तदुत्तर मन्द मन्द मुसकाते ।
सखी ! आज संभ्रम-वश तुम ने उल्टा कञ्चुक पहिना,
दहिना बाँया भाग हो गया जिससे बाँया दहिना ॥६॥

इस ही से यह युवक-जनों का कौतुक-जनक हुआ है,
जैसे जग में धनिक-जनों का मोहक कनक हुआ है ।
दशरथ-सुत के जन्मोत्सव के शुभ निमित्त को पाकर–
परम विनोद बढ़ाया तुमने धन्य कुतुक रत्नाकर ! ॥७॥

यों सुन उसने कहा, युवा ही से उलटे दिखलाते,
अपने कञ्चुक उलटे-सीधे[४] ऐकरूप्य सिखलाते ।
उलटे हुए युवा का सोचा कितना अन्तर दिखता,
उलटे भी इस कञ्चुक का क्या कोई अन्तर लिखता ? ॥८॥

इतने ही में खड़ी की हुई वीणाओं के भीतर,
छिपकर सुनता हुआ एक [५]विट बोला उसे निकलकर ।
रसिके ! इस आनन्द-दान से तुम्हें बधाई भारी,
[६]मुकुर-जटित उपहार तुम्हें है यह ताम्बूल-[७]पिटारी ॥९॥

---

१ मुझ-रूप यह (स्त्री)। खिझाने के कारण उत्तम-पुरुष-वाची सर्वनाम प्रयुक्त न किया जाकर अन्य पु० वाची किया गया है। २ मुझपर। ३ 'वायु' 'युवा' ही का उलटा होता है। ४ एक-सापन। 'कञ्चुक' को उलटा-सीधा कैसा भी पढ़ो एक-सा है। ५ जार। ६ शीशा-जड़ी। ७ पानदान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्यों ही उसको उस दर्पण में वह अपना मुख दीखा,
[1]साँध्य अरुण-कालाम्बुद-लय से चुम्बित चाँद-सरीखा।
उठकर चलती बनी उसी छिन मुख पर घूँघट डाले,
घर-बैठे उसको भिजवाये नृप ने रत्न-दुशाले ॥१०॥

चपलों ही को व्यक्तिगत रुचा कुतुक यह धन्य।
जग में [2]कञ्चुक-लीन हों [3]भोगी ही न कि अन्य ॥११॥
वहीं दिव्य अनुभूत कर निज-निज-रुचितानन्द।
सब बोले सुचिरायु हों रघुकुल-कैरव-चन्द ॥१२॥

★ ★ ★

दूसरे दिन पुष्य में केकय-सुता ने सुत जना,
स्वाति में ज्यों शुक्ति मुक्ता-रत्न को अद्भुत बना।
क्या कहें तुलना, अहो! [4]गुण-योग पाकर जो नया,
विजय-भूषण यह हुआ, वह [5]हार-भूषण हो गया ॥४५॥

श्रीसुमित्रा से हुए दो साथ सुत दिन तीसरे,
ज्यों कि बीजित भूमि से दो पत्र [6]युत दिन तीसरे।
क्या कहें तुलना कि जो, धर [7]काल के शुभ योग को,
पूर्ण फल-दायक हुए अन्यार्थ तज निज भोग को ॥४६॥

जन्म के शुभ वृत्त ज्यों ही भूप के कानों पड़े,
मरु-धरा-तल में सुधा के पूर ही मानो पड़े।
पाद-वन्दन कर कहा गुरु से, कि बस [8]गुरु-योग से,
आज मैं रक्षित हुआ निष्पुत्रतामय रोग से ॥४७॥

श्रीवशिष्ठ मुनीश बोले, प्राप्त मङ्गल-योग से—
अशुभ-लय है, ऋष्यशृङ्गादि-बुध-निर्मलयोग से।

---

१ साँझ के (लाल-काले—बादल के टुकड़े से)। २ स्त्रियों की चोली और साँप की काँचली। ३ विलासी और साँप। ४ दयादि गुण और तागे का संबंध। ५ भूषण-विशेष और पराजय। ६ जुड़े हुए। ७ समय और प्रस्तुत में श्याम (राम और भरत) का अर्थ ध्वनित है। ८ वह दिन गुरुवार का था, यह भी झलकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूप बोले, हाँ हुआ बुध-लाभ मXल-योग से,
[१]किन्तु दोनों का हुआ शुभ-लाभ तो गुरु-योग से ।।४८।।

★ ★ ★

शुभ जातकर्म-विधान नान्दी श्राद्ध आदि किये गये,
धन-धेनु-धरिणी-धान्य-भूषण-वस्त्र आदि दिये गये ।
उस काल किंचित् भी न था दारिद्रय का कुछ नाम ही,
मानो स्व-पति को ढूँढने प्रतिगृह विराजित श्री रही ।।४९।।

अवलोकनार्थ त्रिलोक-पति के साथ ले सुर लोक को,
सुर-लोक-पति निज लोक से तब आ गये नर-लोक को !
यह बात परिसूचित हुई आकाश-कौसुम-वृष्टि से,
भगवान का अवतार जैसे सङ्गि-सात्त्विक-सृष्टि से ।।५०।।

महामहोत्सव-मात्र से मानो दस छिन-मात्र ।
अति-प्रमोद का पात्र वह यों बीता दस-रात्र ।।५१।।
सुमति-परख का उपकरण सुख-प्रकरण अविचाल ।
शिक्षानुकरण अब हुआ नाम-करण का काल ।।५२।।
तब मति-मद छोड़े नृप कर जोड़े बोले गुरु से, स्वामी!—
तुम सब मुनि-कुल के, न इसी कुल के, गुरु श्रुति-पारे-गामी ।
सब बात तुम्हीं हो, तात तुम्हीं हो, माता तुम्हीं कृपालो!—
इस नाम-करण के कष्ट-हरण के तुम ही काम-सम्हालो ।।५३।।
बोले सुन नरपति-वचन मुनिपति सुमति-निधान ।
सावधान हो तुम सुनो शुभ-[२]अभिधान-विधान ।। ५४।।
श्री, ऋद्धि, सिद्धि द्युति और शारदा; एकाग्र योगी जिस में रमें सदा ।
जो विश्व में भी रमता सचेष्ट हो, श्रीराम-नामा वह पुत्र ज्येष्ठ हो ।।५५।।
तुम-समान व्यथा हरता रहे, भरण जो जग का करता रहे ।
अनुज जो उसका, वह नाम से-भरत हो रत हो उस राम से ।।५६।।

---

१ मङ्गल (कल्याण) । के योग का और ऋष्यशृङ्गादि बुध-जनों के योग का लाभ तो गुरुजी के योग (समाधि) के बल ही हुआ। दूसरा ध्वनित अर्थ है—मंगल और बुधवार के योग से तो एक ही पुत्र मिला, किन्तु गुरुवार को दो (लक्ष्मण-शत्रुघ्न) मिले । २ नाम-करण ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मी सदा ही जिसमें रहा करे, सुलक्षण श्री जिसमें रहा करे ।
तृतीयं तो लक्ष्मण-नाम से सही हो ख्यात, हो संगत राम से वही ।।५७।।
ज़ो शत्रुओं के कुल-नाश को करे, जो वंश के पूर्ण प्रकाश को करे ।
शत्रुघ्न हो पुत्र चतुर्थ आपका राजन् ! प्रचारी भरत-प्रताप का ।।५८।।

रमण, भरण, लक्ष्मीधरण [1]शत्रु हरण के काम ।
चतुरवस्थ नृप-देह के प्रकट करें ये नाम ।।५९।।
नाम करण-से हँस पड़े रिपु-[2]नामक रणवीर ।
परम-हर्षि-मानस नृपति, पर महर्षि थे धीर ।।६०।।
नाम-करण से सुपरिचित सोहे राज-कुमार ।
चिह्नित निज निज चिह्न से जैसे आश्रम चार ।।६१।।

नाम-क्रिया से नर ही न कोरे-[3]तिर्यञ्च भी तुष्ट हुए अहो ! रे ! ।
अतः तभी से बन वे खिलौने उन्हें रिझाने प्रकटे सलौने ।।६२।।

उस समय अयोध्या सत्य वैकुण्ठ-जैसी,
इन सब भुवनों में श्रेष्ठ हो क्यों न वैसी ।
भुवन-पति जहाँ सद्-धर्म-शिक्षा सिखाने,
जन-गृह जनमे थे मर्त्य-लीला दिखाने ।।६३।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता तृतीय प्रतान समाप्त ।

---

१ वाह्य शत्रुओं के विजय के बाद भीतर के शत्रुओं पर विजय । २ शत्रु को नँवाने वाले ।
३ पशु-पक्षी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

चौथा प्रतान

प्रवेशिका

श्रीराम के बाल स्वरूप की मधुरिमा, उनकी मनोहारी चेष्टाएँ, माता कौशल्या द्वारा निद्रा-गान, जागर-गान, बालक राम का घुटनों के बल सरकना, फिर क्रमशः, उँगुली पकड़कर पिता दशरथ के साथ चलना आदि लीलाओं की इस प्रतान में सुन्दर झाँकी है। **राम की बाललीला**-उपप्रतान में बालक राम के शिविका में छिप जाने तथा बाद में प्रकट होने का प्रसंग कवि की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। उपनयन संस्कार, अश्वारोहण-अभ्यास, गुरुकुल-वास आदि इस प्रतान में अन्य वर्ण्य विषय हैं।

विशेष : निद्रा-गान (हे श्यामसुन्दर नाम-सुन्दर शिशु-पुरन्दर पोढ़िए), जागरण-गान (हे नैनों के तारे! हृदय दुलारे !, हुआ सवेरा, छिपते नभ में तारे), जगज्जननी चण्डिका से प्रार्थना-(रूठे क्यों गणराज!, माँ ! न रहते ये कान खींचे बिना...), अत्यंत भावपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी हैं.

ध्वनि-सौंदर्य के लिए दृष्टव्य है :-

'वाणी सुरीली, चुटिया जटीली, भौंहे नुकीली, अँखियाँ रसीली ।
नीली गठीली, न कि देह ढीली, खिली छबीली पट-कान्ति पीली ।।'

काव्य-कौशल : उपप्रतान के ८ और ९ पद्यों में 'र' और 'म' की बारहखरी कवि-वैदुष्य का प्रतीक है।

मातृभाषा-सिखाना : 'माता ही की विधि नियत है मातृ-भाषा सिखाना ।।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौथा प्रतान

देन-लेन ही का करें आप काम यदि साथ ।
भवासक्ति ले लीजिए भक्ति दीजिए नाथ! ।।४।।

गाती हुई मोद धरे लोरी-पद भाव-भरे
ललना सलील एक पलना दुला रही ।
झुला रही रात को क्या, फुला रही पुण्य कञ्ज,
धुला रही पाप-पुञ्ज निज को भुला रही ।
एक ओर ऋद्धि देवी अन्य ओर सिद्धि देवी
धारे नर-देह सेवी चँवर डुला रही ।
यही त्रयी-त्रयी मानो भुवन-व्यापारी-पास
तुला रही भव्य भक्ति, मुक्ति वा मुला रही ।।१।।

मानो ये गुण शक्तियाँ रचने भक्ति-प्रकार्ष ।
सेवन करती ब्रह्म को पर न कर सकीं स्पर्श ।।२।।

कभी अनूठा कर का अँगूठा, कभी अनूठा पग का अँगूठा ।
स्तन-भ्रमों से प्रभु चूसते थे, उसे न पाके कुछ रूसते थे ।।३।।

कभी परात्मा स्तन एक पीते छूते द्वितीय-स्तन को [१]अ-रीते ।
पदाम्बुजों को हँसते हिलाते मा को सुधा क्या बदले पिलाते? ।।४।।

रघुवर आधे बरस के पूर्ण बरसके मोद ।
नव रस के दायक, नहीं, [२]न भर सके नृप-गोद ।।५।।

माता कराती शुचि स्नान बाल को, पखार लेती निज-पंक-जाल को ।
सुतैल-[३]अभ्यक्त किया उसे तथा, दीखी स्वयं-[४]स्निग्ध तुरन्त सर्वथा ।।६।।

सयत्न कंघी करती सुधारती-शनैः शनैः बाल, शिखा सँवारती ।
उसे दिखा साञ्जन-नेत्र भी वही, निरञ्जन-ध्यान भुला रही सही ।।७।।

---

१ रीते नहीं (भरे)। २ न भर सके ऐसा नहीं, किन्तु भर सके । ३ सुगन्धित तैल रमाये । ४ चिकनी और प्रेम-भरी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नया रँगीला झगला धरा रही, मुनीश्वरों के मन को हरा रही ।
मनोज्ञ झाँकी वह बाल राम की, करा रही थी स्मृति कोटि-काम की ।।८।।

कभी बजाके चुटकी बुला रही, थपेड़ती पीठ कभी सुला रही ।
मृदु-स्वरों से अँखियाँ घुला रही, उच्च स्वरों से छिन में खुला रही ।।९।।

कभी-कभी पाणि-सरोज चूमती, कभी-कभी पाद-पयोज चूमती ।
कभी-कभी स्मेर कपोल चूमती कभी-कभी नाभि [१]अतोल चूमती ।।१०।।

कभी पिलाती स्तन-दूध नेम से, कभी मिलाती प्रिय-पास प्रेम से ।
दिखा-दिखा [२]स्वानन मोड़ती कभी हँसा-हँसाके तृण तोड़ती कभी ।।११।।

स्व अंक में ले टहला रही कभी, 'मा-मा' पदों को कहला रही कभी ।
यों बाल का जी बहला रही अहो! वा स्वान्तरात्मा बहला रही, कहो ।।१२।।

ज्यों-ज्यों रुची जान पड़ी नई-नई, त्यों-त्यों किये कौतुक भी कई-कई ।
स्व-बालकों की रुचि का निवाहना, मा के लिए है गिरि-शृङ्ग गाहना ।।१३।।

न जन्म देना बस मातृ-धर्म है, सुलालना भी उनका स्व-कर्म है ।
यों जान माता पर बाल-भार था, सुदासियाँ राजकुलोपचार था ।।१४।।

बालानुसार चलती वह बाल-माता,
कालानुसार जिस भाँति घड़ी [३]वदाता ।
मातानुसार चलती सब वंश-बाड़ी,
स्वास्थ्यानुसार जिस भाँति शरीर-नाड़ी ।।१५।।

जो सांसारिक नाट्य-खेल रचते संकल्प ही मात्र से,
ये ब्रह्मादिक देवता कि जिसमें हैं नाट्य के पात्र-से ।
साक्षात् ही उन ब्रह्म विश्वपति को क्रीड़ा कराती हुई,
कौशल्या अति-धन्य थीं हृदय की पीड़ा हराती हुई ।।१६।।

कभी उन्होंने सुनिमित्त क्षेम के, किये तुला-दान महान हेम के ।
कभी-कभी तो मणि-राशि वारती, कुदृष्टि का दोष वही निवारतीं ।।१७।।

लगा [४]सु-रक्षा मुख-कुण्ड-कोष की, निवारती हानि कुदृष्टि-दोष की ।
शरीर को धूपित यक्ष-धूप से कभी कराती [५]करवालि-भूप से ।।१८।।

---

१ नवीन सृष्टि-मूल होने से अतुल्य । २ अपना मुख । ३ शुद्ध । ४ शुद्ध भस्म । ५ तलवार लिये राजा से ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कभी करा मंत्रित मंत्रि-मन्त्र से कभी करा यंत्रित यंत्रि-यंत्र से ।
कभी करा तन्त्रित तन्त्रि-तन्त्र से, रक्षा बँधाती कर में सुमन्त्र से ।।१९।।
जिनकी इच्छा से रहे रक्षित रक्षक-वर्य ।
उनके रक्षोपाय हो माता से, आश्चर्य ! ।।२०।।
सदा सुदर्शन हाथ में जिनके हैं सुख-दोह ।
उन्हें कुदर्शन दोष क्यों, पर माता का मोह ।।२१।।

★ ★ ★

हे श्यामसुन्दर नाम-सुन्दर शिशु-[1]पुरन्दर पोढ़िए,
मुख-चन्द दिखलाते हुए शुचि-[2]सुन्दराँशुक ओढ़िए ।
[3]उत्तान आनन रख रहे, क्या दिव्य कानन लख रहे ।
मृदु मुसकराते केकि-कोकिल-केलि-रस को चख रहे ।।२२।।
जमुहा रहे हैं लाल मम हे नींद ! नैन घुला रहे,
मानो [4]पुकारा चाहते पर ध्याान आन बुला रहे ।
निज बालता के स्मरण से संकोच मानो कर रहे,
परिपूर्ण मर्यादा-धुरा निज बालपन से धर रहे ।।२३।।
ऐसे मधुर अलापती माता निद्रा-गान ।
पोढ़ाती प्रभु को परम करती सुधानुपान ।।२४।।

★ ★ ★

हे नैनों के तारे! हृदय दुलारे !, हुआ सवेरा, छिपते नभ में तारे ।
जागो कौतुक-खेल जगानेवाले; जागो रघुवर! मङ्गल लाने वाले ! ।।२५।।
मम लाला की दुही जा रहीं गायें, सुन पड़ती हैं कानों वेद-ऋचायें ।
जागो जीवन-ज्योति जगानेवाले !, जागो आशा-लता लगानेवाले ।।२६।।
ललित लतायें [5]लोल लहलहाती हैं, चिड़ियाँ चारों ओर चहचहाती हैं ।
जागो भैया ! राम ! नींद को त्यागो, जागो मेरे चैन-चितेरे ! जागो ।।२७।।
ऐसे मधुर अलापती माता जागर-गान ।
प्रात जगाती सम को करती सुधानुपान ।।२८।।

★ ★ ★

लीला से अब लगे राज-सुत घुटनों के बल चलने,
महल महल तें अहल-बहल कर क्रम से लगे टहलने ।

---

१ बालकों के इन्द्र । २ स्वच्छ सुन्दर कपड़ा । ३ ऊर्ध्वमुख, चित्त । ४ केकि-कोकिलों को। ५ चंचल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने लगे खड़े चरणों पर डग भरते कुछ खुल कर–
लगे सम्हलने; सिखलाते क्या चलना संकट-पथ पर? ।।२९।।
अपरिचितों को गभीर-कविता-सम भ्रम में उलझाती,
गुरुजन-द्वारा समझाने पर उनको खूब रिझाती ।
[१]अविशद-वर्ण उन्हीं की मानो मूर्ति मधुरता-घोली–
सुहावनी थी बाल राम की यह तुतलाती बोली ।।३०।।
नरेश की अङ्गुलि के सहारे, ढीला छबीला पट पीत धारे ।
शिरःस्थ टोपी कर में उतारे, लगे सभी को शिशु राम प्यारे ।।३१।।
पिता-साथ [२]आराम में करते राम विहार ।
ज्यों नन्दन में इन्द्र के साथ जयन्त-कुमार ।।३२।।
वाणी सुरीली, चुटिया जटीली, भौंहें नुकीली, अँखियाँ रसीली ।
नीली गठीली, न कि देह ढीली, खिली छबीली पट-कान्ति पीली ।।३३।।
झाँकी रिझाने निज ओर लाने-लगी फुलाने उनको भुलाने ।
तभी पिताने अपने घराने जन्मादि पाने पर धन्य माने ।।३४।।
चैत्री-उत्सव देख राम रमते, चन्द्राँशु थे छा रहे,
छाया संमुख देख वे पकड़ने दौड़े चले जा रहे ।
लौटे तो उसको न पा हँस पड़े, बोले महात्मा अरे!
जो विश्वेश-निशेश हो विमुख तो [३]छाया न क्या क्या करे ।।३५।।

★ ★ ★

उपप्रतान २

(राम की बाल लीला)

एक दिवस रघुवर सुमन्त्र की उँगली पकड़े-पकड़े–
राजचिन्ह-गृह पहुँचे कौतुक-रस में अकड़े-अकड़े ।
कोई वहाँ छत्र को निर्मल करते अन्य व्यजन को,
उजालते कोई सिंहासन, चामर, नर-वाहन को ।।१।।
रघुवर तज उँगली सुमन्त्र की उनको लगे निरखने,
कर से छूकर वस्तु-वस्तु को मानो लगे परखने

---

१ अस्पष्ट अक्षरवाली और श्याम रंग की। २ बाग में । ३ अविद्या ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिविका की पुतली को तुतली बातें सुना किलकते,
कभी चाहते उखाड़ लेना सु-जटित रत्न चिलकते ॥२॥

कभी दूर से मणि-दर्पण में लख कर निज परिछाँई,
भरत जान मिलनार्थ लपकते 'भलत भलत' कह 'भाई'।
बाल राम यों बाल-केलि कर श्रम से कुछ जमुहाते–
शिविका के भीतर जा लेटे पलना-शयन जताते ॥३॥

[१]यों श्रम हर भी गये कर्मचर निज मध्याह्न मनाने,
जाना पड़ा सचिव को [२]सहसा कुछ नृप-कार्य बनाने।
छिन भर में आकर देखा तो रघुवर वहाँ नहीं हैं,
हुई दशा सुमन्त्र की मानों चित्रित मूर्ति रही है ॥४॥

स्थान-स्थान से पुछवाया तो समाचार ये आये,
अन्तःपुर से सुमन्त्र ही तो साथ उन्हें हैं लाये।
ढूँढ ढूँढ कर हार गये जन, पीटा गया ढिंढोरा,
स्थान-स्थान को छान लिया बस कोई रहा न कोरा ॥ ५॥

सभी ओर से नहीं-नहीं के समाचार जब पाये,
अति घबराये सचिव, बुलाये श्री वशिष्ठ झट आये।
कहा उन्होंने निज घर ही में उन रघुवर को देखो,
इतने में छत में से निकला स्वर 'लघुबल' को देखो ॥६॥

सभी हँस पड़े झट, सुमन्त्र के तब जी में जी आया,
वे बोले कि आज तो मैंने नूतन जीवन पाया।
गुरुवर! घर ही नहीं, नगर के चारों कोनों हेरा,
न मिले, तुम आये कि मिल गये, पूजूँ मैं पग-फेरा ॥७॥

[३]रसिया राम रिझाते भारी गुरुजी! रूप-विमोहन
सुरेश से जो परैश्वर्य के हेतु दयामृत - दोहन
भव कुरोग के गुणकारौषध रंक-जनों के जीवन–
छिपते गृह की उरः-स्थली में जिनको लख न सकें जन ॥८॥

[४]महा मान्य! मिथ्या-भ्रमी वृथा मुझ-से मूढ विचरते–
बाहिर ही, घर के गुरु से नहिं मेल न मैत्री करते।

---

१ इस बाल-लीला से। २ एक दम। ३ इस पद्य में यदि 'र' का प्रयोग किया गया है तो वह उसकी बारहखरी के क्रम ही से। ४ इस पद्य में उसी तरह 'म' की बारहखरी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोह-रूप मौलिक अपमंगल तमः-पुंज में पड़ते,
अन्ध हुए तब ही तो घर की वस्तु पकड़ते अड़ते ॥९॥

[1]द्विविध भाव-भूषित वचनों को सुन वशिष्ठ मुनि ज्ञानी–
प्रमुदित हो बोले सुमन्त्र से राम-भक्त-बहुमानी ।
रम के अद्भुत रूप दिखाते ज्यों कि राम सुखकारी,
र-म के अद्भुत रूप दिखाते त्यों सुमन्त्र ! तुम भारी ॥१०॥

कहा सचिव ने बाल राम ने अद्भुत खेल दिखाया,
आत्म-रूप के अन्वेषण का अद्भुत मर्म सिखाया ।
शिविका में लेटे, अवसर पा, [2]छत के सिंहासन पर,
उस चौकोन निसेनी-द्वारा चढ़ जा सोये रघुवर ॥११॥

जब मैं लौटा, वही निसेनी हटी कर्मचर-द्वारा,
तभी विचार-मूढ मैं होकर ढूँढ ढँढ कर हारा ।
यों कह वही निसेनी मँगवा उनने उन्हें उतारा,
यह कौतुक था बाल राम का सुनने में भी प्यारा॥१२॥

मुनिवर बोले, क्या कहें रघुवर-सुगुण-कलाप ।
लघुबल कहते आपको जो अनन्त-बल आप ॥१३॥

★ ★ ★

रूठे क्यों गणराज!, माँ ! न रहते ये कान खींचे बिना,
क्यों रे कार्त्तिक!, मात! पूर्व इनने मेरे दृगों को गिना ।
क्यों लम्बोदर! मापते जननि! ये शुण्डा, लगा दण्डिका;
ऐसे बाल-पुकार को सुन हँसी रक्षा करें चण्डिका ॥१४॥

★ ★ ★

विकसित वन-माला स्कन्ध धारे विशाला,
कुसुम-धनुषवाला काम मानो निराला ।
अति-विकच तमालाकार हो काय काला,
पर परम उजाला राम है खेलवाला ॥३६॥
हृदय-भवन-ताला तोड़के खोल डाला,
मल-कुधन निकाला औ इसी ने उछाला ।
विविध कुतुकवाला चित्त का चौर काला,
यह रघुवर बालाकार मेरा उजाला ॥३७॥

---

१ दो प्रकार के– प्रस्तुत सांसारिक और ईश्वर-प्राप्ति के ।
२ दीमक की हानि से बचाने के लिए ऐसी चीजें छत पर रख दी जाती हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुकटि करधनी से, कान भी कुण्डलों से,
पद-युग कटकों से, हस्त भी कंकणों से ।
शिर पर चुटिया भी है बँधी दोरकों से,
शिशु तो भी हैं खुले बन्धनों से ।।३८।।

वदन सदन खासा, रूप [१]का चंद्रमा-सा,
रदन-[२]रदन-भासा पुष्प है कुन्द का-सा ।
रदन-[३]छद नया-सा पत्र है, वा जवा-सा,
मदन-मद न मापा भी रखे आज आशा ।।३९।।

गुण-गति दिखलाती जो [४]प्रसादादि पाती,
[५]नव-रस बतलाती औ अलंकार लाती ।
कवि-वचन तुलाती जो कि स्वच्छन्द आती,
सुमधुर तुतलाती राम-वाणी सुहाती ।।४०।।

[६]अकल सहज-माया हीन जो दृष्टि आते,
सब शिशु सम-दर्शी ब्रह्म ही वे कहाते ।
शिशु रघुवर साक्षात् ब्रह्म ही आ मिला है,
फल-सहित हमारा भाग्य-शाली खिला है ।।४१।।

श्रीराम के कुण्डल ये नहीं हैं, जो ज्ञान-वैराग्य कहें, वही हैं ।
ये कान में पूछ रहे कि, प्यारा क्या भक्त का चित्त करें सहारा? ।।४२।।

सदा विकासी कुतुकाभिलाषी लीला-विलासी मन के निवासी ।
श्रीराम आसीन रहें यहाँ-सी, न हों प्रवासी मृदुमन्दहासी ।।४३।।

कष्ट करें क्यों भक्त-जन, नष्ट करें श्रीराम ।
यों अष्टक से तुष्ट कर गये वशिष्ठ स्व-धाम ।।४४।।

करते बाल-विहार यों वे सुकुमार कुमार ।
मानव होते मान-वश उन्हें निहार निहार ।।४५।।

शुभ उत्तरायण के दिवस रवि-तेज के सह ज्यों बढ़े,
रामादि-बाल-चतुष्क के वपु तेज के सह त्यों बढ़े ।

---

१ सौन्दर्य । २ दाँत-दाँत की झलक । ३ होठ । 4 भगवान् का प्रसाद (चढ़ा हुआ नैवेद्य) और काव्य-गुण । ५ नवीन आनन्द और नौ रसशृंगारादि । ६ कला-रहित ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सित-श्याम दृग को श्याम-सित प्रिय' यों जता दृग-भावनी,
श्रीराम लक्ष्मण औ भरत-शत्रुघ्न की जोड़ी बनी ।।४६।।

★ ★ ★

अन्न-प्राशदिक विधि रची काल ज्यों-ज्यों कि आया,
वर्णारम्भ स्व-गुरु-मुख से बालकों को कराया ।
माता किन्तु प्रथम करती थी पढ़ाना-लिखाना,
माता ही की [१]विधि नियत है मातृ-भाषा सिखाना ।।४७।।

शिक्षा प्रारम्भिक वह उन्हें दूध-सी दी गई थी,
मीठी मिश्री-सदृश जिसमें स्फूर्ति पाई गई थी ।
पीछे पाई निपुण बुध से व्यावहारी सु-शिक्षा-
बालों ने, ज्यों गृहि-सुजन से ब्रह्मचारी सु-भिक्षा ।।४८।।

जैसे-जैसे विषय पढ़ते जा रहे थे कुमार,
वैसे-वैसे सुरुचि बढ़ती जा रही थी उदार ।
जैसे भौरे सदुपवन में देखते फूल ज्यों-ज्यों
पाई जाती सुरुचि बढ़ती मोद की मूल त्यों-त्यों ।।४९।।

होते-होते दशम उनको वर्ष ज्यों ही कि आया,
श्रेयस्कारी उपनयन का ब्राह्मणों ने बताया ।
संस्कारों के प्रमुख उस को पा हुए वे द्विजन्मा,
संज्ञा पाते उपनयन ही से 'द्विजन्मा' [२]द्विजन्मा ।।५०।।

शोभा राम-शरीर में खिल पड़ी यज्ञोपवीताङ्किनी,
ज्यों आकाश-[३]वितान में खिल रही सुश्वेत मन्दाकिनी ।
वा इन्दीवर-वृन्द-बीच कुमुद-श्रेणी खिली हो भली,
मेघाडम्बर घेर अम्बर फिरे वा ज्यों वलाकावली ।।५१।।

वा जैसे सित मध्य-बन्धन रहे [४]मातङ्ग के अङ्ग पै,
दोनों ओर नितान्त निर्झर बहे वा शैल के शृङ्ग पै ।
वा वैदूर्य-प्रपूर्ण-कुम्भ पर हो ज्यों कुन्द-माला भली,
वा ब्रह्माण्ड-प्रचण्ड-भाण्ड पर ज्यों गङ्गा त्रिधारा चली ।।५२।।

---

१ कर्त्तव्य । २ द्विज । 3 आकाश-विस्तार में । ४ हाथी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये त्रिगुण के स्वामी पृथग्भूत भी–
अन्योन्याश्रित हैं मिले त्रिगुण से, है केवली भूत भी ।
यों स–ग्रन्थि समाय ब्रह्म इनमें, हो सृष्टि ना अन्यथा,
ऐसे राघव–[१]ब्रह्मसूत्र कहता था ब्रह्मकी सत्कथा ।।५३।।

ऐसे वे उपवीत धारण किये रामादि भ्राता तभी,
गायत्री–उपदेश पाकर हुए वेदाधिकारी सभी ।
श्रद्धा से करने लगे प्रणति भी संमान्य विप्रेश को,
चारों वेद शरीर धारण किये जैसे कि लोकेश को ।।५४।।

'मेरी ओर शुभोपवीत धरते तू वाम का वाम है',
'मेरे ही शिर पै धरा यह अहो ! तेरा वृथा नाम है' ।
ऐसे दक्षिण–वाम हस्त मिलके बातें करें, कान तो–
आगे शीश किये सुनें, कुतुक था सद्–वन्दना–मान तो ।।५५।।

राजा ने गुरु को समर्पित किया आगे पढ़ाने उन्हें,
आत्मा को गुरु ने समर्पित किया आगे बढ़ाने उन्हें ।
वे निर्वेद–निमग्न वेद उनको वैसे पढ़ाने लगे,
[२]वेदों को कष–पट्ट पै हृदय के मानो चढ़ाने लगे ।।५६।।

गुरु–शिक्षण से झट हुंई विद्यायें उद्भूत ।
ज्यों सरिता–सामीप्य से निकले नीर प्रभूत ।।५७।।

★ ★ ★

पठन के समनन्तर वे कभी, दिन ढले, सम वेश धरे सभी ।
वन चले अति–शोभित सङ्ग से, मचलते चलते सु–तुरङ्ग से ।।५८।।

सचिव ने तुरगासन को किये, सु–[३]रघुनन्दन– सेवन के लिए ।
पथ वही पहले सुधरे किये [४]सुलघु नन्दन–से वन के लिए ।।५९।।

[५]फिर कहा कर नर्म, सवार हो तुम महोदय! वा असवार हो ?
समृदुहास कहा प्रभु ने वहीं, उभय हैं, भय है कुछ भी नहीं ।।६०।।

---

१ यज्ञोपवीत। २ उनको वेद पढ़ाने से मानो अपने हृदय को और भी उज्जत्रलित कर लिया। ३ राम सेवा के लिए। ४ हलके। ५ इसमें मंत्री का मर्म=मजाक है कि हे राम ! आप सवार हैं या असवार? वास्तव में यह शब्द द्विरूप है अर्थ एक ही। इसी बात को समझ कर राम ने कहा, दोनों हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]द्रुत-विलम्बित- पाद न भी भरे, गुरु रुची अनुसार न भी करे ।
तदपि राम कवीकृत वाह से न खलता, खल तात ! भले हँसे ।।६१।।

जिस प्रकार कुमार बड़े चले, सब उसी विधि को पकड़े चले ।
वह सभी अमर-प्रतिमान थे, नृप-कुमार [२]कुमार-समान थे ।।६२।।

निज-निज-प्रभु की धंर सूचना तुरंग-मण्डल पंक्ति बना बना। ।
वन-सरोवर को करके भला ! [३]वितत रङ्ग, तरङ्ग , हुए चला ।। ६३।।

विविध-वाजि-विचित्र-विनोद से, कुछ बिताकर काल प्रमोद से ।
स्व-रुचि से फिर वे फिरने लगे पवन-सेवन से रस में पगे ।।६४।।

निज तुरंगम की द्रुत चाल से, फिर कई उसकी प्लुत चाल से ।
अपर मञ्जुल मध्यम चाल से, तब चले बच [४]लेष्टुक-जाल से ।।६५।।

वह नहीं रघुवीर-तुरङ्ग था, वन-विहारक दिव्य कुरङ्ग था ।
परम-वेग-विभूषित था, नहीं-चपल ही, पल ही भर में कहीं ।।६६।।

लख रुची उसने स्वसवार की, सिकुड़के, सरयू झट [५]पार की ।
रघुवराश्रित को लघु ही जँचे-भव-नदी, बन दीर्घ भले मचे ।।६७।।

---

१ फिर राम सचिव से कहते हैं कि हे तात! वाह=घोड़ा चाहे अपने शिक्षक की रुची के अनुसार न भी करे, और तेज और धीमी कदम भी न भरे, तो भी कवीकृत (लगाम से काबू किये) घोड़े पर से राम नहीं खलता, चाहे दुर्जन क्यों न हँसे?— दूसरा कवि ने अपना व्यक्तिगत आशय यों झलकाया है— टिप्पणीकार ने अपनी राय दी थी कि इस विषय के लिए यह छन्द प्रयोग में न लाया जाय, या चौथे चरण में यमक न लाया जाय। पर कवि अपनी धुन में चलता रहा। उसने अपना उत्तर यों झलकाया कि चाहे कवि इस छन्द का प्रयोग न भी अर्थात् निडर होकर करे, तो भी राम—कवीकृत (जो पहले कवि न हो, पर जिसे राम ने कवि बना दिया ऐसा मनुष्य) अपने वाह (वाणी-प्रवाह) से च्युत नहीं होता। अर्थात् उसे यमक लाने की धुन सवार हो तो किसी भी छन्द में लाये बिना न रहे।—इस पर भी कवि ने छन्द का नाम सूचित करते हुए 'न भी भरे' इससे नगण, भगण, भगण, रगण की सूचना देते हुए उसका लक्षण भी बता दिया।

२ देव सेनापति (कार्तिक)। ३ फैला हुआ अखाड़ा (करके)। मिट्टी के दगलों के ढेर से (बचकर)। ५ लाँघली ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]समुद्र पार करे स्थल-सिन्धु को, सच तुरङ्ग यथा बलसिंधु को ।
बस उसी विधि, ज्यों नद-सिन्धु को, सच तरङ्ग यथाबल सिन्धुको ।।६८।।

लख रघूत्तम का मन-भावना तुरग के बल सिंधु उलाँघना ।
तब कई अपने स्थल-पान से – उतरते तरते जल-यान से ।।६९।।

सरपटें भरते नव ढङ्ग से– प्लवन-शिक्षित राम-तुरङ्ग से ।
बिछुड़ अन्य स्व-मण्डल से टले प्रथम से थम [२]सेतुक से चले ।।७०।।

इस विधि सरयू के पार एकत्र होके,
शिशिर-पवन-द्वारा वे सभी श्रान्ति खोके ।
कर तट पर सन्ध्या-कर्म आवश्यकीय,
समय पर सिधारे पर्णशाला स्वकीय ।।७१।।

पीछे नीर-स्निग्ध सेते समीर, पीके गौ का शुद्ध धारोष्ण क्षीर ।
प्रेमों से वे पान-गोष्ठी मनाते, स्व-स्वात्मा को एक ही-सा बनाते ।।७२।।

उस गुरु-कुल के यों वास से निष्प्रपञ्च,
कुछ समधिक बीते न्यून वा वर्ष पञ्च ।
सकल [३]स-कल-विद्या-दक्ष सोहे कुमार,
सच, मति-निधियों को क्या गुण-प्राप्ति-भार? ।।७३।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता चतुर्थ प्रतान समाप्त ।

---

१ सुभट चतुरंगी सैन्य-समुद्र के समान स्थल सिन्धु देश को पार कर ले, त्यों राम का घोड़ा सिन्धु नद के समान सिन्धु=सरयू नदी को अपने बल के अनुसार सचमुच पार कर गया।
२ पुल से ३ ६४ कला सहित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

पाँचवाँ प्रतान

प्रवेशिका

इस प्रतान का प्रारम्भ अयोध्या नरेश की सभा में मुनि विश्वामित्र के शुभागमन से होता है। मुनि के तेजस्वी व्यक्तित्व का इस प्रतान में विशद वर्णन है। इसके पश्चात् राजा द्वारा मुनि का सविधि आदर-सत्कार, मुनि-दर्शन के लिए उनका पुत्रों को बुलवाना, १५ वर्षीय श्रीराम के दिव्य स्वरूप के माधुर्य से मुनि का मंत्रमुग्ध होना तथा उनकी मन ही मन श्रीराम की वन्दना का वर्णन है। श्रीराम मुनि का अभिवादन करते हैं और मुनि उन्हें आशीर्वाद देते हैं। अपने आने का प्रयोजन बताते हुए मुनि लङ्केश रावण के अत्याचारों की ओर संकेत करते हुए राक्षसों के संहार के लिए श्रीराम-लक्ष्मण को उनके साथ भेजने के लिए राजा से अनुरोध करते हैं। उदास मन से राजा मुनि के साथ राम-लक्ष्मण को भेज देते हैं। मुनि वशिष्ठ उन्हें समझाते हुए सर्वमङ्गल का आश्वासन देते हैं।

विशेष-भाव-लालित्यः 'मम राम ही शरण है' मुनि विश्वामित्र की प्रभु-वन्दना भक्तिरस से परिपूर्ण है।

स्थानीय शब्द प्रयोग : 'यदि फिर नट दूँ तो धर्म हा...नष्ट होगा' मना करने के लिए नट शब्द के राजस्थान में प्रचलित प्रयोग से कवि ने भाषा को व्यापकता प्रदान की है।

व्यावहारिक-ज्ञान- देशाटन के लाभ-

'अनेक भाषा, विविध प्रदेश, नानाविध श्री, बहुरूप-वेश ।
यों सृष्टि-वैचित्र्य सभी जनाता, है पूर्ण देशाटन लाभ-दाता ।।'

उक्ति-वैचित्र्य- 'तुल्य-द्विपार्श्व नवयौवन-से जनाये ।' नवयौवन शब्द भी दोनों ओर से पढ़ने में एक सा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँचवाँ प्रतान

वशीभूत यदि राम को किया चाहते आप ।
वशीभूत हो जाइए पहले अपने आप ।।५।।

कोई हर्ष-प्रद दिवस था, हो गया था सवेरा,
अम्भोजों का वन खिल रहा था, नहीं था अँधेरा ।
प्राची ने था अरुण पट की आड़ को खोल डाला,
औ तेजस्वी रवि-मुख छटा देखने को निकाला ।।१।।

राजा सिंहासन पर सभा में बिराजे हुए थे,
धीरे-धीरे रवि-कर उन्हें देख लाजे हुए थे ।
प्रेमालापोन्मुख लख रहे थे उन्हें सभ्य सारे,
शोभा थी, ज्यों गगन-तल में चन्द्रमा और तारे ।।२।।

ऐसी वेला लख, शकुन को पूर्व ही से सुधारे,
माला पूजार्पित हृदय से ईश के साथ धारे ।
विश्वामित्र-द्विजपति वहाँ सामने से पधारे,
ज्ञानी यत्न प्रथम करते कार्य-सिद्ध्यर्थ सारे ।।३।।

भ्रू-चापों के उपरि-गत जो [1]पुण्ड शोभा, छटा थी,
सो क्या नीचा कर भुज-[2]बल क्षात्र, ब्रह्म-च्छटा थी? ।
जैसे सूर्योत्तर जग धरे चन्द्रिका चन्द्रमा की,
वैसे क्षात्रोत्तर चमकती थी प्रभा ब्रह्मता की ।।४।।

भ्रू-रेखा जो धवल उनके थी त्रिपुण्ड्रानुसारी,
जाने जाते सु-मुनि उस से वे चतुष्पुण्ड्र-धारी ।
शङ्का होती तब यह जनों को त्रिवर्गाप्ति-कारी-
योगी ने तो अब यह चतुर्वर्ग-[3]वीथी सुधारी ।।५।।

---

१ त्रिपुण्ड्र । २ भ्रूचाप मानों क्षात्र भुज-बल था और त्रिपुण्ड-छटा ब्रह्मच्छटा। ३ धर्म, अर्थ काम ये त्रिवर्ग और इनके साथ मोक्ष मिल जाने से चतुर्वर्ग कहलाते हैं। वीथी=रास्ता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो योगी के मुख पर बड़ी लम्ब थी श्मश्रु-माला,
सो थी मानो शम-रस-समग्रेन्दु की अंशुमाला ।
शोभा देती हृदय-हर थी कण्ठ में अक्ष-माला,
मुक्ति-श्री ने वह वरण की क्या सजाई स्व-माला ।।६।।

सोहा गोरे तन पर अहो? श्वेत यज्ञोपवीत,
जैसे सोहे कनक-घट पै कुन्द-माला पुनीत ।
धारे वल्कलाम्बर हरिण के चर्म की मेखला भी,
हाथों में थे [१]करक, कुश की मुद्रिकायें, स्त्रुवा भी ।।७।।

★ ★ ★

उन्हें ज्यों ही देखा सब जन हुए वे उठ खड़े,
तभी राजा सिंहासन तज पगों में गिर पड़े ।
इसी जिज्ञासा को कर कि, द्विज ये क्यों कर बने?,
लगे क्या योगी की वह चरण-रेखा निरखने? ।।८।।

'जयी दीर्घायुः हो' यह कह शुभाशीष, उनको-
उठाके योगी ने अभिमुख किया ज्यों शकुन को ।
उन्हें राजा बोले, [२]अहह ! घर-बैठे गुरु मिले,
मिला जैसे ऐसा सु-दिन, मम भाग्याम्बुज खिले ।।९।।

उन्हें योगी बोले, तुम प्रथम से भाग्य-युत हो,
कहा ही क्या जावे अब, कि जिन के राम सुत हो ।
तुम्हें शोभा देवे गुरु-विनय हाँ क्यों न, जिनके-
कुलाधिष्ठाता हैं, श्रुति-[३]तनु यही नाथ दिन के ।।१०।।

उन्हें राजा बोले गुरु-चरण-सेवा-सफलता-
सिंचाई को पाके विनय-फल देती कुल-लता ।
इसी से शिक्षा के गुरु-चरण ही कारण रहे,
करे वर्षा वर्षाम्बुद जब, तभी निर्झर बहे ।।११।।

उन्हें यों राजा ने तब प्रथम ही तर्पित किया,
पुनः आतिथ्यों के उपकरण को अर्पित किया ।

१ कमण्डलु । 2 आश्चर्य ! । ३ सूर्य 'त्रयी-तनु'=वेदमूर्ति कहलाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुलाया पुत्रों को तदनु तब लौं ब्रह्म-पति ने
जपी थी माला क्या, रघुप-मिलने के पल गिने ।।१२।।

★ ★ ★

ज्यों ही यती पथ निहार-निहार हारे,
भ्राता-समेत रघु-रत्न वहाँ पधारे ।
'ज्यों आज मैं क्षण-प्रतीक्षण से कि हारा,
त्यों योग में न,' तब यों मुनि ने विचारा ।।१३।।

श्रीराम का मुख सरोरुह के सरीखा,
औ शीश ऊपर रहा अलि-यूथ दीखा ।
जो कर्ण थे कनक-कुण्डल-कान्ति-शोभी,
क्या ताकते नयन-चौर उन्हें प्रलोभी ।।१४।।

वक्षःस्थली सुछवि थी हृदय-स्थली की,
रङ्ग -स्थली ललित सागर-नन्दिनी की ।
'हैं [1]ऊरु और हम कर्मठ [2]सानुओं से,
यों बात क्या कह रहे [3]भुज जानुओं से? ।।१५।।

अत्यन्त [4]प्रौढ क्रम थे गजराज के-से,
गम्भीर धीर दृग थे मृगराज के-से ।
थे राम पञ्चदश-वार्षिक, किन्तु आये-
तुल्य-[5]द्विपार्श्व नवयौवन-से जनाये ।।१६।।

[6]गाधेय के नयन श्रीमुख से लगा के,
जाते हुए थम गये चरणान्त पाके ।
श्रीराम के थम गये पद भी वहीं पै,
क्या एक-[7]तारक मिले बिछुड़ें कहीं पै? ।।१७।।

---

१ जाँघें । २ पहाड़ के शिखरों की अपेक्षा (हम=भुज कर्मशील हैं) । ३ अर्थात् राम आजानु-बाहु थे । ४ प्रौढ़=गुरु, वजनदार क्रम=कदम का रखना । ५ जिनके दोनों पार्श्व-भाग एक-से थे, इसी से नवयौवन-से प्रतीत हुए । 'नवयौवन' शब्द भी दोनों ओर से पढ़ने में एक-सा है। ६ विश्वामित्र । ७ नयन-पक्ष में एक तारा वाले चरण-पक्ष में एक तारने वाले । जिन प्रेमियों के नैन-तारे मिलकर एक हो गये, वे कब बिछुड़ सकते हैं, यह ध्वनित अर्थ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कंदर्प-कोटि-कमनीय उन्हें निहारा,
तत्काल ही सुमुनि ने मन में विचारा ।
चारों बने [१]चतुर आश्रम के खिलौने,
श्रीराम तो मम हृदाश्रम के खिलौने ।।१८।।
स्वच्छन्द देख मन-ही-मन वन्दना की,
श्रीराम-दर्शि-दृग की अभिनन्दना की ।
यों हार्दिक स्तवन से शरणार्थना की,
औ अन्त में निज-प्रयोजन-प्रार्थना की ।।१९।।

★ ★ ★

श्रुति-सार छान डाला, विधि ने बखान डाला ।
यह तत्त्व है निकाला, मम राम ही शरण है ।।२०।।

जो रूप योग-द्वारा, शिव ने प्रभो ! निहारा ।
है वह यही सुप्यारा, मम राम ही शरण है ।।२१।।

भगवन् ! कई तुम्हारे अवतार, जो कि धारे ।
पर तुम लगे हो प्यारे, मम राम ही शरण है ।।२२।।

प्रभु-रूप है निराला, जिसने किया उजाला ।
अन्धेर को निंकाला, मम राम ही शरण है ।।२३।।

जग के अनादि कर्ता, हैं आप एक भर्ता ।
हैं आप ईश् ! हर्ता, मम राम ही शरण है ।।२४।।

श्रीराम-नाम रस है, जो पायँ एक बस है ।
सब तृप्ति इस के वश है, मम राम ही शरण है ।।२५।।

यदि आप हों न भीतर, मृत है यही कलेवर ।
तुम से जिया चराचर, मम राम ही शरण है ।।२६।।

प्रभु के दया पसारे, जो विघ्न हों हमारे ।
वे नष्ट होंय सारे, मम राम ही शरण है ।।२७।।

★ ★ ★

ज्यों ही जटा-मुकुट से परिपूर्ण सोहा,
श्रीराम ने सुमुनि का मुनि-वेष जोहा ।

---

१ चार ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्यों ही प्रणाम कर जो शिर को झुकाया,
स्वीकार क्या यह निवेदन का जताया? ॥२८॥

★ ★ ★

सविनय उन्हें निहार मुख-संमुख साञ्जलि खड़े।
निज-स्वरूप-अनुसार भूप वचन कहने लगे ॥२९॥

इन महर्षि का प्रथम हृदय में परिचय धरना,
पीछे विधिवत् पद-कमलों में वन्दन करना।
गुण-परिचय ही भक्ति-श्रद्धा उपजाता है,
भक्ति-श्रद्धा-युक्त कार्य ही फल-दाता है ॥३०॥

इन महर्षि के चरित्र निर्मल अति-विचित्र हैं,
विश्वामित्र नाम है, पर ये विश्व-मित्र हैं।
किसी समय में [१]तेजोनिधि थे ये क्षत्रेश्वर,
अब ये हैं अकलङ्क कलानिधि पूर्ण [२]द्विजेश्वर ॥३१॥

कीर्ति-चन्द्रिका निशि-दिन इनकी दीप्यमान है,
ब्रह्म-वंश ही में न, किन्तु सर्वत्र मान है।
हृदय-कमल भी इनका दर्शन पाकर खिलता,
[३]कर-स्पर्श से [४]अमृत अन्त में अवश्य मिलता ॥३२॥

कुशिक भूप थे चन्द्रवंश-कानन के चन्दन,
गाधिराज [५]स्वर्गाधिराज थे उनके नन्दन।
आप उन्हीं के पुत्र-रत्न भूलोक-रत्न हैं,
तीव्र तपोबल से इनके सब सफल यत्न हैं ॥३३॥

अचला चलती, अचलाधर भी अचल विचलते,
किन्तु वचन इन महाव्रती के कभी न टलते।
नृप त्रिशंकु ने जबसे इनको स्व-गुरू बनाया,
तब से उनको शिष्य मान ऐसा अपनाया ॥३४॥

उसी देह से स्वर्ग-लोक उनको पहुँचाने-
यही महोदय नई सृष्टि को लगे बनाने।

---

१ तेज के निधान और सूर्य। २ श्रेष्ठ ब्राह्मण और चन्द्र। ३ हाथ और किरण। ४ मोक्ष और सुधा। ५ इन्द्र-रूप।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवों के अति समझाने पर माने तो फिर–
उन्हें इन्होंने अन्तरिक्ष में रक्खा ही स्थिर ॥३५॥

पट-कर्मा होते भी ऐसे नियमोन्मुख हैं,
राज-वंश के दान-ग्रहण से सदा विमुख हैं।
सूर्य आदि देव-प्रभाव ने जिसे तपाया,
मुनि-तप ने उस इन्द्रासन को खूब कँपाया ॥३६॥

प्रभाव इनका मर्त्यलोकमय घर-ही-घर में–
विदित नहीं है, किन्तु सूर्यवत् त्रिलोक भर में।
अब तुम भक्ति-श्रद्धा-युत हो प्रणाम कर लो,
उसी शीश से शुभाशीष-माला को धरलो ॥३७॥

[1]दशस्यन्दन के वचन यों रघुनन्दन ने जान।
कुशिकाऽऽनन्दन को किया पदवन्दन सविधान ॥३८॥

उनके अवनत शीश पर दन्त-किरण-[2]सुम-माल।
पहिनाते मुनि ने किया स्वस्तिवाद अविचाल ॥३९॥

★ ★ ★

एकान्त-[3]शान्त-स्थिति-योग ताके–रहे हुए थे, वह शीघ्र पाके।
स्वकीय कर्तव्य-प्रसङ्ग को ले, नृराज से वे मुनिराज बोले ॥४०॥

समृद्धि पा नीच विपत्ति-दानी वीरेन्द्रमानी परमाभिमानी।
लङ्केश ने कान कहीं न मानी, [4]स्वाऽनीक से भारत-हानि ठानी ॥४१॥

बचा रहा पूर्ण स्व-राज्य-सीमा, छिड़ा रहा जो पर-राज्य-सीमा।
सो चाहता है अपनी उबारा औ अन्य की [5]मौलिमणी उतारा ॥४२॥

पौलस्त्य आके [6]मद-धर्म-धारा–सुखा रहा चन्दन-वायु-द्वारा।
हमें तभी तो वह छेड़ता है, बुना हुआ कौन उधेड़ता है? ॥४३॥

निशिचर-[7]कुञ्जर ने किया [8]हैहय से रण-सङ्ग।
अब यदि मानव-सिंह से कहीं भिड़ा, तो भङ्ग ॥४४॥

---

१ दशरथ। २ पुष्पमाला। ३ एकान्त में शान्तचित्त रहने का अवसर। ४ अपनी सेना से। ५ मुकुट। ६ गर्व की गर्मी का पसीना। ७ राक्षस श्रेष्ठ रावण और रात्रिचारी हाथी (ध्वनित)। ८ कार्तवीर्य और 'है' को अलग करके हय=घोड़ा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वही हमारे मख राक्षसों से, दुष्काल ज्यों क्षेत्र [1]पतङ्गकों से ।
निःशङ्क हो नष्ट करा रहा है, हो धर्म-बाधा, फिर क्या रहा है? ।।४५।।

अधर्मियों की यह धर्म-बाधा सीमान्त होती जब यों अगाधा ।
तभी स्वभू का अवतार होता, [2]उसे [2]उन्हीं के [2]वह साथ खोता ।।४६।।

उन्हें हराने यह काल [3]प्यारे ! हैं संमुखोपस्थित ही हमारे ।
[4]अमन्दता से यह ग्राह्य होवें, न [5]मन्दता से यह ग्राह्य होवें ।।४७।।

प्रासाङ्गिकी जो यह धर्म-बाधा हमें सताती नृपते ! अगाधा ।
उसे मिटाना व्रत है तुम्हारा, वर्णाश्रमों का नृप है सहारा ।।४८।।

उत्थान ही के क्षण जो विरोधी विनष्ट हो तो फिर हो न योधी ।
उत्पन्न होते क्षण शत्रु, रोग निःशेष हो तो कुशलोपभोग ।।४९।।

अतः अभी से नरपाल-रत्न ! उन्हें हटाने करिए प्रयत्न ।
आया इसी कारण से यहाँ हूँ, स्वचित्त से तो अब भी वहाँ हूँ ।।५०।।

होंगे फली कार्य सभी तुम्हारे, श्रीराम को साथ करो हमारे ।
सौमित्रि का जो सहवास होगा, तो स्वर्ण में गन्ध-विकास होगा ।।५१।।

उच्छ्वास-निश्वास न लो निराला, वियोग का काल गिनो निकाला ।
प्रवास है वासर-मास का ही, न वत्सरों का प्रियवत्स ! [6]दाही ।।५२।।

माता-पिता-संतति-प्रेम-बाढें, देखी गईं, बाहिर जो न काढें ।
संतान ही को इससे न हानि, वे भी कहाते अविवेक-खानि ।।५३।।

अनेक भाषा, विविध प्रदेश, नानाविध [7]श्री, बहुरूप-वेश ।
यों सृष्टि-वैचित्र्य सभी जनाता, है पूर्ण देशाटन लाभ-दाता ।।५४।।

विशेषता से हम शस्त्र-विद्या सिखायेंगे सादर अस्त्रविद्या ।
ये राक्षसों का क्षय भी करेंगे, यज्ञ-क्रिया-विघ्न सभी हरेंगे ।।५५।।

नहीं हमारी यह बात भूलो, संदेह-दोला-गति-में न झूलो ।
जयी सुतों से झट ही मिलोगे, खिले [8]सुमों से तरु ज्यों खिलोगे ।।५६।।

---

१ टिड्डियों से । २ वह (स्वभू=ईश्वर) उन्हीं के (अधर्मियों के) साथ उसे (धर्मबाधा) को। ३ साँवरे और मृत्यु-रूप। ४ विज्ञता और सुस्ती छोड़ने से। ५ मूढ़ता और सुस्ती। ६ संताप-दायक। ७ इसमें संपत्ति, ऐश्वर्य, कान्ति, छवि आदि कई अर्थ समाये हुए हैं। ८ फूलों से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शस्त्रास्त्र-शिक्षार्पण का विचार, है राम को शिष्टजनोपचार ।
शरीर ही अन्तक है खलों का, ज्यों इन्द्र का देह महाऽचलों का ।।५७।।

तुम्हें इसी से नृप ! कष्ट देना न चाहता हूँ, यह जान लेना ।
सु-साध्य होवे यदि अग्नि पाना, तो व्यर्थ [1]मूलाऽरण का मँगाना ।।५८।।

अतः स्वकर्तव्य, [2]मदीय आशा, प्रतीक्षकों की हृदयाभिलाषा ।
तुरन्त ही पूर्ण करो नरेश, श्रीराम को दो गमनानुदेश ।।५९।।

★ ★ ★

दशरथ सुन विश्वामित्र के वाक्य ऐसे-
इस विधि दुविधा में आ पड़े, अज्ञ जैसे ।
यदि रघुवर को मैं भेज दूँ, कष्ट होगा,
यदि फिर नट दूँ तो धर्म हा ! नष्ट होगा ।।६०।।

वचन-पटु यती ने वाक्य ऐसा कहा है,
न प्रतिकथन का जो स्थान भी तो रहा है ।
शिशु घर रह जायें, युक्ति दे, क्या सखा है?,
बस, अब इन बातों में भला ! क्या रखा है? ।।६१।।

अब हृदय ! [3]बुधाज्ञा माननी ही पड़ेगी,
स्थिति फिर अपनी भी जाननी ही पड़ेगी ।
अब तक न दृगों ने राम का सङ्ग त्यागा,
इस अवसर तू ही रीझना, हो सभागा ।।६२।।

नृपति-हृदय किंचित् चञ्चलीभूत ऐसे,
स्व-प्रकृति घर पाया, वापिका-पद्म जैसे ।
तब नरपति बोले, राम, [4]उत्सङ्ग में हैं,
यदि [5]शिर पर के ये पाद भी सङ्ग में हैं ।।६३।।

प्रमुदित मुनि बोले, राम हैं प्राण-प्यारे,
यह तनय तुम्हारे नैन-तारे हमारे ।
तुम नयनों ही से इन्हें देख लेना,
बस, अब हम जाते, क्षेम का लेख लेना ।।६४।।

---

१ मूल अरणि=अग्नि-उत्पादक काष्ठ। २ मेरी। ३ विश्वामित्र की आज्ञा। ४ गोद में। ५ अर्थात मेरे शिरोधार्य (आपके पाद) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह कह उन दोनों को लिए सिद्धि धारे–
वह सुमुनि वहाँ से शीघ्रता से सिधारे ।
जिस विधि शिवजी से चैत्र–वैशाख–सङ्गी–
अभिनय तनु धारे कामदेव [1]प्रसङ्गी ।।६५।।

★ ★ ★

छिन भर धर सुत–मोह नृपवर कर मलते रहे ।
रखते पिछली टोह, मुनिवर तो चलते बने ।।६६।।

रघुवर–लक्ष्मण–युगल को कब देखूँगा ईश ! ।
यों नृप करते थे कि झट आये वहीं मुनीश ।।६७।।

निरख नृपति–चेष्टा शीघ्र बोले मुनीश,
मुदवसर वृथा ही खिन्न होते क्षितीश ! ।
सुघटित कर विश्वामित्र–[2]शरण–प्रयत्न–
समधिक चमकेंगे आपके पुत्र–रत्न ।।६८।।

जिस विधि ममता का त्याग वैराग्य ही से,
उस विधि मुनि–[3]सिद्धादेश सौभाग्य ही से–
नृपवर ! मिलता है, जो उसे शीश धारे,
वह न सफल हो क्या, तत्कृपा के सहारे ।।६९।।

सरलविधि तुम्हारा सिद्ध कर्तव्य होगा,
भुवन–भय भगेगा भूपते ! भव्य होगा ।
[4]युग्मालत युगली को शीघ्र ही देख लोगे,
तब मुनि–वचनों को सत्य–संमान दोगे ।।७०।।

वशिष्ठ का वाक्य–समर्थनार्थी–
मध्याह्न – तोप – [5]स्वन सूचनार्थी–
उठा, बढ़ाता जन – सावधानी,
नरेश भी साथ उठे [6]विधानी ।।७१।।

––––

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता पञ्चम प्रतान समाप्त ।

१ किसी मौके पर झपट में आया हुआ । २ विश्वामित्र के संपर्क की कसौटी पर चढ़कर। ३ सिद्ध महर्षियों की आज्ञा । ४ जोड़ी को वैसी ही जुड़ी हुई । नववधू–युगल–समेत यह अर्थ भी झलकता है । ५ तोप का शब्द । ६ कर्तव्य विधि करने वाले ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

छठा प्रतान

प्रवेशिका

मुनि विश्वामित्र अयोध्या से दशरथनन्दन राम-लक्ष्मण को अपने साथ आश्रम की ओर लिए जा रहे हैं। मार्ग में भूख, प्यास, थकान आदि को दूर करने वाली विद्याएँ—बला और अतिबला—मुनि कुमारों को प्रदान करते हैं। इस प्रतान में कवि ने प्रकृति-सौंदर्य का—वन, उपवन, गिरि-कानन, सरिता-सरोवर, आदि की सुषमा का अच्छा चित्रण किया है। मार्ग में आगे चलने पर एक बहुत बड़ा निर्जन, श्रीहीन वन दिखाई देता है। उस वन का परिचय देते हुए मुनि ताड़का राक्षसी के विषय में विस्तार से बताते हुए उसके उत्पातों का और ऋषि अगस्त्य के उस शाप का उल्लेख करते हैं जिसके कारण पूरा वन निर्जन हो गया है। मुनि के आदेश से श्रीराम विकराल ताड़का का वध करके वन को पुन: ऋषि-मुनियों के वास योग्य बना देते हैं। आश्रम में पहुँचकर श्रीराम अनुज लक्ष्मण को सावधान करते हुए मुनि से निर्भीक होकर यज्ञ करने के लिए आग्रह करते हैं। यज्ञ में बाधा डालने वाले सुबाहु, मारीच आदि राक्षसों का वे संहार करके मुनि का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

विशेष : शब्द-गाथा - क्षत्रिय शब्द में निहितार्थ को अभिव्यंजित करते हुए कवि ने शब्द की गाथा को प्रस्तुत कर दिया है :-

'सदा क्षत-त्राण सयत्न जो करे वही यहाँ-क्षत्रिय नाम को धरे।'

व्यावहारिक काव्य-शास्त्र : 'अर्घ-पाद्य-विधि से कर नीका, स्वागतादि-उपचार सभी का।' – स्वागता, शब्द से छन्द की ओर संकेत कर दिया गया है। साथ ही छन्द के नाम का संकेत होने से यहाँ मुद्रालङ्कार प्रयुक्त है। इस प्रकार छन्द और अलङ्कार का कवि ने सहज व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध करा दिया है।

ध्वनि-सौंदर्य-'सेना हमारी भरनी हमारी-मारी इसी ने जननी हमारी, मारी सभी वृत्ति-कथा हमारी, मारीच ने यों तब चीख मारी।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छठा प्रतान

सविता त्रिभुवन-[1]प्रसविता जिनके हों नित साथ ।
उनके क्योंकर हो नहीं विघ्न-तिमिर-[2]उन्माथ ॥६॥

हे पाठको ! झट आइए, वे राम बढ़ते जा रहे,
हम-तुम अभी साकेत ही में मोह-महिमा गा रहे ।
डरिए न यों लखकर कि अन्तर राम से पड़ जायगा,
यह पाद-पाँसु-प्रसार क्या उनसे हमें न मिलायगा? ॥१॥

आगे-आगे मुनिवर चले भाग्य-सौन्दर्य जैसे,
पीछे-पीछे नृपति-सुत वे स्वास्थ्य-ऐश्वर्य जैसे ।
वा योगी के-शम-दम रहें-साथ चित्तानुरङ्गी,
वा ज्यों मोक्षार्थिक सुजन के ज्ञान-वैराग्य सङ्गी ॥२॥

आगे प्रसन्न मुनि-पालक जा रहे थे,
पीछे विनीत नृप-बालक जा रहे थे ।
आगे बृहस्पति, अनन्तर ही उन्हीं के,
जैसे चलें उभय नन्दन अश्विनी के ॥३॥

क्या रूपवान् ऋग्, यजुः फिर साम थे वे,
क्या धर्म, अर्थ, तदनन्तर काम थे वे ।
वा शुद्ध ज्ञान, समुपासन, कर्म थे वे,
तीनों यथाक्रम जँचे मम चित्त में वे ॥४॥

तृष्णा-क्षुधादि-शमनी पथ - खेद - भेदी,
विद्या बला अति-बला मुनि ने उन्हें दी ।
जो थे बली अति-बली रिपु ही भगाने,
[3]तृष्णादि के विजय से अब क्या बखानें? ॥५॥

---

१ जन्मदाता । २ नाश । ३ प्यास और इच्छा आदि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माता-पिता अति भले दुःख पायँ आप,
संतान का सह सकें कुछ भी न ताप ।
जो मेघ-आवरण भी रवि का सुहाया,
श्रीराम-लक्ष्मण तपें, यह तो न भाया ।।६।।
जो आत्म-[१]रूप दिखालायें न, किन्तु कार्य,
बोते वही [२]प्रथमतः शुभ बीज आर्य ।
'होगा - [३]सुपुत्र इनके बल अक्षतायु'
यों जान सेवक बना इनका सु-वायु ।।७।।

★ ★ ★

सुखद मार्ग हुए उनके लिये, सुविधि ने शुभ साधन जो किये ।
तब मिली झट नाव उन्हें वहीं, जब नदी वन दीर्घ वही कहीं ।।८।।

सरसता जल की दृग को मिली, हृदय-पङ्कज की कलियाँ खिली ।
हरित खेत मिले पग को नये दृग हरे गहरे तब हो गये ।।९।।

इधर से जल में कमलावली, उधर से स्थल में कुसुमावली ।
हर रही उनके मन को अहा !, पर सभी रस भी वह ले रहा ।।१०।।

वकुल, चंपक, दाडिम, ताल भी, प्रवर साल, रसाल, तमाल भी ।
हर रहे उनके वट, वेत्र भी, पनस, मानस-मात्र न, नेत्र भी ।।११।।

तब कभी सुचि-नीर-प्रवाह से फिर कहीं गहरी तरु-छाँह से ।
वह कहीं कल-कोकिल-गान से हरखते रखते रुचि [५]यान से ।।१२।।

वह कहीं गिरि के जल-पात से, कुछ परस्पर की प्रिय बात से ।
प्रिय-कथा-श्रवणादिक से कभी, [६]बहलते हरते श्रम को सभी ।।१३।।

विपिन-भूमि मनोहर थी महा तरुलता-तृण-संहति ने अहा ! ।
शिशिर मन्द सुगन्धि समीर से-लहरिता हरिता नद-नींर से ।।१४।।

शश-मृगावलि के नव खेल से शुक-मयूर-पिकावलि-मेल से ।
पसरती चहुँ ओर नहीं थकी सुछवि चित्र-विचित्र वनान्त की ।।१५।।

---

१ अपना आकार और सौंदर्य । २ पहले ही से । ३ यहाँ हनुमान के लिए कहा गया है। ४ मन, इसे नायक और कमलावली-कुसुमावली को नायिका आरोपित करने से और भी सौन्दर्य बढ़ जाता है । ५ गमन । ६ यमक, श्लेष और चित्र में र-ल-व-व तथा ड-ल एक से माने जाते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विविध-धान्य-प्रभावक खेत थे-हरित, जो जल कूप-समेत थे ।
सरस थीं उनमें सब क्यारियाँ, हृदय-कर्षक कर्षक-नारियाँ ।।१६।।

तब किसी वन में कर गर्जना-गमन की करते [1]हरि वर्जना ।
यह नृसिंह-किशोर अशङ्क थे, पर वही [2]रव-हीन सशंक थे ।।१७।।

★ ★ ★

कहते-सुनतें वार्ता, देखते-भालते छवी ।
चलते-चलते आगे आई एक महाटवी ।।१८।।

वहाँ यद्यपि कोई भी न स्थान तृण-हीन था ।
परन्तु चरनेवाले पशु का नाम भी न था ।।१९।।

घन-छाया-फली वृक्ष थे यद्यपि जहाँ-तहाँ ।
परन्तु पशु-पक्षी का, नर का चिह्न था कहाँ? ।।२०।।

तथा तुङ्ग-तरङ्गों से तीर-ताड़ित ताल थे ।
किसी के काम के किन्तु नहीं थे, विकराल थे ।।२१।।

यह देख तभी पूछा राम ने मुनि से, अहो ! ।
संपत्तिमान वन है किन्तु भोक्ता न क्यों, कहो।।२२।।

श्रीराम के वचन को सुन कौशिक ने कहा ।
सुनो कुमार ! इसका जो मैं उत्तर दे रहा ।।२३।।

सुकेतु यक्ष की कन्या ताड़का सुन्द-सुन्दरी ।
मारीच-माता पति के मरे स्वच्छन्दता-भरी ।।२४।।

उतारू पुत्र के साथ नर-भोजन में हुई ।
अगस्त्य के भक्षणार्थ उद्यता वन में हुई ।।२५।।

पुत्र के साथ उसको दिया शाप अगस्त्य ने ।
तुम्हारी यक्षता नष्ट होके राक्षसता बने ।।२६।।

अगस्त्य मुनि के वास इस कानन को तभी ।
ताड़का ने शून्य किया, कोई न दिखता कभी ।।२७।।

अगस्त्य-वास-भूमी थी श्रीअगस्त्य मुनीश से ।
जैसे कि पूर्णिमा-रात्री संपूर्ण रजनीश से ।।२८।।

---

१ सिंह । २ सिंह ही शब्द-रहित (चुपचाप इनके डर से) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताड़कावास-भूमी है ताड़का से वही अभी ।
ज्यों अन्धकार-स्थिति से अमावस्या-निशा सभी ।।२९।।

कई [1]द्विजों को इसने भगाया दुष्टता मचा ।
राम ! पाद-[2]परागी हूँ मैं [3]कौशिक, तभी बचा ।।३०।।

आशा है, तुम बालार्क ताड़का-तम को हटा ।
[4]इसे उषा बना दोगे कर दोगे [5]दिन-च्छटा ।।३१।।

★ ★ ★

कृपानिधे ! शाप-निवारणार्थ परोपकारार्थ सुखार्पणार्थ ।
मारो इसे, दुर्गति से उबारो, तारो, न किंचित् मन में विचारो ।।३२।।

मारी हुई यद्यपि वत्स ! नारी आपत्ति सारी दिखलाय भारी ।
तथापि जो हो पर-प्राण-हारी मारी हुई हो वह सौख्यकारी ।।३३।।

मर्यादा निज जाति की, स्वकुल की, प्राणेशिता-गोत्र की,
श्वश्रू की, गुरु की, तथा श्वशुर की, माता-पिता-गोत्र की ।
जो पाले मन, कर्म औ वचन से नारी वही उत्तमा,
मध्या लोक विचार, दण्ड [6]अधमा, पाले न पूर्णाधमा ।।३४।।

प्राणेश ही के भय से सताप निभा सकी स्त्री [7]स्थिति को, न आप ।
तभी अभी मारण में समर्थ निरङ्कुशा हो करती अनर्थ ।।३५।।

स्वाभाविकी है इसको न लज्जा, न देखती है यह लोक-लज्जा ।
खाने हमें उद्यत हो रही है, है दैत्य कोई, यह स्त्री नहीं है ।।३६।।

स्त्री दीखती है, अबला नहीं है, वीरेन्द्र से भी प्रबला कहीं है ।
सहस्त्र-हस्ती-बल एक स्त्री में, तथापि स्त्री है, यह तर्क जी में? ।।३७।।

कर्तव्य है क्षत्रिय-पुत्र का यही, मारे उसे, जो क्षति-हेतु हो सही ।
सदा [8]क्षत-त्राण सयत्न जो करे वही यहाँ-क्षत्रिय नाम को धरे ।।३८।।

---

१ विप्रों को और पक्षियों को । २ चरणरज रखनेवाला और पादप-रागी अर्थात् (रात को भी) वृक्ष पर टिका रहने वाला । ३ विश्वामित्र और उल्लू । ४ ताड़कावास-भूमि को । ५ ऐसा कहने से उसके अनुयायियों का हटा देना भी सूचित किया गया है। ६ यहाँ पर भी पिछला 'विचार कर' पद खींच लेना चाहिए । ७ मर्यादा । ८ विपद्-ग्रस्त की रक्षा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मारी गई हैं अति-पूर्व काल में, ऐसी स्त्रियाँ जो कि रही कु-चाल में ।
क्या शुक्र-माता कमलेश से नहीं?, क्या मन्थरा स्वर्गपुरेश से नहीं ।।३९।।

[1]वातूल-सी मण्डल धारती हुई, वा [2]तूल-सी, धूल पसारती हुई ।
आलोक [3]तीनों लख दूर से यही, आलोकती संमुख आ रही सही ।।४०।।

निशाचारी है असमान ताड़का, न ताड़ का रूप नहीं पहाड़ का ।
शरीर साक्षात् अभिमान का लखो, न काल खोओ, शर हाथ में रखो ।।४१।।
उन्नाद [4]रक्षोमय रासभी का, डरा रहा चित्त निरा सभी का ।
क्या हो इसी से न धरा-सभी का ?, करो इसे मार निरास [5]भी का ।।४२।।

★ ★ ★

इतने में तो मेघ घटा के सदृश गरजती
प्राणिमात्र को तीव्र तरजती शान्ति बरजती ।
श्वास-पवन से तरु-शाखाएँ अधिक कँपाती,
गमन-वेग से धूलि-धूम-धोरणि फैलाती ।
लख इन्हें दूर से ताड़का खाने को मुख फाड़ती;
छिन में संमुख ही आ गई पर-उत्साह उखाड़ती ।।४३।।

अश्व-पुच्छ-शत-समान जिसके लम्ब बाल थे;
काल धवल पिङ्गल विचित्र मानो कि व्याल थे ।
दाढ़ें क्या थी, [6]जम-दाढ़ें थीं, 'वदन [7]कुहर में,
काल-दण्ड खर्जूर-दण्ड था दक्षिण कर में ।
लोचन-युगली मानो महा दीप-ज्वाला जग रही ।
ऊपर भ्रू-युगली भीष्मतर धूम-पटल-सी लग रही ।।४४।।

उरःस्थली थी मरुस्थली, स्तन बालू-टीले,
माला-कलित कपाल ऊँट थे पीले-पीले ।
गंभीर भीषण नाभि-रूप अति-शुष्क कूप था ।
बाहु-युगल हलमुसल-युगल विकराल-रूप था ।।४५।।

---

१ चक्राकार वायुमण्डल-सी । २ रुई-सी । ३ तीनों आलोक (तेजो-मण्डल अर्थात् हम तीनों का) । ४ (राक्षसीरूप गधी का उन्नाद=रेंकना) । ५ डर का (निराश=दूर हटाना) । ६ कटारें। ७ मुख-बिल में ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी ऊरु-जाँघ-पद-युगलियाँ, गति भी [१]करभक की यथा।
ताड़का परम विकराल थी सर्व देह से सर्वथा ।।४५।।

★ ★ ★

गाधेय के वचन को सुनते निराले, श्रीराम ने सब गुणागुण छान डाले ।
छोड़ा तुरन्त शर, स्त्रीत्व-विचार साथ, काटा सुबाहु उसका भवभार-माथ ।।४६।।

वेद-ध्वनि-श्रवण-लोलुप कान दोषी, हैं नाक पा हवन-गन्ध महान दोषी ।
नाशार्थ जो कि इसका इनने फँसाया, सौमित्रिने यह विचार उन्हें [२]उड़ाया ।।४७।।

नाक-कान में आपसी यदपि वर्ण-[३]विपरीति ।
पर सहवासी सह कटे, खूब निवाही प्रीति ।।४८।।

कटे निशाटी भुज-कान-नाक-के, न नाक के द्वार-प्रवेश पा सके ।
अतः सुरों ने झट सामना किया, मना किया तो पद राम ने दिया ।।४९।।

[४]रामाऽनुकम्पा-उपमान पा सके,-न पास के भक्त, न पाद-वास के ।
दवा सके भी न मन-सुरङ्ग में, सु-रङ्ग में रक्त हुए प्रसङ्ग में ।।५०।।

मुनीश ने सर्व-प्रभाव-खान की बखान की कीर्ति कृपा-निधान की ।
पुनः भरेगा वन विप्र-वास से, प्रवास से शून्य रहा व नाश से ।।५१।।

श्रीराम ने तो पद-सेवि-नीति से, विनीति से, पाद छुआ सु-प्रीति से ।
शस्त्रास्त्र-विद्या मुनि ने स-मान दी, समान दीखी गुण-गीति की नदी ।।५२।।

शान्ति-द्वार-कपाट का उघड़ना, साकेत-सम्राट का-
सन्देश [५]क्षणदाटकाधिपति को, जो था रिपूच्चाट का ।
कीर्ति-स्त्री-सुललाट का झलकना, श्रीराम का-ठाट का,
जो ऐसा यह ताटका-वध हुआ, विश्राम था बाट का ।।५३।।

★ ★ ★

श्रीकौशिक के साथ अब कौशिक-वन की ओर ।
चले कुशल-युत गति-कुशल कोशल-राज-किशोर ।।५४।।

ज्यों श्रुति-पथ को अनुसरे स्मृति-पथ, उसे पुराण ।
त्यों मुनि को रघुवर तथा उन्हें अनुज स-प्रमाण ।।५५।।

---

१ ऊँट के बच्चे की-सी । २ काट डाला । ३ अक्षरों का और ब्राह्मणादि वर्णों का विपरीतपन।
४ श्रीराम-कृपा की तुलना । ५ निशाचरों के स्वामी (रावण) को ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहाँ प्रतीक्षोन्मुख शिष्य-वर्ग थे, उन्हें डराने [१]असुरोपसर्ग थे ।
क्रिया कथंचित् कर नियम वे तभी निहारते थे गुरु-पन्थ को सभी ।।५६।।

थी पर्णशालावलि शान्ति-[२]सत्र में, ज्यों वर्णमाला-लिपि एक पत्र में ।
जो पार्श्व में, [३]ऊपर शिष्य, वर्ग थे, मात्रा, अनुस्वार तथा विसर्ग थे ।।५७।।

देखते उदयमान [४]सूर-से पूर्वत, स्वगुरु को सु-दूर से ।
शिष्य-वृन्द अरविन्दवत् खिला, प्रीति-पूर्वक प्रमोद से मिला ।।५८।।

अर्घ-पाद्य-विधि से कर नीका, [५]स्वागतादि-उपचार सभी का ।
ले गये गुरुवरादि-त्रयी को वे यथा [६]हुतवह-त्रितयी को ।।५९।।

★ ★ ★

रामाति पा सुख-विहार [७]निशाटनों के,
ज्यों भास्करोदय निहार [८]निशाटनों के ।
जागा सतर्क भय सत्वर मानसों में,
[९]सच्चक्र के विपूल [१०]सत्त्व रमा नसों में ।।६०।।

अवसर पाकर राम ने मुनि से कहा, द्विजेश ।
प्रस्तुत करिये यज्ञ अब, काट रहा मैं क्लेश ।।६१।।

यह कह बोले अनुज से, मनुज-देह श्री-नाथ ।
हमें यज्ञ-रक्षा अभी, लेनी है निज हाथ ।।६२।।

अतः स्वकर्तव्य विचार लेना, यज्ञार्थ-रक्षा पर ध्यान देना ।
जो सामने आय निशाट-सेना देना उसे लोह-[११]चना-चबेना ।।६३।।

★ ★ ★

आने लगे राक्षस आस-पास, गाने लगे गीत कई सहास ।
जाने लगे स्वाश्रय से विहङ्ग, पाने लगे पान्थ भय-प्रसङ्ग ।।६४।।

---

१ राक्षसों के उपद्रव । २ तपोवन । ३ उन पर्ण-कुटियों पर । क्योंकि वे लोग गुरु की राह देख रहे थे । ४ सूर्य-समान । ५ 'स्वागता'-छन्द का नाम झलक जाने से मुद्रालंकार है। ६ तीनों अग्नियों को (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय ये तीन अग्नि हैं।)। ७ सुख से खेल कूद मचाने वाले राक्षसों के । ८ उल्लुओं के। ९ सज्जन समूह और विद्यमान चकवे के (सूर्योदय में) 'उसके कन्या हुई' इसके समान यहाँ इस लुप्त पद-संबंध को मानकर पुलिंग-वाची संबंध चिह्न 'के' का प्रयोग है। १० उत्साह वा बल। ११ अर्थात् लोह-शस्त्र से समाप्त करना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम औ लक्ष्मण धारने लगे शस्त्रास्त्र औ चाप सँवारने लगे ।
किंचित् नहीं बात विचारने लगे, निशाचरों को बस मारने लगे ।। ६५।।

आकाश में जो खल दीखने लगे, वे राम-बाणाहत चीखने लगे ।
तभी वहाँ से पड़ने लगे तथा, पलाश-शाखी झड़ने लगे यथा ।।६६।।

भू-भाग के ऊपर वे मरे हुए, निशाट थे शोणित से भरे हुए ।
ज्यों लोहिताशोक कुठार-घात से-पड़े हुए वा उखड़े [1]प्रवात से ।।६७।।

'सेना हमारी [2]भरनी हमारी-मारी इसी ने जननी हमारी ।
मारी सभी वृत्ति-कथा हमारी', मारीच ने यों तब चीख मारी ।।६८।।

'मारी गई क्या मति है तुम्हारी, बारी हमारी फिर है तुम्हारी' ।
सुबाहु का रीति-प्रबोध भारी यों मान मारीच, हुआ प्रहारी ।।६९।।

श्रीराम से पूर्व भिड़ा सुबाहु ज्यों सूर्य से काल निकाल राहु ।
मरा तभी पावक-अस्त्र से त्यों, कीटाणु कोई दृढ़ वस्त्र से ज्यों ।।७०।।

श्रीराम ने मानव-अस्त्र द्वारा मारीच को विक्रम-वेग-धारा-
ऐसी दिखाई, जिससे अभागा निःसंज्ञ पा सागर-पार जागा ।।७१।।

विनाश से यों खल-राक्षसों के औ पालने से उन तापसों के ।
श्रीराम ने की मुनि-यज्ञ-रक्षा, सुधार ले शिक्षक ज्यों स्व-कक्षा ।।७२।।

★ ★ ★

श्रीराम ने मुनि-पदाम्बुज-वन्दना की,
यज्ञान्त में सफलता-अभिनन्दना की ।
आशीष देकर प्रियंकर कण्ठ खोले-
आनन्द-मग्न उनसे ऋषिराज बोले ।।७३।।

श्रीराम ! रूपनिधि ! केवल ही तुम्हारे-
नामामृत-स्मरण से दुख जायँ सारे ।
श्रीमन् ! जहाँ निज-पदार्पण की कृपा की,
कोई नहीं कह सके महिमा वहाँ की ।।७४।।

हो धन्य-धन्य तुम, धन्य पिता तुम्हारे,
मा धन्य, धन्य अति हैं जपिता तुम्हारे ।

---

१ प्रचण्ड पवन से। २ पोषण-सामग्री।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाता सुधन्य, अति-धन्य सखा तुम्हारे,
जो त्याग दिव्य सुख, कष्ट हरे हमारे ।।७५।।
किशोरता, राजकुमारता कहाँ,
केली वहाँ वा सकुमारता कहाँ? ।
प्रवास में भी वन-वास औ वहाँ,
[१]षड्रात्र की जागरण-व्यथा कहाँ ।।७६।।
परन्तु कार्य-क्षमता, कुलीनता, विनीतता औ गुरु की अधीनता-
सुकर्म धीमन्! तुम से करा रही, जो ऊर्वरा हो फलती वही मही ।।७७।।
इस ही वन में तव [२]तप्ति-क्रिया कर वामन ने अवतार लिया ।
उन ही तुम से खल-नाश क्रिया करवा [३]मन ने अव तार लिया ।।७८।।
तुम्हारे द्वारा ही तब प्रथम सिद्धाश्रम हुआ,
तुम्हारे ही द्वारा अब परम सिद्धाश्रम हुआ ।
तभी कल्याणों के रघुवर! तुम्हीं हेतु रहते,
इसी से स्वामी को भव-जलधि के सेतु कहते ।।७९।।
सुन यों रघुनन्दन वन्दन के वश चन्दन ज्यों पग में लिपटे,
जिस भाँति सुलोह-[४]कलम्बक लोहक-चुम्बक चुम्बक से चिपटे।
पग के नख-कान्ति-सरोवर में वह नील-सरोरुह क्या प्रकटे,
अथवा [५]अवगाहन-हेतु वहाँ यमुना-जल जा पहुँचा निकटे ।।८०।।
वचन गिड़गिड़ाते कण्ठ खोले कथंचित्,
रघुवर सकुचाते मन्द बोले कथंचित् ।
यदि न गुरु-कृपा से अस्त्र-विद्याप्ति होती,
कथमपि न मुझे यों मान की प्राप्ति होती ।।८१।।
यों कहते चिरकाल तक राम रहे पद-लग्न ।
मुनिवर रघुवर-विनय लख, रहे ब्रह्म-सुख-मग्न ।।८२।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता षष्ठ प्रतान समाप्त ।

---

१ छः रात। अयोध्या से जाते समय मार्ग में इन लोगों को छः रात जगना पड़ा था। २ तपश्चर्या। ३ तुम्हारे चित्त ने । ४ लोहे की लम्बी शलाका जो बाण के समान हो। ५ यज्ञान्त-स्नान के लिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

सातवाँ प्रतान

प्रवेशिका

दूसरे दिन मिथिलानरेश के धनुषयज्ञ का निमंत्रण पाकर मुनि विश्वामित्र राजकुमारों के साथ आश्रम से जनकपुरी के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में मुनि गङ्गाजी की शोभा और महिमा का जो बखान करते हैं उसका कवि ने अत्यंत आलङ्कारिक, सुंदर वर्णन किया है। श्रीराम की प्रार्थना पर उस दिन वे तीनों गङ्गाजी के तट पर ही विश्राम करते हैं। स्नान तथा विधि-विधान से पूजा-अर्चना के पश्चात् रात्रि का विश्राम होता है। ब्राह्ममुहूर्त में प्रकृति की सुषमा निहारते हुए तीनों मार्ग में आगे बढ़ते हैं। थोड़ी दूरी पर एक निर्जन तपोवन दृष्टिगत होता है, जहाँ पर एक शिला की ओर संकेत करते हुए मुनि श्रीराम को गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या, कपटवेषी इन्द्र द्वारा उसके साथ पापाचरण तथा शापवश अहल्या के शिला होने का पूर्ण वृत्तांत बताते हैं। मुनि विश्वामित्र श्रीराम के पाद-स्पर्श से अहल्या का उद्धार करवाते हैं। उसी समय योग-बल से ऋषि गौतम भी वहीं आ जाते हैं। ऋषि गौतम और अहल्या प्रभु का स्तवन करते हैं। ऋषि का आशीर्वाद प्राप्त कर राजकुमार मुनि के साथ चलते हुए जनकपुरी पहुँच जाते हैं।

विशेष-अद्भुत कल्पना : गङ्गाजी का वर्णन करते हुए कवि की अवधारणा है कि इस पृथ्वी पर हिमालय मोमबत्ती है, सूर्यमण्डल उसकी लौ है। गङ्गा नदी का जल पसीजा हुआ मोम है और दक्षिणी ध्रुव में वही जमा हुआ मोम है।

नीति-ज्ञान : 'वेला, वैभव, वीर्य, वृत्त, वनिता, विद्या तथा वार ये' सातों वकारादि सदुपयोग से कल्याण तथा दुरुपयोग से पतन के कारण होते हैं।

संगति-प्रभाव (सुशीला-सुशिला) : अहल्या के प्रसंग में गुरु (ऋषि गौतम) के साथ वह सुशीला थी किन्तु कपटवेशी इन्द्र (लघु) के संपर्क में वह सुशिला हो गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातवाँ प्रतान

विद्यामय विद्योत दें राम-चरण-नखरांशु ।
जिसको दे सकता कभी, न [१]अखरांशु, न [२]खरांशु ॥७॥

दूसरे दिवस पा [३]विदेह का, चाप-यज्ञ-अनुरोध स्नेह का ।
राम-लक्ष्मण-कुमार साथ ले, गाधि-नन्दन स्वधाम से चले ॥१॥

मार्ग में जब [४]सुरापगा मिली, चित्त की तब कली-कली खिली ।
राम सुच्छवि निहारने लगे, संयमी तब उचारने लगे ॥२॥

आपके चरण-पद्म से वही, जो रमेश ! मधु-धार, है यही ।
भक्त-भृङ्ग इसके प्रपान से, मत्त हैं, मृग यथा सु-गान से ॥३॥

वत्स ! शंकर-जटाटवी सभी देवसिन्धु-जलसिक्त हैं, तभी ।
तीसरे नयन के हुताश की ज्वाल-माल न उसे जला सकी ॥४॥

शम्भु-मानसिक-शक्ति को भला! क्यों विषाग्नि न अहो! सका जला ।
विष्णु का पद-प्रसाद जो अहा! [५]जाह्नवी-जल उसे बुझा रहा ॥५॥

गौर-अङ्ग-[६]धर-जात जो भली, औ [७]भगीरथ-प्रयत्न से चली ।
क्यों न [८]सीस पर ईश के चढ़े? [९]निर्मलीकरण-पाठ जो पढ़े ॥६॥

ईश-मस्तक-निवास-कामिनी, हो गई यहाँ त्रिमार्ग-गामिनी ।
क्योंकि सीस पर जो चढ़ी कहीं, एक मार्ग रुचता उसे नहीं ॥७॥

क्या प्रसाद पद का सुयुक्त हो, भक्त-लोक जिससे कि मुक्त हो ।
विष्णु ने यह विचार क्या किया, सिन्धु को चरण से बहा दिया ॥८॥

जाह्नवी पतित-पाविनी तभी, आधि-व्याधि-मल-धाविनी तभी ।
सर्व-पातक-विदारिणी तभी, है भवाम्बुनिधि-तारिणी तभी ॥९॥

---

१ चाँद । २ सूर्य । ३ जनक । ४ गङ्गा । ५ गङ्गा । ६ श्वेताकार पर्वत (हिमालय से) उत्पन्न हुई और गौराङ्गधर किसी यूरोपीय से उत्पन्न हुई । ७ भगीरथ नामक राजा के प्रयत्न से चलकर आई हुई और रथ प्रयत्न से चली भगी अर्थात् मोटर-साइकल आदि बल से चलने वाली न कि पैरों के बल। ८ ध्वन्यर्थ-सीस-पर चढ़ना=इतराना। ९ निष्पाप करने और साबुन की सफाई रखने का ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृलोक रूपी शिशु को अकेला देखा [१]पयोवञ्चित और मैला ।
भागीरथी! आ [२]तब अम्ब! भागी-[३]भागी मिली, सो यह है सुभागी ।।१०।।

पानी-पानी करते, मरने पा नीच ने यही पानी ।
[४]पानीय सुरपुरी में सुधा-प्रपा नीरसा जानी ।।११।।

हे गङ्गे ! म्रियमाण वा मृतक भी शय्या-स्थली में डला-
तेरी रेणु महा-पवित्र, बनते स्वर्गाधिकारी भला ! ।
जो प्रत्यक्ष इसी पवित्र रज में पाते तनूत्सर्ग को,
वे सीधे अपवर्ग को पहुँचते, क्या नाम के स्वर्ग को? ।।१२।।

हे गङ्गे! तव स्नान से न, न पुनः पानीय के पान से,
होते केवल ध्यान से विमल, जो हो भावना ज्ञान से ।
स्वामी के असमान सेवक तभी साक्षात् सुधा-पान से-
[५]श्रीपादोदक-पान से सफल है गङ्गामय-ध्यान से ।।१३।।

यों गुरूक्ति सुन राम ने कहा, देख-देख मन मत्त हो रहा ।
आज का दिन यहीं बिताइए, मार्ग-लब्ध फल क्यों न पाइए? ।।१४।।

★ ★ ★

मुदित-मुदित मुनि ने किया मधुर-वचन स्वीकार ।
स्नान राम करने लगे समुचित-विधि-अनुसार ।।१५।।

लहरी [६]करके क्रम-वर्धन से निज-आदर-सा दरसा-दरसा,
सुरसिन्धु-सरिन्मणि ने प्रभु का पद-पद्म परात् [७]परसा परसा ।
शुचि स्नान किया, जल-पान किया, गुण-गान सुधा बरसा-बरसा,
निज-बन्धु-भरा जल-पात्र लिया कर में फिर गागर-सागर-सा ।।१६।।

कुछ धीर-समीरण साँझ पड़े, वर-नीरज-नीर सुतीर खड़े,
प्रकटे स-शरीर [८]शरीरज ज्यों शुभ-चाप-शरी रघुवीर बड़े ।
सित-रङ्ग तरङ्ग-विहार निहार निहार महारस में उमड़े,
प्रिय वाक्य लगे कहने, गहने श्रुति के निज सोदर से उघड़े ।।१७।।

---

१ पानी और दूध से ऊना । २ ऐसी स्थिति में । ३ भगी-भगी आकर । मर्त्य लोक रूप बालक से मिली । ४ पीने योग्य (सुधा-प्रपा=अमृत की प्याऊ)। ५ चरणामृत । ६ लहर-रूप हाथ । ७ सबसे उत्कृष्ट परमात्मा-सा । ८ कामदेव ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस भू-घर में हिम-भूधर को विधि ने दृढ़ मोम-प्रदीप बनाया,
जिसके शिर पै रवि-मण्डल को छवि-मण्डल-मण्डित ज्वाल जताया ।
जन-हेतु पसीज-पसीज वही यह-देव-नदी-जल है, मम भाया,
यह भव्य छटा दिखला-दिखला, ध्रुव से मिल पूर्व [1]दशा पर आया ॥१८॥

गहरी-गहरी यह रीति चली लहरी जय की फहरी फहराती,
[2]अथ जो धरती धरती सुर-सिन्धु-पटी, उसकी लहरी लहराती ।
अथवा गिरिनायक के मन की लहरी निकली निज रूप जताती।
अथवा वरुण-क्षिति-पालक की जय-हेतु हयावलि वेग बताती ॥१९॥

अथवा गिरिराज-दहेज तुरंगम-राजि सुता-सह सिन्धु सिधारी,
अथवा लहरी-मिष से शिव ने शिर की क्रम से सुम-माल उतारी ।
अथवा यह भूप-भगीरथ की गुण-वर्णन-[3]वर्ण-छटा शुभकारी,
अथवा सुरलोक-विलोकन को विधि ने विधि से पद [4]वीथि सँवारी ॥२०॥

फूलों वाले तरुवर खड़े जो कि दोनों किनारे,
वे हैं दर्शी जन टकटकी बाँध एकाग्र सारे ।
आगे वाद्य-ध्वनि मच रही पूर का शब्द भारी,
गङ्गाजी की यह चल रही खूब कैसी सवारी ॥२१॥

ब्रह्माजी ने घनतर लगा वृक्ष दोनों किनारे,
पक्षी क्रीड़ा-कर चहचहाते जहाँ खूब प्यारे ।
गङ्गा-रूपी प्रकटित किया स्वर्ग का मार्ग सीधा,
यात्रार्थी को अब तक जहाँ कण्टकों ने न बींधा ॥२२॥

नीली-नीली गहन इसमें जो पड़ी व्योम छाया,
[5]सीमन्तों का चतुर बिधि ने लेप है सो लगाया ।
आसानी से अति सरपटें हैं लगाती सवारी,
संसारी क्यों न भव-नद के पार हों मार्ग-चारी ॥२३॥

---

१ जैसे मोमबत्ती पसीज-पसीज कर फिर गाढ़ी बन जाती है उसी तरह हिमालय का हिम पसीज-पसीज कर गंगा जल बनता हुआ सागर में मिलकर दक्षिणी ध्रुव तक पहुँच फिर जम जाता है, यह कवि कल्पना है । २ अथवा यह लहरी क्या है, धरती ने जो गङ्गा-रूप साड़ी पहन रखी है उसी का लहर है । ३ कीर्ति की प्रशस्ति । ४ पगडण्डी (सोपान) । ५ सीमेंट।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुन ये रघुवर के वचन प्रमुदित विश्वामित्र ।
कर जोड़े करने लगे वर-याचन सुपवित्र ।।२४।।

शंकर की शिर [१]आभरणी, हरि की चरणीय सुधा-झरणी हो,
ज्ञान महानल की अरणी बन के तुम ही जड़ता-हरणी हो ।
हो शरणीकृत दुर्जन से यदि तो वह पूर्ण सदाचरणी हो,
हे सुर-निर्झरिणी ! धरणी पर संसृति-निर्झरिणी-तरणी हो ।।२५।।

मच्छ तथा यह कच्छप क्या, तव केवल स्वच्छ-प्रवाह-सहारे,
मच्छर भी अति-तुच्छ अतुच्छ बने अति-अच्छ्तराशय सारे ।
क्या अति अद्भुत, जो कि असंख्य सदा नव दानव मानव तारे,
हे सुरसिन्धु! दया-रस सिन्धु! विलम्ब न हो, अब अम्ब! हमारे ।।२६।।

तृणोटजों से सित-पीत-रङ्गिणी-तरङ्गिणी के तट पै कुरङ्गिणी ।
शुभाश्रमों की विमला परम्परा, परम्परा से स्थित थी मनोहरा ।।२७।।

एकान्त का आँगन एक रेणु का, करेणु-काला गुरु-दण्ड वेणु का ।
सुहावना था [२]कृकवाकु-रङ्ग का कुरङ्ग-का चर्म सुचारु-ढङ्ग का ।।२८।।

न वेणु का दण्ड, नहीं पलास का, पला सका था व्रत भिक्षु-वास का ।
किन्तु व्रती का दृढ़ चित्त पास का, तपा सका नैव, [३]उसे पला सका ।।२९।।

विमुक्त होके श्रमणादि-वेश से [४]दिवेश से रक्त हुए विशेष से ।
कई वहाँ क्या धर हानि हारते?, निहारते किन्तु उसे दुलारते ।।३०।।

कई-कई ताप सहें कृशानु का कृशाऽनुकारी मुनि अन्य भानु का ।
तथापि संतप्त न भासमान हैं, [५]समान हैं, किन्तु विहीन-मान हैं ।।३२।।

[६]स्वः सिन्धु को माँ यदि जान पातकी, न पात की भीति रखे, न घात की ।
नहा-नहा भक्ति करे [७]सुपूत हो, सु-[८]पूत होता वह, क्यों न भूत हो ।।३३।।

अभक्ष्य-भक्षी अथवा [९]सुराप गा सुरापगा के गुण, भक्ति में रँगा ।
कलङ्क जाता बस [१०]-शील-गान से, लगान से ज्यों कि स्वतन्त्रता नसे ।।३४।।

---

१ शिर को भूषण कराने वाली। २ मुर्गे के रंग का। ३ यतियों के व्रत को। ४ सूर्य से। ५ सम-दृष्टि हैं । ६ स-मान मान सहित हैं। यों अर्थ करने से विरोधभास है। ६ गङ्गा। ७ सु-पुत्र (बनकर)। ८ सु-पवित्र। ९ मदिरा पीने वाला भक्ति में रंग लाया। १० सुचरित्र-कीर्तन से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुगन्ध सर्वत्र महान यज्ञ की नयज्ञ-कीर्ति-क्रम ज्यों नहीं थकी ।
तभी तटी देव-[१]निकेत-रङ्ग है, तरङ्ग है जो, तटिनी-उमंग है ॥३५॥

★ ★ ★

इस प्रकार के मोद से बीती वह शुभ रात ।
ब्राह्म-क्षण में कृत्य कर चले प्रभात-प्रभात ॥३६॥
मञ्जु उषा की छवि निरख मुनिवर चारों ओर ।
रघुवर से बोले वचन सहृदय-मानस-चोर ॥३७॥

★ ★ ★

अहा ! ब्रह्मानंदामृत-रस महायोगि-जन का,
कवीन्द्रों को प्यारा मिलन प्रतिभा-रूप-धन का ।
तथा आरोग्यों के जनक पवनान्दोलन भले,
इसी [२]मञ्जूषा में यह सब भरे रत्न निकले ॥३८॥

वनश्री के प्यारे उपकरण चूड़ाभरण के,
सजाती हैं मोती कुसुम-कलियाँ ओस-कण के ।
समीरों के साथी कमल-वन के सौरभ चले,
इसी मञ्जूषा में यह सब भरे रत्न निकले ॥३९॥

जिन्हें पाने स्वर्गी रसिक रह जाते तरसके,
वही स्वर्गङ्गा से कण झर रहे शान्ति-रस के ।
अभी तो कोई भी सुजन इनका पान कर ले,
इसी मञ्जूषा में यह सब भरे रत्न निकले ॥४०॥

बिलाती है ज्यों-ज्यों यह मलिन मायामय निशा,
शुची होती त्यों-त्यों हृदय-पटली पूरव दिशा ।
तभी देखो साक्षात् अरुण परमात्मा उदित हैं,
हमारे पुण्यों के कमल-वन सारे मुदित हैं ॥४१॥

छिपाती तारों को शशि विरह बीती अब निशा,
सजाती है टीका रवि-उदय से पूरव दिशा ।
सुखी दुःखी होतीं निज रमण के साथ सतियाँ,
रहें पल्टे खातीं समय-गतियाँ, दैव-गतियाँ ॥४२॥

---

१ देव निवास का अखाड़ा । २ मञ्जु उषमनोहर बड़े सवेरे का समय और मञ्जूषा-संदूक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लखो, जैसे-जैसे कुमुद कुम्हिलाते उधर हैं,
अहो ! तैसे-तैसे कमल खिल जाते इधर हैं ।
यही दोनों ही का जनक सर का एक जल है,
सगे भी भाई हों, पृथक मिलता कर्म-फल है ।।४३।।

वनों को, वाटी को, वर विटपियों के शिखर को,
गृहों को, ग्रामों को, गहन गिरियों के शिखर को ।
कहीं देखो, सूर्योदय सकल का स्वर्णाकर है,
तभी 'साक्षात् प्रातः समय' यह स्वर्णावसर है ।।४४।।

सभी के [१]सोने को हरण करता जो उदय से,
कराग्रों से छूता वह रवि रिझाता अभय से ।
दिखाता है सद्यः कनकमय संसार भर को,
महातेजस्वी से शरणागत पाते स्व-वर को ।।४५।।

★ ★ ★

बढ़ा प्रियालाप विनोदवाला, वनान्त कालाऽणुक में निकाला ।
देती [२]स्वझाला ध्वज से निराला, मिली विशाला नगरी सु-शाला ।।४६।।

की भूप ने ला निज-वास मान से, समान सेवा प्रिय भोज-पान से ।
वे प्रीत प्रासङ्गिक [३]क्षिप्र-भाव के-प्रभाव के हेतु चले, न चाव के ।।४७।।

★ ★ ★

कुछ दूर गये नद-पूर-अनन्तर, क्रूर-खजूर-समेत बड़ा-
तरु-मण्डल से परिमण्डित खण्डित एक तपोवन दीख पड़ा ।
जन-संगम क्या, न विहंगम-संगम और कहीं पशु भी न खड़ा,
उस शान्तरसाप्लुत कानन-बीच भयानक क्या रस आ उमड़ा? ।।४८।।

उस ओर तभी रघुनन्दन की हरिचन्दन-शीतल दृष्टि पड़ी,
मुनि ने निरखा कि सुयोग बना, मरुमण्डल में यह वृष्टि-झड़ी ।
अब दूर नहीं मुनि-गौतम के [४]सु-परिग्रह-तारण की सु-घड़ी,
यह जान चले उस ओर, अहो ! प्रभु के बल बात बने बिगड़ी ।।४९।।

---

१ नींद लेना और सुवर्ण। २ बुलाने के लिए हाथ का इशारा, (झलना 'से' 'झाला' बना है) । ३ अपने कार्य-प्रसंग की शीघ्रता के प्रभाव से । ४ सुशील स्त्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस ओर रखा रघुभूषण ने गत-दूषण पाद-सरोरुह ज्यों ही,
कर सङ्ग कुरङ्ग तथा स-उमंग चले बहुरङ्ग विहङ्गम त्यों ही ।
उनके दुख-दारक आगम से तब भूमि वहीं सुख-कारक सोही,
प्रिय-प्राण-समागम से लघुकालिक ज्यों मृत-देह सुखामृत-दोही ।।५०।।

मुनि-नायक ने रघुनायक को शुभ-दायक एक शिला बतलाई,
सु-पवित्र चरित्र बखान यथावत पूर्व-कथा उसकी जतलाई ।
'रघुवीर-शरीर-धरे हरि से तर जाय यही' यह याद दिलाई,
वह थी करुणामय के करुणामय मानस में करुणा-सरसाई ।।५१।।

रघुवीर ! इसी पद-नीरज की रज से मुनिराज-वरोरु तरेगी,
प्रियदर्शन! केवल स्पर्शन के बल दिव्य सुधा अति-भव्य झरेगी ।
उसके सब शापज ताप तथा परितापक पाप-कलाप हरेगी,
सुरलोक नृलोक तथा अहि-लोक विलोकन को पद-कीर्ति फिरेगी ।।५२।।

हो कामान्ध शचीश भी अगणित स्त्री-रत्न होते हुए,
ब्रह्म-स्त्री-अनुरक्त सत्वर हुए धीरत्व खोते हुए ।
तारायें तज चन्द्र क्यों गुरुवधू-तारानुरागी हुए,
है धिक्कार अनङ्ग को कि जिससे ये पाप-भागी हुए ।।५३।।

कैसा स्वर्ग-प्रदेश है कि जिसमें कोई नहीं क्लेश है,
भोगों का विनिवेश है कि इतना, कोई नहीं शेष है ।
कैसा अज्ञ सुरेश है कि, जिसने धारा व्रती-वेश है,
सारा दोष-विशेष है विभव का जो [१]इन्द्रियावेश है ।।५४।।

थोड़ा यौवन और वैभव करा देता महाऽनर्थ को,
स्थायी हों यदि और साथ रखते वे पूर्ण सामर्थ्य को ।
तो क्या-क्या न अनर्थ घोर जन से पूरा करावें अहो!
है धिक्कार न क्या महेन्द्र तक के साम्राज्य को भी, कहो ।।५५।।

वेला, वैभव, वीर्य, [२]वृत्त, वनिता, विद्या तथा [३]वार को,
ला सच्चे उपयोग में परखिए संसार के सार को ।

---

१ इन्द्रियों के जोश का कारण । २ चरित्र । ३ अवसर ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातों जीवन की महा-विजय के ये [१]वाद्य ही [२]वाद्य हैं,
जो मिथ्या-उपयोग हो, पतन के ही हेतु ये आद्य हैं ।।५६।।

चाहे अङ्ग-विहीन की युवति हो, चाहे महा-दीन की,
चाहे हो सुकुलीन की, अधम की, चाहे निजाधीन की ।
चाहे प्राण विहीन की, जगत में चाहे समीचीन की,
जो भोगी, वह छीन कीर्ति गति को देती [३]तिरश्चीन की ।।५७।।

ज्वाला-जाल निकालती [४]विकृति के, संताप में डालती,
सारे काल उकालती हृदय को, पूरा नहीं बालती ।
[५]लूका खूब उछालती मदमयी और शान्ति को टालती,
है कामाग्नि कराल तीव्र, क्रम ही से देह को गालती ।।५८।।

संसार में जो बस नारियाँ हैं, कामाग्नि की वे चिनगारियाँ हैं ।
जो इन्द्रियों का जय-वर्म धारे, वही बचे, ज्यों हनुमान प्यारे ।।५९।।

सुरपति-पद-धारी इन्द्र भी कुष्टधारी,
नहुषक फणधारी, क्यों न स्वर्गाधिकारी ।
प्रतिदिन क्षय-कारी चाँद की आय बारी,
सचमुच पर-नारी-सङ्ग है, पाप-कारी ।।६०।।

अन्योन्य सारी स्थिति देख प्यारी, धर्मानुसारी विधि साध [६]धारी ।
गार्हस्थ्य-चारी जन को 'स्व-नारी, लक्ष्मी विचारी अति-सौम्य कारी ।।६१।।

जो इन्द्रियार्थ-सुख को ठुकरा बिहारी-
हो ब्रह्म-बीच वह ब्रह्मपदाधिकारी ।
जो [७]इन्द्रियार्थ-सुख ही तक तृप्त होते,
वे दौड़ इन्द्र तक ही पद-प्राप्त होते ।।६२।।

जो त्याग नारी-सुख दुःखकारी, हो [८]दैत्यदारी-पद में बिहारी ।
होता वही ब्रह्मपदाधिकारी, माया तजे आय [९]अमाय-बारी ।।६३।।

---

१ वकारादि (जो 'व' से शुरू हों) । २ बाजा । ३ पशु-पक्षी । ४ विकार । ५ चिनगारी (मदमयी=नशे की)। ६ धारी हुई अर्थात ब्याही हुई। ७ विषय-सुख। ८ विष्णु भगवान के चरण में । ९ माया-रहित परब्रह्म की बारी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुपथ्य आहार-विहार हो भले, तथापि ज्यों व्याधि कभी नहीं टले ।
वैसा सती के यह योग आ मिला, भूकम्प ढाहे दृढ़ भी न क्या किला? ।।६४।।

मनुष्यता पै द्विजता, तपस्विता, कहाँ रहीं और कहाँ शिला स्थिता? ।
जानी न जाती गति कर्म की कड़ी, क्या दैव की सद्-मति पै शिला पड़ी?।।६५।।

क्यों देवेश मुनीश-वेश धरते आवेश से काम के?,
[1]बोले कुक्कुट-वेश होकर शशी क्यों पूर्व ही याम के? ।
क्यों जाती नद-तीर नीर भरने साध्वी बिना साथ के ?,
हा ! दैवी गति कौन जान सकता, सारे यहाँ आ थके ।।६६।।

है देव की गहन और विचित्र लीला,
जो पूर्व-काल गुरु-संगत थी [2]सुशीला ।
सो आज हाय ! सु-शिला लघु-सङ्ग पाके,
सङ्ग-प्रभाव अपना रहता जता के ।।६७।।

जिसके बल [3]रौरव-पतित, सुरपति-गौरव पाय ।
उस राघव के चरण से, यह लाघव झट जाय ।।६८।।
मेरे ही कथनानुसार करना संमान का कार्य है,
सारासार विचारना प्रथम तो विद्वान का कार्य है ।
जो तात्कालिक रोष था स्व-पति का, स्त्री का नहीं दोष था,
सो तो एक पराङ्ग-सङ्ग-मल को धोने स्व-संतोष था ।।६९।।

ज्यों ही कौशिक-वाक्य को सुन दया-श्रद्धा-रसों में पगे,
मर्यादा-नरसिंह राम कर से छूने शिला को लगे ।
वे बोले प्रभु-पाद छू कर, इसी की धूल से तारिए,
पीछे से अभय-प्रदायि-कर को रक्षार्थ संचारिए ।।७०।।

इस मिष मुनि को था राम का पाद छूना,
पर प्रभु-मन व्यापा और संकोच दूना ।

---

१ इन्द्र के कहने से जब चाँद कुक्कुट-रूप बनाकर आधी रात ही को शब्द करने लगा, तब मुनि पत्नी (अहल्या) सदा की भाँति पानी भरने अकेली निकल गई। २ 'सुशीला' और 'सुशिला' में एक गुरु और लघु ही का- अन्तर है, क्योंकि गुरु (गौतम) के संग से सुशीला थी, अब लघु (इन्द्र) के संग से सु-शिला (अच्छी शिला) हो गई। ३ नरक में पड़ा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातों जीवन की महा-विजय के ये [1]वाद्य ही [2]वाद्य हैं,
जो मिथ्या-उपयोग हो, पतन के ही हेतु ये आद्य हैं ।।५६।।

चाहे अङ्ग-विहीन की युवति हो, चाहे महा-दीन की,
चाहे हो सुकुलीन की, अधम की, चाहे निजाधीन की ।
चाहे प्राण विहीन की, जगत में चाहे समीचीन की,
जो भोगी, वह छीन कीर्ति गति को देती [3]तिरश्चीन की ।।५७।।

ज्वाला-जाल निकालती [4]विकृति के, संताप में डालती,
सारे काल उकालती हृदय को, पूरा नहीं बालती ।
[5]लूका खूब उछालती मदमयी और शान्ति को टालती,
है कामाग्नि कराल तीव्र, क्रम ही से देह को गालती ।।५८।।

संसार में जो बस नारियाँ हैं, कामाग्नि की वे चिनगारियाँ हैं ।
जो इन्द्रियों का जय-वर्म धारे, वही बचे, ज्यों हनुमान प्यारे ।।५९।।

सुरपति-पद-धारी इन्द्र भी कुष्टधारी,
नहुषक फणधारी, क्यों न स्वर्गाधिकारी ।
प्रतिदिन क्षय-कारी चाँद की आय बारी,
सचमुच पर-नारी-सङ्ग है, पाप-कारी ।।६०।।

अन्योन्य सारी स्थिति देख प्यारी, धर्मानुसारी विधि साध [6]धारी ।
गार्हस्थ्य-चारी जन को 'स्व-नारी, लक्ष्मी विचारी अति-सौम्य कारी ।।६१।।

जो इन्द्रियार्थ-सुख को ठुकरा बिहारी-
हो ब्रह्म-बीच वह ब्रह्मपदाधिकारी ।
जो [7]इन्द्रियार्थ-सुख ही तक तृप्त होते,
वे दौड़ इन्द्र तक ही पद-प्राप्त होते ।।६२।।

जो त्याग नारी-सुख दुःखकारी, हो [8]दैत्यदारी-पद में बिहारी ।
होता वही ब्रह्मपदाधिकारी, माया तजे आय [9]अमाय-बारी ।।६३।।

---

१ वकारादि (जो 'व' से शुरू हों) । २ बाजा । ३ पशु-पक्षी । ४ विकार । ५ चिनगारी (मदमयी=नशे की)। ६ धारी हुई अर्थात ब्याही हुई। ७ विषय-सुख। ८ विष्णु भगवान के चरण में । ९ माया-रहित परब्रह्म की बारी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुपथ्य आहार-विहार हो भले, तथापि ज्यों व्याधि कभी नहीं टले ।
वैसा सती के यह योग आ मिला, भूकम्प ढाहे दृढ़ भी न क्या किला? ।।६४।।

मनुष्यता पै द्विजता, तपस्विता, कहाँ रहीं और कहाँ शिला स्थिता? ।
जानी न जाती गति कर्म की कड़ी, क्या दैव की सद्-मति पै शिला पड़ी?।।६५।।

क्यों देवेश मुनीश-वेश धरते आवेश से काम के?,
[१]बोले कुक्कुट-वेश होकर शशी क्यों पूर्व ही याम के? ।
क्यों जाती नद-तीर नीर भरने साध्वी बिना साथ के ?,
हा ! दैवी गति कौन जान सकता, सारे यहाँ आ थके ।।६६।।

है देव की गहन और विचित्र लीला,
जो पूर्व-काल गुरु-संगत थी [२]सुशीला ।
सो आज हाय ! सु-शिला लघु-सङ्ग पाके,
सङ्ग-प्रभाव अपना रहता जता के ।।६७।।

जिसके बल [३]रौरव-पतित, सुरपति-गौरव पाय ।
उस राघव के चरण से, यह लाघव झट जाय ।।६८।।

मेरे ही कथनानुसार करना संमान का कार्य है,
सारासार विचारना प्रथम तो विद्वान का कार्य है ।
जो तात्कालिक रोष था स्व-पति का, स्त्री का नहीं दोष था,
सो तो एक पराङ्ग-सङ्ग-मल को धोने स्व-संतोष था ।।६९।।

ज्यों ही कौशिक-वाक्य को सुन दया-श्रद्धा-रसों में पगे,
मर्यादा-नरसिंह राम कर से छूने शिला को लगे ।
वे बोले प्रभु-पाद छू कर, इसी की धूल से तारिए,
पीछे से अभय-प्रदायि-कर को रक्षार्थ संचारिए ।।७०।।

इस मिष मुनि को था राम का पाद छूना,
पर प्रभु-मन व्यापा और संकोच दूना ।

---

१ इन्द्र के कहने से जब चाँद कुक्कुट-रूप बनाकर आधी रात ही को शब्द करने लगा, तव मुनि पत्नी (अहल्या) सदा की भाँति पानी भरने अकेली निकल गई। २ 'सुशीला' और 'सुशिला' में एक गुरु और लघु ही का– अन्तर है, क्योंकि गुरु (गौतम) के संग से सुशीला थी, अब लघु (इन्द्र) के संग से सु-शिला (अच्छी शिला) हो गई। ३ नरक में पड़ा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]उपल पगतली से अन्त छूना पड़ा ही,
गुरु-वचन गिराना था उन्हें चित्त-दाही ।।७१।।

छूते ही बस तेज के प्रसर यों पाषाण में से उठे,
श्वासों की लहरी नई मृतक के ज्यों [२]घ्राण में से उठे ।
जैसे वंश-विशेष वह्निमय हो, हो [३]शेषमुक्तामणी,
त्यों तेजोमय [४]अश्म होकर पुनः दीखी वही ब्राह्मणी ।।७२।।

है चित्त-भ्रम, इन्द्रजाल अथवा, वा स्वप्न, वा सत्य है,
है प्रत्यक्ष घटी विचित्र घटना, क्यों चित्त [५]वैमत्य है ।
ऐसे तर्क-वितर्क से नयन ज्यों ही दर्शकों के फटे,
त्यों ही गौतम योग के बल वहीं शैलेन्द्र से आ डटे ।।७३।।

सोहे दम्पत्ति नम्र राम-[६]विनयी-सद्भक्त के सामने,
ज्यों सव्यक्तिक पुरुष-प्रकृति हों अव्यक्त के सामने ।
श्रद्धा से स्तुति सप्रणाम उनकी दोनों लगे बोलने,
स्वामी-सेवक-धर्म-द्वार झट ही मानो लगे खोलने ।।७४।।

★ ★ ★

प्रकटते तुम अस्फुट भी भला, यह तुम्हीं रखते अपनी कला ।
कुतुक क्या घनश्याम हुए किया, भुवन सावन-सा दिखला दिया ।।७५।।
प्रभु ! अपूर्व सचेतनता-कला, तुम अचेतन में भरते भला ! ।
प्रकृति को कर चेतन श्री रची, त्रिजगती जगती तब ही जँची ।।७६।।
अघट-संघटना-पटु आपकी वह नटी, [७]विधि नाट्य-कलाप की ।
रम रही सब में अनुकूल हो, प्रकृति के [८]-कृति के तुम मूल हो ।।७७।।
कुतुक जो कि किया तुमने यही, कुछ न अद्भुत है तुम को सही ।
उपल को कितना पद दे दिया, सुर [९]-मणी रमणीमय जो किया ।।७८।।

---

१ शिला। २ नाक । ३ मोती रह जाय (बांस में से भी मोती की उत्पत्ति मानी गई है)। ४ पाषाण । ५ विचार की भिन्नता । ६ राम जो नम्र भक्त बने हुए थे उनके सामने । ७ विधायी। ८ यह सम्बन्ध मूल के साथ है, न कि कृति के साथ, नहीं तो 'प्रकृति की' ऐसा होता। ९. चिन्तामणि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चरण के रज की महिमा सही, परम अद्भुत जाय नहीं कही ।
युवति-रत्न अयत्न अहो! हुआ, उपल ही पल ही भर में छुआ ।।७९।।

निज जनों पर नाशक ताप का, अति अनुग्रह है प्रभु ! आपका ।
यदि उन्हें कुछ दुःख हुआ कभी, हरण-कारण काय धरा तभी ।।८०।।

परम-भक्तमनोऽम्बुजवासिनी, सुमति की परिपूर्ण विकासिनी ।
दुख हरे प्रभु की सुख-कारिणी, पग-पराग पराभव-हारिणी ।।८१।।

वरदता यदि आप निवाहते- रघुपते ! तुम से यह चाहते ।
जन-मनोरथ-सिद्धि-विकासिनी विपद की-पद की रज-नाशिनी ।।८२।।

पग के परसते राम बोले, गुरुवरो ! बस कीजिए,
बस कीजिए, [१]स्मृति कीजिए, आशीष हम को दीजिए ।
तब मोद-मग्न मुनीश ने शुभ स्वस्ति-वाद उन्हें दिया,
फिर नम्र कौशिक को विनय से धन्यवादान्वित किया ।।८३।।

कौशिक कुमारों सहित फिर मिथिला पुरी को चल पड़े,
कुछ साथ दंपति भी चले, लखते रहे फिर रह खड़े ।
'प्रभु ! आज तो रह जाइए, पद-धूलि तो दे जाइए',
यों कह अहल्या अन्त बोली, अस्तु, मन ले जाइए ।।८४।।

'[२]राम-राम' करते वे दोनों दंपति पहुँचे आश्रम-धाम,
'[२]शिव-शिव-शिव' करते ये तीनों पहुँचे जनकपुरी अभिराम ।
मन बहलाने लगे उधर वे करके मधुर राम-गुण-गान,
होने लगा इधर इनका भी नृप-द्वारा स्वागत-संमान ।।८५।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता सप्तम प्रतान समाप्त ः

---

१ जो मैंने मर्यादा पालन के लिए नर-शरीर धरा है, उसकी ओर ध्यान दीजिए। २ उनके वियोग में चलना कठिन पड़ गया। इस बात को दोनों ओर से झलकाया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

आठवाँ प्रतान

प्रवेशिका

दूसरे दिन प्रातः काल मुनि की आज्ञा पाकर दोनों राजकुमार जनकपुरी की वाटिका में पहुँचते हैं। उनकी अलौकिक रूप-माधुरी से मुग्ध होकर वहाँ का माली उन्हें वाटिका का परिचय कराता है। चम्पकबाड़ी, माधवीलता, गुलाब की क्यारी, वकुलाशोक वाटिका, महकती हुई क्यारियाँ, कुञ्जगलियाँ, भव्य गौरी-शंकर-मन्दिर आदि का इस प्रतान में भव्य वर्णन है। तभी विदेह-राजकुमारी का शुभागमन सुनकर माली राजकुमारों से विदा लेकर कार्यवश वहाँ से चला जाता है। कवि ने भगवान श्रीराम एवं भगवती सीता के प्रथम दृष्टि-मिलन में सहज पावन दिव्य प्रीति-स्फुरण, जानकी जी को भगवती गौरी का सांकेतिक आशीर्वाद, आदि का उदात्त भाव-चित्रण प्रस्तुत किया है।

जनकजी मुनि विश्वामित्र के साथ श्रीराम-लक्ष्मण को धनुष यज्ञशाला में सादर आमंत्रित करते हैं। जनक जी के प्रण की घोषणा, किसी वीर के द्वारा धनुष-भङ्ग न होने से जनक जी की निराशा, लक्ष्मणजी का आवेश, श्रीराम द्वारा उन्हें शान्त कर गुरुजी के आदेश से धनुष-भङ्ग करना, सीताजी द्वारा उन्हें वरमाला पहनाना, आदि का प्रतान में चित्रण है।

विशेष-उक्ति-वैचित्र्य : राजा जनक और कुमार लक्ष्मण को बराबर सम्मान दिखाते हुए मुनि विश्वामित्र ने कहा कि कर्मिक (कर्मशील) सरल तथा विपरीत- दोनों ही परिस्थितियों में एक समान रहता है। कर्मिक शब्द उल्टा-सीधा एक सा ही है।

विदेह ने प्रण ठानकर परीक्षा क्यों ली, इसका उत्तर भी लोम-विलोम शैली में देकर कवि ने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है-

'ज्ञाति-प्रथा-सर्वस था, प्रतिज्ञा!, क्षारी पकी कर्मिक की परीक्षा ।
सीता लसी नन्दन-सी लता-सी सीमा रही मञ्जु मही-रमा-सी ।।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आठवाँ प्रतान

तर्क नहीं कुछ काम दे, शास्त्रों का न सुझाव ।
अन्तर्यामिन्! निज पता दें [1]स्वानुभव-प्रभाव ॥८॥

राम रात को निद्रा-द्वारा श्रम को खोकर
दिवस दूसरे, नित्य कर्म से निवृत्त होकर ।
मन-ही-मन करते थे, उपवन-छवि लख आवें,
मुनि बोले, फिर आओ, जब तक जनक बुलावें[2] ॥१॥

फिर तो क्या था, गुरु-प्रणाम कर दोनों भाई,
सेने उपवन-पवन लगे, मानो निधि पाई ।
रूप-मात्र से मुग्ध वहीं का कोई माली,
कहने लगा उन्हें [3]अनुसरता सुभाग्य-शाली ॥२॥

प्रियदर्शन ! ठहरो, मैं आता, सैर कराता,
आप अपरिचित, मैं परिचय दे सब निहराता ।
आप कौन हैं मौन धरे जाते हो कैसे ?
लख पड़ते हो सुरपुर से आये हो जैसे ॥३॥

भरा हुआ है अभी नगर कुँवरों से सारा,
न किसी का ऐसा तो मैंने रूप निहारा ।
कोई भी हों, भले मर्म को मत दरसाओ,
परसाओ इन चरणों को बस, अब आजाओ ॥४॥

★ ★ ★

कनक-कान्ति कुसुमों से भूषित यह है चम्पक-बाड़ी,
तुम्हें पीत-पट लख क्या इसने पीत सजाई साड़ी ।
प्रीति [4]मधुप से न रख, तुम्हें लख इसने स्वच्छवि उघाड़ी,
वा इसने अपनी मद-घूर्णित दृग-पटली है फाड़ी ॥

---

१ अवस्था के अनुभव का असर होना, जो आपका पता है, उसे दे। २ किये जा रहे कार्य में दैविक सहायता जहाँ मिले, वहाँ समाहित (समाधि) अलंकार जानना । ३ पीछे चलता। ४ भौंरा और शराबी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आते रहिए, [१]बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रिय-दर्शन ! मन मोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।५।।

विकसित सुमनों से सुमनोहर यह माधवी लता है,
उन्नत थी यह, समृद्धि पाकर अब खूब अवनता है ।
आते तुम को देख दूर से यह संमुखागता है,
मधु-[२]माधव का स्वागत करती यह भी तुम्हें पता है ?
आते रहिए- बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रियदर्शन ! मन मोह रही है मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।६।।

मधुर-मधुर मकरन्द-मनोहर यह गुलाब की क्यारी,
परम सुगन्धित अलि-संबंधित रसिकजनों की प्यारी ।
कुसुम-रङ्ग से रञ्जित करती अँखियाँ अभी हमारी,
मादक पान बिना ही मानो मद छाया हो भारी ।।
आते रहिए, बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रियदर्शन ! मन मोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।७।।

वकुलाशोक-वाटिका यह है रम्य नाटिका मानो,
गान-तान असमान पड़ रही [३]श्यामा की यह कानों ।
इसके संमुख चतुष्कोण को चार [४]अंक पहिचानो,
वधूजनों की कृपा-पात्र है, प्राय: यह तुम जानो ।।
आते रहिए, बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रियदर्शन ! मन मोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।८।।

कुन्द, मोतिया, कुञ्ज, चमेली, रायबेल की बेलें,
एक दूसरी से मिल-जुल कर सखियाँ-सी ये खेलें ।
कुसुमों से हँसती शाखामय हाथ पसार [५]सकेलें,
मधुप-गुञ्ज से तुम्हें कह रहीं-आने का श्रम झेलें ।।
आते रहिए, बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रियदर्शन ! मन मोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।९।।

---

१ इति (समाप्ति) । २ तुम दोनों रूप चैत्र-वैशाख का । ३ एक प्रकार की चिड़िया और नव-युवती (नाटिका के पक्ष में) । ४ अध्याय । ५ (हाथों को) इकट्ठा कर रही हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार की सार-सार की लखिए क्यारी-क्यारी,
क्यारी-क्यारी बीच निरखिए कई-कई फुलवारी ।
एक-एक फुलवारी में भी रंग -छवि न्यारी-न्यारी,
रंग-रंग पर भी परम सुगन्धी महक रही है भारी ।।

आते रहिए, बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रियदर्शन ! मन मोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।१०।।

यों उपवन के आठों कोनों नई-नई फुलवारी,
दिगपालों ने निज-निज [१]डाली क्या प्रभु-हेतु सँवारी ।
संमुख सब के बीच सोहता शिव-मंदिर शुभ-कारी,
जहाँ ईश-गौरी-पूजा-हित आते हैं नर-नारी ।।

आते रहिए, बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रियदर्शन ! मन मोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।११।।

बीच-बीच इनके आपस में सुन्दर कुञ्ज-गली है,
मुख-द्वार पर [२]सरो-युगल यह द्वारपाल-युगली है ।
[३]यह सीधी फल-तरु-वन होती सर पर जा निकली है,
जनक-राज की चित्त-वृत्ति-सम कभी कहीं नहीं टली है ।।

आते रहिए, बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रियदर्शन ! मन मोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।१२।।

कुञ्ज-गली की मध्य-वीथि पर फल-तरुओं की क्यारी,
इसी प्रकार [४]इन्हीं के संमुख कैसी सरस सँवारी ।
पड़ौसिनें मिलकर मानों ये बात कर रहीं प्यारी,
सेव, अनार, दाख, केलादिक जहाँ फलावलि सारी ।।

आते रहिए, बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रियदर्शन ! मन मोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।१३।।

---

१ टोकरी। २ 'सरो'=मूल से चोटी तक हरा-भरा स्तम्भ-समान सीधा एक वृक्ष-विशेष।
३ कुञ्जगली। ४ फुलवारियों।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस मंदिर के संमुख में यह छूट रहा फव्वारा,
वरुण-देवता शिव पर मानो चढ़ा रहा जल-धारा ।
वा भू-रूप शम्भु गङ्गा को दिखा रहे इस-द्वारा,
क्या गङ्गा ने सुर-गङ्गा से मिलना तो न विचारा ? ।।
आते रहिए, बस मत करिए, वनी दिखाऊँ सारी ।
प्रियदर्शन ! मन मोह रही है, मूर्ति तुम्हारी प्यारी ।।१४।।

★ ★ ★

इतने में तीनों के कानों पड़ी पटह की ध्वनि भारी,
तब माली ने कहा, आ रहीं यहाँ जानकी सु-कुमारी ।
प्रियदर्शन ! शिवदर्शन करलें आप स्वयम्, यह आशा है,
जाना है अब मुझे, विवश हूँ, मन में दर्श-पिपासा है ।।१५।।
धन्यवाद प्रभु-मुख से पाकर धन्य चल पड़ा वह उस ओर,
इधर चन्द्रधर-मन्दिर पहुँचे कौशल्या के कुशल किशोर ।
शिवदर्शन कर ध्यानानन्तर ज्यों ही प्रभु की दृष्टि पड़ी,
संमुख गौरी-वन्दन करती सीता सखियों सहित खड़ी ।।१६।।
रघुवर ने मन-ही-मन सोचा, यह वह जनक-कुमारी है,
जिसके लिए धनुष-मख-रचना रची गई यह सारी है ।
विधि की रम्य-रूप-रचना का यह तो एक नमूना है,
सचमुच सब संसार रूपमय इसके बिना अलूना है ।।१७।।
रत्न [१]रत्नगर्भा ने गर्भित क्या चिर-सिद्ध निकाला है?,
इसी लोक का नहीं, त्रिलोकी भर का एक उजाला है ।
क्या हिरण्यगर्भ-ब्रह्मा की यह [२]हिरण्य-लतिका निकली?,
जो मिथिलेश्वर-वत्सलताऽमृत पाकर परम पवित्र पली ।।१८।।
चम्पकलता, माधवीलतिका वह गुलाब की क्यारी,
जो-जो अभी निहारी मैंने वह-वह यही कुमारी ।
मनोरूप माली हम दोनों नैनों को निरखाता,
अङ्ग-अङ्ग कमनीय कुसुम को ध्यान खींच परखाता ।।१९।।

१ भूमी । २ स्वर्णलता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदपि वाम दृग यह भरतानुज शिव-मन्दिर छवि निरखे,
किन्तु दाहिना दृग रघुवर तो कनक-लता ही परखे ।
इस लतिका के शिर पर कुन्तल केकि[१]-कलाप वही है,
अलिक[२]-बीच पाकर दृग-युगली खञ्जन-युगल सही है ।।२०।।

दन्त-दाडिमी-कुलक देख कर ऊपर स्थित शुक-नासा,
अधर [३]पाटला-कलिका है यह, मुख सरोज सुषमा-सा ।
अञ्जलि कुञ्ज-गली वैसी ही कर-पल्लवारचित है,
हृदय-रूप 'मन्दिर में गौरी-सहित महेश' खचित है ।।२१।।

नव अनुराग अङ्कुरित करने प्रियदर्शन-फव्वारा,
मेरे हृदय-स्थल पर मानो डाल रहा जल-धारा ।
अब तक भी रघुवीर-हृदय को नहीं किसी ने मोहा,
किन्तु कान्तिमय कान्त कला से आज इसी ने मोहा ।।२२।।

शिव-गौरी-संमुख ला विधि ने इसको मुझे दिखाया,
क्या दोनों को दिया लेख निज उसने लिखा-लिखाया ।
माली के मुख से कहलाया 'वनी दिखाऊँ सारी',
क्या स्मर-शर लगने से भीतर, [४]बनी बने वर-प्यारी ? ।।२३।।

[५]कुसुम-चांप ही का यदि जग में कम्पन प्रथम कठिन है,
[६]कुसुमचाप-कम्पक-धनु का तो कम्पन परम कठिन है ।
[६]आशुतोष के कृपा-कोष का जो होगा अधिकारी,
वही अलौकिक विजय-मुकुट को प्राप्त करेगा भारी ।।२४।।

यों विचारते रघुनन्दन ने किया शिवा को वन्दन,
अभिनन्दन का चिह्न हुआ तब दहिने दृग का [७]स्पन्दन ।
अभिमत भी विधिवश गौरी का ध्यान नहीं हो पाया,
'सीता ही का ध्यान रहे' यों विधि ने क्या दरसाया ? ।।२५।।

---

१ मयूर-पिच्छ । २ ललाट का अन्तर । ३ पाटल पुष्प की कली । ४ वनी-रूप यही राजकन्या भीतर काम-बाण लगने से वर की प्यारी बनी बने । 'व' के भीतर रेखा करने से 'ब' होता है, यह रेखा नहीं किन्तु काम-बाण है। ५ कामदेव । ६ शिव । ७ फड़कना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अचलनन्दिनी को वन्दन कर जनक-सुता भी आकर,
रघुनन्दन-दर्शनानन्द में ध्यान-दशा दरसाकर ।
मन-ही-मन कहतीं, सुरमुनि ने जो हरि-रूप बखाना,
दर्शन-पथ में वही आ रहा अहा! अहा! मन-माना ।।२६।।

पीताम्बरधर नीलकमल-सा सुन्दर दीखे कैसा,
उदयमान-रवि-बालातप से छिनभर अम्बर जैसा ।
वा नीचे यह साँझ खिली है, ऊपर घन-छवि काली ?
ऊपर श्यामाशोक खिला है नीचे चम्पक-डाली ? ।।२७।।

गौरी ने शिव को वसन्त में क्या रहस्य सिखलाया ?,
कुसुमचापधर कुसुमचाप को मूर्तिमान दिखलाया ।
काम-कोटि-कमनीय मूर्ति यह खींच रही मन मेरा,
पूर्णचन्द्र की किरणावलि ने ज्यों चकोर को घेरा ।।२८।।

अहा ! मुझे तो स्फटिकाङ्गण यह क्षीर-सिन्धु-सा जँचता,
गौर कुँवर यह शेष-वेष-छवि मम दृग-पथ में रचता ।
श्याम कुँवर वर-पीताम्बरधर कमला-कान्त [1]दरसते,
मानस-मोहन मुख-मयंक से मुझ पर सुधा बरसते ।।२९।।

पलभर अविचल इसी ध्यान में ज्यों ही झुकी कुमारी,
त्यों ही सचमुच उसको दीखी वह ही रचना सारी ।
[2]कमलनयन के संमुख निज पर अनुभव हुआ रमा का,
अपर पलक-पट पड़ते ही तो सिमिट गया वह खाका ।।३०।।

तभी कुसुम-डाली ले माली वही वहाँ पर आया,
विधिवश फिर सीता को शिव का ध्यान नहीं हो पाया।
पूजा कर सीता ने ज्यों ही गौरी-पद को परसा,
नीलकमल कर-[3]माला में से खिसका मिला स्व-वर-सा ।।३१।।

सीता ने सोचा मन में, प्रण किया वृथैव पिता ने,
किस पर परख फलेगी उनकी, यह तो विधि ही जाने ।
पर मैंने तो इन्हीं युवक को निज वर मान लिया है,
दोनों का प्रण पूर्ण करेगी, जिसने कमल दिया है ।।३२।।

---

१ दीखते । २ विष्णु । ३ गौरी के कर-कमल पर चढ़ी हुई माला में से ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदनन्तर श्रीराम-जानकी निज-निज नियत निवास-
पहुँचे हृदय परस्पर देकर कुछ उदास स-हुलास ।
दोनों ने संमेल देखने पाया गुरु-आदेश,
इतने में तो पटह-सूचना कानों पड़ी विशेष ।।३३।।

★ ★ ★

राजा उन्हें धनुर्यज्ञ-शाला सादर ले गये ।
सुखासन दिये वे जो उन्हीं के हेतु थे नये ।।३४।।
[1]गुरुपूर्व द्विलघु की आद्य पंक्ति वहीं फवी ।
घटना-काव्य की मानो प्रथमा भगणच्छवी ।।३५।।
वहाँ निज-निज-प्रान्त-मण्डलों में छँटे हुए ।
भूमीश भूमीभर के पूर्व ही थे डटे हुए ।।३६।।
दर्शकों के जमघटे लगे थे चहुँ ओर से ।
जोहते थे वाट राम-मेघ की जो कि मोर-से ।।३७।।
राजपौर-स्त्रियों के भी बैठने का प्रबन्ध था ।
कहीं किसी को कुछ भी कोई न प्रतिबंध था ।।३८।।
जन ऊपर से नीचे तक के चहुँ ओर से ।
देखते थे रामचन्द्र-मुखचन्द्र चकोर-से ।।३९।।
ग्रह, नक्षत्र, तारे थे सारे, तारेश थे वही ।
जिनके तेज के आगे उनकी मन्दता रही ।।४०।।
महेश-चाप की शोभा थी रङ्ग-स्थल-बीच में ।
अगस्त्य-पन्थ-रेखा ज्यों व्योम-मण्डल-बीच में ।।४१।।
चाप था भूमितल में ताल में तीर्ण-तैल-सा ।
अथवा नीर-निधि में मञ्जु मैनाक-शैल-सा ।।४२।।
[2]अधी रथी खल बली सके देख न राम को ।
अधीर थी खलबली जी में, प्रीति न नाम को ।।४३।।

★ ★ ★

---

१ पहले गुरु बाद दोनों छोटे (रघुवंशकुमार) इन तीनों की पहली लाइन ऐसी लगी, मानों इस धनुर्भङ्ग-काव्य की प्रारम्भिक भगण [ऽ।।] शोभा हो । इस महाकाव्य के आदि में जो विश्व-वरद' पद है, उसमें विश्-व-व यह जो भगण है, उससे विश्वामित्र और दोनों वरद [राम-लक्ष्मण] ध्वनित हैं। २ बुद्धि-हीन [रथी] और बली [खल] ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई मदान्ध निज नाक सिकोड़ता था,
मानो यही कर पिनाक सिकोड़ता था ।
कोई स्व-मूँछ अति-गर्वित तानता था,
क्या शम्भु-चाप उसको वह मानता था ।।४४।।

कोई स्व-दन्त कुछ पीस लगा दिखाने,
मानो किया यतन लोह-चने चबाने ।
दन्तग्राम से अधर को भट क्या चबाते
दाँतों तलें-जय मना-उँगली दबाते ।।४५।।

कोई वहाँ लख पड़ा निज भौं चढ़ाता,
मानो कि शंकर-शरासन को चढ़ाता ।
कोई मदान्ध निज लोचन मींचता था,
क्या ध्यान को स्वजय के हित खींचता था? ।।४६।।

कोई विचार-वश भूमि कुरेदता था,
मानो स्वलक्ष्य अविलक्षित भेदता था ।
कोई स्वहार खिसता फिर खींचता था,
क्या चाप की पनच ही वह ईचता था ।।४७।।

निरख पूर्व कई शिव-चाप को, तरकते निज भाग्य-प्रताप को ।
विविध तर्कमयी लहरी वही कम नहीं, मन ही मन में रही ।।४८।।
सकल ध्यान नरेश-कलाप के शिव-शरासन-ऊपर जा थके ।
धनुष के अथवा शिर के भले नमन के मनके [१]मनके चले ।।४९।।
न ठहरा वह बाण महाबली, न [२]रिपुरावण रावण की चली ।
असुर-राक्षस-मान रखा नहीं, धनुष मानुष-मान रखे कहीं ।।५०।।
समद [३]राजक का मद गालने, परख का परिणाम निकालने ।
कुछ अलौकिक तत्व [४]गवेसने, यह रचा हर-चाप प्रजेश ने ।।५१।।
जब न रावण की कुछ भी चली, असुर की फिर दाल नहीं गली ।
नर यहाँ अति-विक्रम भी तभी, न फटका फटकार-डरा कभी ।।५२।।

★ ★ ★

---

१ जी के तर्क-वितर्क । २ बैरी रुलाने वाला । ३ राजाओं का समूह । ४ ढूँढ़ने को ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगों का जमघट्ट पार करता, औ वीर-संघट्ट में-
होता मागध-भट्ट एक रमता उत्साह के [१]अट्ट में।
पट्टे से कटि-पट्ट को कस, मिटा कोलाहलाऽऽ [२]रट्ट को,
यों बोला निज-पट्ट ऊपर खड़ा, ताने भुजा-पट्ट को ।।५३।।

मैं सत्यव्रत मैथिलाधिपति की उद्दण्डता-शोषणा -
आज्ञा को धर राशि पै कर रहा उत्साह से घोषणा।
हे भू-मण्डल के अखण्ड विजयी वीरो ! जरा ध्यान दें,
कर्ण-द्वार-कपाट खोल इसको हृद्धाम में स्थान दें ।।५४।।

ऐसा योग अहो ! उपस्थित हुआ दैवात् किसी काल में,
राजा को प्रण ठानना यह पड़ा, होगा लिखा भाल में।
जो भी वीर नवायगा इस महा-कोदण्ड को यत्न से,
होगी योजित स्वर्ण की यह लता कन्या उसी रत्न से ।।५५।।

जो भूमण्डल-भाण्ड को अमृत-सी सीताप्ति की कीर्ति से-
चाहें [३]पिण्डित और मण्डित किया श्री-प्राप्ति की कीर्ति से।
जो चाहें फिर खण्ड-खण्ड करना पाखण्डि-पाखण्ड को,
तो उद्दण्ड प्रचण्ड खण्डित करें चण्डीश-कोदण्ड को ।।५६।।

है आवश्यक पूर्व ही यह मुझे वीरो ! सुझाना भला !,
पीछे से निज-बाहुदण्ड-युगली-[४]कण्डू खुजाना भला ! ।
जो धन्वी इस धन्व पै कर चुके हैं यत्न भारी बड़ा,
मौनीभूत उन्हें तभी स्व-मुख को ले लौटना ही पड़ा ।।५७।।

'मैंने पूर्व उठा लिया स्व-भुज से कैलाश शैलेश को',
'मैंने भू-घट हाथ में रख, दिया विश्राम भी शेष को' ।
यों गर्वोक्ति-भरे यहाँ वच मरे, लङ्केश औ बाण भी,
कोसों दूर रही जयाप्ति, रज से माथा भरा [५]घ्राण भी ।।५८।।

चाहे हो विधि को अभीष्ट उनके यों गर्व को गालना,
है कर्तव्य परन्तु वीरजन को वीरत्व का पालना।
आशायें अपनी तुम्ही पर रखे वैदेह भूपाल हैं,
खारे सिन्धु पड़े रहें, जन-तृषा-शान्त्यर्थ तो ताल हैं ।।५९।।

---

१ [उत्साह रूप] दालान। २ शोर-बकवाद। ३ आपूर्ण [भरा हुआ]। ४ खाज। ५ नाक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन्दी के सुन वाक्य को झट उठे गर्वान्ध ऐंठे हुए,
जो थे विज्ञ, लखा किये कुतुक वे स्वस्थान बैठे हुए ।
जो थे दर्शक, वे कुतूहल-भरे जी से लगे जोहने,
देखें, कौन सुभाग्य-शील विजयी हो, यों लगे [१]टोहने ।।६०।।

वे गर्विष्ट अभीष्ट देवगण को जी में मनाते हुए,
गाढ़े भी कटि-बन्ध को कस निरा गाढ़ा बनाते हुए ।
'मैं हूँ पूर्व अपूर्व, पूर्व न तुम्हीं,' यों अग्रय होते हुए,
छूने कार्मुक को लगे, भुजग को मानो कि सोते हुए ।।६१।।

ज्यों ही वे भुज-तीर्थ को धनुष पै पूरा लगे जाँचने,
नाड़ी-तन्तु शिरःस्थ साँस भरते त्यों ही लगे नाचने ।
सारे ही तन में लगी टपकने प्रस्वेद-धारा बड़ी,
आशा ने उनकी बहा तुरत दी क्या अश्रुधारा-झड़ी? ।।६२।।

किंचित् चाप हिला स्वयं न, उनको पूरा हिलाया सही,
कैसे आप झुके, उन्हें प्रथम जो पूरा झुकाया नहीं ।
सारे टूट पड़े मदान्ध, उसका तो दूर था टूटना,
तेजः-कोष लुटा, तथापि जय का तो दूर था लूटना ।।६३।।

सारे ही मिलके महाधनुष को राजा उठाने लगे,
तो भी हा! तिल-मात्र भी न सरका, वे हार खाने लगे ।
'मैंने ठान लिया अहो! प्रण इसी आधार पै क्या अरे!,
यों पूरे अनुतप्त हो जनकजी बोले निराशा-भरे ।।६४।।

★ ★ ★

हे आगन्तुक वीर-मानि-सुजनो! भग्नाश मैं क्या करूँ?,
हा ! दुःखी कहला रहा हृदय ही, धीरत्व कैसे धरूँ ? ।
जो तेजोनिधि तत्त्व सत्त्वमय था, सो आज जाता रहा,
संध्याऽऽलोक-समान लोक भर में आलोक-ताँता रहा ।।६५।।

सिंहों को जनती रही बन-मही होके मही जो सही,
भौरों को जनती वही अब मही उद्यान की हा मही ।
वीरों से अटखेलियाँ कर रही जो वीर-माता खरी,
रागों में रँगरेलियाँ रच रही सो ही [२]अबीरों भरी ।।६६।।

---

१ पता लगाने [लगे] । २ कायरों और पीली गुलालों ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोई वीर्य-प्रधानता, छिप गई हो ! क्षत्र संतानता,
मानो वर्ण-समानता रह गई, सर्वत्र है म्लानता ।
जो ऐसा पहिचानता जगत को, निर्वीर ही जानता,
तो क्यों यों प्रण ठानता, अब सुता क्वारी रही मानता ।।६७।।

★ ★ ★

ज्यों ही बाण बड़े, कड़े पर कड़े ये वाक्य कानों पड़े,
क्या बिच्छू उमड़े हिये पर लड़े, मानो पड़े सौ घड़े ।
श्री सौमित्रि अड़े न, खूब बिगड़े जी में, हुए ही खड़े,
बोले क्या अकड़े, नृसिंह उघड़े मानो दहाड़े कड़े ।।६८।।

श्रीमन् [१]वैदेहकाधीश्वर! बस करिए, लाभ क्या व्यर्थ बोले?,
बोले सो आप बोले, खल-गुड़ सब ही एक ही भाव तोले ।
बैठे हैं सूर्य-वंशी यह न विदित क्या, जो प्रणों की प्रशंसी,
दुष्टों के एक ध्वंसी, धरणि-वलय के एक छत्रावतंसी ।।६९।।

[२]डेरे-डेरे तपों के रवि-कुल-रवि ने आ सवेरे-[३]सवेरे,
[४]तेरे-मेरे न हेरे भट, स्व-बल हरे [५]रात्रिचारी अँधेरे ।
ये ठाले भूमिपालेश्वर भट जिसके हैं पड़े आज पाले,
ऐसे [६]व्यालेपवाले दृढ़ धनुष कई बाल्य में तोड़ डाले ।।७०।।
माना, मानापमानादिक विकृति तुम्हें भासमाना [७]समाना,
आनाकानी मनाना पर कठिन मुझे यों सुने तीव्र ताना ।
आते ही आजमाते रघुवर बल को और जो हार खाते,
ताते-ताते तपाते वचन दहन-से तो सुनाते सुहाते ।।७१।।

भूमी-भार भटों भरा भुवन है, यों भावना से भरे,
हे वैदेहवसुंधरेश्वर ! वृथा क्यों आप ऐसे डरे? ।
धर्मी धामधनी धुरंधर धनुर्धारी धरा में खड़े-
[८]धौसे को धमकायँ धामनिधि की वंशध्वजा को धरे ।।७२।।

---

१ जनकराज और बड़ा बनिक। आगे खल-गुड़ तोलना इसीलिए बताया गया है । २ तपों के डेरे-डेरे अर्थात् प्रत्येक तपोवन में । ३ सवेरे-सवेरे अर्थात् कुमारावस्था ही में । ४ तेरे-मेरे अर्थात् अन्य सहायक । यह मुहाविरा है । ५ राक्षस और रात को फैलनेवाले । ६ गर्वोत्कर्ष वाले । ७ समाना भासमाना समान प्रतीत होती है [जीव-मुक्त होने के कारण]। ८ धार्मनिधि [सूर्य] की वंशध्वजा को धरे अर्थात् सूर्यवंशी विजय का धौंसा धमका रहे हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामाज्ञा धर तोड़ दूँ कलशवत् ब्रह्माण्ड को, फोड़ दूँ,
फैला पूर्व, सिकोड़ दूँ, जसद के जैसे तथा मोड़ दूँ ।
लीला से फिर जोड़ दूँ, कुतुक को देखो, लगा होड़ दूँ,
लाखों [1]निष्क करोड़ दूँ, यदि न हों, यों बोलना छोड़ दूँ ।।७३।।

★ ★ ★

श्रीराम ने वारिद-वारि-पात-से-दृक्-पात से तप्त-निदाघ-[2]वात-से ।
सौमित्रि को शान्त किया तुरन्त ही, रुके सही, वे पर बोलते यही ।।७४।।

[3]राजावली-भट-कथा न जायगी, आ लोक में सु-रविमान पायगी ।
ह्वेंगे मनोरथ सुपूर्ण राम से, हो सर्व सिद्धि बस एक नाम से ।।७५।।

श्रीविश्वामित्र बोले, रघुतिलक! उठो, वीर हो औ तुम्हारी-
माता है वीरमाता फिर रिपुविजयी हैं पिता और भारी ।
चाप-भ्रू वीरपत्नी [4]यह धरणि तभी गर्व से धारती है,
जो भूपों के शिरों के झुक-झुक उठते मौलि, [5]सो आरती है ।।७६।।

ईर्ष्या ईर्ष्यालुओं की प्रकटित करने, गर्व को गालने वा,
कोरे पाखण्डियों की अविकल कलई खोल ही डालने वा ।
धर्मात्मा सूर्यवंशी-नृप-भुजबल की बानगी को दिखाने,
शूली का चाप साक्षात् गुरु प्रकट हुआ वीर-गाथा सिखाने ।।७७।।

आयुष्मन् ! जग में जय-ज्वलन की ज्वाला जगा दीजिए,
राजा के प्रण-भार-भङ्ग-भय को भैया! भगा दीजिए ।
क्षत्रों के जय की चिरोन्नत ध्वजा अत्युन्नता कीजिए,
सीता के अविषह्य क्वारपन की चिन्ता मिटा दीजिए ।।७८।।

★ ★ ★

---

१ अशर्फियाँ । २ लू के समान [लक्ष्मण को] । ३ यह ललिता छन्द [त भ ज र] से शिष्ट और दुष्ट दोनों राजाओं के लिए कहा गया है। शिष्ट की ओर आलोक प्रकाश में सु-रवि-मान सूर्य के जैसा अच्छा संमान। दुष्ट की ओर-राजावली भटक जायेगी; आलोक में सुर-विमान पायेगी। ऐसी काकूक्ति से प्रश्न । ४ यह चाप-भ्रू=धनुष रूप भौंह। ५ जो बल आजमाने वाले राजा आये हैं उनके मुकुट झुककर उठते हैं, मानो वही उस धनुष की आरती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुन वाक्य विश्वामित्र के, की राम ने पद-वंदना,
आशीष दे मुनिराज ने की राम की अभिवंदना ।
रघुवीर ने फिर गमन से गजराज को लज्जित किया,
शिव-चाप को अविकल उठाने बाहु को सज्जित किया ।।७९।।

कौशल्या के कुँवर कर से क्रूर कोदण्ड कैसे-
छूने गाढ़ा, मकर मुख से मत्त-मातङ्ग जैसे ।
क्रीड़ाकारी [१]कलभ कर से कैथ का [२]काण्ड जैसे,
संदंशी से [३]पचन-पटु वा भात का भाण्ड जैसे ।।८०।।

राघव ने अति लाघव से शिव के धनु को उस भाँति उठाया,
[४]मल्लक-मल्ल महोपल-मुद्‌गर को जिस भाँति उठाये सकाया ।
सो तनके प्रभु के तन के बल, बाहु-युगाश्रित को दिखलाया,
ज्यों हिम-विंध्य-महागिरि-सीमित पुण्य [५]प्रदेश-समस्त हिलाया ।।८१।।

छिन-मात्र डरे सब लोक अरे! न कि लोक [६]विलोकक-मात्र डरे,
निज कर्णपुटों पर लोकप-मण्डल ले परिमण्डित हाथ धरे ।
जय राम! अहा! जय राम अहा! यह शब्द तभी जग में उचरे,
प्रतिकूल-[७]बबूल समूल नसे अनुकूल महा सुर-फूल भरे ।।८२।।

★ ★ ★

कौशिक ने सौमित्रि से कहा दिखा सम-[८]मान ।
सरल कहो, विपरीत वा [९]कर्मिक एक-समान ।।८३।।

विदेह ने क्यों प्रण-रूप दीक्षा-गही तथा क्यों यह ली परीक्षा? ।
ओंधा व सीधा कहते भले यों, स्व-कर्म से कर्मिक तो टले क्यों? ।।८४।।

---

१ हाथी का बच्चा [कर=सुँड से]। २ वृक्ष का वह स्थान जहाँ से शाखा निकलती है । ३ पाकाचार्य । ४ भार उठाने वाले । ५ आर्यावर्त । ६ दर्शक । ७ प्रतिकूल राजा रूप बबूल। ८ जनक और लक्ष्मण का बराबर संमान । ९ कर्मशील । 'कर्मिक' शब्द को भी ओंधा-सीधा किसी तरह बोलो, एक-सा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोमविलोमसाम्य

[१]ज्ञाति-प्रथा-सर्वस था, प्रतिज्ञा !, क्षारी पकी कर्मिक की परीक्षा ।
सीता लसी नन्दन-सी लता-सी सीमा रही मञ्जु मही-रमा-सी ।।८५।।

सादर श्री सौमित्रि ने मुनि के वचन बखान ।
दिया जनक को सुख-जनक धन्य-धन्य-संमान ।।८६।।

★ ★ ★

प्रभु-जय-रव-तर्पित परम प्रहर्षित बोले सब नर-नारी,
जय जय दशस्यन्दन-सुत रघुनन्दन ! सरयू-तीर-बिहारी ।
जय जय जय भीताऽभयकर सीता-हृदय-कमल-वनचारी,
जय जय सुखदायक दीन-सहायक मञ्जुल-मङ्गलकारी ।।८७।।

सखियों के द्वारा सुभग सँवारा वेष धरे सकुचाई,
मन में अति-प्रीता कथमपि सीता मन्द-मन्द-गति आई ।
जैसे पल-पल में विषम-स्थल में रुक-रुक पूर-समाई,
पवनों के द्वारा नव जल-धारा कुसुमित कर पहुँचाई ।।८८।।

जो श्री वरमाला, प्रीति-विशाला वा थी विजय-बधाई,
वह उनने करके युग में धर के रघुवर को पहनाई ।
[२]गुण के बल पाई छवि मन-भाई जनक-सुता की नाँई,
वह प्रभु के उर में ज्यों हरिपुर में श्री असमान सुहाई ।।८९।।

★ ★ ★

गुरु की वधू पधारी, प्रभु-आरती उतारी ।
सब ने विजय उचारी, थी बीन साथ प्यारी ।।९०।।

---

१ ऊपर के प्रश्नों का उत्तर है-प्रतिज्ञा! अर्थात् प्रण! क्या था, वह एक जनक का ज्ञाति-रीति का सार था। इन के पुरखे भी करते आये थे। कर्मशील की सारी परीक्षा सफल हुई। प्रण और परीक्षा क्यों लेनी पड़ी-सीता पुत्र-समान और लता के समान [वर्धनोन्मुख] थी और वह सुन्दरता की सीमा इतनी थी कि मानो महीरमा=भूलोक की लक्ष्मी हो। इसी से जनक को ऐसी दशा में प्रण ठानना पड़ा। इस पद्य का प्रत्येक चरण ओंधा-सीधा एक-सा है।
२ सीता की ओर गुण [चातुरी आदि]। माला की ओर गुण [तागा]।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जय जय रघुनन्दन !
भक्तजनों के विमल हृदय के शीतलतर चन्दन ! ।
करता जगत आपका स्वामी ! शिर से अभिवन्दन,
श्री वसिष्ठ आदिक सब मुनिवर करते अभिनन्दन,
कौशल्या अति धन्य आप से नृप भी दशस्यन्दन,
विश्वामित्र यज्ञ के रक्षक राक्षसकुल-क्रन्दन ।
श्री गौतम-तरुणी के तारण, शिव-धनु के भंजन,
जनक-लली की हृदय-कली के मधुप मधुर गुंजन ।
जय जय जनक-नैन के अंजन, जय-जय-जन रंजन,
जग में रमते राम, वचन में जैसे स्वर-व्यंजन ।।९१।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता अष्टम प्रतान समाप्त ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

नवाँ प्रतान

प्रवेशिका

राजा जनक का निमंत्रण-पत्र लेकर दूत का अयोध्या पहुँचना, श्रीराम-सीता के विवाह का शुभ सम्वाद पाकर राजा दशरथ का आह्लादित होना, बरात की तैयारी में आत्मीयजनों को विवाह-पत्र भेजना, नरवेश में देवता तथा अन्य महीपालों का बरात में सम्मिलित होने के लिए अयोध्या आने का इस प्रतान में आलङ्कारिक वर्णन है। सज-धजकर बरात हाथी, घोड़े, पालकी, रथ, ऊँट, खच्चर आदि वाहनों से जनकपुरी के लिए प्रस्थान करती है। सर्वत्र उल्लास और सौंदर्य-छटा का वातावरण है। प्रस्थान के समय सभी शुभ सगुन आनन्ददायक वृत्त का संकेत देते हैं। मिथिला में पहुँचने पर बरात का भव्य स्वागत होता है। पारस्परिक अभिनन्दन, अभिवादन, शिष्टाचार से दोनों पक्षों में अमित उत्साह और आनन्द है। मुनि वशिष्ठ और विश्वामित्र के परामर्श से भरत-माण्डवी, लक्ष्मण-उर्मिला तथा शत्रुघ्न-श्रुतिकीर्ति के विवाह का निश्चय होने से सभी प्रफुल्लित हो उठते हैं।

विशेष : जोधपुर के नित्यकवि ने श्रीराम की बरात में हाथी, घोड़ों, रथ आदि के साथ ऊँट और खच्चरों का भी विस्तार से उल्लेख किया है। मोद-प्रमोद के वातावरण को और भी अधिक सरस बनाने के लिए उन्होंने ऊँट-खच्चरों का जो विनोदपूर्ण व्यंग्यात्मक वार्तालाप दिया है वह अप्रतिम और अद्‌भुत है।

व्यावहारिक काव्य-शास्त्र : १६वें पद्य में मत्तगयन्द सवैया की लाक्षणिक अभिव्यञ्जना मननीय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवाँ प्रतान

दुख को दुख मत मानिए, फिर सुख को सुख भी न ।
जान पड़ेंगे जानकी -पति तब निकटासीन ।।९।।

लो, पाठको ! अवध में अब घूम आवें,
सन्देश सुन्दर नरेश्वर को सुनावें ।
लेके उन्हें सह-बरात तुरन्त आवें,
श्री राम से विविध मोद धरे मिलावें ।।१।।

सोच ही रहे थे आज बारबार औध-राज,
क्यों न भला योगिराज पत्र भेज पाये हैं?
कैसी विधि बाल रहे, व्यर्थ ही तरक रहे,
दाहिने फरक रहे, अङ्ग न कि बाँये हैं ।

ऐसे काल द्वारपाल नम्रमुख पत्र डाल–
बोला झट भूमिपाल ! राज-दूत आये हैं;
मैथिलेश-हस्तलेख मानो दिव्य दैव-लेख
देख-रेख-साथ एक, सविवेक लाये हैं ।।२।।

पत्र पढ़ बार-बार नृप ने विचार सार,
हाथ से उतार हार दिया प्रतीहार को;
और उस ही के साथ, लाने उन्हें भूमिनाथ,
मान-बहुमान-साथ आप गये द्वार को ।
मित्र-सम मान कर आसन-विधान कर–
बार-बार जान कर पूछा समाचार को;
सुन-सुन राम-वृत्त ऐसे हुए भूप मत्त,
कथन-प्रवृत्त कवि पाये नहीं पार को ।।३।।

दूत बहुमान कर गुरुवर-धाम पर–
पहुँच प्रणाम कर उन्हीं के निदेश से;
रुचित उचिततर समय नियत कर
विविध विनय कर श्रीयुत गणेश से ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भेजे भव्य यत्र-तत्र राम के विवाह-पत्र
बुलाये सबन्धु मित्र देश-परदेश से,
बाट ही जोहते जैसे अड़ोसी-पड़ोसी-जैसे
पहुँचे पाहुने वैसे तुरत विशेष से ।।४।।

राम-ब्याह जानकर धन्य निज मानकर
उतर-उतर कर रुचिर विमान से;
अवध-प्रदेश पर उमँग विशेष धर
सुर नरवेष धर विविध विधान से ।
भक्ति-वश फूल-फूल रंग-संग झूल-झूल
बात-चीत मोद-मूल कर बहुमान से;
पूछ-ताछ छान-बीन पर पूर्ण सावधान
जान-पहिचान कर मिलते समान-से ।।५।।

★ ★ ★

बागों बीच कई, कई विपिन में, आम्रावली में कई,
वापी-तीर कई, कई भवन में, कुञ्जस्थली में कई ।
तालों के तट पै कई, फिर [१]कई देवालयों में, कई-
शाला में ठहरे कई जन, नदी तीराश्रयों में कई ।।६।।

★ ★ ★

तब और सगौरव बात तजी सब ने सब रात बरात सजी,
विधि ने रघुवीर-विवाह-उछाह-प्रवाह-छटा नव ही सिरजी ।
जिसका अविकार सुधार-प्रकार निहार स-तारक रात लजी,
वह कुक्कुट-कूक-कराह धरे सटकी झट, कीर्तन-[२]भेरि गजी ।।७।।
साज की साधना रात की रात में-आज की [३]कारु ने बात की बात में।
औध-भूपाल के बाल की [४]टाल की-पाल की नाल की रत्न-उज्ज्वाल की।।

★ ★ ★

सरस सिंदूर-चूर, कलित कपूर-पूर,
प्रवर अबीर-बूर आदि से रँगे हुए,
चन्द्र-सित-कान्तिवाले कनक-मुहाले-वाले
रदन-मुसलवाले मद में छके हुए ।

---

१ यह 'देनालय' का विशेषण है। २ सवेरे के कीर्तन का नगारा। ३ कारीगर ने। ४ चुनाव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर्ण-मणि-मण्डनाऽभिमण्डि-कर-दण्ड वाले
दान-वर्षि गण्डवाले रस में पगे हुए;
घूँघरु-झनकवाले सुभग शृङ्गार वाले
[1]नगों के नमूने मानो नाग थे सजे हुए ।।९।।

गजों पै जरी की झूलें देख देख नैन फूलें
उन्हीं के निवास-हेतु मानो छोल-दारियाँ;
जिन पर झारियाँ-सी कान्तिमय क्यारियाँ-सी
[2]मेरु-मठ-बारियाँ-सी सुभग अँवारियाँ ।
देख देवनारियाँ भी उरग कुमारियाँ भी
तज के विमान चाहें, सुख की सवारियाँ;
कौन सी विचित्र बात, मर्त्यलोक के सुजात
तरसें न एक साथ नर और नारियाँ ।।१०।।

तीव्रतर-वेगवाली गति के, प्रभावशाली-
[3]गन्धवह-गर्व-गाली तरल तुरङ्ग थे;
दीन-दशा-दोष-हीन भूरि-भय-भीत भी न,
पीन-देह शृङ्ग-हीन दीखते कुरङ्ग थे ।
लोम-प्रतिलोम-गति पञ्चविध-अश्वगति-
निपुण निपुणमति नानाविध-रङ्ग थे;
मान-अभिमानवान जान-पहिचान जिन्हें
वेगवान-अंशुमान-घोटक भी दंग थे ।।११।।

नवल धवलतर-अम्बर-सुकान्ति-धर
हस्तिरथ अश्वरथ गोरथ महान थे;
रामचन्द्र-ब्याह पर कई-एक रूप धर
[4]शीतकर भूमिपर मानो राजमान थे ।
अथवा बरात-संग यत्र-तत्र खेद-भङ्ग-
कारण वे श्वेतरंग चलते वितान थे;
अथवा नरेश-मित्र इन्द्र के [5]सुनीत तत्र
सर्वविध-शान्ति-सत्र विविध विमान थे ।।१२।।

---

१ पर्वतों के। २ सुमेरु पर्वत पर के मठों के झरोखे के समान। ३ पवन। ४ चन्द्रमा। ५ ले जाये हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपस की प्रीतिवाले परम प्रतीतिवाले
पौरुष-प्रकर्षवाले पीन पदचारी थे;
नायक-विशेष-द्वारा पाकर निदेश सारा
बाँधकर श्रेणि-धारा मुख्य-[1]मुद्रा-कारी थे ।
एक-सम पाद-[2]न्यास एक-सम [2]पाणिन्यास
एक-सम अङ्गन्यास एकवेष-धारी थे;
[3]कुलपति-मान-युक्त श्रीवशिष्ठ के प्रयुक्त
छात्रवास में नियुक्त मानो ब्रह्मचारी थे ।।१३।।

कर गणराज-ध्यान गुरु को रथस्थ जान
रथ को सुराजमान किया नरराज ने;
बात यह जानकर निज-निज यान पर
आसन विधान किया सकल समाज ने ।
जय रघुवंश-राज होंय सब सिद्ध काज
ऐसे जयनाद-ब्याज भट्ट लगे गाजने;
सलिल-तरंग-सङ्ग मिलित मृदङ्ग चङ्ग
हस्ति-हय-अंग-[4]संग वाद्य लगे बाजने ।।१४।।

मत्त मतङ्गज-मण्डल के मुख-मण्डन मानस-मोही-
श्रीशत्रुञ्जय कुञ्जर की छवि सब से आगे सोही ।
उसका शुण्डा-दण्ड-सुमण्डन मणिमय [5]चामीकर का,
दीप्यमान दीपक-समूह था सब बरात-छवि-भर का ।।१५।।
[6]सप्त-जयीभ-गणानुगत-द्विगुरुस्थिति मत्त गजेन्द्र सवाया
खूब रिपुञ्जय सोह रहा, मन मोह रहा, प्रभु का मन-भाया ।
एक न केवल इन्द्र-करीश्वर देख जिसे मन-बीच लजाया,
किन्तु सहस्थित दिग्गज-सप्तक अष्टम देख जिसे मुरझाया ।।१६।।

---

१ क्रिया की तर्ज। २ ये सब सिपाहियों के परेड की तर्जें हैं और यही ब्रह्मचारियों के कर्मानुष्ठान की। ३ कुलपति वह कहलाता है, जिसके पोष प्रबंध में सहस्रों ब्रह्मचारी शिक्षित हों। ४ बहुव्रीहि समास से 'संगी' अर्थ जानना। ५ सुवर्ण। ६ सात विजयी इभों=हाथियों के गण-समूह से युक्त और जिसके ऊपर द्विगुरु (दो महावत) बैठे थे। ऐसा मत्त गजेन्द्र (शत्रुञ्जय) सवाया दीख पड़ता था सबसे आगे शत्रुंजय उसके पीछे सात दिग्गज और ऐरावत यों हस्तियोजना थी। छन्द की ओर सात जयी (जय-सूचक) भगणों युक्त दो गुरु हों तो 'मत्त-गयंद' सवैया होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घन-घंटा-घोषों से घोषित करता राम-विजय को,
कण्ठ-कलित-कञ्चन-किंकिणिका-रव से ब्याह[१]-विषय को ।
नौ का अङ्क प्रदर्शित करके कर के [२]उत्तोलन से
अपनी नवम मध्य-दिग्गजता सूचित करता जन से ।।१७।।

कनक-किंकिणी-झंकृत पग को मन्द-मन्द रख भू पर,
[३]उसको कम्पित करता कुछ-कुछ शङ्कित अपने ऊपर ।
गति के वश कम्पित स्व-पुच्छ से निज अनुगामी गज के
हिलते हुए हस्त को हँसता [४]वह निकला सज-धज के ।।१८।।

मत्त-मतंगज-मण्डल-मध्यग गज पर किये सुखासन,
भरत भक्त-रवि भासमान थे मित्र-सरोज-विकासन ।
और-और गौरव-युत उनके मण्डलेश थे साथी,
देव-[५]दीप-सम दीप्यमान थे रिपु-तम के [६]उन्माथी ।।१९।।

थे शत्रुघ्न तुरगपर शोभित तुरग-यूथ में मुखिया,
सब सामन्त-संघ साथी था उनका सेवक सुखिया ।
सुभग सुमित्रा-सूनु सोहते सौम्य सोम-से दीखे,
सहचारी सामन्त सुख-प्रद सब नक्षत्र-सरीखे ।।२०।।

रजत-रेणु-भूतल-तड़ाग में नृप दशरथ रथ-चारी,
दीख पड़े तब [७]राजहंस ही सारासार-विचारी ।
परमहंस अवतंस वंश के उनके थे सहचारी,
गुरु वशिष्ठ जाबालि आदि द्विज [८]विशद-पक्ष शुचि भारी ।।२१।।

उत्तमाङ्ग-मध्याङ्ग-निम्नगत सदृश-वेश-रंग-रेखा-
सबने पदचर-पंक्ति-पंक्ति को तब [९]अशोक ही देखा ।
कुंकुंम-रंगी शिरोवस्त्र पर तुर्रा और किलंगी,
एक-एक के शिर पर सोहे ज्यों अनङ्ग रति-सङ्गी ।।२२।।

---

१ घण्टा के गम्भीर घोष और सुवर्ण की किंकिणी (घूँघरों) के मृदु कलरव के मिलान के कारण विवाह प्रसंग को। २ सूँड के उठाने से। उठाई सूँड '९' इस प्रकार 'नौ' के अंक सी लगती है, इसी से उत्प्रेक्षा की गई है। ३ भूमि को । ४ शत्रुञ्जय । ५ देवता को अर्पित किये दीप के समान। ६ नाशक । ७ राजाओं में श्रेष्ठ और एक प्रकार का हंस। ८ शुद्ध सहायवाले और सफेद परोंवाले। ९ शोक-हीन और रक्ताशोक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिपाल मुख्य पालकी रक्ष-जाल की चट चमके
चमका-चमका [१]चमका देती ज्यों कि दामिनी की दमके ।
कई पालकी कई नालकी चौपाल चंडोल कई,
सजा-सजा कर चलते थे फिर कोतल अश्व अमोल कई ।।२३।।

भूमि माप से मापते स्व-खुर-छाप से छाप ।
मिला टाप से टाप हय चले आप से आप ।।२४।।

गंभीर-गामी गज गर्व से चला, होना पड़ा घोटक को उतावला ।
बड़े चलें सत्पथ में स्व-रूप से, सहानुगामी लघु दौड़-धूप से ।।२५।।

गम्भीर-गामी रथ थें गजों के, थे शीघ्र-गामी रथ गो-हयों के ।
जैसा रहा हो गुणवान नेता, वैसा सदा आश्रित काम देता ।।२६।।

छटी छबीली छोलदारियों से छाये थे छकड़े,
उन्हें खींचने वाले खच्चर न थे खिलाड़ी, न-कड़े ।
उनके पीछे ऊँट-जूट निज टोली पकड़े-पकड़े-
निज नकेल से जकड़े भी थे चलते अकड़े-अकड़े ।।२७।।

कठिन कड़ाके की धूपों में नहीं कदापि तड़पते-
नयी हुई नीमों की गहनी टहनी तुरत हड़पते ।
मुख-बिल में से जीभ-सर्पिणी काढ़ कभी अरड़ाते-
पथ में पादप-पखेरुओं को ऊँट उड़ाते जाते ।।२८।।

पथ में थमते छिन कभी खच्चर से [२]रस जात ।
कन्धर ऊँट पसार यों कहता-सुनता बात ।।२९।।

आप खर-बीच हाय ! चकरा [३]द्विरूप-काय
न खर न अश्व किन्तु खच्चर कहाते हैं;
दोनों रव-रूप एक बनते खकार जैसे
दोनों के स्वरूप [४]रव बाप में समाते हैं।

---

१ चौंका देतीं। २ रस (आनन्द) के कारण उपजी हुई, (बात)। ३ द्विरूप (घोड़े और गधे के आकार के) शरीर-धारी होने के कारण चकराकर और द्विरूपकाय=डबल 'च' कराके अर्थात् 'ख-र' इनके बीच में दोहरे चकार के कराने से 'खच्चर' बनाता है। ४ अश्वगर्दभ के आकार और शब्द ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चला करे गोल-गाल किन्तु-छान-बीन-काल
गर्दभ-गुरु ही के कुमार कहलाते हैं;
घोटक का खोड़ चाहे खूब ही खुड़ाया करें
कभी तो दुलत्ती मार चित्त बहलाते हैं ।।३०।।

[१]कन्धर प्रलम्ब-लम्ब पाद अति-लम्ब-लम्ब
होठ अति-लम्ब-लम्ब पुच्छ कर्ण बावने;
एक ऊँट ही में भर सारे गुण कूट-कूट,
किया है कमाल किसी सु-महानुभाव ने ।
कानों को फुलाते मानो, गानों को भुलाते मानो,
ध्यानों को सुलाते मानो शब्द मन-भावने;
हौले-हौले हाँप-हाँप, भूमि मानो माप-माप,
कूबर निकाल आप चलते सुहावने ।।३१।।

कहाँ भीम नर-रत्न कहाँ फिर अरे! हिडिम्बा रात्रिचरी?,
दोनों की सन्तान घटोत्कच नर-राक्षसरूपाऽ[२]नुहरी ।
कहाँ गर्दभाचार्य कहाँ फिर वाजिराज की पटरानी?,
पर खच्चर कुमार होने थे, हा! विधि-गति किसने जानी?।।३२।।
कहाँ सरस सरयू-सरिता की हरित-तृणङ्कुर विपिन-छवी?,
कहाँ कँटीले पेड़ों की वह रूखी-सूखी मरु-अटवी ।
तृण का कवलन कहाँ, कहाँ फिर चिल्लाना पानी-पानी,
ऊँट-भाग्य में नहीं बदा था, हा! विधि-गति किसने जानी? ।।३३।।
काली काली, मद बरसते जो गजों की छटा थी,
सो भादों के जल बरसते बादलों की घटा थी ।
हौदों की जो उन पर छटा और अँवारियों की,
सो थी मेघान्तरित गिरि के शृङ्ग-अट्टालियों की ।।३४।।
रत्न-स्वर्णाभरण-मुकुटी भूप जो रूपशाली-
थे वे लीला-रस-रत वहीं देवता पुष्पमाली ।
ऐसी शोभा लख-लख अहो ! कुञ्जरारोहियों की-
हो जाती थी चिर-सहचरी पंक्ति वैमानिकों की ।।३५।।

---

१ अब खच्चर ऊँट को सुना रहा है। यों अगले पद्यों में भी एक-दूसरे की उक्ति-प्रत्युक्ति जानना । २ 'अनुहर' और 'अनुहार' दोनों उनिहार के वाचक हैं; अर्थात दोनों की आकृति से मिलता-जुलता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हर्ष-हेतु हिनहिंनाहटों से हटक-हटक हरिणों का हट्ट-
सब समुदित सामन्त-संघ का सटका साथ सप्ति-[१]संघट्ट ।
कहीं-कहीं पर कनक-किंकिणी-कणिका औ खसकी खुरताल,
पथ में पदचर-पथिकों को गति जतलाती उनकी [२]उत्ताल ।।३६।।

ठीक-ठीक ठाकुर लोगों ने ठसक ठानकर ठाट ठटा,
ठौर-ठौर ठट्टे, ठठौलियाँ ठनती थी, कोई न घटा ।
छरे छबीले छैलों की भी छाई थी छल-हीन छटा,
पुण्य-पात्र प्रेमी पथिकों से परम पूत था पन्थ पटा ।।३७।।

साफे सौरभ-सार सुन्दर सभी सोने-सरीखे सजे,
सारा वेष-[३]विशेष शेष पहिने, संसार-चिन्ता तजे ।
मानो यौवन-रूप-रूप [४]अलि थे, थीं जो कि मूँछें तनी,
यों प्रत्येक बरात के युवक की श्री देखते ही बनी ।।३८।।

अतिवृद्ध मुनि थे बानगी मानो पुरातन सृिC की,
उनकी बड़ी श्मश्रु-च्छटा [५]धारालि शम-रस वृिC की ।
दशरथ-नृपति की श्मश्रु-छवि मुक्ताभरण-किरणावली,
वा मोद-[६]धारायन्त्र की धारा वदन से बह चली ? ।।३९।।

प्रस्थान करते समय सब के हृदय की कलियाँ खिलीं
जल-पूर्ण घट शिर पर धरे पनिहारिनें संमुख मिलीं ।
शुभ स्वस्तिवाचन-पाठ करते वटुक आये सामने,
जय-गर्जना की जोर से निःशङ्क-[७]पण्ढ-ललाम ने ।।४०।।

हरिणावली हर्षित तथा [८]क्षेमंकरी थी दाहिनी,
निकली अहीरिन भी सुहागिन पूर्ण-दधि-घट-वाहिनी ।
[९]खादार्ह खेतों में खड़ा खर-यूथ बाँई ओर था,
रघुवीर-नीरद से खिंचा सब का मनोमय मोर था ।।४१।।

---

१ घोड़ों का समूह। २ उतावली। ३ खासी तौर (पहिने)। ४ बिच्छू (जवानी और सुन्दरता रूप)। ५ धाराओं की पंक्ति। ६ आनन्दरूप फव्वारा। ७ श्रेष्ठ साँढ़। ८ एक प्रकार की चिड़िया। ९ खाद देने योग्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस ओर यों शुभ शकुन ही ले जा रहे थे [१]जन्य को,
ज्यों पूर्व-पुण्य पवित्र पथ पहुँचायँ जग में धन्य को ।
कुछ साथ के प्रान्तिक नृपों ने प्रान्तिकामन्त्रण दिया,
पर राम-दर्शन-शीघ्रता ने विवश सब को कर लिया ।।४२।।

तालों के तट पै तमाल-तरु की छाई हुई छाँह में,
पानी पीकर पान्थ ये पवन को सेते हुए राह में ।
पद्मों की छवि देखके ठहरना ज्यों ही लगे ठानने,
त्यों ही प्रस्थित ही इन्हें कर दिया रामानन[२]-ध्यान ने ।।४३।।

[३]केलि-कला-कौशल के कारण कई-कई कौतुक करते,
हर्ष-हेतु हँसियों में हँसते हार-हानि हरते-हरते ।
कहीं-कहीं डलवाकर डेरा स्वेच्छाहार-पान करते,
पहुँचे मिथिला-निकट बराती रघुवर-दर्शन-रुचि धरते ।।४४।।

मिथिला के माण्डलिक महीपति सुन्दर साज सजाये,
तथा सचिव सामन्त समुदित [४]समुदित संमुख आये ।
स्व-सौजन्य से जन्य-जन्य को जन्य-वास में लाये,
सहविधि सविध सर्वविध-सुविधा-युत डेरे डलवाये ।।४५।।

जब राघव-पूर्ण-निशाकर आकर मत्तगजोदय-शैल-चढ़े;
पुर-अम्बर से सु-स्वयंवर-माल्य-[५]शुचि-द्युति-डम्बर-साथ कढ़े ।
तब रम्य-बरात-पयोधि-उमङ्ग-तरङ्ग-प्रसङ्ग-अभङ्ग बढे;
वह दर्शक-हर्ष-कथा न बने, [६]रस-वर्षक की छवि कौन पढ़े ? ।।४६।।

अभिवन्दन औ अभिनन्दन से उनका उपचार[७]-कलाप हुआ;
अतिमोद-विनोद-कथारस से सब का तब मेल-मिलाप हुआ ।
चिर-तर्षक-दर्शन-चित्त-मरुस्थल में घनवर्ष [८]दुराप हुआ;
तब ही उसमें सुमहाफल-[९]बीज सुखामृत-बीज-[१०]प्रवाप हुआ ।।४७।।

---

१ बराती। २ रामचन्द्रजी के मुख की स्मृति ने । ३ हँसी करने की युक्ति चातुरी । ४ इकट्ठे। ५ सुन्दर स्वयंवर की (मौखिक) माला की श्वेत कान्ति आ डम्बर=गौरव के साथ । ६ आनन्द बरसाने वाले (रामचन्द्रजी) । ७ व्यवहार-समूह का प्रदर्शन । ८ दुर्लभ । ९ कारण । १० सुखामृत के बीज की बौनी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठ कोशल-राज ने कौशल से शिर कौशिक की पद-रेणु लगाई;
दस-बीस-प्रकार अशीष मुनीश ने पूर्व, कहा कि महीश! बधाई ।
कुल-चन्दन आपके नन्दन ने हरिचन्दन की जय-सौरभ पाई;
जिससे कि बनी इस [1]नन्दन की विकसी, उस नन्दन की मुरझाई ।।४८।।

दशस्यन्दन ने रघुनन्दन को उर में शुभ-चन्दन-तुल्य लगाया,
विरहानलं-[2]नोदक मोदकथा-[3]नयनोदक से निज ताप बुझाया ।
फिर जो मुख-नीरज से धर धीरज, स्वस्ति-वचोमकरन्द बहाया;
वह नन्दन-[4]मत्त-मिलिन्द मिले कढ़ होठ-दलों तक ही रह [5]पाया ।।४९।।

★ ★ ★

सौमित्रि ने [6]जनक की रुचि जान प्यारी-
प्रस्थान से धनुष-भङ्ग-क्रियान्त सारी ।
श्रीराम की जयकथा क्रमशः उचारी,
त्यों ही छिड़ी [7]समभिमेलन की तयारी ।।५०।।

नवनीत-शीत पुनीत प्रीत विनीत विकसित दृष्टि से-
हार्दिक बरसते प्रेम को संतत सुधारस-वृष्टि-से ।
बढ़कर जनक-दशरथ परस्पर पास इन्द्रोपेन्द्र-से,
दाता-[8]ग्रहीता दृढ़ मिले नवनीरधर-शैलेन्द्र-से ।।५१।।

मिलाप में था त्रुटिमान हार [9]हा!, नहा रहा जो प्रमदाश्रु से [9]अहा ।
मानो कि दोनो झट एक ही बने, कही [10]बने प्रीति नहीं, रही [10]बने ।।५२।।

---

१ इस नन्दन (पुत्र) की बनी (वधू=सीता) खिल गई, उस नन्दन (स्वर्गीय वन) की वनी=छोटा वन, मुरझा गई। २ मिटाने (बुझाने वाला)। ३ मोद-कथा=आनन्द समाचारों के सुनते समय जो आनन्द का आँसू बहा, उससे । ४ पुत्र (राम) रूप मत्त भौरे के मिलने पर। ५ अर्थात् हर्ष के मारे पूरा न बोल सके । ६ पिता दशरथ की। ७ समधी-संमेल। ८ देने वाले (जनक) और लेने वाले (दशरथ)। ९ त्रुटिमान (टूट जाने के कारण टोटे वाला) कहे जाने के कारण खेद-सूचक 'हा' प्रयुक्त हुआ है। आगे आनन्दाश्रु से नहा लेने के कारण आनन्दसूचक 'अहा!' प्रयुक्त हुआ है। १० यद्यपि मुहाविरे की दृष्टि से यह असंगत है, तथापि जनक-दशरथ के आनन्द के साथ जो कवि को यमकमय कहने का आनन्द आ रहा है, उसमें बाधा पड़ जाने के कारण यों ही कह डालना उचित समझा गया। मुँह से कही गई प्रीति नहीं बनती; किन्तु रही हुई बनती है; यह भी झलकाया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम हेम [१]सममात्र थे यदपि जनक-उपहार ।
पर दशरथ को प्रेम बहु लगा, अन्य तो भार ।।५३।।

मिलनोपहार प्रकार शिष्टाचार-सार [२]विदेह का-
उपचार का न प्रचार, पर उद्‌गार हार्दिक स्नेह का ।
यों बार-बार उचारकर दशरथ खिले, [२]वे भी खिले,
जब मन मिले, तब [३]फिर मिले, फिर ये मिले, फिर वे मिले ।।५४।।

बोले कोशलराज यों, धन्य जनक [४]आर्येश ! ।
[५]बोले श्रीगणेश ही में अहो ! इतना प्रेम-विशेष ।।५५।।

तब उत्तर में जनक ने कहा कि कोशलराज ! ।
प्रथम मेल ही में दिया हृदय आपने आज ।।५६।।

लख वशिष्ठ संमेल चौगुना बोले, धन्य ब्याह का खेल,
श्रीगणेश ही में दिखलाते धन्य एक पर [६]त्रिगुण सुमेल ।
कौशिक बोले, ये रामानुज हों यदि सीतानुजा-समेत,
तो यथार्थ है मुनि-मन-भाया विधि का किया मिलन-संकेत ।।५७।।

मानो दोनों मुनिवरों मन्त्रित दोनों भूप ।
बोले साथ कि, विधि चले मुनि-मन के अनुरूप ।।५८।।

वशिष्ठ बोले, स्मरण कीजिए, जनक ! [७]पत्र का लेख-प्रकार,
'[८]सदाचार-नन्दन-हित करिए, सदाचार-कन्या-स्वीकार' ।
विधि ने प्रथम सुयोग बनाया, तब ही मुनि-मन को भाया,
हँसकर बोले जनक, लेख यह कौशिक ही ने लिखवाया ।।५९।।

* * *

---

१ परिणाम में बराबर अर्थात् जनक का जितना प्रेम था उतना ही उपहार में सुवर्ण अर्पण किया गया; दूसरे 'प्रेम-हेम' दोनों की मात्रा बराबर हैं। २ जनक । ३ मन मिल जाने के कारण दोनों साथ मिले । ४ आर्यों के स्वामी और आर्या दुर्गा के पति (शिव) । ५ प्रारम्भ ही में और गणपति ही में; यहाँ पर सब भाईयों में ज्येष्ठ राम को ध्वनित किया है। उन्हीं के कारण तो यह प्रेम है । ६ एक के बाद तीन बार मिलना; और निर्गुण राम में सत्वादि तीन गुणों के मेल। ७ जो दूतों द्वारा भेजा गया था। ८ सचरित्र और सदा चार (नन्दन-पुत्रों के लिए) यहाँ दूसरे अर्थ में पहले 'सदा' का अर्थ है सनातन और दूसरे 'सदा' का अर्थ सदा के लिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृप ने भरत-लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को निज ज्ञाति की,
दे माण्डवी औ उर्मिला, श्रुतकीर्ति कीर्ति-ख्याति की ।
यह बात देखी थी जिन्होंने और निज कानों सुनी,
पाई उन्होंने हर्ष की निधि चौगुनी क्या, सौगुनी ।।६०।।

अनुरूप बरात-मँढैत तथा अनुरूप वधू-वर का मिलना,
अनुरूप गुण स्थिति का मिलना, अनुरूप तथा घर का मिलना ।
फिर भी अति-दुर्लभ है न यहाँ अनुरूप परस्पर का मिलना,
पर हैं अति-दुर्लभ आपस में सब सज्जन-[१]संसर का मिलना ।।६१।।

★ ★ ★

संबन्धी मिलना सुलभ, दुर्लभ [२]सम-धी-मेल ।
धन्य-धन्य दशरथ-जनक, सकल [३]सु-विधि का खेल ।।६२।।

सुमन्त्रियों ने नृप के [४]सुमन्त्र से [५]सुमन्त्र से मन्त्र विचार यत्न से ।
सुझा मुहूर्त-[६]स्थिति खूब रात की बरात की प्रस्थिति-हेतु बात की ।।६३।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता नवम प्रतान समाप्त ।

---

१ संसार। २ जिनकी पारस्परिक मति एक-सी हो, ऐसे का मिलना। ३ सौभाग्य। ४ राजा जनक की सलाह से। ५ समुन्त्र नामक दशरथ-मंत्री । ६ करग्रहण मुहुर्त का होना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

दसवाँ प्रतान

प्रवेशिका

इस प्रतान में कवि ने श्रीराम की बरात-शोभा एवं बरातियों की उमङ्ग और सजधज का आलङ्कारिक शैली में वर्णन किया है। जनकपुरी के नर-नारी इस बरात को देखने के लिए उमड़ पड़ते हैं। मिथिला में जिस मङ्गल-मण्डप की रचना की गई है, वह वर्णनातीत है। श्रीराम द्वारा तोरण-वन्दन होता है। महिलाएँ मधुर गीत गाते हुए श्रीराम की आरती करके उनका स्वागत करती हैं। माङ्गलिक मुहूर्त में सीताजी के साथ श्रीराम अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। सप्तपदी का उच्चारण होता है। श्रीराम सीताजी की माँग में सिन्दूर भरते हैं। इसके बाद इस प्रतान में कुँवरकलेवा का अत्यंत विनोदपूर्ण शैली में चित्रण है। रात्रि-भोजन के समय विविध व्यञ्जनों की विपुलता है। कवि के शब्दों में 'अन्नकूट रचना भी तब से विधि ने सविधि प्रचारी'। वैदेही की भावपूर्ण विदाई, पुत्री के लिए राजा जनक की सीख, वैदेही का पशु-पक्षी, लता, वृक्ष जैसे-समस्त प्रकृंति से प्रेम के साथ बरात की विदा इस प्रतान के वर्ण्य विषय हैं।

विशेष : स्थानीय रंजन-पहनावे में पगड़ी राजस्थान की प्रमुख विशेषता है। कवि ने श्रीराम की बरात में बरातियों की पगड़ी का जो वर्णन किया है, वह अद्‌भुत है :-

'नारङ्ग-रङ्गी पगड़ी सुढंगी, तुर्रा-कलङ्गी-मणि भूरिरङ्गी ।
जङ्गी रहा रत्न-किरीट सङ्गी, क्या थी अनङ्गी शिर-साज चङ्गी ।।'

शब्द गाथा : भारत को परिभाषित करते हुए कवि का कहना है:-

'सारा भारत है स्वदेश भरत-द्वारा बसाया यही'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दसवाँ प्रतान

रिक्त सभी संसार है रघुवर से अतिरिक्त ।
यदि तन्मय ही समझ लें, सबको, सभी अरिक्त ॥१०॥

नारङ्ग-रङ्गी पगड़ी सुढंगी, तुर्रा-कलंगी-मणि भूरिरङ्गी ।
जंगी रहा रत्न-किरीट सङ्गी, क्या थी अनङ्गी शिर-साज चङ्गी ॥१॥

सचन्द्र तारावलि-युक्त पीली, मानो उषा की [१]सुरवीथि नीली ।
थी राम की सीस-छटा छबीली, [२]पी ली स्त्रियों ने अँखियों नशीली ॥२॥

मोती-जड़ी काञ्चन की लड़ी का, जामा जरी का [३]पट-रेशमी का ।
गुलाब की कान्ति धरे, न फीका, था [४]एक टीका कर-चातुरी का ॥३॥

क्या रीति पीताम्बर की सँवारी, हारी जिसे पा बिजली बिचारी ।
सदैव जारी छबि क्योंकि भारी, प्यारी किनारी-छबि रक्त सारी ॥४॥

[५]भट्टारकों का कर दाँत खट्टा [६]पट्टा बना जो कटि का दुपट्टा ।
[७]पट्टा जयों का वह हीन-[८]बट्टा; कन्धे दुपट्टा फिर से झपट्टा ॥५॥

स्वभाव सीधा, [९]व्यपदेश सीधा, आदेश सीधा, वर वेश सीधा ।
केशालि बाँकी, फिर भौंह बाँकी झाँकी न आँकी किसने वहाँ की ? ॥६॥

राम [१०]बने अभिराम बने, फिर एक हुए शत काम बने क्या ?,
रंग-बिरंग-प्रसङ्ग जतायँ, अहो ! नभ में सुरचाप तने क्या ? ।
नील तनू-नभ में मुकुटेन्दु लसे, उडु मौक्तिक संग ठने क्या,
वा नव-यौवन [११]के वन के बनके यह वल्लि-प्रतान तने क्या ? ॥७॥

---

१ आकाश । २ पान करली । ३ पटों में रेशमी अर्थात् रेशमी कपड़े का । ४ तिलक अर्थात् कर-चातुरी को प्रदीप्त करने वाला। ५ उन्मत्त राजाओं का। ६ बन्धन-पट्ट । ७ अधिकारपत्र। ८ बिना बट्टे (कसर) का। ९ नाम-निर्देश अर्थात 'राम' कितना सीधा है। १० वर (दुल्हा)। ११ नवयौवन-रूप बन के ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीशत्रुञ्जय-नाम मत्त-गज पै प्यारी सवारी किये,
सोहे वे वर-राज साथ अपने सारे बराती लिये ।
कैसे दर्शक लोक के हृदय को सौन्दर्य से मोहने,
ज्यों तारों युत पूर्णचन्द्र निकले पूर्वाद्रि पै सोहने ।।८।।

कली-कली मन की खिले, चली-चली स्त्री-जाति ।
गली-गली में कर रही भली-भली यह ख्याति ।।९।।

★ ★ ★

निरख सखि ! राम-बरात-सवारी;
लोचन-लाभ लूटने आये पुर के सब नर-नारी ।।
कनकविभूषण जरी-झूल पर रत्न-कनक-अंबारी;
हेम-विमण्डित-दन्त करी पर बने बिराजे भारी ।।
त्रिजग-विभूति साधने मानो इन्द्र सजे गज-चारी;
मुनि-पति नृपति सचिव सामन्तादिक सब बारी-बारी ।।
सङ्ग-सङ्ग चलते उमंग से वेष-विभूषा-धारी;
वीणा वेणु बंसरी ढोलक बाजे विविध-प्रकारी ।।
गणिका-गण गाता गुण मङ्गल, पञ्चम-स्वर सुखकारी;
रहा करे रघुवर-बरात यह नित्य नैन-पथ-चारी ।।१०।।

★ ★ ★

सुतुरङ्ग-तुङ्ग-तरङ्ग-युत मातङ्ग-[१]मकरोद्‌गाहिनी,
रथ-जलरथावलि-शोभिनी [२]पदचर-पयश्चर-वाहिनी ।
दशरथ-भगीरथ-भूप राम-बरात-गङ्गा ला रहे,
'जय जानकी-जीवन' यही जग में सुजन जस गा रहे ।।११।।
साङ्गोपाङ्ग सु-रूप ईश-वर की संप्राप्ति से धारती,
लीला से पद रम्य-रम्य रखती ज्यों सुन्दरी [३]भारती ।

---

१ साथी-रूप मगरों से रोबदार २ पदचररूप जलचरोंवाली। ३ 'सुन्दरी' और 'भारती' दोनों आपस के विशेषण और विशेष्य भी हो सकते हैं; अतएव सुन्दर वाणी के पक्ष में और भारत की सुन्दरी=स्त्री के पक्ष में तथा प्रस्तुत बरात के पक्ष में यह पद्य अपना भाव प्रकट कर रहा है। ईश=मुखिया वर=दुल्हा; ईश-वर=ईश्वरका प्रसाद। पद=कदम और वाक्य-विन्यास। सालंकार=भूषणों से और उपमादि अलंकारों से सहित। द्विजेन्द्र से=वशिष्ठ से और द्विजेन्द्र=द्विजवर्ण में श्रेष्ठ किसी महापुरुष के कारण और द्विजेन्द्र से=चन्द्रमा जैसे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सालंकार द्विजेन्द्र से स्वमुख की शोभा दिखाती भली,
राजद्वार [१]अबारपार पहुँची श्रीराम जन्यावली ॥१२॥

★ ★ ★

मिथिला के मङ्गल-मण्डप की मुझ से हो न बड़ाई,
स्फटिकाङ्गण में नीलम की थी जागृति-जनक जड़ाई ।
मानो सित सुरसिन्धु-सोत में यमुना-संगम नीला,
वा भूमी का हृदय हुआ वह सीता-राम-रँगीला ॥१३॥

पन्ने के केले कल्पित थे उसके कोने-कोने,
पद्मराग के दाडिम-कुल को छेड़ा कहीं शुकों ने ।
कहीं-कहीं हीरक-दीपक के पास पत्तङ्ग फटकते,
[२]कृतक आम्र-पल्लव-पुञ्जों पर पिक भी कभी भटकते ॥१४॥

कनक-भित्ति पर रंग-बिरंगे जटित रत्न-मण्डल से-
चित्रित बेलों पर फबते थे फल दल सुमन असल-से ।
पद्मराग के चञ्चु-पुटों युत हरितमणी-शुक-माला-
करती अहो ! विश्वकर्मा के मन को भी कुछ [३]काला ॥१५॥

प्रथम प्रीतिमय पान पिलाकर एला, पान, सुपारी,-
[४]स्त्रग, गन्धोपचार से सब को किया सुमानित भारी ।
जनक-राज-जन-करकमलों में कनक-रूप्यमय झारी,
दीख पड़ी, ज्यों कमलों पर हों चक्र-हंस छबि-कारी ॥१६॥

रघुवर-द्वारा किया गया तब विधि-युत तोरण-वन्दन,
सखियों ने बरसाये सकुसुम मृगमद-कुंकुम-चन्दन ।
महिलायें हिल-मिल कर झिल-[५]मिल-शुभाऽऽरती के द्वारा,-
करने लगी मधुर गानों से वर का स्वागत सारा ॥१७॥

---

१ आदि से अन्त तक; यह शोभा दिखाने में क्रिया-विशेषण है। २ बनावटी । ३ इस प्रकार की कारीगरी के देखने से उसका भी मन मैला हो गया; फिर हरी चीज का दूसरे को काला कर देना विचित्र बात है। ४ पुष्पमाला। ५ हिलती हुई रोशनी की माङ्गलिक आरती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैथिल महाराज की महिषी मुदित मैथिली-माता--
सात सुहागिन सुन्दरियों के साथ सुनैना ख्याता ।
निरख-निरख [१]कर परख-[१]परखकर वर को मुद में फूली,
नीलों नीलम बार-बार कर बार-बार में भूली ।।१८।।

आये ब्याह-वितान में वर, गये सारे [२]उसी स्थान में,
वेदी-कर्म-विधान में द्विज लगे, पूजाद्यनुष्ठान में ।
कान्तायें शुभ गान में, जनक जी कन्या-मणी-दान में,
साक्षात् वाक्पति ज्ञान में गुरु लगे गोत्र-[३]द्वयाख्यान में ।।१९।।

★ ★ ★

दीप्ताग्नि ने दमकते निज-दीप्ति-द्वारा,
सीता-समेत रघुनन्दन को निहारा ।
लेनी पड़ी झट उसे निज-साथ [४]स्वाहा,
स्वामी-समान सजना सबने सराहा ।।२०।।

आचार्य ने जब मुहूर्त-सुयोग पाया,
श्रीराम से जनकजा-कर को गहाया ।
सोहे मिले सुभग दंपति-पाणि कैसे,
हो दीर्घ-काल-वश मित्र-मिलाप जैसे ।।२१।।

★ ★ ★

की जानकी के साथ रघुवर ने कृशानु-प्रदक्षिणा,
जैसे महीधर-कुल मही के साथ भानु-प्रदक्षिणा ।
दर्शक-नयन उस युगल के देता समन्त परिक्रमा,
भू-चक्र के चहुँ ओर ज्यों चक्कर लगाता चन्द्रमा ।।२२।।

यों दर्शकों के राम-सीता-भ्रमण वह शुभ-[५]पर्व था,
न कि ग्रहण-नामक निग्रहण का नाम था, यह गर्व था,
बोले सभी मिल साथ जब तक सूर्य-शशि-भू-योग है,
तब तक जनकजा-राम के सौभाग्य का उपभोग है ।।२३।।

---

१ निरखना-परखना उस समय की एक रीति है। २ समान-प्रदेश में। ३ वर-कन्या के शाखोचार में। ४ 'स्वाहा' अग्नि प्रिया कहलाती है; तात्पर्य यह कि अग्नि में स्वाहा-स्वाहा होने लगी। ५ माङ्गलिक उत्सव और अमावस का पूनो का योग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानी तो समझे कि अग्नि भगवान् सद्ब्रह्म अव्यक्त हैं,
सीता-राघव पुरुष-प्रकृति हैं, जो सृष्टि आसक्त हैं ।
वा ऐसे कहिए कि, ब्रह्म फिरते माया-महाचक्र में,
आहा ! दर्शक-नैन जीव ममता पाके पड़ा चक्र में ।।२४।।

[१]प्रेमोन्मग्न विचारते जनक तो वैराग्य-भावों भरे,
साक्षीभूत शुभाग्नि विश्वपति के होते हुए भी अरे ! ।
ज्यों-ज्यों बुद्धि फिरे तथैव फिरता देही, यही सार है,
साक्षात् दर्शक-नेत्र-रूप उसको घेरे अहंकार है ।।२५।।

★ ★ ★

न परमेश्वर-निश्चय से टलूँ; निगम-आगम के पथ में चलूँ ।
यह सनातन धर्म गहे रहूँ, विपद का [२]पद कालिक भी सहूँ ।।२६।।

विनय-भाव रखूँ गुरु-लोक में, न निज धैर्य तजूँ कुछ शोक में ।
निज [३]प्रियादर में रत ही रहूँ, विकट संकट संगम में सहूँ ।।२७।।

स्व-गुरु के [४]अरुणोदय से लसी-यह सु-[५]सप्तपदी मकरन्द-सी ।
वर-वधू-मुख-पङ्कज से गली, पर सभी रस-भीतर थे अली ।।२८।।

★ ★ ★

सिन्दूर भरते राम कर से जानकी की माँग में,
बालार्क अरुणाभा स्वकर से ज्यों [६]उषाम्बर-भाव में ।
श्रीराम के संमुख सभी की [७]माँग भर जाती सभी,
चाहे कदापि अजान की हो, [८]जान की हो वा कभी ।।२९।।

यों ब्याह होने के अनन्तर वर-वधू-रस-रीतियाँ-
करने लगीं कुल-युवतियाँ गाती हुई शुभ-गीतियाँ !
आनन्द की थी वह घड़ी सब के लिए मन-भावनी,
[९]हरिगीति-सम सुख-दायिनी प्रतिपद अतीव सुहावनी ।।३०।।

---

१ पुत्री और जामाता के प्रेममय दृश्य से बाहिर निकले। २ अर्थात् आक्रमण । ३ वधू की ओर से प्रिय का आदर और वर की ओर से प्रिया का आदर । ४ गुरु-रूप अरुणोदय के कारण शोभा पाई, अर्थात् गुरु-प्रेरणा से कही गई। ५ प्रत्येक चरण से कही गई और अन्तिम दो चरणों से कही गई, अर्थात् घोर संकट में भी प्रियादर न छोड़ा जाय। ६ उषा समय के आकाश-प्रदेश में । ७ बालों की टाल और प्रार्थना । ८ जान कर की गई और जानकी-सीता ९ छन्द का नाम भी सूचित किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौसल्या के कुँवर कुँवर युत कुँवर कलेवें—
बैठे, दर्शन-लाभ वहाँ का कौन न लेवें? ।
मणिमय गोल विशाल पीठ पर थाल सजाया,
जिसमें पहले से था मेवा [१]कृतक सुहाया ।।३१।।

कहा गया फिर कुँवर महोदय ! करें कलेवा,
कहा उन्होंने कुछ निकालिए पहले मेवा ।
राज-कुँवर ने कहा, वृथा है कुछ भ्रम करना,
परोसना है कार्य हमारा न कि कम करना ।।३२।।

कम न करें, हों स्वयं सम्मिलित, आप बटालें,
आनाकानी किये, भला ! हम कैसे टालें? ।
भला ! आ रहा यही महाशय!, तुरन्त आया,
यों कह उसने अपना पीछा छुपे छुड़ाया ।।३३।।

झेंप इसी पर किसी पुरुष ने थाल परोसा,
ठगे जायँ रघुवंशी ऐसे न हो भरोसा ।
'थाल बाँधना' आदिक पर फिर साहस, किसका?,
जो बाँधे, वह स्वयं बँधे, जैसे वह खिसका ।।३४।।

तब भी रघुकुल-भूषण का सब का मन रखना,
अति-अभीष्ट था, नहीं किसी को [२]विमन निरखना ।
जिसकी जैसी रुचि लख पाई, उसको वैसे,
किया सु-रञ्जित, सुरवर का सुर-पादप जैसे ।।३५।।

मनोमोहिनी मन्द-मन्द मुसकान-माधुरी—
बरसाते फिर दरसाते जित [३]नर्म-चातुरी ।
सर्व समीहित साध-साध कर सब की सेवा,
करते प्रभु ने सरस बनाया कुँवर-कलेवा ।।३६।।

सीता की सर्व सहेलियाँ देतीं प्रश्न-पहेलियाँ ।
श्रीरघुवर उत्तर दे रहे करते कौतुक-केलियाँ ।।
चखते पीते निरखते रखते सब की बात ।
कुँवर-कलेवा कुँवर ने मुदित मनाया प्रात ।।३७।।

★ ★ ★

१ बनावटी। २ उदास । ३ हँसी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विज्ञप्ति आई फिर क्षिप्र [१]भात की, प्रभात की तृप्ति-कथा नहीं थकी ।
न कन्यका-पक्ष करे विलम्बना, [२]विडम्बना का भय है उसे घना ।।३८।।

नभ में अब रात की तयारी, मिथिला में तब भात की तयारी ।
चमके जब चाँद और तारे, अति सोहे वरराज जन्य सारे ।।३९।।

[३]अविलुप्त यहाँ-वहाँ [४]तुषारा, चलती [५]दिव्य-नदीय अम्बु-धारा ।
इनने उनने विकार खोये, सरस [६]स्पर्शन से [७]स्वपाद धोये ।।४०।।

यह भोजन-हर्ष में छके थे, वह तो केवल भोज को तके थे ।
यह नर्म-समेत बोलते थे, वह मौनी निज भाग्य तोलते थे ।।४१।।

यह बात-[८]प्रमोद लूटते थे, वह भी बात-[८]प्रमोद लूटते थे ।
यह थे भर-पेट बात में भी, उनका पेट [९]भरा न वात में भी ।।४२।।

चौड़े चौरस चौक थे, चमकती थी चाँद की चाँदनी;
स्तम्भों पै मणि-दीपियाँ दमकतीं सौन्दर्य-संपादनी ।
प्रत्येकासन के समक्ष रजत-स्वर्णादि के थाल थे,
वे [१०]मानो कनकाब्ज-कैरव-भरे उल्लास के ताल थे ।।४३।।

सारा चौक सुहाना प्रथम था विप्रावली से भरा,
श्रीरामासन से सुशोभित नृप-क्षत्रादि से दूसरा ।
व्यापारी वर-वेश वैश्यकुल से आपूर्ण था तीसरा,
चौथा ठेलम-ठेल ठाट ठटता सेवक जनों से भरा ।।४४।।

[११]कला-कराये [१२]कलधौत-थाल थे, भरे हुए सर्व-प्रकार माल थे ।
शाकों भरी साथ लगीं कटोरियाँ, ज्यों सगुणी के गुणिनी किशोरियाँ ।।४५।।

निपुण सुनैना-नैन की [१३]संज्ञा पा सुविनीत ।
स्त्रीजन ने जब स्फुट किया भात-बन्ध-रस-गीत ।।४६।।

---

१ बरात का रात्रि-भोजन। २ लोकोपहास । डकार-लकार और वकार-बकार यमक, श्लेष तथा चित्र में एक-से हैं। ३ लगातार । ४ ठंडी। ५ स्वच्छ सुन्दर और स्वर्गीय। ६ स्पर्श-पूर्वक और पवन के द्वारा । ७ अपने पैर और किरण । ८ बात=वार्ता और बात=पवन ('ब' और 'व' अभिन्न माने गये हैं)। ९ अर्थात पवन-पथ में रहते नहीं थके । १० चौक। ११ जिन पर नक्काशी का काम कराया हुआ था। १२ चाँदी-सोने के। १३ इशारा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तब स्मितमुख अवधेश का पाकर भ्रू-संकेत ।
पढ़ा रसिक युव-बन्धु ने [1]मोचन मोद-समेत ।।४७।।

★ ★ ★

राम-संमुख भात छूटा ।
भूप दशरथ के भवन में राम जब [2]सन्तान जनमे ।
जानकी सुर-बेल जनमी जनकपुर के दिव्य-वन में ।।
औध-मिथिला-बन्ध-गृह का बन्दिका-संघात छूटा ।।४८।।

योग पा नरसिंह ने मुनियज्ञ-रक्षा-हेतु सारे ।
शान्ति-बारक विघ्न-कारक दुष्ट राक्षस-[3]नाग मारे ।।
फिर उन्हीं के बल यहाँ पर श्रीमहेश्वर-चाप टूटा ।।४९।।

'राम! जय जय' यों सभा ने कह स्वयंवर को सराहा ।
जानकी को राम ने परिपूर्णता के साथ ब्याहा ।।
सर्वविधि भण्डार छूटा, लोक ने आनन्द लूटा ।।५०।।

मैथिलेश-निदेश के बल औधपति-श्री है अटूटा ।
मैथिल-श्री-नीवि-बन्धन [4]प्रिय-मिलन-समकाल टूटा ।।
गान के बल गायनी का बन्ध से उर-[5]जात छूटा ।।५१।।

स्पर्श भी न हुआ किसी का नर्तकी का हार टूटा ।
स्वेद के बल चोलिका का तर हुआ सब बेल बूँटा ।।
लोल लुण्ठक लोचनों ने रूप-निधि का रूप लूटा ।
राम-सम्मुख भात छूटा ।।५२।।

---

१ भात-छुड़ाना। २ संतति और 'सन्तान'-नामक सुर-वृक्ष । ३ राक्षसरूप हाथी। ४ वर-पिता के साथ सम्मेलन करने पर कन्या-पिता उसकी द्रव्य-थैली का मुँह बन्द कर देता है और अपनी थैली को खुली कर देता है, इसी विषय को कवि ने यों वर्णित किया है । 'नीवि-बन्धन' के दो अर्थ हैं-थैली का बन्ध और स्त्री के कटि-वस्त्र का बन्धन। यहाँ पर प्रिय (दशरथ) के संग में मैथिलेश की लक्ष्मी के नीविबन्धन का टूटना ध्वनित है। ५ स्तन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनी अति-अद्भुत भात-तयारी;
मोदक [१]मगद जलेबी फेनी घेवर वर पँचधारी ।
कलाकन्द मनमोहन जामुन आदि मिठाई सारी;
पायस मधुर मलाई खोआ दही रायता भारी;
पूरी परम कचौरी पर्पट सेवें न्यारी-न्यारी ।
सोआ पालक मेथी [२]सूरन आदि विविध तरकारी;
चारु अचार चटनियाँ रञ्जन व्यञ्जन विविध प्रकारी ।
अन्नकूट-रचना भी तब से विधि ने सविधि प्रचारी;
एक-एक को चख-चख कर ही तृप्त हुए नर-नारी ।
गणिका-गण गाता गुण-गर्भित गाली स्वर-अनुसारी;
कौन बखान सके मिथिला की भात-छटा वह सारी ।।५३।।

दे वसुधा को धन्यता देव-सुधा से [३]दृप्त ।
जीमन से वे तृप्त थे, न कि जी-मन से तृप्त ।।५४।।

स्व-फल खिलाता नित नये ज्यों न थके वन देश ।
माल खिलाते नित-नये त्यों न थके मिथिलेश ।।५५।।

चतुर-सभा, गायन-सभा, [४]विद्याधारि-विनोद ।
समय-समय होते रहे, था सर्वत्र प्रमोद ।।५६।।

दशरथ के अति-विनय पर देते कथमपि ध्यान ।
किया जनक ने मन-भरे पहिरावन-सम्मान ।।५७।।

वेष धरे सबधूक वहाँ रघुनन्दन आदि विराजित कैसे,
चारु चतुः [५]श्रुति से चमके चतुरानन के चतुरानन जैसे ।
मस्तक-वेश-विशेष धरे सब जन्य अनन्य सुशोभित ऐसे,
ब्रह्म-सभा-स्थित रत्न-किरीट धरे सुर-राजि विराजित जैसे ।।५८।।

---

१ एक मिठाई २ जमींकन्द । ३ देवों के अमृत से ऐंठे हुए अर्थात् उससे भी अधिक भोजन पाने के कारण। ४ ब्रह्मज्ञानियों की गोष्ठी। ५ चारों श्रुतियों (वेदों) से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

औध-नरेश-[1]कुटुम्बवती-कुल के हित वेष अशेष-प्रकारी,
भोजन-पान-[2]सभाजन-भोजन [3]रंजित काञ्चन के अति भारी ।
मौक्तिक मानिक आदिक रत्न, सयत्न भरी बहु मोदक-[4]पारी,
शस्त्र व अस्त्र, [5]तनुत्र-शिरस्र सुवस्त्र तथा जन-मानस-हारी ।।५९।।

मत्त मतङ्गज तुङ्ग, तुरङ्ग कुरङ्ग-समान महाजय-धारी,
चारु विमान-समान नृयान तथा रथयान अनेक-प्रकारी ।
मैथिल ने भरपूर दिया धन-साधन गोधन औ नर-नारी,
यौतुक-कौतुक देख छिपे सुर भी सुरभीकर[6]-पुष्प-प्रसारी ।।६०।।

मैथिलराज लगे रघुनन्दन के प्रति काञ्चन-वृष्टि मचाने,
ज्यों कि मरुत्त[7]-महीपति के प्रति स्कन्द हिरण्मय-सुष्टि रचाने।
'क्या मम कोष लुटा' यह जान कुबेर लगे निज कोष जँचाने,
इन्द्र ससैन्य लगे कनकाचल का कनकाऽ [8]चल-कोष बचाने ।।६१।।

श्रीवशिष्ठ-दशरथ-जनक-आदि-सुमानित आज ।
सनमः-[9]स्वस्ति विदा हुए श्रीकौशिक-मुनिराज ।।६२।।

★ ★ ★

[10]खोती धीरज एक साथ, करती गोती-[11]सभा सन्न-सी,
बोती कारुण-बीज सार्द्र उसमें, जो तीव्र थी खिन्न-सी ।
होती संकुचिता, दृगम्बुकणिका-मोती हिये त्यागती,
ज्योतीरूप मिली सुता जनक से रोती विदा माँगती ।।६३।।

---

१ स्त्री। २ संमान के पात्र ३ चाँदी के। ४ लड्डुओं के पात्र। जाति मान लेने के कारण एक वचन। ५ कवच व टोप। ६ सुगन्धित करने वाले फूलों के वर्षक। ७ मरुत्त राजा के लिए संतुष्ट हुए स्वामि-कार्तिक ने सुवर्ण वृष्टि की थी। ८ सोने का स्थायी कोष। ९ नमस्कार और स्वस्तिकार के साथ। १० इस छन्द की प्रत्येक यति के प्रारम्भ में समान सुनाई पड़ने वाले दो दो अक्षरों की आठ आवृत्ति होने के कारण यह अष्टप्रास कहलाता है। यह कहीं मध्य और अन्तवर्ती भी होता है ११ बन्धु-समाज।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे टीका करने लगे [१]प्रणय की, बेटी ! [२]स्वभू ने अरी !
[३]जेटी जो गुणरत्न-राशि, उससे पेटी तुही तो भरी ।
भेटी तू जिसको व गोद जिसके लूटी, वही प्रेषणा—
[४]चेटीवत् करता, न सोच, किसने मेटी विधि-प्रेरणा? ।।६४।।

तेरा है ससुराल नैहर यथा, तेरा पिता है यथा—
तेरा है श्वशुरार्य, [५]स्त्रैण उसका तेरा हितू सर्वथा ।
तेरा है पतिदेव देव-पति-सा, तेरा महाभाग्य है,
तेरा संतति-योग पा जगत में मेरा महाभाग्य है ।।६५।।

सच्चा तात बखानना श्वशुर को, माँ सास को मानना,
पूर्णात्मा पहिचानना स्व-पति को, नो मित्र ही जानना ।
पूज्यों की अवमानना न करना, हे पुत्रि ! संमानना,
सौतों से मत तानना, बस यही शिक्षा हिये ठानना ।।६६।।

जीता हूँ तव भाग्य के बल सुते ! जीता तुही ने भला,
[६]गीतात्मा रघुवीर को कि, जिसने जीता तुझे वत्सला ! ।
शीता जीवन की जड़ी मम तुही, जी तात का सङ्ग ले—
प्रीतात्मा कर साथ प्राण-पति का सीता महामङ्गले ! ।।६७।।

हम सब मन से निकट हैं, यद्यपि तन से दूर ।
मङ्गलमय प्रस्थान हो, हो सुहाग भरपूर ।।६८।।

नृप-मुख तज गद्गद् गिरा पाकर कुछ विश्राम ।
सीता-मुख से स्फुट हुई कुछ गद्गदता थाम ।।६९।।

देगी चम्पक-बेल पूर्व कलियाँ प्रातः पिताजी ! उन्हें—
गौरी को चढ़वा, चढ़े दिन करें पट्टाभिराजी उन्हें ।
सो मेरी तुलसी लसी अतुल-सी हो शीघ्र उद्वाहिता,
सत्संदेश विदेश में यदि मिला, हूँगी समुत्साहिता ।।७०।।
'सारा भारत है स्वदेश भरत-द्वारा बसाया यही,
श्रीसाकेत निकेत दिव्य जिसकी है राजधानी सही ।

---

१ प्रेम । २ ब्रह्मा । ३ इकट्ठी की । ४ दासी को ज्यों रवाना करता है । ५ स्त्री-समूह।
६ जिनका गुण-गान सब करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो निर्देश विदेश का कर रही, ओ पुत्रि ! मैं जानता,
जन्म-स्थान-वियोग से उघड़ती हृत्पद्म की म्लानता ।।७१।।
तेरा केवल दर्शनामृत पिये जो फूल जाती वही-
प्यारी चम्पक-बेल और तुलसी मुर्झा रही आज ही ।
देंगी क्या विकलीकृता वह कली, देंगी मुझे [१]वे-कली,
व्याहेगी तुलसी सुते ! तब मुडें', यों बोलते वे चलीं ।।७२।।
'बेटी ! तू ससुराल को जब विदा होगी, मिलूँगी न मैं,
मैं हूँ कातर कातरा तब तुझे बेटी? करूँगी न मैं ।
तू संतुष्ट सिधारना, तव रहे सौभाग्य' स्थायी घना,'
सीता को यह मातृ-वाक्य सुमिरे सिद्धार्थ होते बना ।।७३।।
विचार पूरा अवधेश-बोध से विदेह वंशस्य' प्रथाऽनुरोध से ।
मुड़े विदा दे नगरोपशल्य से विधे सुता-[२]प्रस्थिति-ताप-शल्य से ।।७४।।
ज्यों इन्द्र वज्रायुध से [३]हिमानी-शैलेन्द्र, शल्याहति से न ज्ञानी ।
हारे कभी, किन्तु [४]उसे हराया, जाना कि, पुत्री धन है पराया ।।७५।।
पुत्री जनाई, तब से जनाई-कि 'देख भाई ! यह है पराई' ।
ले आज माई [५]नियते? [६]जमाई-गये, जमाई [७]स्थिति आजमाई ।।७६।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता दशम प्रतान समाप्त ।

---

१ बे-चैनी। २ रवानगी के दुखरूप साल से । ३ हिमालय (हार जावे)। ४ शल्याहति (शल्यप्रहार) को। ५ हे नियति (विधि) माता । ६ आज जमाई (जामाता) (उसको) लेकर गये अर्थात् बेटी को लेकर जाने पर। ७ नियत की हुई लोक-स्थिति आजमाई (अनुभव की)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

ग्यारहवाँ प्रतान

प्रवेशिका

जनकपुरी से विदाई के पश्चात् कुछ दूरी पर क्रुद्ध मुद्रा में अमित तेजस्वी ऋषि परशुराम का सहसा आगमन होता है। राजा दशरथ के प्रणाम करने पर वे शिव-धनुष के तोड़ने वाले को दण्डित करने की चेतावनी देते हैं। श्रीराम विनम्र भाव से ऋषि परशुराम के समक्ष आकर अभिवादन करते हैं किन्तु फिर भी मुनि का क्रोध पूर्ववत बना रहता है। ऋषि के इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर लक्ष्मण जी पूरे प्रकरण को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु ऋषि के पूर्वाग्रह के कारण दोनों के मध्य कठोर उक्ति-प्रत्युक्ति का क्रम चलता है। स्थिति की गम्भीरता देखकर श्रीराम अनुज लक्ष्मण को रोककर स्वयं परशुराम जी को शांत करने का प्रयास करते हैं। परशुराम जी का क्रोध थमने का नाम ही नहीं लेता। उनके उग्र रूप से सभी बराती भयभीत हैं। वे अपना कुठार प्रहार के लिए उठाते हैं किन्तु उनका हाथ नहीं उठता-तब उन्हें श्रीराम के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। जब उनके द्वारा दिया गया विष्णु धनुष रामजी सहजता से चढ़ा देते हैं, तब परशुरामजी श्रीराम को प्रणाम करके स्वस्थान लौट जाते हैं। अयोध्या पहुँचने पर सभी नरनारी श्रीराम-वैदेही की दिव्य छवि निरखकर धन्य धन्य हो जाते हैं।

विशेष : उक्ति-वैचित्र्य-(ध्वन्यार्थ)-लक्ष्मणजी को आचरण की शिक्षा का संकेत करते हुए उग्ररूप परशुराम जी उलाहनापूर्वक कहते हैं :-

'किसी से नहीं बाज आता कुवादी! न देते तुझे क्या सुशिक्षा सुवादी?'

यहाँ सुवादी का अर्थ प्रियवादी तो है ही किन्तु 'सु' और 'व' से प्रारम्भ होने वाले मंत्री सुमन्त्र और गुरु वशिष्ठ के लिए भी ध्वनित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्यारहवाँ प्रतान

तात! सनातन है नहीं तात, तात रघुनाथ ।
माता भी माता वही, यों लख बनो सनाथ ॥११॥

ज्यों ही बरात कुछ दूर गई कि दीखा-
आलोक संमुख दिवा-[१]मुख के सरीखा ।
राजादि ने प्रथम तर्क यही निकाला,
है प्रज्वलज्ज्वलन का इतना उजाला ॥१॥

ज्यों-ज्यों क्रमात् वह समीप लगा कि आने,
नाना-विधान अनुमान लगे लगाने ।
ज्यों ही जनाकृति जँची, मन में विचारा,
क्या सूर्य है, पर न लक्षण का सहारा ॥२॥

जाना सु-चिह्न लखते, यह हैं तपस्वी,
गाधेय क्या फिर पधार रहे मनस्वी? ।
त्यों ही तुरन्त गुरु ने स्वगिरा उचारी,
ये हैं नरेन्द्र ! भृगुनन्दन पर्शुधारी ॥३॥

अर्घ्यादि की सचिव ने झट योजना की,
त्यों ही हुई झट वही परिपूर्ण झाँकी ।
बोले महीन्द्र, अजनन्दन-वन्दना हो,
योगिन् ! समृद्ध तप की अभिनन्दना हो ॥४॥

आरक्त दीप्त दृग-पावक को दिखाते,
क्या एक साथ सब के मन को सुखाते? ।
स्कन्धाग्र से स्वकर-बीच कुठार को ले,
यों कम्पिताधर खड़े भृगुरत्न बोले ॥५॥

अररे! दशस्यनन्दन-नाम धरे कहता अजनन्दन-वन्दन हो,
कहता फिर संमुख आ मुख से कि तपः-फल का अभिनन्दन हो ।

---

१ प्रभात ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षत पै इस लवण [1]स्पन्दन से अजनन्दन! क्या अभिनन्दन हो?,
[2]हरि क्या तुझ से कुछ बात करे, उपसंस्थित है अज-[3]नन्दन हो ।।६।।
[4]पुर-दारक-चाप-विदारक जो तव [5]दारक है, उसको समझूँगा,
तव कोमल-कोमल-वर्ण-[6]विभासित भाषित में न कि मैं उलझूँगा ।
इस क्षत्र-सुभोजन-पोषित और [7]उपोषित पर्शु [8]को पारण दूँगा,
बस आज महेश-महोत्सव पूर्ण मनाकर ही प्रणसिन्धु तरूँगा ।।७।।

★ ★ ★

श्रीमन् ! सेवक है उपस्थित यही, यों बोलते सामने-
आके शीघ्र किया प्रणाम पद को छूते हुए राम ने ।
बोले भार्गव, यों प्रणाम करना नीचा दिखाता मुझे,
आजा, संमुख हो खड़ा, प्रणति को पूरा सिखाता तुझे ।।८।।

वे बोले फिर हाथ जोड़, भगवन्! हो पूज्य, मैं दास हूँ,
श्रद्धा है फलदा प्रणाम-विधि की, सो धार पूर्णांश हूँ ।
बोले भार्गव, शम्भु-चाप-नति में श्रद्धा कहाँ थी गई?,
स्थानापन्न विदेहजा-विजय की आशा वहाँ थी नई ।।९।।

बोले राम, क्षमा करें, यदि वहाँ श्रद्धा नहीं जो रही,
क्यों होती फलदा, वही न फलती, ज्यों ऊपरी [9]दुर्मही ।
वे बोले अभिमान है फिर तुझे पूरा इसी बात का,
बोले ये अभिमान है अति मुझे जो दास हूँ [10]तात का ।।१०।।

★ ★ ★

परशुराम के कोपानल को राम-वचोऽमृत-धारा-
करती शीत, तदपि वह बढ़ता रहा सदागति [11]द्वारा ।
फिर [12]वे बोले, जिसे किसी ने मेरे भय के मारे-
छेड़ा तक न, तुही ने तोड़ा उसे समद रघुतारे! ।।११।।

---

१ (घावों पर) नोंन छिड़कने से । २ सिंह और विष्णु । ३ बकरी का बच्चा और अज राजा का पुत्र । ४ शिव-चाप-भंजक । ५ पुत्र । ६ अक्षर-शोभित (भाषित=वचन) । ७ उपवास किये। ८ यहाँ 'को' को शिथिलोच्चारण से लघु समझना; प्राकृत-प्रकरण "एदोत् पदान्ते" इस सूब के आधार पर ऐसा माना गया है, यों अन्यत्र भी जानना। ९ खराब भूमि। १० मान्य (आप) का। ११ सदा की गति (ढंग) अर्थात् प्रकृति के कारण, सदागति=पवन भी। १२ परशुराम।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा राम ने, भृगुकुल-दिनकर! सुनिए, प्रथम सभी ने–
उसे आजमाया, पर उसने सब ही के बल छीने।
उठना पड़ा मुझे भी क्रम पर गुरु-गाधेय-वचन से,
उठा नवाते समय स्वयं वह टूटा जर्जरपन से ।।१२।।

मानवता में कौन मिलेगा, जो मानवता पा के,
घोषित पण पर खड़ा न होता अपनी जाति लजाके।
मद में आना वह माना है, यों ही अगुआ होना,
परवा नहीं किसी की करना, गुरुजन-गुरुता खोना ।।१३।।

गुरु-कृपया अहमहमिका, अहं-पूर्विकोद्गार।
एवं आहो-पुरुषिका मद न मुझे [1]त्रिप्रकार ।।१४।।

इतने पर भी प्रकृति के वश न हुए वे शांत।
बोले, [2]मदधर ! नाम तव करता मुझको [3]दान्त ।।१५।।

लक्ष्मण ने देखा कि यह [4]वाडव हैं, इस हेतु।
वचनामृत से शान्त हों क्यों कर भृगुकुलकेतु? ।।१६।।

★ ★ ★

यही जान बोले वचन गहरे भीतर क्रूर।
ऊपर से कोमल-मधुर जैसे पिंडखजूर ।।१७।।

"[5]रेणुकात्मज! प्रणाम आप को, ज्यों [6]षडानन पिनाक-चाप को-।
मैं गुरो! कर रहा; उचार यों वे गिरे चरण में कुमार ज्यों ।।१८।।

आपका प्रभु ! [7]निदेशकार हूँ, कोशलाधिपति का कुमार हूँ।
मैं तृतीयक भरतानुजात हूँ, दर्शनार्थ चरणोपयात हूँ ।।१९।।

---

१ अहमहमिका=आपस में अहंकार अहंपूर्विका=एक-दूसरे के अगुआ होना, आहोपुरुषिका=अपने को बड़ा समझना, यह तीन तरह का मद है। २ हे मदधर घमंडी ही। और मद् +अधर= मेरे होंठों पर पड़ा हुआ (तेरा नाम) यह अर्थ ध्वनित है। ३ नीचा और तप करने में समर्थ; ध्वनित। ४ वाडव=ब्राह्मण और बाडवाग्नि जो अमृत=जल से नहीं बुझता अपितु तेज होता है। ५ ज्यों परशुराम ने 'अज-नन्दन' कह कर व्यंग्यता दिखाई त्यों 'रेणुकात्मज' कहा गया है; इसका दूसरा अर्थ होता है धूल से जनमा हुआ। ६ ज्यों स्वामिकार्तिक शिव को। ७ आज्ञाकारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप हैं अतिथि आज हमारे, पान्थ हों, पर गृही हम सारे ।
धर्म है [१]गृहप का शिखिहोत्री? स्वागतादि [२]करना भृगूगोत्री ? ।।२०।।

स्वागतार्थ उपयात पिताजी जो उपेक्षित हुए [३]शिवयाजी? ।
सो सहा, पर रघूत्तम को भी नम्र पा कह रहे मद-शोभी ।।२१।।

राम को यदि मदी ठहराते, तो किसे अमद आप बताते? ।
राम को अब मदी न बतावें, हाँ, [४]मदीय कहके अपनावें ।।२२।।

चाप आपके भय के मारे नहीं किसी ने छेड़ा,
यह जँचना नित निराधार है, उसे कई ने छेड़ा ।
उसे समझ मानो [५]अपना-सा नाक बाण ने रगड़ी,
नाक दिखाना दूर रहा, फिर मलिन हो गई पगड़ी ।।२३।।

शम्भु-पक्ष-गर्वित रावण ने समझा उसको सौटा,
किंतु, अन्त में अपना-सा मुँह लेकर वह भी लौटा ।
किसको त्रिजगद्-विजय-पताका फहराना न सुहाया?,
पर जिस पर परमेश-कृपा थी, मान उसी ने पाया ।।२४।।

टूटा कि, चाप अपना तनना खलों को-
देके गया, वह तने रचते छलों को ।
क्या आपको न उन के छल ने उभारा?
क्यों आप भाँप न सके खल-लोक-धारा? ।।२५।।

श्री राम क्या दलन से शिव-चाप के, हैं-
सत्कीर्तिमान, गुरु हैं, हम आपके हैं ।
शौर्याभिमान सब भार्गव ! आपका है,
सच्चित-रञ्जन विभञ्जन चाप का है ।।२६।।

---

१ गृहस्थ । २ यहाँ रेखांकित वर्ण स्वागता का लक्षण प्रकट कर रहे हैं; अर्थात रगण, नगण, भगण, दो गुरु । ऐसे ही आगे कहीं समझना। ३ शिवपूजक । ४ मेरा । ५ बाण (शर) कहाने के कारण उसने अपना धनुष जान लिया। अप-नासा=नाक रहित (ध्वनित)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाँ, आप हैं, अज-उपासक यों सुना था,
तो क्यों सहें, [१]अजगव-क्षति-वीरगाथा ।
क्या हो सके पर भला अब, पूर्व ही से-
छोड़ो पिनाक-पण यों कहते [२]पणी से ॥२७॥

आश्चर्य है कि अज को यह मान देते,
तो भी न आप अज-[३]नन्दन-मान लेते ।
क्या है रहस्य इतना, समझा न जाता,
[४]वा राम का हृदय सोदर भी न पाता ॥२८॥

उत्पन्न होकर पदार्थ विनष्ट होता,
बाँधे ममत्व यदि तो अति-कष्ट होता ।
कोई निमित्त बनता स्थिति-नाश में भी,
यों आप शिक्षित किया करते हमें भी ॥२९॥

जो आज आप उस पै ममता दिखाते,
क्या आप पाठ इससे हमको सिखाते? ।
क्या आप हैं परखते मति को हमारी,
उत्तीर्ण हो न सकते, गुरु-प्रश्न भारी ॥३०॥

जो राम-नाम धरने ममता बढ़ी है,
संसार-बीच यह बात बढ़ी-चढ़ी है ।
श्रीराम-नाम धरते रहिए सदा ही,
श्रीराम-नाम-धृति तो सब ने सराही ॥३१॥

है सर्व-सिद्धिद सुनाम यही, सुना है,
है सर्व-सिद्धिविद्य जिसने इसको चुना है ।
सारे सुनाम जग के इसमें समाते,
[५]दीनार में [६]पण सभी जिस भाँति पाते ॥३२॥

---

१ अज=शिव का गो (गव)=वज्रमय धनुष उसको भंग करने की बड़ाई। २ 'पण' नियत करने वाले जनक से । ३ शिव-पुत्र और दशरथ का आदर । ४ यहाँ 'राम' से परशुराम और रामचन्द्र दोनों का ग्रहण है। अपने और श्रोता दोनों के अनुभव की बात बताई गई है। पिता के कहने पर परशुराम के सोदरों ने माता का शिर न काटा, पर उन्होंने काट डाला । यहाँ पर झलकाया है। ५ अशरफी। ६ सिक्के।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम-नाम-रति है सकलार्थ-साधा,
श्रीरामनाम धरते न कदापि बाधा ।
श्रीराम-नाम रटते न दशा [१]विपन्ना,
श्रीरामनाम भजते जगती प्रसन्ना ।।३३।।

मीठा सुकोमल [२]सुवृत्त अहा ! छबीला,
सीधा मुखग्रहण में, [३]श्रुति में सुरीला ।
संयोग-[४]वर्जित [५]सुवर्णक बाल को भी,
भाता [६]यही स्वजननीस्तनवत् प्रलोभी ।।३४।।

क्षेमार्थ प्रेम इससे सब ही करेंगे,
क्या आप ही, नर अनेक इसे धरेंगे ।
है एक धन्य जिसने पहले धरा है,
हैं आप उत्तम, [७]सपर्शु जिन्हें वरा है ।।३५।।

राम-नाम-ममता जता रही यों कि आप गुरु ! सार के ग्रही ।
पर्शुराम कहने लगे तभी, सार को गह रहा यही अभी ।।३६।।

मैं क्या रे? मम संजयी परशु भी है एक सार-ग्रही,
[८]वर्गान्तःस्थ व ऊष्म के शुभ चुने हैं वर्ण एकैक ही ।
एवं [९]सुस्वर भी चुने रुचित ही, जो संधि-संस्कार हो,
पाते ही रिपु-[१०]सीस-बिन्दु, स्वरतः सो एक ओंकार हो ।।३७।।

'धन्य! धन्य!!, कह लक्ष्मण बोले, ये [११]त्रिवर्ग-पुर-गोपुर खोले ।
स्वर्ग-प्राप्ति-हित द्वार सही है, किन्तु एक [१२]अपवर्ग नहीं है ।।३८।।

---

१ विपद्-ग्रस्त । २ अच्छा बना हुआ और गोल। ३ सुनने में । ४ संयुक्त अक्षर से रहित। स्तन भी दोनों अलग-अलग होते हैं, मिले हुए नहीं। ५ अच्छे अक्षरों वाला और अच्छे रंग वाला । ६ राम नाम ही । ७ पर्शु सहित हुए (नाम से)। ८ पाँचों वर्ग में से 'प', अन्तस्थ में से 'र' और ऊष्म में से 'श' ये एक-एक चुनकर 'परशु' नाम रखा है। ९ रुचित=चाहे हुए सुस्वर-अ+उ : इनकी संधि होने से 'ओ' हो जाता है। 'अ' विष्णु वाचक और 'उ' शिव वाचक होने से रुचित स्वर हैं। १० शत्रु-मस्तक रूप अनुस्वार मिल जाय,तो स्वरों के कारण 'ओं' बन जाय। स्वरतः=आत्मा से रति रखने वाला 'ओं' ब्रह्म होता है यह ध्वनित है। ११ ये 'परशु' तीनों वर्ण मानों त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) रूप नगर के गोपुर=मुख्य द्वार । १२ मोक्ष और पवर्ग-रहितवर्ग का अक्षर नहीं है नहीं तो पर शुद्ध=पर ब्रह्म का वाची हो जाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोडें नितान्त निज मानस-वेदना को,
स्वीकारिए मन द्विजेन्द्र? निवेदना को।
[1]निर्देश दें कुछ, [2]अजात्मज धेनु देंगे-
मात्राविहीन [3]धनु की क्षति को भरेंगे ।।३९।।

★ ★ ★

ज्येष्ठ के वचन-बिन्दु-जाल से मन्द भी अनुज-वाक्य-[4]राल से।
कोप-अग्नि जमदग्नि-सूनु का [5]हेति धारण किये पुनः धुका ।।४०।।
क्रोध-रक्त निज दृष्टिपात से, ज्यों महेंद्र निज वज्र-घात से।
उग्रता उगल पर्शुराम ने यों कहा, जन लगे कराहने ।।४१।।

अरे? बोलता यों न दर्पी! लजाता?
किया क्या भला, गाल यों जो बजाता।
किसी से नहीं बाज आता कुवादी!
न देते तुझे क्या सुशिक्षा [6]सुवादी? ।।४२।।

अभी पर्शु देगा तुझे दुष्ट ! शिक्षा,
उसी से मिलेगी तुझे पुष्टशिक्षा।
न जाने, न बूझे, रची जो ढिठाई,
उसी का परीणाम देता मिठाई ।।४३।।

छिड़ी थी भला! राम के और मेरे,
तुझे क्या पड़ी जो कि काँटे बखेरे।
गजों के भिड़े श्वान जो बीच आता,
असंदेह सो देह-संदेह पाता ।।४४।।

पिता की उपेक्षा सही, जो कहा है,
बड़े एक आभार को गाँठता है।
किसी की न मैंने रखी है अपेक्षा,
रहा लक्ष्य मेरा नृपों की उपेक्षा ।।४५।।

---

१ आज्ञा का इशारा। २ दशरथ। ३ ज्यों आपका धनु 'धेनु' की अपेक्षा मात्रा-रहित अर्थात 'ए' को मात्रा से शून्य था, उसी प्रकार मात्रा-रहित=बे अंदाजा धेनु देंगे। ४ धूता (राल)। ५ हेति=शस्त्र (परशु) अग्नि के पक्ष में ज्वाला। ६ प्रियवादी। यहाँ ध्वनित अर्थ यह है:-'सु' और 'व' है आदि में जिसके, अर्थात् सुमन्त्र और वशिष्ठ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या-क्या कहूँ मम तुम्हीं सुमहापराधी,
प्रत्येक शब्द तव दृढ़ ! मदीय बाधी ।
मेरा कुठार तव कण्ठ-[१]कुकाटिका को-
है ताकता, मधुप ज्यों मधु-वाटिका को ।।४६।।

'मैं कौन हूँ' यह सुना न कदापि तू ने,
शिक्षा तुझे [२]अहह! दी नहीं किसी हितू ने ।
मेरा कुठार गुरु शिक्षण आज देगा,
सद्-दक्षिणा रुधिर-चूपण साथ लेगा ।।४७।।

[३]अरे दूधमुहे! दूध -धारा मुख धार रहा,
अपितु हृदय-बीच कालकूट-धारा को ।
प्रकृति-विकास-धारा, लौकिक प्रसिद्ध धारा,
कह-कह युक्ति-द्वारा बाँधा स्वोक्ति-धारा को ।
सरयू की नीरधारा-तीर पै समीर-धारा,
सेते रहा शीत-[४]धारा धारायन्त्र-धारा को ।
धारावाही वीरता की धारा को भी धारा हो तो,
[५]स्वत्व भी सुधारा हो तो जाँच पर्शु-धारा को ।।४८।।

भूमि को न एक बार अपितु इक्कीस बार
क्षत्रिय-विहीन किया जिसने कुठार से;
वैरि-मुण्ड पिण्ड देके रुधिर-[६]निवाप द्वारा
पितरों को तृप्त किया उसी [७]तीर्थ धार से ।
होकर नियम-वद्ध सप्तसिन्धु-सीम-बद्ध
स्वजित भूमि को दिया भूसुरों को [८]कार से;
उसी राजपुत्र-बैरी-वीर को [९]सुराऽज-पुत्र
धेनु क्या अमात्र आज दे सकेगा द्वार से? ।।४९।।

★ ★ ★

---

१ गले की हड्डी २ खेद अथवा आश्चर्य । यह घनाक्षरी २५वें पद्य के उत्तर में हैं, इसमें के धारा शब्द के ये अर्थ हैं धारा वहन, प्रसंग, चाल, ढंग, आचार, प्रकार। ३ आश्चर्य । ४ ठंडक धारण करने वाली (फुँहारे की धार को)। ५ स्वाभिमान। ६ अंजलि-दान। ७ कुठार-रूप तीर्थ का प्रवाह। ८ प्रयत्न से। ९ सुर अर्थात दिवंगत अज का पुत्र (दशरथ) और पक्का राजपुत्र ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लंठ को निहार कर [१]कुंठ क्यों कुठार-राज !,
देख जिसे काल-सम वीर हक्के-बक्के थे;
रावण-से जानकार जिससे [२]समीक धार
बार-बार हार-हार खाये खूब धक्के थे।
जिसके कि बाहु भूमि-भार धारने के हेतु
शेष के सहस्र फण ज्यों सहस्र पक्के थे;
उस ही सहस्रबाहु वीर के सहस्र बाहु
काट क्या तुही ने तब छुड़ाये न छक्के थे? ।।५०।।

अहो! प्रहर्ता के मौखिक इस उत्तेजन से क्या होता?,
परशु नही, यह [३]र-सहित पशु है, रेफ अग्नि इसमें सोता।
करूँ क्रियात्मक उत्तेजन यदि [४]इसका, वह जग जावेगा,
क्रोध-सदृश निज-दाह शक्ति को ज्वालामय दिखलावेगा ।।५१।।

यों कहते उन परशुराम ने देख सामने उपल पड़ा,
उलटाते-पलटाते उस पर बार-बार इसको रगड़ा।
दर्शि-हृदय और उपल हिला, न कि लक्ष्मण-[५]हृदय, किन्तु तमका,
परशुक-[६]मुख से राम-नाम-सम बार-बार पावक चमका ।।५२।।

★ ★ ★

कैसा काण्ड हुआ उपस्थित अरे!, ऐसे अयोध्येश के,
होना था यह भी मिलाप अब ही, यों कर्मकाण्डेश के।
स्वामी के बल ही कटे यह विपद्, यों जानकी आदि के,
क्या होगा अब, यों बरात-भर के आ तर्क जी में टिके ।।५३।।

सारे किंकर पा भयंकर दशा झंखाड़ में जा छिपे,
वेश्या,-वृन्द सबन्धु-वृन्द शकटों की आड़ में जा छिपे।
राजा, पूज्य, सुमन्त्र, सैन्यपति की ले आड़ कोई खड़े,
ज्यों चारों सुपदार्थ संमुख हुए भाग्यात् बखेड़े अड़े ।।५४।।

---

१ सुस्त। २ युद्ध ठानकर। ३ 'पशु' के मध्य में 'र' लगाने से परशु होता है, 'र' अग्नि-वाची है। [रसहित=रसिक (चटोरा) पशु यह अर्थ भी ध्वनित है] ४ इसका=परशु का। वह=अग्नि। ५ न हिलने के कारण पाषाण की अपेक्षा लक्ष्मण-हृदय की बढ़ी-चढ़ी दृढ़ता व्यक्त है। ६ कुठार की धार में से 'परशुक' यहाँ 'क' प्रत्यय स्वार्थ में ही है; दूसरा अर्थ है पर-शुक=उत्तम तोते के मुख से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई सज्जन इष्टदेव अपने जी में मनाने लगे,
बाँधे तर्क-वितर्क कर्कश कई चिन्ता जताने लगे।
[१]धीरोदात्त-विभूति दाशरथि की दैवी दिखाते कई-
भीतों को भय-भीत-भाव हरके [२]सु-स्फूर्ति देते नई ।।५५।।

★ ★ ★

यों उत्तेजित पर्शु को कर [३]भृगूतंसी बढ़े भौं-चढ़े;
श्री सौमित्रि हँसे रघूद्वह उन्हें दे आड़ आगे बढ़े।
औ बोले, अपराधवान भगवन् ! मैं हूँ, मुझे मारिये,
सारा भार उतारिये स्वगुरु का, विज्ञप्ति स्वीकारिए ।।५६।।

बोले विप्र नवापराधिजन से [४]व्यावृत्त हो लूँ जरा,
पीछे हे [५]विबुधाग्रणी ! समझना ही है तुम्हें तो खरा।
बोले राघव, लाघव-प्रकटना होगी लघु-द्वेष से,
ब्रह्मन् ! अन्तर-शत्रु से सम्हलिए, भूलें न आवेश से ।।५७।।

[६]माया को हरिए, [७]कलाप रखिए, जाँचें स्वयं कौन हैं,
ब्रह्मन् ! पा यह ब्रह्मतेज हम तो साधे हुए मौन हैं।
पाते हैं छवि आप के पग जहाँ माथे हमारे वहाँ,
स्वामी का यह [८]ब्रह्मवर्चस कहाँ औ क्षत्र-सत्ता कहाँ? ।।५८।।

पादों पै रखने स्व-सीस, झुकना होगा हमें जो खरा,
सीसों पै रखने स्व-हाथ, झुकना होगा तुम्हें भी जरा।
दोनों ओर निवाहने पर निभे यों दासता स्वामिता,
संसार-स्थिति अन्यथा ठहरती कैसे [९]सुविश्रामिता? ।।५९।।

---

१ उच्च श्रेणी के शिष्ट पुरुषों का ऐश्वर्य। २ बड़ी फुर्ती। ३ भृगुवंशियों को चमकाने वाले (परशुराम)। ४ निवटलूँ। ५ समझदारों के और देवों के शिरोमणि! तुम्हें तो पूरा पहिचानना ही है, यहाँ वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ दोनों समझना। ६ क्रोध-द्वेषादि-स्वरूप। ७ कलाप=भूषण अथवा क्षमा। यहाँ पर 'माया को हरि! एक लाप रखिए' यों सभङ्ग पढ़ने से हे हरि! अपनी माया को एक-लाप=एक वचन पर रखिए अर्थात् पहले मुझे अपराधी ठहराकर मुझे दण्डनीय ठाना था अब लक्ष्मण को। अथच 'माया को हरिए कला परखिए' अर्थात् अपने तीनों की ऐश्वर्य-कला को परखिए। यह अर्थ भी ध्वनित होता है। ८ ब्राह्मण की सच्चरित्रता और विद्वत्ता। ९ अच्छी तरह से धरी हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होगी लुप्त क्षमा, क्षमानिधि उसे जो त्याग देंगे यती,
होगी लुप्त दया, दयानिधि उसे जो त्याग देंगे व्रती ।
है निष्कर्ष, क्षमा दया-सहचरी स्थायी तपोमूल है,
क्लेशों का रहना, क्षमी न रहना, मैंने सुना, भूल है ।।६०।।

★ ★ ★

देखा भार्गव ने कि हा! विवश हूँ, वैरी हुआ पर्शु भी,
जो किंचित् चलता नहीं, उपल के-से स्तब्ध हैं बाहु भी ।
मैं ऐसा न कभी हुआ शिथिल-सा [1]स्पर्धालु के सामने,
संपूर्णत्व दिखा दिया यह चतुर्व्यूही [2]स्वभ् राम ने ।।६१।।

पीछे लक्ष्मण से कहा, [3]पृथुक् रे! क्यों आज वातूलता-
फैलाता, इस आम्बरीष बल पै, पा स्थूलता फूलता ।
होगा क्या जड़! कालभक्ष्य न कभी, यों दुर्जय क्रोध से,
डाँटा और उन्हें तजा, फिर कहा श्रीराम से [4]बोध से ।।६२।।

कौशल्या-सुत! सूक्ति-कौशल-भरे ज्यों ही तुम्हारे चुने-
शिष्टाचार-विचार-सार-मय ये सद्-वाक्य मैंने सुने ।
मन्त्रोत्कीलित सर्प के सम मुझे निःसत्त्व होना पड़ा,
क्रूरक्रोध-कृशानु को अमृत का पा पूर खोना पड़ा ।।६३।।

जाना, जो तुमने विखण्डित किया चण्डीश-कोदण्ड को,
जानूँ मैं अब, जो प्रकर्षित करो लक्ष्मीश-कोदण्ड को ।
सौंपा यों कहते उसे चट उन्हें उत्कर्ष से राम ने,
ताने ही हरि-चाप को फिर इन्हें देखा तभी सामने ।।६४।।

---

१ ईर्ष्यालु । २ महाविष्णु। चतुर्व्यूह-प्रकृति, महान, अहंकार, प्रकृति विकृति (ब्रह्मा) यहाँ सीता और तीनों भाई हैं। ३ बालक। वातूलता=वात रोग से हैरानी। आम्बरीष=अम्बरीष की संतान, राम के बल पर मोटापन पाकर फूलता है; भक्त अम्बरीष से व्यर्थ भिड़ जाने पर विष्णु के सुदर्शन ने दुर्वासा को चमत्कार बताया था। अतएव आवेश में आकर यों झलकाया है। 'पृथुक' चिउड़े को भी कहते हैं, दाना भिगोय जाने के कारण वात में भर जाता है फिर अम्बरीष=भाड़ में भूँजे जाने के बल पर फूल आता है। ४ बोध होने के कारण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम दीखे तब ग्रीष्म-भानु-से,
औ पर्शुधारी हिम के कृशानु-से ।
बोले रघूत्तंस, कि भूमि-देवता !
कैसे निभाऊँ धनु की अमोघता ॥६५॥

बोले भृगूतंस, द्विजाधिदेवता,
जाना तुम्हें आज समाधिदेवता ।
मेरे सभी अर्जित लोक मेटिए,
एवं [1]महा-चापलता समेटिए ॥६६॥

श्री रेणुकानन्दन ने कह यथा,
कौशल्यिकानन्दन ने किया तथा ।
श्रीराम-सौंदर्य निहारते हुए,
लौटे व्रती कीर्ति उचारते हुए ॥६७॥

★ ★ ★

'परशुराम [2]अवतार-कलाधर रोला रचते,
[3]उल्लाला-युत उक्ति गूँजते षद्पद् जँचते ।
धन्य धन्य लक्ष्मण-कुमार को, डटे रहे जो,
होता क्या वीरत्व-कवच दृढ़ पटे रहे जो? ॥
सदा [4]बाल बाँका रहा, नहीं बाल बाँका [5]हुआ ।
[6]रैणुक से रचता रमण [7]वीर-वृषभ आँका हुआ ॥६८॥

सौमित्रि को यों शुभ-वाद देने-
लगी किशोरावलि, लाभ लेने ।
श्रीराम की ओर किया इशारा,
अहो ! [8]उन्होंने निज-हस्त-द्वारा ॥६९॥

★ ★ ★

---

१ बड़ी धनुष लता को और बड़ी चपलता को। २ अवतारी और अवतार अर्थात २४ मात्रा वाला रोला छन्द है। रोला रचते अर्थात् रोडा अटकाते। ३ ज्यादा लार सहित वाणी गूँजते समय तो वे भौरे प्रतीत होते हैं। 'रोला' (पद्य) के साथ, उल्लाला १३ मात्र का पद्य जोड़ने से 'छप्पय' होता है। ४ कुमार । ५ यह वाग्धारा है, अर्थात् कुछ नहीं बिगड़ा। ६ रैणुक=परशुराम और धूल का ढेर। ७ आँका हुआ (परखा हुआ) वीरश्रेष्ठ और आँका हुआ साँड। ८ लक्ष्मण ने।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझाया यों * प्रभु ने उसे, न हो ओ वशी भ्रम के।
श्रीभार्गव आवेशावतार पूर्णाहुताग्नि-सम चमके ।।७०।।

★ ★ ★

राम जय जय, राम जय जय भुवन- [1]रवि?, कल-गीति का-
घोष जागा तोष-पोषक और शोषक भीति का।
राम संमानित हुए तब भूरितर भय-नाश से,
ज्यों चिकित्सक-चक्र-चूड़ामणि चिर-क्षय-[2]नाश से ।।७१।।

ज्यों मेघ-लय से दीप्त सकला रवि-[3]कला, हरि-गीतिका-
भार्गव-गमन से स्फुट हुई, उद्गम हुआ सुप्रीति का।
इस आपदा के अन्त से सीता हुई विकसित-मुखी,
जैसे निशा के अन्त से [4]पाथोजिनी विहसित-मुखी ।।७२।।

वसुधेश के आदेश से, उस भव्य विश्रम-देश से।
जन पूर्ववत् चलने लगे, गृह-तर्प [5]तरु फलने लगे ।।७३।।

द्रुतविलम्बित- [6]हेतु नभो-भरे-
प्रभु-बरात- [7]सहायक भी अरे!।
गगनचारि-समूह सुमित्र-से
चल, टिके व चले चल-चित्र से ।।७४।।

बरात के संमुख मुख्य सङ्ग से
वराङ्गनायें नर भी उमंग से।

---

* किशोर मंडली को। १ भुवन-रवि-कुल गीतिका अर्थात् १४+१२=२६ मात्रा का गीतिका छन्द होता है। पृथक-पृथक मात्रा बताने से १४-१२ मात्रा पर विराम समझना। २ दीर्घ-कालिक क्षय-रोग मिटाने से। ३ सारा सूर्य का चमत्कार 'स-कला रवि-कला हरि गीतिका' अर्थात् कला=१६, रवि १२ कला (मात्रावाली हरिगीतिका)। गीतिका की अपेक्षा इस में प्रारम्भ में दो कलायें बढ़ती हैं। ४ कमलिनी। ५ घर पहुँचने के चाव रूप पेड़। ६ शीघ्रता और विलम्ब के कारण। नभो भरे=आकाश में भरे हुए। नगण, भगण, भगण, रगण से 'द्रुतविलम्बित' वृत्त होता है। ७ साथी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गये नये दम्पति को निहारने,
यथा वसन्ती वन-वाटिका वने ।।७५।।
दिया हुआ काल विचारने लगे,
पुनः उसी ओर निहारने लगे ।
कई-कई स्व-व्रत पालने लगे,
कई निजोद्‌गार निकालने लगे ।।७६।।

★ ★ ★

ऐसे प्रतिक्षण [1]प्रतीक्षण की कथा का–
ताँता बँधा कि, झट दीख पड़ी पताका ।
कानों पड़े विजय के घन घोष प्यारे,
तोपों तथा पटह के रव भी करारे ।।७७।।
क्या था तुरन्त फिर तो रति-काम की-सी,
रम्य-[2]द्विवर्णमय 'राम'-सुनाम की-सी ।
श्रीजानकी-रघुशिरोमणि ने निराली–
झाँकी दिखाकर किया शुभ-भाग्य-शाली ।।७८।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता एकादश प्रतान समाप्त ।

---

१ राह देखने की। २ सुन्दर गौरे-साँवरे रंग की। राम-नाम की और सुन्दर दो अक्षरों वाली ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

बारहवाँ प्रतान

प्रवेशिका

बरात के अयोध्या लौटने पर महारानी कौशल्या प्रभुजी की आरती, गुरु-वन्दना तथा वर-वधुओं की अभिनन्दना करती हैं। आनन्द के वातावरण में ज्यौनार-उत्सव मनाया जाता है। उल्लास और उमङ्ग, अलौकिक प्रीति के भावसूचक, वर-वधुओं के मिलन का कवि ने इस प्रतान में विस्तार से सरस, विनोदपूर्ण, शृङ्गार रस से परिपूर्ण वर्णन किया है। शुभविवाह के समस्त माङ्गलिक कृत्यों के सम्पन्न हो जाने पर अयोध्या का वैभव अमरपुरी से भी अधिक हो जाता है। राजा दशरथ के कार्य में सहयोग की भावना से श्रीराम अनुजों के साथ राज-कार्य सँभाल लेते हैं। इसी प्रकार सीताजी अन्य वधुओं के साथ सासों के निर्देशानुसार गृहकार्यों का दायित्व सँभाल लेती हैं।

विशेष : उक्ति-वैचित्र्य --कवि का वैदुष्य उसकी उक्ति-वैचित्र्य-कला में स्पष्ट रूप से झलकता है। यहाँ मात्र एक उदाहरण प्रस्तुत हैं:-

'माया, लिप्त, परेश की दे प्रथमाक्षर-छाप ।
आद्य-युगल-मात्रा पलट विधि ने रचा 'मिलाप' ।।'

अर्थात् माया, लिप्त (जीव) और परमेश्वर इनके प्रथमाक्षर की छाप देकर अर्थात् 'मा लि, प' इन्हें लेकर इनमें पहले दो जो माया और लिप्त हैं, उनके प्रथमाक्षर की आपस की मात्रा पलटकर अर्थात् 'मालि' का 'मिला', बनाकर विधाता ने 'मिलाप' रचा है। अर्थात् संसार का कारण 'मिलाप' ही तो है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बारहवाँ प्रतान

[१]निर्निमेष लखते रहें संध्याकाश-प्रकाश ।
सीता-राघव-युगल को तो हम हों पूर्णांश ।।१२।।

जय सीतास्वामी, जय [२]अन्तरयामी!;
मङ्गलमय अपमङ्गलनाशन पावन-पथगामी ।।
कौशल्या-दशरथ के सुन्दर नैनों के तारे;
सब सर्वस निजभक्त जनों के प्राणों के प्यारे ।
संकट-समय स्वजन के साथी शिव-पथ-सहकारी;
मुनिमानस-मानस के [३]मानसवासी भव-तारी ।
जय जय जनकसुता के जीवन जीवन-फलदायी;
मुख-सरोज-दर्शन-रस के हम हों नित [४]मधुपायी ।।१।।

यों आरती शुभ उतार [५]महाम्बिका ने,
की सूचना अमर-वन्दन-हेतु जाने ।
पीछे हुई सविधि सद्-गुरु-वन्दनायें,
साधी गई वर-वधू-अभिनन्दनायें ।।२।।

पक्वान्न पूर्णतर तूर्ण गया बनाया,
ज्योंनार-उत्सव अतीव गया मनाया ।
सर्वत्र सर्व जनता सुख को मनाती,
ऐश्वर्य-भोग-महिमा बरनी न जाती ।।३।।

आगन्तु, जानपद, पौर तथा बराती,
ज्योंनार को नृप-प्रसाद विचार थाती ।
धन्यातिधन्य समझे इह-[६]वासिता को,
न्यूनातिन्यून सुरलोक-विलासिता को ।।४।।

---

१ टकटकी लगाये २ घट-घट की जानने वाले । ३ मानसरोवर का निवासी अर्थात् हंस।
४ भौंरे । ५ कौसल्या ने । ६ यहाँ के निवास को ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पा प्रीतिभोज जग गा, मधु माधवी की[१]-
गाथा-समान, महिमा प्रभु-जानकी की ।
आनन्द-मग्न अति होकर खूब फूला
ज्यों देख के [२]नियति को परमानुकूला ॥५॥

★ ★ ★

जानकर जनकात्मजा-रविवंशमणि-नवराग को,
गह लिया झट गगनमणि ने गगन के परभाग को ।
लाल-पीले [३]हो गये, न कि लाल-पीले [४]हो गये,
केकि-नारा कर प्रकट [४]जयमय, किनारा कर गये ॥६॥

वृक्ष धर तब [५]अन्तिमातप-रक्त-मस्तक-वेश को,
व्यक्त अति करने लगे प्रभु-ब्याह-मोद-विशेष को ।
[६]चक्र-[७]चटका-[८]चाटकैरक-चहचहाट-चुनाव से,
वर-वधू-विजयावली गाने लगे वे चाव से ॥७॥

धेनु-[९]धोरणि धवल-धूसर धाम-धाम सिधारती,
क्षीर-सागर-वीचि मानो श्रीश-वास [१०]निहारती ।
वत्स उत्सुक मातृका से मत्त-मानस मिल रहा,
ऊध पाकर दूध पीता भक्त-मन-सा खिल रहा ॥८॥

★ ★ ★

संध्या और प्रियागमोत्सुकवधू नाना-रंगों में रंगी-
बारम्बार उमंग से पलटती साड़ी सुहाने लगी ।
सद्यः देख [११]प्रियेन्दु को छिप गई दोनों कहीं लाज से,
वे ही तारक-[१२]मौक्तिकाङ्कित मिलीं [१३]आरात्रिक-ब्याज से ॥९॥

---

१ मधु=वसन्त और माधवी (वासन्तीलता) की गाथा (गीत) के समान। मधुमाधवी (वसन्ततिलका) का लक्षण रेखांकित वर्णों से समझिए-त, भ, ज, ज, ग, ग। २ भाग्य को 3 अँथने के समय सूरज का लाल और पीला होना स्वाभाविक है। ४ लाल-पीला होना अर्थात् क्रोध से बिगड़ना। भाव यह है कि कुल-गुरु इस नवानुराग को पवित्र समझकर मर्यादावश सामने से हट कर प्रसन्नता के मारे विजयसूची मोरों का नारा प्रकट कर किनारा कर गये, न कि इस नवानुराग को अपवित्र समझते हुए बिगड़ बैठे । ५ आखिरी धूप-रूप लाल साफों को। ६ चकवा। ७ चिड़िया। ८ चिड़ियों के बच्चे। ९ गायों की पंक्ति। १० अर्थात् ढूँढ़ती। ११ प्यारा चन्द्रमा और प्रिय रूप चन्द्रमा। १२ तारा रूप मोतियों से और उज्ज्वल मोतियों से भूषित। १३ आ (आकर) रात-संबंधी मिष से और आरती के मिष से वर-वधू द्वारा देवता-पूजन और आरती हुआ करती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वाम्भोनिधि से नहा निकलती-प्राची-वधू-भाल है,
वा, पूर्वाद्रि प्रभूपहार करता चामीकर-[१]स्थाल है।
वा, प्राची [२]युगलार्चनार्थ धरती सद्-रूप्य का स्थाल है,
[३]द्यौ ने दंपति-[४]दर्शना-हित धरा [५]आदर्श उत्ताल है ॥१०॥

सीता-राघव के लिए प्रकृति का [६]हीरोपदा-स्थाल है,
स्वामी को यह रौप्य कुम्भ विधि ने भेजा [७]रसोद्गाल है।
रूपा-गेंद अभी निछावर किया सीतेश को इन्द्र ने,
तारों के मिष से नवीन रुपये कैसे [८]उछाले घने ॥११॥

सीताराम-मिलाप की रजनि को पा [९]आत्मभू ने अहा!
तारा-पूर्ण नभोवितान-तल में क्या दीप टाँगा महा?।
यों राकेश्वर को क्रमात् निकलते सानन्द [१०]आलोकके-
चित्तोद्गार विचार-सार प्रकटे लीला-रसी लोक के ॥१२॥

[११]षोडशकला-भरण चौपाई- चारु-छन्द ने ज्यों छवि पाई।
षोडश-कलाऽऽभरण राकेश्वर त्यों शोभित [१२]प्रतिपद संमुख कर ॥१३॥

नक्षत्र-गण-मय क्षत्र-गण वे चन्द्र-रघुकुल-चन्द्र के-
पूर्णाभ्युदय के बल खिले, मानो महामद में छके।
जो पूर्वकाल कराल भास्कर-भार्गवेन्द्र-प्रताप से-
ऐसे लुके जो दीख भी पाये न घूक-[१३]कलाप-से ॥१४॥

मुख-चन्द्र से जीते हुए भी चन्द्र को चन्द्रानना-
कर वन्दना करने लगी निज मानसी संमानना।
प्रतिकूल को भी स्वार्थ-साधन-हेतु अपनाना पड़े,
अवसर पड़े पर [१४]शकटि को भी [१५]उडुप-वश आना पड़े ॥१५॥

---

१ सोने का थाल तत्काल निकलते पूर्णचन्द्र को यों माना है। २ सीताराम की पूजा के लिए। ३ आकाश ने। ४ दोनों स्त्री-पुरुष (सीताराम) को दिखाने के लिए। ५ शीशा। ६ हीरे का बना हुआ उपहार-स्थाल। ७ रस-वर्षक। ८ निछावर के बाद खुशी में रुपये उछाला करते हैं। ९ कामदेव अथवा ब्रह्मा ने। १० देखकर। ११ सोलह मात्रा को धारण करने वाला। १२ पड़िवा, चौपाई-पक्ष में पाद-पाद। १३ उल्लुओं के समूह के समान। १४ गाड़ी और सुन्दर कटिवाली स्त्री। १५ नौका और चन्द्रमा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वच्छन्द-शासन काम-नृप के राज्य-शासन-काल में,
किस मानिनी का मान महि तज नहिं गया पाताल में ।
पद-पद्म में पड़ना प्रियों का प्राकृतिक उपचार था,
पाखण्डियों के सहचरित पाखण्ड के अनुसार था ।।१६।।

★ ★ ★

उत्सुकता नव-वधू-हृदय को वर-समीप हाँ लाती,
गुरुजन-लज्जा परन्तु उसको चट पीछा लौटाती ।
उभय-ओर के बलात्कार ने निज-निज बल बतलाया,
गुरु-अदर्श ने निदान निर्बल लज्जा को जतलाया ।।१७।।

देह-लीन-सी होती [१]वह रति-वास-देहली पहुँची,
हुई मन्दगति, ठहर गई फिर नव-प्रवेश में सकुची ।
जिसे तरसना पड़ता नित, क्यों उस मिलाप में बाधा-
करनी पड़ती स्वतः, प्रेम-गति समझ पड़े न अगाधा ।।१८।।

[२]बाधाद्रि का पूर्व सधैर्य [३]गाहना,
वियोग-रोग-क्रम में कराहना ।
विधान-संमान-समेत ब्याहना,
मिलाप का क्या फिर है सराहना? ।।१९।।

मनोज का मूर्त [४]कला-कलाप था,
किंवा उसी का प्रथम-प्रताप था ?
दोनों मनों की रति का मिलाप था,
नवीन जो दंपति का मिलाप था ।।२०।।

ज्यों इक्षु-काण्ड-स्थित [५]मघ्य-ग्रन्थियाँ,
ज्यों काव्य-मध्यस्थित हों पहेलियाँ ।
मिलाप में त्यों युग को सहेलियाँ,
कहीं सुहाई रचती [६]सुकेलियाँ ।।२१।।

---

१ नव-वधू २ विघ्न रूप पहाड़ का। ३ पार करना। ४ काम का मूर्तिमान् चमत्कार ।
५ ईख के बीच में की गाँठें। ६ हँसी-ठट्टे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]माया, लिप्त, परेश की दे प्रथमाक्षर-छाप ।
आद्य-युगल-मात्रा पलट विधि ने रचा 'मिलाप' ।।२२।।

★ ★ ★

प्रसङ्गी संगीतोत्सव तब वहीं केवल नहीं,
लुभाने वाला था अपितु वसुधा में सब कहीं ।
यहाँ जो आनन्दानुभव करने को शुभ-[२]फली
[३]सुधर्मा से आई रसिक सब गन्धर्व-पटली ।।२३।।

विराजी राजी से जनक-तनया-राम-युगली,
युवावस्था मानो स्वगुणगण से संगत फली ।
विराजी स्त्री-[४]राजी युवति-वर-[५]राजीय घर में,
मराली-आली ज्यों सकुवलय-[६]राजीव-सर में ।।२४।।

वधू सीता पीताम्बर स्ववर से शोभित हुई,
अहा ! मानो संध्या सदृश [७]नभ से शोभित हुई ।
सवेरे वा प्राची छवियुत [८]अवाचीन नभ से,
वहीं सोहे कान्तामुख कुमुद-से वा कमल-से ।।२५।।

बना चारों [९]भाती वर-युवति-पाँती झट तभी,
जनाती संघाती जमघट, मनाती सुर सभी ।
स्त्रियाँ नाती-जातीयक धवल [१०]गाती स्वर-भरे-
कराती [११]सौराती सब विधि, झराती रस खरे ।।२६।।

गुरु-स्त्री के द्वारा समझ कुल-धारा, स्वघर के-
सुदेवों का सारा उचित उपचारादि करके ।
वधू-शोभी सारे वर, विवृति धारे निगम ज्यों-
हुए श्रीमद्-व्यासाश्रित, [१२]शयनवासाभिगम त्यों ।।२७।।

---

१ माया, लिप्त (जीव) और परमेश्वर इनके प्रथमाक्षर की छाप देकर अर्थात् 'मा लि, प' इन्हें लेकर इनमें पहले दो जो माया और लिप्त हैं, उनके प्रथमाक्षर की आपस की मात्रा पलटकर अर्थात् 'मालि' का 'मिला, बनाकर विधाता ने 'मिलाप' रचा है। अर्थात् संसार का कारण 'मिलाप' ही तो है। २ यह आनन्दानुभव का विशेषण हैं। ३ इन्द्र सभा से। ४ स्त्री-पंक्ति। ५ वधू-वर सम्बन्धी (जहाँ कि वे विराजमान थे)। ६ नील-कमल-सहित रक्तकमल के तालाब में। ७ कुछ पीले। ८ दक्षिणी आकाश से। ९ सोहती। १० व्यवहारी गीत। ११ सुहाग रात के उपचार। १२ वधूयुक्त वर शयन-निवास में अभिगम=अर्थात् प्रविष्ट हुए, जैसे टीका सहित चारों वेद व्यासजी के हृदय में रमे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रक्षेप-[१]सा कुछ सखी-जन भी पिछाड़ी-
जाने लगा, अपितु जा न सका अगाड़ी ।
जो जागरूक जनने जगना जताया,
[२]तन्द्रालु ने फिर उसे सु-समान पाया ।।२८।।

सुसंमुखीन व्यवधान-मुक्त हों,
सुनिर्मलत्वादि-प्रभाव-युक्त हों ।
ऐसे महादर्पण एक अन्य में-
ज्यों हों [३]प्रतिच्छायित धन्य धन्य में ।।२९।।

स्वकान्त के निर्मल अन्तरङ्ग में-
विदेहजा-चित्त रमा उमङ्ग में ।
निज-प्रिया-निर्मल-अन्तरङ्ग में-
अधीश का चित्त रमा उमंग में ।।३०।।

स्वकान्त के मानस में स्व-मूर्ति की-
विदेहजा ने सुख-[४]वास-पूर्ति की ।
पयोधि में ज्यों प्रतिबिम्बिता रहे-
पयोद-वीथी, न कि [५]कुम्बिता रहे ।।३१।।

स्वभाव से ज्यों जल-बीच शीतता,
विनीत में ज्यों नियता विनीतता ।
परेश में ज्यों प्रिय भक्त संयमी,
सीता-मनोवृत्ति अधीश में रमी ।।३२।।

ज्यों सूर्य से कान्ति स्वभाव से मिली-
रमेश से श्री निज भाव से मिली ।
विभूति-सी है जिनकी जगत्त्रयी,
विहार-व्याख्या उनकी न की गयी ।।३३।।

---

१ प्रक्षिप्त पाठ के समान। २ ऊँघने वाले ने तो सखीजन को भी वैसा ही समझ लिया। अज्ञानी ने प्रक्षेप को भी असली-सा समझ लिया। ३ प्रतिबिम्बित। ४ अर्थात् सुख से भरपूर निवास किया। ५ ढकी (पयोद-वीथी=आकाश)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निद्रा निहार [१]सकलत्र रमेशिता को–
पूर्वानुरक्त सकुचाकर, [२]तन्द्रिका को ।
दूती बना, कह स्व-मर्म, बुला सकी [३]थी,
सारी कथा सहज प्रेम-विलास की थी ।।३४।।

निद्रानुरक्त लखके जनकात्मजा ने–
प्राणेश को प्रणय-युक्ति-[४]रहस्य ठाने ।
सापत्न्य-दोष तज [५]तन्मयता बना ली,
खोती कभी न विदुषी नियत-[६]प्रणाली ।।३५।।

★ ★ ★

शृगाल-उल्लास छिड़ा वनों में, श्व-जाति-[७]उल्लास जनाश्रयों में ।
दोनों भिड़े वे [८]उपशल्य आते, [९]सीमान्त ही तो झगड़े जगाते ।।३६।।

हाँ, था उजाला, पर अर्ध-रात्र था,
पिशाच-बेताल-विलास-पात्र था ।
सुशीत औ निर्मल-[१०]वेष हो भले,
दुःशीलता से पर क्या कहीं टले? ।।३७।।

[११]निशीथ में नीरवता व शीतता–
कहीं-कहीं-सी अति-भीति-भीतता ।
लगी जमाने निज-राज्य-साधना,
परन्तु निद्रा-बल ही जयी बना ।।३८।।

★ ★ ★

दिक्पाल-दिग्गज-[१२]कदम्बक को जगाती,
चालाक चौर, चमगादड़ को भगाती ।
तोप-ध्वनि-[१३]प्रसृति ब्राह्म मुहूर्त-सूची,
आकाश-दिग्वलय व्याप उठी समूची ।।३९।।

---

१ भगवान् राम को सकलत्र=स्त्री (सीता) सहित और सर्व-रक्षक। २ ऊँघ को। ३ ऊँघ आने के बाद नींद आई इसी, बात को विचित्रता से कहा गया है। ४ प्रेम-चातुरी के मर्म को सम्हाले हुए। ५ तन्मय बन गई अर्थात स्वयं नींद से मिल गई। ६ सनातन रीति को। ७ कुत्तों के समूह का खेल-कूद। ८ गाँव और वन की सीमा। ९ दो राज्यों की सीमा। १० स्वच्छ वेषवाला। ११ आधी रात को। १२ समूह। १३ तोप की आवाज का फैलाव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीदेव-पूजि-जन को चट ही जगाते,
स्थानीय छात्र-कुल को [१]विधि में लगाते ।
भूपाल-वासगृह-मङ्गल-वाद्य बाजे,
क्या मेघ जीवनद[२]-जागरणार्थ गाजे? ।।४०।।

देवाधिदैवत-निकेतन में बजाये-
जाने लगे, मुरज-शंख प्रसंङ्ग आये ।
गाने लगे सरस भक्त प्रभात-गाने,
प्रारम्भ क्या बरसना न किया सुधा ने? ।।४१।।

जागी तुरन्त पहले जनकात्मजाता-
जागे तदुत्तर रघूत्तम हर्ष-दाता ।
जैसे कि कान्ति पहले निकले निराली,
हों पूर्ण व्यक्त तदनन्तर अंशुमाली ।।४२।।

श्रीराम की सहचरी जनकात्मजा के-
देदीप्यमान-मुखचन्द्र-महत्व पाके ।
सद्यः निशाधिपति ने मुख को उतारा,
स्पर्धि-प्रकर्ष हरता झट [३]सत्त्व सारा ।।४३।।

★ ★ ★

सन्ध्या-विधान-रत राघव-रत्न ज्यों ही,
अर्घ्य-प्रदान-विधि-लग्न हुए कि त्यों ही ।
दे आत्म-दर्शन उसे रवि ने [४]सम्हाला,
श्रद्धालु का तुरत कर्म फले निराला ।।४४।।

श्रीकोशलाधिपति ने इस भाँति सारा,
उद्वाह-कर्म सब का मन में विचारा ।
पूरा किया सविधि ईश-कृपा-सहारे,
श्रीश-प्रसाद सब कार्य सदा सुधारे ।।४५।।

---

१ कर्तव्य कार्यों में। २ राम और मेघ (ध्वनित) के जगाने को। ३ बल। ४ (अर्घ्य को) स्वीकार क़िया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय अयोध्या पूर्ण ऐश्वर्य-शाली–
अतुलित पद पा के विश्व में थी निराली ।
सुर-गृह-शिखरों के कुम्भ-रूपी अँगूठे–
अमर-नगर को भी थी दिखाती अनूठे ।।४६।।

समाप्त होने पर भी विवाह के,
नये-नये उत्सव के, उछाह के ।
अहो ! दिनों का उपभोग ही रहा;
[1]सुमङ्गला क्योंकि वधू रही वहाँ ।।४७।।

विश्राम पायँ अब पूर्ण अहा ! पिताजी,
ब्रह्मानुचिन्तन करें बहुसोमयाजी ।
यों जानते समनुशासन ले निराला,
श्रीराम ने नृपति-कार्य निरा सम्हाला ।।४८।।

श्री कैकयी-तनय ने अवधान-द्वारा,
ले हाथ जानपद-[2]कार्य-विधान सारा ।
श्रीराम के हृदय-आशय को निबाहा,
ज्येष्ठानुसार चलना सब ने सराहा ।।४९।।

सौमित्रि-शत्रुहर ने [3]समनुक्रिया की,
संलग्न हो उभय-कार्य-सहायता की ।
जैसे धुरीण रथ चक्र-[4]पद-द्वयी का,
साहाय्य-कर्म करते लघु चक्र नीका ।।५०।।

प्रत्येक सास-मुख-वाक्य किसी वधू ने,
सद्भावना धर किये न कदापि सूने ।
ये शील जान सब ने मिथिला बखानी,
एवं सुधन्य [5]निमिवंशप्रसूति मानी ।।५१।।

प्रधान पाकालय की व्यवस्था–
विदेहजा ने करली करस्था ।

---

१ मंङ्गलवती (सीता)। २ दिहाती कामों की देखरेख। ३ अनुकरण। ४ रथ के चक्र-रूप पैर । ५ संतति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः हुई [1]सुस्थित ज्येष्ठमाता,
[2]सुपाचनाकार्य श्रमी बनाता ।।५२।।

★ ★ ★

अहो ! रसोई रसवती यों सर्वत्र कहाय ।
पर न सम्हाले रसवती [3]विरसवती बन जाय ।।५३।।

[4]वेसवार की [5]असमता ज्यों बिगाड़ती शाक ।
देख-रेख की न्यूनता त्यों बिगाड़ती पाक ।।५४।।

गार्हस्थ्य-[6]चिन्तन किया करतीं सुमित्रा,
श्रीकैकयी जन-[7]नियुक्ति-क्रिया विचित्रा ।
श्रीमाण्डवी-[8]प्रभृति ने उनका बटाया-
सत्कार्य-भार विपुल श्रम को घटाया ।।५५।।

श्रीऊर्मिला ने जनकात्मजा की-
उत्साह से पूर्ण सहायता की ।
अन्योन्य वे थीं सब प्रीति-पात्री,
माता-कुमारी-सम सौख्य-दात्री ।।५६।।

क्या एक-मात्र उन [9]नन्दन-मङ्गलों का,
गार्हस्थ्य-जीवन-सुरद्रुम के फलों का ।
राजेन्द्र ने समुपभोग किया निराला,
कौटुम्ब-[10]सौख्य गृहि-जीवन का उजाला ।।५७।।

अपूर्व सौख्यस्थ नरेशिता ने
मूँदे हुए दृष्टि, दशा न जाने ।
अहो!निकाला चिर-काल वैसे,
[11]उन्निद्र निद्रा-सुख-मग्न जैसे ।।५८।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता द्वादश प्रतान समाप्त ।

---

१ विश्राम-प्राप्त । २ भोजन को भली-भाँति तैयार करवाना । ३ बेस्वाद । ४ मसाले की। ५ कम ज्यादा पड़ जाना। ६ अतिथि-सत्कार आदि गृहस्थ का काम। ७ नौकरों से ढंग से काम लेना। ८ आदि ने अर्थात् श्रुतकीर्ति ने। ९ पुत्रों के और नन्दन-वन के कल्याणों का। १० कुटुम्ब का सुख। ११ उनींदा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

तेरहवाँ प्रतान

प्रवेशिका

वृद्धावस्था के कारण एक दिन वैतालिक के सांकेतिक कथन से राजा दशरथ के मन में विचार आता है कि अब रघुवर को युवराज बनाने का उपयुक्त समय आ गया है। वे राज-सभा में निवेदन करते हैं कि इक्ष्वाकुवंशी राजकुल-परम्परा का यथाशक्ति निर्वाह करते हुए उन्होंने अब तक शासनकार्य चलाया है। किन्तु अब शरीर की शिथिलता के कारण वे ज्येष्ठपुत्र राम को युवराज बनाकर भार-मुक्त होना चाहते हैं। पूरी राजसभा ध्वनि-मत से इस प्रस्ताव का अनुमोदन कर देती है। श्रीराम की गुणावली का वर्णन करते हुए सभी ने उत्साहपूर्वक भव्य समारोह की तैयारी प्रारम्भ कर दी। राजमहल में सभी रानियाँ आनन्दमग्न हैं। सजधज कर देदीप्यमान अयोध्या अमरपुरी को भी लज्जित कर रही है। मनोरञ्जन के लिए अनेकों स्पर्द्धाओं की योजना बनाई जा रही है। सर्वत्र उल्लास का वातावरण है।

विशेष : भरतजी की प्रमुखता में गज-खेलन, गजारोही-नृपभट सम्मेलन, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की देखरेख में घुड़दौड़, गुरुकुमार की नायकता में शास्त्रार्थ, विनोद सभा, कवि-सम्मेलन, शिशु सम्मेलन, किशोर-लेखन आदि का समारोह के अवसर पर आयोजन-संकेत अद्भुत कल्पना का द्योतक है।

प्रलम्ब-झम्पा (लम्बी कूद), अति उच्च झम्पा (ऊँची कूद), शब्दों के प्रयोग से कवि की विलक्षण शब्द-ज्ञान-पटुता झलकती है।

जनमत-शक्ति में राजा दशरथ के श्रद्धा-भाव प्रेरणास्पद हैं:-

'राजा का पद है जन-नेता, जनतारूप जनार्दन देता ।
सहमत-जनता-शक्ति समूची, जनपति से कितनी ही ऊँची ।।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेरहवाँ प्रतान

परम पुनीत [१]पदार्थमय रामनाम अविराम ।
जो रटते कटते दिवस, तो पटते सब काम ॥१३॥

उषा-काल में एक दिन लख विधु को गत-कान्ति ।
वैतालिक कहने लगा धरे मानसिक शान्ति ॥१॥

उदय-समय से शशी! तुम्हीं ने –
सजग रहे, जगदन्धकार छीने।
अब अवसर जान, कार्यभारी –
नव रवि को करके, बनो सु-[२]चारी ॥२॥

यह सुन नृपति राम के स्नेही, पिछली रात जगे पहले ही ।
लगे सोचने मन ही मन में, नीरवता थी भवन-भवन में ॥३॥

वैतालिक जो यह है- बोला, रंगा उसी से मम मन-चोला ।
रघुवर को युवराज बनाना, राज्य-भार दे शान्ति मनाना ॥४॥

यह वैतालिक-वचन नहीं है, विधि का कालिक वचन सही है ।
तो मैं जरा-[३]मन्दता खोकर, नित्य कर्म से निवृत्त होकर ॥५॥
अभी सभा को स्वाशय देकर, पौर-[४]जानपद-अनुमति लेकर ।
रघुवर को युवराज करूँगा, कार्य-भार को तुरत हरूँगा ॥६॥

यों मन में दृढ़ ठान कर उठे अयोध्या-नाथ ।
लगे प्रभाती कर्म में सत्वरता के साथ ॥७॥

सुनियत समय सभा भर आई, ज्योंकि [५]सुधर्मा की छवि छाई ।
मनुज मुदित थे राज-सभा में, जैसे कैरव चन्द्र-प्रभा में ॥८॥

मध्यासन पर महिपति सोहे, ज्यों नभ-बीच चाँद मन मोहे ।
मुनि, द्विज, मण्डलपति, अधिकारी, पौर, जानपद, वर व्यापारी ॥९॥

---

१ परमपदार्थ [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] स्वरूप और उत्तम शब्द व अर्थ वाला । २ सुख से रहने वाला और जीवन-सुधारक । यह चाँद के मिष राजा को सुझाया गया है कि तुमने अबतक सफलता के साथ राज्य शासन कर लिया, अब राम को राज्यभार देकर अपना जीवन-सुधार करो । ३ बुढ़ापे की सुस्ती । ४ देंहातियों की । ५ देव-सभा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुचि सामन्त सचिव पद-धारक, यथा-स्थान सोहे ज्यों तारक ।
अवसर पर गुरु-अनुमति को ले, मनुजेश्वर विशद-स्वर बोले ।।१०।।
राजा का पद है जन-नेता, जनतारूप जनार्दन देता ।
सहमत-[१]जनता-शक्ति समूची, जनपति से कितनी ही ऊँची ।।११।।
हिमकर-प्रभा प्रभावक तबतक, रवि-उदय न अभिभावक जबतक ।
इसीलिए मैं विनीत होकर, करता स्व-निवेदन मद खोकर ।।१२।।
आशा है, सुनकर इसे निज-अवधान-समेत ।
संमति देगी सुजनता सहमत प्रीति-[२]निकेत ।।१३।।

★ ★ ★

वैवस्वत मनु-महाराज के हाथ उजलते,
सगरेक्ष्वाकु-भगीरथ-रघुनृप-बल पर चलते ।
विकट विषम बाधा-[३]विपथों में कभी न खलते-
इसी राज्य रथ को ढोते अब पग न सम्हलते ।।१४।।
पग-युग बेचारा क्या करे, ज्यों मैं यह भी थक गया ।
ढोते इसको भी देह-रथ चर्म सभी फट तक गया ।।
सुभुज-बलों पर [४]यह चलता है न कि विकलों पर,
कारण, शकट स्थलों पर चलता, नहीं जलों पर,
भुज-बल की क्या कहें, भुजों की छिटकीं [५]बलियाँ,
जगह-जगह की निबल पड़ गई सारी नलियाँ ।।१५।।
जिस मम भुज को उपमा दिया करते दुर्धर दण्ड की ।
उस ही को दी जाने लगी लचके वेतस [६]खण्ड की ।
जहाँ अपेक्षित जानी जाती दूर- [७]दर्शिता,
जहाँ अपेक्षित मानी जाती दीर्घ- [८]दर्शिता ।
वहाँ दृष्टि की क्या फल देगी अल्प-दर्शिता,
तिस पर भी तो जारी रहती नीर- [९]वर्षिता ।।
कवि जिस दृग को उपमा दिया करते विकसित कमल की ।
उस ही को दी जाने लगी जीर्ण कपर्दक- [१०]शकल की ।।१६।।

---

१ एकमत हुए जन समुदाय की शक्ति । २ प्रेम का निवास [जनता] । ३ विघ्नबाधारूप कुमार्ग में । ४ राज्य-रथ । ५ बुढ़ापे के ढीले चर्म । ६ बेंत के टुकड़े की । ७ दूर का विचार। ८ गहरा विचार । ९ पानी टपकना; दृष्टि को ज्ञानरूप देने से नीरव+ऋषिता=कुछ न कहने वाले सत्यवादी की दशा ध्वनित है । १० कौड़ी के टुकड़े की ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0: In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णमूल में सित रोमों के जो प्रसरण हैं,
वे यों कहते हुए काल के दन्त-किरण हैं ।
जो करना हो वह कर चुकिए, यह अवसर है,
सम्हल जाइए, अन्त-समय अब [१]समीपतर है ।
इतने पर भी परवा नहीं जो करता, वह मूढ है ।.
है नियत [२]काल का काल क्या वह नित शिर-आरूढ है ।।१७।।

जब से मुख [३]नीरद हुआ नीर बरसता युक्त।
किन्तु [४]विरसता छा गई सदा सरसता-मुक्त।।१८।।

[५]यदि न नर-चतुष्टयी हो अविश्राम नाराच ही,
अब मम इस चाप-चापल्य की क्या फले जाँच ही? ।
प्रतिभट अति-नम्र हैं, सीस भी तो उठाते नहीं,
अविरल भय-भार है ऊपरी, चैन पाते नहीं ।।१९।।

★ ★ ★

यौवराज्य दे [६]सुपटु राम को, अतः चाहता मैं विराम को ।
यों तो वे मम कार्य-भार को बटा पालते निजाचार को ।।२०।।

किन्तु नियम से पद न दिया है, [७]शिशु ने मा-पन स्वयं पिया है ।
यदि जनता की अनुमति पाऊँ, तो मैं सफल-काम हो जाऊँ ।।२१।।

ठहर गये यों कह कर राजा, जनता ने बरसाया [८]लाजा ।
मानो वह जनता का दूना निकला हर्षोद्‌गार-नमूना ।।२२।।

पाकर जन-संकेत मुनीश्वर, [९]प्रतिनिधि बन बोले [१०]तारस्वर ।
मैं जनता का आशय पाके, करता प्रकट साथ [११]स्फुटता के ।।२३।।

---

१ बहुत समीप । २ मृत्यु । ३ दांतों रहित और बादल । ४ फीकापन । ५ यदि सदा कर्म-शील नाराच=लोह-बाण रूप ये चारों नर [मेरे पुत्र] न हों तो अब (बुढ़ापे में) मेरी धनुष-शक्ति की जाँच ही कैसे सफल हो । प्रतिभट=बैरी । शेष स्पष्ट है । प्रथम चरण का छन्दो-विषयक अर्थ यह है:- यदि न, न और चार रगण हों तो विश्राम-रहित नाराच छन्द होता है । ६ सब प्रकार से शिक्षित । ७ जैसे बच्चा स्वभाव से माँ का स्तन पीता है, वैसे वे (राज-कुमार) राज्य कार्य में स्वयं प्रवृत्त हुए हैं । ८ अक्षत [धान्य-वाचक शब्द का एक वचन भी बहु-वचन का द्योतक हो जाता है] । ९ एवज । १० जिसका स्वर ऊँचा हो। ११ स्पष्टता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महामहीपति-मौलिमणि! सुनिए कोशल-नाथ! ।
जनता उत्तर दे रही धन्यवाद के साथ ॥२४॥

जन-मन की चिर-कालिक आशा, आज हुई नृप-वदन-प्रकाशा ।
जन-मुख से क्यों प्रकाश पावे, नृप जो [१]जन-मुख प्रमुख कहावे ॥२५॥

जो जनता को आदर देता, वह है [२]सिद्धहस्त जन-नेता ।
राज-रत्न है वही सुलक्षण, जो कि [३]विलक्षण नीति-विचक्षण ॥२६॥

प्रभु ने अज नृप के समनन्तर, किया सु-शासन-कर्म निरन्तर ।
[४]प्रजा प्रज़ा को अपनी माना, नहीं आज तक अन्तर जाना ॥२७॥

कहें कहाँ तक नृपति-बड़ाई, [५]शतमख ने शतशः जो गाई ।
गुण-निधि राम किसे न सुहावें, प्रभु! [६]अवश्य युवराज बनावें ॥२८॥

★ ★ ★

सारी गुणावलि [७]नदावलि के सरीखी-
[८]रामाब्धि-बीच पहुँची, यह बात दीखी ।
मेघोपमान अतएव नरेश सारे
ये जी रहे गुणभरे उनके सहारे ॥२९॥

श्रीराम को तज समृद्ध युवा न कोई,
[९]मद्यानुरक्ति जिसने विष जान खोई ।
[१०]आखेट-लुब्ध शश- [११]बेधन-हेतु फूले,
[१२]सद्धर्म भी अब कई युवराज भूले ॥३०॥

जैसे रघूत्तम सुसौम्य सुधानुवर्षी,
वैसे न अन्य जग-बीच कला-प्रदर्शी ।
[१३]राकेश हों नयन-गोचर पूर्ण जैसे,
क्या अन्य रात्रिपति भी छवि पाँय वैसे? ॥३१॥

---

१ क्योंकि । २ मँजा हुआ । ३ अनोखा । लक्षणों रहित इस अर्थ के झलकने से विरुद्ध होने के कारण विरोधाभास है । ४ संतान । ५ इन्द्र ने । ६ मुनिकथन में 'अवश्य' का अर्थ 'किसी के अधीन न रहते हुए' ऐसा भी झलकाया गया है; क्योंकि वे जानते थे कि कैकयी के वश वनवास हो जाएगा । ७ नदी-नालों की पङ्क्ति । ८ रामरूप समुद्र में । ९ मदिरा-पान शौक। १० शिकार के शौकीन । ११ खरगोश को बींधने के लिए । १२ [हिंसक जन्तुओं को दण्ड देना और भोले-भालों पर दया करना] । १३ चन्द्रमा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीनों अहो! जननियाँ [1]प्रियता जनातीं,
श्रीराम का सदृश भक्ति-विनोद पातीं ।
तीनों यथा जगतियाँ [2]सुषमा बढातीं,
आदित्य का सदृश कान्ति-प्रकाश पातीं ।।३२।।

श्री कौशिकर्षि जिस हेतु यहाँ पधारे,
सो कार्य सिद्ध करने सब दुष्ट मारे ।
बालत्व में परम दुर्लभ नाम पाया,
श्रीराम ने जनक को सुकृती जनाया ।।३३।।

श्रीराम से भरत, लक्ष्मण, शत्रुहा ये-
होते नियुक्त नव-कर्म-प्रसङ्ग पाये ।
अव्यक्त से विधि-हरि-प्रमथेश जैसे,
तो अल्प भी नियम में त्रुटि आय कैसे? ।।३४।।

[3]सौभ्रात्र-प्रेम-गति को फिर क्या बखानें,
जो एक रूप सब को सब लोक मानें ।
आदर्श और अनुकार्य सुकार्य सारे-
रामादि के निरख पुण्य फले हमारे ।।३५।।

श्रीशारदा सविधि [4]कच्छपिका सजाके,
श्रीनारदर्षि [4]महती महती बजाके ।
श्रीराम के सुगुण गा न सुतृप्त होते,
तो कौन पायँ [5]परितृप्ति सु-बीज बोते, ।।३६।।

भला विचारा अवधेश ! आपने,
मानों सुझाया यह [6]शार्ङ्गचाप ने ।
सुताग्रणी को युवराज कीजिए,
प्रबन्ध के हेतु [7]निदेश दीजिए ।।३७।।

★ ★ ★

सुन नृप ने हो अति आनन्दित, गुरु को पुनः किया अभिवन्दित ।
धन्यवाद से सभा-विसर्जन हुआ, साथ जय का भी गर्जन ।।३८।।

---

१ प्रेम । २ अतिशोभा । ३ भले मायप की प्रेम दशा । ४ ये उन-उन की वीणाओं के नाम हैं । ५ पूर्ण तृप्ति । ६ विष्णु । ७ आज्ञा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यौवराज्य-[१]संभार बनाने, आज्ञा की रविकुल-[२]सविता ने ।
सारी नगरी गई सजाई, जिसे देख सुरपुरी लजाई ।।३९।।

स्थान-स्थान पर ध्वजा-पताका, मद रखती निजनिज सुषमा का ।
आठों पहर परम फहराती, लहरी-सम लम्बी लहराती ।।४०।।

द्वार-द्वार पर वन्दनमाला, अभिनन्दन करती सुविशाला ।
गये बजार-बजार सँवारे, जिन्हें निरख अलकापथ हारे ।।४१।।

पलटा कुछ ही समय में अवधपुरी ने रङ्ग ।
सुन रघुवर-युवराज-पद धरा [३]युवत्व-उमङ्ग ।।४२।।

कौसल्यादिक राज-बधूजन, उसी दिवस करके सुर-पूजन ।
जबकि सुना इस समाचार को, मुदित हुआ अति, समझ सार को ।।४३।।

सबने [४]सत्कृति की उस जन की, जिसने कही विचारी मन की ।
मुदित कैकयी और सुमित्रा, तथा और भी विमलचरित्रा ।।४४।।

कौसल्या को भव्य बधाई देने लगीं उमड़ मन-भाई ।
वह बोलीं, यह उचित तुम्हें ही, तुम्हें राम परमप्रिय स्नेही ।।४५।।

राम तुम्हारा ही तो नन्दन, अतः तुम्हें है यह अभिनन्दन ।
क्योंकि तुम्हीं पुष्टिद [५]समवित्री, मैं तो हूँ बस एक [६]सवित्री ।।४६।।

तुम्हें बधाई यह है बहिनो ! यह लो नव-नव भूषण पहिनो ।
आज सभी मिलकर हम बंहिनें, सम सुवेष सम भूषण पहिनें ।।४७।।

करके निज-निज कर्म [७]समापन, महाराज को दें [८]बर्धापन ।
किया कैकयी ने [९]संज्ञापन, हो [१०]महिषी-महिपति-बर्धापन ।।४८।।

यह सुन करते [११]किलकिला-कलकल कौतुक-पूर्ण ।
सब ने कैकेयी-कथन किया समर्थित तूर्ण ।।४९।।

★ ★ ★

निर्विकार [१२]जन-अन्तः पुर में ज्यों चमकें, उस अन्तः पुर में ।
स्वयं राम तब मुदित पधारे, सब के उमड़े जय-जय-नारे ।।५०।।

१ तैयारी । २ सूर्य (दशरथ) । ३ यौवन । ४ सम्मान । ५ संरक्षक । ६ जन्म-दात्री । ७ समाप्ति। ८ बधाई । ९ संकेत करना, सुझाना । १० पट रानी । ११ हर्ष-नाद का कोलाहल । १२ काम-कोधादि-विकारों से रहित मनुष्य के अन्तः करणरूप नगर में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया मातृजन को अभिवादन, सबने किया स्वस्ति-[१]संपादन ।
छिड़ जाने पर इधर-उधर की, रघुवर ने सब बात मधुर की ।।५१।।

वे बोले जननी से, माता !, तुरत भरत अब आवे भ्राता ।
उनसे हो उत्सव-छवि पूरी, उनके बिना विभूति अधूरी ।।५२।।

पूर्णचन्द्र ज्यों भ-[२]रत-रुची से मैं उल्लासित भरत-[३]रुची से ।
विनय-प्रार्थना शिव से मेरी, [४]मत हो भरत-मेल में देरी ।।५३।।

यह सुन बोलीं कैकयी, वत्स! करो न विचार ।
उनको तुरत बुलायँगे, करलो कुछ आहार ।।५४।।

कौसल्या ने कहा, न जाने क्यों श्रीकेकयपति-भैया ने ।
स्मरण किया इस समय भरत को, जाने कौन दैव के मत को? ।।५५।।

जब से मैंने सुना सु-घोषित, यौवराज्य-पद जनता-पोषित ।
तब से मुझे भरत-अनुपस्थिति, खटक रही है, क्यों हो [५]प्रस्थिति? ।।५६।।

कहा कैकयी ने प्रिय जीजी!, क्यों इस चिन्ता-वश तुम छीजीं ।
भव्य वार असवार जायँगे, तुरत भरत को साथ लायँगे ।।५७।।

केकयपति-भैया तो यों ही बुला बैठते, अति हैं मोही ।
यदि सपने में अपने जन से मिल लें तो, चूकें न मिलन से ।।५८।।

आओ, अब मिलकर सभी प्रिय रधुवर के सङ्ग ।
करें [६]सफल को अति सफल मध्याहार-प्रसङ्ग ।।५९।।

रघुवर बोले, पङ्क्ति करावें, लक्ष्मण भैया भी आ जावें ।
उनको तब ही गया बुलाया, वे आये, पल भी न बिताया ।।६०।।

मधुर-मधुर बातें सब करते सोल्लासन [७]प्राशन अब करते ।
बोले अनुज, कुमार-सभा ने, यौवराज्य में विनोद पाने ।।६१।।

---

१ आशीर्वाद । २ नक्षत्रों में प्रविष्ट हुई [अपनी=पूर्ण चन्द्र की] कान्ति से । ३ भरत की शोभा अथवा रुख से । ४ भरत के मिलाप में देरी मत=स्वीकृत, मंजूर हो राम-मुख के दैविक वचन में यह भी अर्थ झलकाया गया है । ५ यहाँ से रवानगी । ६ फलों सहित यह अर्थ भी जानना। ७ आनन्द-सह्रित आहार ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह रुचिकर प्रस्ताव किया है, मैंने-प्रथमोत्साह दिया है ।
भरत-प्रमुखता में गज-खेलन, गजारोहि-नृपभट-सम्मेलन ।।६२।।

देख-रेख में तथा [१]हमारी हो घुड़दौड़ [२]पद्‌ग-गति सारी ।
गुरू-कुमार की नायकता से, हो शास्त्रार्थ-विनोद सभा में ।।६३।।

कवि-सम्मेलन, शिशु-सम्मेलन आदि तथा हो किशोर-लेखन ।
अहा! मनोरंजन अति होगा, ऐसा कभी सुयोग न भोगा ।।६४।।

वहाँ [३]पुरःसर-वर्ग का [४]पुरस्कार-सत्कार ।
किया जाय गुणि-[५]गण-गणित गुण-गण के अनुसार ।।६५।।

कर सुमन्त्र से मन्त्रणा अब नियन्त्रणा-[६]मुक्त ।
स्वीकृति लेंगे [७]देव से युक्त तथा उपयुक्त ।।६६।।

कइयों ने बातें सुन-सुन के, सार उन्हीं में से चुन-चुन के ।
मोदक खा [८]परमोदक पीते, मन-मोदक [९]खाये मन-चीते ।।६७।।

मातायें तो सुखद बनाती प्रीति-भोज को, देव मनाती ।
सभी सफल हों, यही चाहती कथित योजना अति सराहती ।।६८।।

रुख पहिचान सुमित्रा बोली वाणी प्रेम-मधुर-रस-घोली ।
सफल बनाने स्वीय प्रयोजन, करो विशेष शिवा [१०]ऽर्चायोजन ।।६९।।

सुन सब ने निज मन की चाही, बात समर्थन-सहित सराही ।
रघुवर बोले [११]यही सार है, आप धन्य हैं, नमस्कार है ।।७०।।

इस प्रकार उपचार से कर आहार [१२]उदार ।
सब ने तन, मन वचन से पाया सुख-संचार ।।७१।।

★ ★ ★

प्रस्ताव-वार्ता सुन पाठशाला,
व्यायाम-शालादिक में विशाला-
होने लगी और नई तयारी,
प्रोत्साहना कार्य बनाय भारी ।।७२।।

---

१ अर्थात् शत्रुघ्न सहित मेरी । २ पल्टन-परेड़ । ३ प्रथम आनेवालों का । ४ पारितोषिक [इनाम] सम्मान । ५ जानकारों की समिति से जाँचा हुआ । ६ रोक-टोक । ७ नरेश । ८ परम+उदक= उच्च श्रेणी का पानी। ९ मन के लड्डू उड़ाये अर्थात् कोरी कल्पनायें कीं। १० शिव पूजा की व्यवस्था । ११ शिव पूजा का विशेष आयोजन । १२ मनोहर ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[1]प्रलम्ब झम्पा अति उच्च [2]झम्पा
होने प्रतिस्थान लगी [3]अकम्पा ।
न पाठकों ने [4]श्रुत ही पढ़े थे,
व्यायाम भी खूब बढ़े-चढ़े थे ।।७३।।

ऐसा करेंगे, फिर यों करेंगे,
समग्र आशा मन की भरेंगे ।
यों लोक ने ज्ञान धरे अधूरे –
स्व-कल्पना से चित-चौक पूरे ।।७४।।

उमंगो में झूले, हरि-भजन भूले मद-छके,
छिड़ी केली-चर्चा, नहिं भगवदर्चा कर सके ।
रुचा वेश्या-गाना, मधुर मुसकाना युवति का,
[5]बुलावा है भावान्वित-प्रभु भुलावा-कुगति का ।।७५।।

अयोध्या के पुण्य-स्थल पर टिंको भद्र पथिको!,
दृगों से देखोगे युवनृप हुए दाशरथि को ।
शुभाशा को पूरी तुरत करिए, क्या दिन रहे,
सुझाते यों स्नेही दिन उँगलियों पै गिन रहे ।।७६।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता त्रयोदश प्रतान समाप्त ।

---

१ लम्बा कूदना। २ ऊँचा उछलना। ३ अविचल । ४ शास्त्र। ५ ईश्वर का भूल बैठना एक दुर्गति का भाव-भरा बुलावा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

चौदहवाँ प्रतान

प्रवेशिका

जिस समय अयोध्या में श्रीराम को यौवराज्य पद देने की तैयारी हो रही थी, उसी समय देवलोक में देवराज इन्द्र इस चिन्ता से दुःखी थे कि अभी तक लङ्केश रावण के संहार का कोई लक्षण दृष्टिगत नहीं हो रहा। वे भगवती योगमाया का स्मरण करने लगे। योगमाया तुरन्त प्रकट हुई। इन्द्र उनकी स्तुति करते हुए उनकी महत्ता का गुणगान करते हैं। योगमाया कहती हैं कि वे परब्रह्म की प्रेरणा से ही सञ्चालित होती हैं। वे इन्द्र को आश्वासन देकर कि राक्षसों के संहार का अवश्य उपाय होगा, अदृश्य हो जाती हैं। दूसरे दिन रानी कैकेयी की दासी मंथरा रानी को श्रीराम के युवराज पद देने के समाचार से अहितकर परिणाम से सावधान करती है। पहले तो क्रुद्ध होकर रानी प्रिय पुत्र राम के सम्बन्ध में ऐसा कहने के लिए मंथरा को डाटती-फटकारती हैं, किन्तु मंथरा की कपटपूर्ण प्रस्तुति से प्रभावित होकर वे कोप-भवन में चली जाती हैं। राजा दशरथ के वहाँ पहुँचने पर उनसे पूर्व-प्रदत्त दो वरों के रूप में भरत को अयोध्या का राज्य और श्रीराम को १४ वर्ष का वनवास माँग लेती हैं। वचनवद्ध राजा विवश होकर दुःखी मन से कैकेयी को श्रीराम के वनवास की हठ छोड़ने के लिए अनुनय-विनय करते हैं। किन्तु उनका प्रयास असफल हो जाता है।

विशेष : शब्द-प्रयोग –कैकेयी द्वारा कहना– 'वा जो न देना, नट दीजिएगा'–यदि वर नहीं देना है, तो मना कर दीजिए। मना करने के लिए कवि द्वारा राजस्थान में प्रचलित **नटना** शब्द का प्रयोग भाषा-समृद्धि का प्रतीक है।

व्यावहारिक काव्य-शास्त्र : मालिनी, इन्द्रवज्रा आदि छन्दों का लाक्षणिक प्रयोग व्यावहारिक काव्य शास्त्रीय ज्ञान का द्योतक है एवं छात्रोपयोगी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौदहवाँ प्रतान

राम-जानकी-युग अनुग श्रीसौमित्रि-समेत ।
चन्द्र-चन्द्रिका ज्यों सबुध, मन को करें निकेत ।।१४।।

उसी समय नन्दन-निकुञ्ज में कर ऐकान्तिक आसन-
दहिने कर पर रख कपोल को [1]श्रीपाकासुर-शासन ।
[2]कङ्कण-कुण्डल-विदेशि-बान्धव-मेल-श्रेय को धारे-
लगे सोचने, कैसे हों रघु-बान्धव न्यारे-न्यारे ।।१।।

होने आया [3]दिव्य मास यह, किन्तु न दशमुख-दल के-
विदलन के [4]उपलक्षण लक्षण अवधपुरी में झलके ।
[5]प्रत्युत रघुवर-यौवराज्य की शुभ सब-भाँति तयारी-
[6]धाम-धाम में धूम-धाम से अहो ! हो रही भारी ।।२।।

माये ! जमाये राज्य को तू है सभी संसार में,
पर दीखता [7]अपवाद इसका कोशलेश-अगार में ।
सापत्न सुत युवराज होता, हैं प्रसन्न सपत्नियाँ,
क्यों तीन विधि से की गईं उस काल [8]अन्तर्वत्नियाँ? ।।३।।

उस भाँति तीनों रानियों की भिन्न-भिन्न प्रसूति से,
विधि को सराहा पूर्ण मैने भावि-सूझ-विभूति से ।
परिणाम उसका और ही पर दृष्टिगोचर हो रहा,
क्योंकर विधाता इस समय धर गाढ़ निद्रा सो रहा? ।।४।।

ज्यों ही कि पाया यह ध्यान, माया-
छाया स्वभू की धृत-कान्त-काया ।

---

१ इन्द्र । २ हाथ पर कपोल रखने के कारण हाथ और कपोल का पार्श्ववर्ती क्रम से कंगन और कुण्डल रूप विदेशी बन्धु एक जगह मिल गये, अतएव कवि का कहना है कि, इस श्रेय को रखने वाले इन्द्र सोचते हैं कि रघुवंशी बन्धु अलग २ कैसे हों ? ३ स्वर्गीय महीना। मनुष्यों का १ वर्ष देवों का एक दिन-रात होता है । ४ पहिचान कराने वाले । ५ उल्टी । ६ जगह-जगह । ७ नियम की रुकावट। ८ गर्भिणियाँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आई वहीं, वासव ने नँवाई-
ग्रीवा, सुहाई गुण-गीति गाई ।।५।।

परम-पुरुष की तु देवि! पूरी सहाया,
अविकृति कहलाती नाम से योगमाया ।
[1]सगुण-सुमन-आदि-श्रीयुतः-मायिनी! हे!-
दिग्पति-मुनि-नाना-मायया-मालिनी हे ।।६।।

[2]पञ्चवर्ग की अन्त्य कोटि पर 'मा' तू रहने वाली
अन्तःस्थों के आदिम 'या' से रहे भला! क्यों खाली? ।
चट उससे संबन्ध जोड़कर बन जाती है माया,
तभी सभी ने पर-ब्रह्म को सदा अकेले पाया ।।७।।

माता! [3]तुम्हारे बल ही विधाता-
धाता कहाता फिर विष्णु त्राता ।
क्षाता जगत् का हर दृष्टि आता,
माता पिता आदि जनाय नाता ।।८।।

माता बोली, वत्स ! तुम्हारा आशय मैंने जाना,
त्रिलोक भर में प्रभाव मेरा पड़ता यह भी माना ।
किन्तु कान्त उन जगन्नियन्ता श्रीअनन्त के रुख से-
चलती हूँ, परतन्त्र हुई भी हूँ स्वतन्त्र पति-सुख से ।।९।।

---

१ दिगपति=दिक्पालों और मुनियों की अनेक माया से हे मायिनी ! [मायावाली] सत्वादिगुणों वाले देवादिकों की श्री [विभूति] से संपन्न हुई तू मालिनी [मालाधारिणी] है । माला भी गुण [तागा] और सुमन [पुष्प] आदि शोभायुक्त होती है । अन्तिम चरण से मालिनी छन्द का लक्षण बताया गया है—दिगपति ८ मुनि ७ वर्ण पर यति वाली न-न-मय-यगणों वाली मालिनी होती है । यदि ऊपर का 'हे' ३य श्रेणी की तुक का कारण समझा जाय तो संबोधनवाची 'हे' लगाकर पढ़िए । २ काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह पञ्च वर्ग हैं, इस की अन्तिम काष्ठा पर 'मात्सर्य' का उपलक्षण 'मा' है। अन्तःस्थों [मन, बुद्धि, अहंकारों] से प्रथम तो 'या' [याति अतति इति या आत्मा है, उससे खाली कैसे रह सकती है? कवर्गादि ५ वर्गों के अन्त में रहने वाला) 'म' अन्तःस्थों (यकरादि) के आदिम 'य' से मिलकर रहा करता ही है। संस्कृत में 'मा' लक्ष्मी को कहते हैं और हिन्दी में 'मा' माता को कहते हैं, अतएव सार्थक है। उत्तरार्द्ध स्पष्ट है, क्योंकि परब्रह्म मायोपाधि से शून्य है। ३ यहाँ बहुवचन-प्रयोग कर स्वार्थ-साधक की नीति झलकाई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिनके रुख से नित्य भक्त को जाल निकाल बचाती,
नर-शरीर उनके आश्रय में प्रभु बनती सकुचाती ।
अब सर्वज्ञ उन्हीं से प्रेरित हो सब काम करूँगी,
लखा करो तुम हरि-लीला [१]हरि सब कुछ कष्ट हरूँगी ।।१०।।

यों सुरपति को सरल [२]सान्त्वना देकर माता माया-
[३]अन्तर्हित तत्काल हो गई, धैर्य इन्द्र ने पाया ।
स्वार्थी जन तो स्वार्थ सोचता, बिगड़े क्यों न पराया?,
रच जीवन-संग्राम जयाऽजय-खेल दिखाती माया ।।११।।

★ ★ ★

अब दूसरे दिन दीनता से कैकयी की किंकरी-
अवकाश लेकर स्वामिनी से खूब रीझी कूबरी ।
शुभ-[४]मन्थ-राक्षसिका [५]प्रकृत्यतिमन्थरा जा मन्थरा-
साकेत की छवि ताकती, ज्यों केतकी को [६]विषधरा ।।१२।।

पुर-वासियों से जान पुर-सिंगारने के हेतु को,
युवराज होते मानकर मतिमान रघु-कुल-केतु को ।
[७]मात्सर्य-वश लेने लगी उच्छ्वास अति निःश्वास को,
रुचता न खल को पर-उदय, फिर क्यों रुचे खल दास को? ।।१३।।

अनभिज्ञ उस निज स्वामिनी को गुप्त-हित-पथ-गामिनी-
करके बनूँगी प्रीति-भाजन ज्यों सचन्द्रा [८]यामिनी ।
यों ठान भावी भोग की संभावना में झूलती-
[९]दासेरिका पहुँची वहीं कूबर घुमाती फूलती ।।१४।।

★ ★ ★

तब थी अकेली कैकयी कुछ केलि-गान अलापती,
निज चित्रशाला में स्व-चित्रित चित्र-चय को थापती ।
इसने कहा, स्वामिनि! तुम्हें नव एक बात सुना रही,
यदि चाहतीं, चिन्तामणी कर छान-बीन चुना रही ।।१५।।

---

१ हे इन्द्र ! २ आश्वासन । ३ अन्तर्धान । ४ मङ्गल के मंथन में राक्षसी रूप । ५ स्वभाव से अतिमन्दगामिनी । ६ सर्पिणी । ७ ईर्ष्या के कारण । ८ रात । ९ दासी और ऊँटनी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह बोलीं उत्सुक हुई, क्या है वह नव बात? ।
आये हों ननसाल से [१]स्यात् राम-अनुजात? ।।१६।।
भरत-नाम को छोड़ जो कहे राम-अनुजात ।
उसके संमुख हे विधे! दाल गले मम स्यात्? ।।१७।।

यों विचार सकुचाती मन में वह बोली, स्वामिनि ! जन-जन में ।
किस प्रमोद की उत्सुकता है, यह भी तुम को तनिक पता है? ।।१८।।
वह बोली मुझको न पता है? हा ! अब तक तू नींद-गता है ।
तुझ-सी दासी के मैं पाले-पड़ी, कौन विधि-गति को टाले? ।।१९।।
कई दिनों का प्रमोद छाया, तेरे आज नैन-पथ आया ।
जिसका निन्दित मन्द दास है, उस स्वामी का सदा हास है ।।२०।।
इस प्रमोद की बटे बधाई, दिन बीते, री ! तू अब आई ।
अब भी जा जीजी से कहना, वह दे देंगी कुछ भी गहना ।।२१।।

उनके ऐसे वचन निज धुन के अति-विपरीत ।
सुनके बोली मन्थरा भुनके भीतर भीत ।।२२।।
कहती तुम जीजी उन्हें सहती-रहती क्लेश ।
वह तीखी तलवार ज्यों बहती, क्या [२]जी शेष? ।।२३।।

तुम हो स्वामिनि ! इतनी भोली, [३]बन जाती सुन मीठी बोली ।
ज्यों साँपिन की आँत-आँत में, त्यों उनकी मृदु बात-बात में ।।२४।।
कालकूट [४]के कूट-[५]कूट के भाग भरे रहते, न [६]टूट के ।
तुम भोली यह नहीं जानती, अपना-सा सब लोक मानतीं ।।२५।।
[७]कतर-व्योंत कोरे कपड़े की कर सकती हो, न कि पचड़े की ।
राज-घराने राज-नीति का रहता राज, न हृदय-प्रीति का ।।२६।।
जब वह साँपिन कभी डसेगी, तब [८]बेढब अति आप फँसेंगी ।
वह दिन भी अब दूर नहीं है, पावस में नद-पूर सही है ।।२७।।

---

१ स्यात् (अव्यय) शायद । २ जीव अर्थात् प्राण शेष रहेंगे ? 'जीजी' कहने के बदले तुम्हारा 'जी' भी शेष शायद ही रहे । ३ उसके दम में आ जाती हो । ४ जहर के । ५ भरसक । ६ टूटते नहीं, अर्थात् कहीं-कहीं भी नहीं। ७ कपड़े की कतर व्योंत (कतरना-व्योंतना; पचड़े (प्रपन्च) की कतर-व्योंत (उधेड़-बुन अथवा तोड़-जोड़) । ८ बुरी तरह।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दासी हूँ मैं [१]सहाऽनुयाता, इससे मुझ से रहा न जाता ।
बात मानना या न मानना है प्रभु-हाथ, न मुझे तानना ॥२८॥

मैं जाऊँ किस के निकट विकट समस्या-बीच ।
जो न जानता अहित-हित वह पशु से भी नीच ॥२९॥

कैकेयी ने वचन सुन होते दुःखित [२]स्तब्ध ।
खल-दासी की प्राप्ति पर कोसा निज प्रारब्ध ॥३०॥

फिर बोलीं, गृह-खण्डिनि! रण्डे! क्या रुचि है खाने की डण्डे? ।
अभी बात मैंने यह जाँची, मनुज नहीं तु एक विशाची ॥३१॥
कौन मिलेगी भोली मुझ-सी निवह रही जो दासी तुझसी ।
हाँ, मैं हूँ अति भोली-भाली तब ही तू ने युक्ति निकाली ॥३२॥
कतर-व्योंत तो तुही जानती, जी से मैं यह बात मानती ।
तुझ को कलह-बीज का बोना, पारस्परिक प्रीति का खोना ॥३३॥
है सु-सिद्ध यह निश्चय जाना, ज्यों निदाघ को विपिन सुखाना ।
मन्द भाग्य है कितना तेरा, राम-बधाई से मन फेरा ॥३४॥
तू है पूज्य पिता के घर की, अतः न परवा औगुनपर की ।
तव असरल-वंच-गरल निगोड़ी! पिया, न मैने नाक सिकोड़ी ॥३५॥

संघात में पूछ कभी न होती,
विभाग में पूछ नवीन होती ।
यों जान के दुर्जन एकता को-
उजाड़ देता, कपि ज्यों लता को ॥३६॥

प्रथम ग्रास में जानकर हुआ मक्षिका-पात ।
धीरज धरती मन्थरा बोली घड़कर बात ॥३७॥

विदा समय माता व पिता ने, अवसर पर हित-अहित सुझाने ।
धर्म धराया सुमुखि ! मुझे ही, पाल रही मैं अभी उसे ही ॥३८॥
गृह-खण्डी तुम मुझ को कहतीं, दे दें दण्ड, उसे भी सहती ।
भले मारिए, मर जाऊँगी, नाम धर्म-हित कर जाऊँगी ॥३९॥
अहित तुम्हारा लखा न जाता, मन ही मन में रखा न जाता ।
मैं क्या कलह-बीज को बोऊँ, फिर तुम रोना, मैं अब रोऊँ ॥४०॥

---

१ दहेज में आई । २ हक्की बक्की ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धन्य वही जो पति-सनाथ है, देवि! तुम्हारे कुछ न हाथ है ।
वह [१]महिषी, तुम गाय बनी हो, भरत-[२]वत्स की बस जननी हो ।।४१।।
तभी साधने निज अभिमत को, नृप ने भेजा दूर भरत को ।
मुझ-सी दासी तुम भी बनना, वह सुनायँगी कटु, तुम सुनना ।।४२।।

कहा कैकयी ने सखी ! सोचे निर्णय पाय ।
कर-बैठे सोचे बिना जो, वह मूढ कहाय ।।४३।।
तब तक तू ले आ तुरंत फुलवाड़ी से फूल ।
जब तक मैं न्हालूँ, करूँ अम्बार्चन अनुकूल ।।४४।।
ज्यों [३]नीरस नव नीर पा अवनी रस-परिपूर्ण ।
त्यों निराश यह वचन सुन [४]साश हुई वह तूर्ण ।।४५।।

छिनभर में फूलों की डाली ले आई वह ज्यों वनपाली ।
लाई साथ दूब भी चोखी, प्रभु-रुचि पटु-चर लखे अनोखी ।।४६।।
देख कैकयी प्रमुदित बोली, भर ले तू मन-चाही झोली ।
सिद्धि हुए भर देना झोली, यों कहकर चेटी फिर बोली ।।४७।।
वहाँ फूल मैं चुनती-चुनती, जन कथना कैसी हूँ सुनती ।
राम शान्तिमय राज्य करेंगे, लक्ष्मण मंत्रीश-पद धरेंगे ।।४८।।
भरत रहेंगे [५]चार प्रवासी, कैकयी तो सब की दासी ।
प्रिय होंगे रिपुहा व सुमित्रा, है विधि-रचना अहो! विचित्रा ।।४९।।

तुम्हें सोचना है अभी, कल होंगे युवराज ।
वह बोली तू धैर्य धर, काज करूँ सब आज ।।५०।।

हठ स्वतन्त्र स्त्री का सखी! तन्त्र, मन्त्र औ यन्त्र ।
छिडे न जबतक नहि छिड़े, कर ले छिड़े [६]स्वतन्त्र ।।५१।।
केकय-[७]आसार-कासार की कैरविणी भरताम्ब! ।
धन्य धन्य, अनुकूल हों तुमपर शंकर साम्ब ।।५२।।

---

१ वह कौसल्या पटरानी है । महिषी भैंस को भी कहते हैं । २ बच्चे भरत की और भरत रूप बछड़े की । ३ सूखी । ४ आशा-युक्त । ५ गुप्तचर । ६ अपने वश में । ७ सरोवर ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यों अशीषती शीश को झुका, विदा ले [१]चङ्ग ।
कपट-पेटिका चेटिका लौटी घर स-उमंग ।।५३।।
संस्कार क्या, पुर्ण विकार अङ्ग का,
सुवेष क्या, वेष सुनील रङ्ग का ।
धरे हुए कोप-कुटीर कैकयी-
प्रदीष में जा पहुँची [२]तमोमयी ।।५४।।
क्या आ रही मावस की तमस्विनी
क्या आ रही पावस की तमस्विनी ।
वा डाकिनी वा यह एक शाकिनी,
यों कल्पना थी उस पै [३]विपाकिनी ।।५५।।
''[४]प्रथमा औ द्वितीया का वार संपूर्ण हो लिया ।
राजेन्द। ! आज करिए तृतीया-रात्रि-सत्क्रिया'' ।।५६।।
यों [५]बोधकर के कानों करके वाग्विलास को ।
पहुँचे कोशल-धनी कैकयी-रतिवास को ।।५७।।
पास ही कोपशाला में उसे लेटी हुई लखा ।
दाल में कुछ काला है, यों जी में नृप ने रखा ।।५८।।
कामार्त कोशलपति किंकर्तव्य-विमूढ हो ।
लगे उन्हीं से कहने चिन्ता-समधिरूढ हो ।।५९।।
कैसे हो मानिनी ! ऐसे, होके कान्ताभिमानिनी ।
विज्ञ-संतानिनी होते हुई क्यों अपमानिनी? ।।६०।।
किसने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा, सो बताइए ।
बिगाड़ूँ क्या उखाड़ूँ मैं उसे, झट जताइए ।।६१।।
[६]खञ्जनायित नैनों में क्यों न अञ्जन-अञ्जना? ।
अङ्गों का न [७]परिष्कार न [८]संस्कार न [९]रञ्जना ।।६२।।

---

१ अच्छी । २ तमोगुण प्रधान [क्रोधादि-युक्त] । ३ परिपक्व । ४ वैतालिक राजा को इशारा करता है कि हे राजचन्द्र कौसल्या और सुमित्रा की बारी आ चुकी है; आज कैकेयी का रात्रि-सम्मान करिए। चाँद भी पड़िवा और दूज का अवसर पूर्ण होने पर तृतीया [तीज] की रात्रि का सम्मान करता है । ५ वैतालिक । ६ खड़ेचे [पक्षी] के जैसे । ७ सफाई । ८ सजावट। ९ चन्दनादि लेप ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[1]व्यञ्जना शक्ति क्या मूर्ता करती कोप-व्यञ्जना ।
यदि जान पड़े हेतु तो हो हृदय- [2]रञ्जना ।।६३।।
वह उत्थान-सम्मान, वह आसन-दान भी ।
मनोऽनुकूल [3]आमूलचूल भाव-विधान भी ।।६४।।
वह मर्म-भरा [4]नर्मालाप-पीयूष-पान भी ।
स्मृति आता दुखाता है, हा! मन्द मुसकान भी ।।६५।।
हे केकय-कुलानन्द-वर्धिनी भव्य भामिनी! ।
रविवंशीय राजा भी मैं दास तुम स्वामिनी ।।६६।।
यदि प्राणप्रिये ! कोई मेरा भी अपराध हो ।
उसे जता दो, उसका प्रतीकार-[5]प्रसाध हो ।।६७।।

★ ★ ★

कभी उपाय न सूझता बिना दोष-पहिचान ।
रोग-चिकित्सा के प्रथम निरखा ज़ाय निदान ।।६८।।

★ ★ ★

उठ कटु कठिन कैकयी बोली, रुकी [6]प्रणाली मानो खोली ।
वृथा दुखाते सूखी आँतें, चिकनी-चुपड़ी करते बातें ।।६९।।
जिसकी संतति के सुख-कारण, पहले से कर विघ्न-निवारण ।
तुमने यह संभार [7]सकेला, है अभिमान उसे, मम [8]हेला ।।७०।।
जब भूपाल! भरत को भेजा, तभी निकाला मम तु कलेजा ।
प्राण, न जाने, कब निकलेंगे, शेष क्लेश-फल और फलेंगे ।।७१।।
सुदिन-कामिनी वही स्वामिनी, मैं तो हूँ अब चरम [9]यामिनी ।
एक-सेज सुख-नींद सोइए, किसी भाँति आकुल न होइए ।।७२।।

★ ★ ★

नहीं किसी का दोष है, नहीं किसी का रोष ।
कर्मों का फल-पोष है, यों समझे संतोष ।।७३।।

★ ★ ★

---

१ व्यञ्जना शक्ति वह है, जिससे व्यंग्य अर्थ जाना जाय । २ संतोष । ३ आदि से अन्त तक हाव-भाव बताना । ४ मजाक की बातचीत ५ मिटाने की सफाई । ६ पानी का परनाल । ७ इकट्ठा किया । ८ अपमान । ९ आखिरी रात ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नरेश बोले कि अशेष बातें–
मैने न की ये तुमसे छिपाते ।
थीं साथ कान्ते! तुम भी सभी के,
भैया गये हैं मझले कभी के ।।७४।।
भैया सिधारे तब जो हमारे–
विचार सारे उठते उदारे! ।
तो भेजते क्यों उनको वृथा ही,
दुर्दैव दुर्योग दिखाय दाही ।।७५।।
संदेश मैं कैकय देश को भी–
भेजा चुका यद्यपि देवि! तो भी ।
तुम्हें किसी ने भ्रम–बीच डाला,
[१]काला बनाता पर–चित्त काला ।।७६।।
मानों यही भाव हिये जनाते,
सद्–भक्त कालाऽ[२]गुरु को जलाते ।
तभी उदाराऽमल–चित्त होते,
है सत्फल–प्राप्ति सु–बीज बोते ।।७७।।

★ ★ ★

इधर उधर की बात कर मधुर–मधुर नर नीच ।
सुजन–चित्त सुरसिन्धु में भरते औगुन–कीच ।।७८।।
खल–वचनावलि–फिटकरी मिश्री भले लखाय ।
प्रेमी–मन–जलदूध को किन्तु फाड़ दे हाय! ।।७९।।
काम पड़े दीखे न खल, जो दीखे, नट जाय ।
नटने पर माने नहीं, माने तो त्रुटि लाय ।।८०।।

★ ★ ★

धर्मानुसारी जनतानुसारी
परम्परावंश–प्रथानुसारी ।

---

१ मन का मैला । आगे 'चित्त–शब्द' के प्रयोग से 'मन का काला' समझना चाहिए ।
२ धूप–विशेषे । मैला–तुच्छ मनुष्य यह ध्वन्यर्थ है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते हुए, संमति से सभी की-
मैने रची [१]संघटना कभी की ।।८१।।
मुझे किसी ने न कभी सिखाया,
हृदीश ही ने मन में सुझाया ।
है ज्येष्ठ ही नव्यपदाधिकारी,
प्रसङ्ग है सर्वमतानुसारी ।।८२।।
प्रकोप त्यागो, अब देवि! जागो,
कुमार्ग में [२]कुम्भिगते! न भागो ।
जैसा कहोगी, सब मैं करूँगा,
चाहे मरूँगा न कहा हरूँगा ।।८३।।

★ ★ ★

इधर बींधती कैकयी उधर बींधता काम ।
नृप निर्णय-पथ पर पहुँच कैसे पायँ विराम? ।।८४।।
ऊरु-युगल वा कुच-युगल कामी की प्रिय वस्तु ।
वस्तु कौन सी वर-युगल?, स्त्री-अर्पण [३]स्वयमस्तु ।।८५।।
जो करते वर तेज से मत्त-बैरि-मद-भङ्ग ।
अबला-बल पर झट निबल करता उन्हें अनङ्ग ।।८६।।

★ ★ ★

कहा कठोराशय कैकयी ने,
सारे हमारे अधिकार छीने ।
नवीन लेना न मुझे, न देना-
तुम्हें, पुराना मत रोक लेना ।।८७।।
तुम्हें घराना यदि है लजाना,
तो है वृथा नाक यहाँ कटाना ।
तुम्हें पुराना प्रण जो निभाना,
मुझे नया नाथ! न है कराना ।।८८।।
नरेश बोले, नव वा पुराना-
कोई रहे, जी न मुझे चुराना ।

१ आयोजना [तैयारी] । २ गजगामिनी । ३ खुद स्त्री-अर्पण हो जाय ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहो, इसी काल निकालना है-
[1]निष्कर्ष, पूरा प्रण पालना है ।।८९।।
विलम्ब कान्ते! न कभी करूँगा,
जो हो प्रतिज्ञात अभी करूँगा ।
कभी घराना न मुझे लजाना,
जाना [2]खरा है, यश छोड़ जाना ।।९०।।
हा! कैकयी यों दृढ बाँध बोलीं,
मानो पिलाने [3]विष-गुप्ति खोली ।
जो हैं पुराने वर-दान थाती,
उन्हें अभी मैं स्मृति-मार्ग लाती ।।९१।।
ये मैं अभी माँग रही कि, भैया-
द्वितीय खेवें यह राज्य-नैया ।
संन्यस्त [4]श्रीराम रहें वनों में-
चतुर्दशाब्दान्त, न बन्धनों में ।।९२।।
ज्यों ही सुना यों, नृप सर्प-दंष्ट-से
विनष्ट-से वा नरक-प्रविष्ट-से ।
हुए पिशाचार्दित-से शरार्त-से,
भयार्त-से वा विषमज्वरार्त-से ।।९३।।
माना कि मौन-व्रत ही लिया हो,
वा [5]कालकूट-द्रव पी लिया हो ।
बोले नहीं, थे नृप नेत्र मीचे,
गिरे नदी-पिप्पल-तुल्य नीचे ।।९४।।
स्त्री क्रूरता केवल धारती रही,
हुंकार-धिक्कार -उचारती रही ।

---

१ निचोड़ । २ निश्चित । ३ जहर की डाट । ४ 'श्री' के साथ लगाने से सीता का साथ जाना भी ध्वनित है । ५ विष-रस ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्यों [१]इन्द्रवंशा <u>तत-जार</u>-पात्र हो,
त्यों वे रहीं नाटककार-पात्र हो ।।९५।।

नरेशिता ने जब आँख ख़ोली,
हा! कर्कशा कर्कश उक्ति बोली ।
तुम्हें न जो ये वर आज देने,
अभी मरूँगी, मुझ को न लेने ।।९६।।

जो नाथ! देना, झट दीजिएगा,
वा जो न देना, नट दीजियेगा ।
विलम्ब-आलम्बन दुष्टता है,
देना यथार्थोत्तर शिष्टता है ।।९७।।

'मुझे किसी ने कब भी न रींधा,
कठोर-वाणी-शर से न बींधा ।
जैसा कि पूरा इस दुर्मना ने,'
[२]क्षमाप यों सोच लगे मनाने ।।९८।।

इन्हीं वरों के प्रतिरूप प्यारी!
जो माँगलो, तो क्षति हो न सारी ।
तुम्हीं स्त्रियों में सुविचार-शीला,
लीलावती पूर्ण करो स्व-लीला ।।९९।।

बैरी लसेंगे[३], कटि भी कसेंगे,
ज्यों-ज्यों फँसेंगे हम, वे हँसेंगे ।
सजाति के आपस का झमेला,
विजाति का है अनमोल मेला ।।१००।।

प्रिये ! कहो सत्य, यथार्थ बोली,
वा है तुम्हारी छिन की ठठोली?।

---

१ इन्द्र के वंश के समान जिसका वंश हो ऐसी कुलीन स्त्री जैसे जार का तत (विशाल) पात्र बन जाय, त्यों कैकेयी नाटककार (विधि) का पात्र (नाटक खेलने वाली नटी) बन कर रहीं। इन्द्रवंशाछन्द ततजार-पात्र अर्थात् त, त, ज, रगण का आधार होता है, यह छन्द का लक्षण भी झलकाया गया है । २ राजा और क्षमा के पालक, यहाँ 'क्षमाप' पद सार्थक हैं। ३ प्रसन्न होंगे ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्काल वे बोल उठीं, ठठोली–
क्या यों कभी की, सब सत्य बोली ।।१०१।।

सोचा जयी ने, अह! मार डाला!,
यों वाक्य पीछे मुख से निकाला ।
वरार्थना आद्य नहीं दुखाती,
मुझे प्रिये ! अन्तिम है सुखाती ।।१०२।।

छोड़ो अतः अन्तिम को कथंचित्, कृपा कृपालो! करदो कथंचित् ।
आभार आजीवन मैं गिनूँगा, पूर्णाशये! पूर्ण कृतज्ञ हूँगा ।।१०३।।
पदाब्ज का दास बना रहूँगा, प्रिये! कहो तो, सब राज्य दूँगा ।
दारे! उदारे ! स्व–उदारता को दिखाइए खो हठकारता को ।।१०४।।
दुराग्रहों की व [1]अपग्रहों की [2]क्रिया, [3]क्षिया है शुभ–संग्रहों की ।
यों जानके मान निवेदना को, मेरी हरो मानस–वेदना को ।।१०५।।

सभी सुना की वह हो [4]अवाकी,
मानो शिला की सुरमूर्ति बाँकी ।
रखा न बाकी, [5]चटुकारिता की–
सीमान्त्यता [6]कीर्तक ने [7]स्फुटा की ।।१०६।।

यों निर्दया ने मन में न सोचा–
कि बाँध मैंने पति को दबोचा ।
परन्तु सोचा यदि पुत्र प्यारा–
हो भूप तो राज्य सभी हमारा ।।१०७।।

टेढ़ी हुई ज्यों धनु–यष्टि, सीधी–
न हो, हुई सो न कुदृष्टि सीधी ।
सुधार के बीच विकार आया–
जाता न, नीला रंग ज्यों समाया ।।१०८।।

अरे ! पसारी नृपने स्व–झोली,
क्रूराशया क्रूर अजीब बोली ।
मैं एक भी बात कभी न मानूँ,
तानूँ न, आनूँ विष, मृत्यु ठानूँ ।।१०९।।

---

१ दुष्ट ग्रहों की। २ करतूत। ३ नाश। ४ चुप। ५ खुशामद। ६ प्रशंसक (राजा) । ७ प्रकट।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यंकार- [१]अहंकार तजो, छोड़ो स्व-भार को ।
अपनालो [२]कृपणवत् स-सत्कार नकार को ॥११०॥
कटी हुई नाक कभी नहीं जुड़े,
कटी परों की चिड़िया नहीं उड़े ।
हटी धुरी की शकटी नहीं गुड़े,
नटी हठीली युवती नहीं मुड़े ॥१११॥
जैसे जटीली [३]सुललाटिका बुरी,
जैसे छँटीली [४]नर-नाटिका बुरी ।
जैसे कँटीली वन-वाटिका बुरी,
त्यों स्त्री हठीली [५]कुल-पाटिका बुरी ॥११२॥
रूखे व सूखे सुन वाक्य कोरे,
पा ज्यों कि [६]झंझानिल के झकोरे ।
पड़ा प्रजापाल-[७]प्रियाल-शाखी,
थी दृष्टि वामा [८]क्षति-मूल [९]साखी ॥११३॥
[१०]तारायें अति मूँदती, कुछ धरे [११]मालिन्य के वेष को,
[१२]श्रीरामारुण का [१३]प्रतीक्षण मना संहारती क्लेश को ।
एकान्तस्थ नृपेन्दु-कान्ति [१४]जिसने प्रारम्भ ही से ठगी,
कैकयी वह पा उषा तब सिनीवाली-[१५]उषा-सी लगी ॥११४॥

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता चतुर्दश प्रतान समाप्त ।

---

१ सच्चा कर दिखाने का अभिमान । २ कंजूस के समान । ३ जटाओं वाला ललाट का भूषण (आड़) । ४ छँटी हुई (कवि संप्रदाय से अलग की गई पुरुषों की नाटिका (छोटा नाटक) नाटिका चार अङ्कों की होती है, उसमें प्रायः स्त्री-पात्र होते हैं । ५ वंश को उजाड़ने वाली। ६ वर्षा-सहित पवन । ७ खिरनी का पेड़ । ८ स्त्री और प्रतिकूल । ९ सामने देखने वाली (गवाह) । १० आँखों के तारे और नक्षत्र । ११ मलिनता का वेष और अँधेरे की कलिमा। १२ रामरूप नवीन सूर्य । १३ प्रतीक्षा । १४ यहाँ कवि ने एकवचन-प्रयोग ही युक्त समझा। १५ चन्द्र-दर्शन वाली मावस की उषा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

पन्द्रहवाँ प्रतान

प्रवेशिका

सन्ध्यावन्दन के पश्चात् जब श्रीराम नियमानुसार पिताजी को प्रणाम करने जाते हैं तो उन्हें नियत स्थान पर न पाकर वे माता कैकेयी के यहाँ जाते हैं। राजा को विषण्ण अवस्था में देखकर वे कैकेयी से राजा के दुःख का कारण पूछते हैं। परिस्थिति का पूरा आभास होने पर वे तुरन्त सहर्ष वन गमन के लिए तत्पर हो जाते हैं। अभिषेक के समय वनवास का समाचार सुनकर महारानी कौशल्या और सुमित्रा दुःखी हो जाती है। जब यह समाचार सीताजी और लक्ष्मण जी को मिलता है तो वे भी श्रीराम की स्वीकृति पाकर उनके साथ चल देते हैं। माताओं से, गुरु वशिष्ठ, गुरुपत्नी अरून्धती, मंत्री सुमंत्र–सभी से आज्ञा लेकर तीनों वनगमन की तैयारी करते हैं। इसी बीच लक्ष्मण जी माता सुमित्रा से आज्ञा लेकर पत्नी उर्मिला से भावपूर्ण विदाई लेते हैं। बहन माण्डवी, उर्मिला और श्रुतकीर्ति सीताजी को भाव-विह्वल विदाई देती हैं।

विशेष : प्रतान में वनगमन से पूर्व लक्ष्मण जी का उर्मिला से मिलना, परस्पर अंगूठियों का विनिमय कवि द्वारा इस उपेक्षित संदर्भ को पूर्णता प्रदान करता हैं। इसी प्रकार भरत-पत्नी माण्डवी का सीताजी से आत्म-त्याग एवं साधना व्रत का संकल्प अत्यन्त हृदयस्पर्शी है।

नीतिज्ञान : 'तरुणी परखी जाती पड़े दुर्दैव-दृष्टि के ।
तरणी परखी जाती पड़े दुर्वात-वृष्टि के ।।'

ध्वनि सौंदर्य :

'खेले अकेले न, नहीं अकेले-रहे, किये लेह नहीं अकेले ।
तो क्या झमेले पड़ते अकेले-सहें, न झेले प्रियबन्धु ले-ले ।।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पन्द्रहवाँ प्रतान

सुजन-सुखद शर-चापधर रुचिर-चीर रघुवीर! ।
जयति धीरजन-हीर-मणि! नीरदनील-शरीर! ।।१५।।

श्रीराम सन्ध्यार्चन से निवृत्त हो,
गुरू-प्रणाम-व्रत में प्रवृत्त हो ।
'अहो! यथापूर्व यहाँ पिता नहीं'
यों चित्त शङ्का धरते गये वहीं ।।१।।
वैसी दशा पा सप्रणाम राम ने,
पूछा पिता से कर जोड़ सामने ।
बताइए हेतु निजोपताप का,
अभी करूँ मैं उपचार आपका ।।२।।
कराहते ही न कि स्पष्ट बोलते,
उन्हें निहारा कम दृष्टि खोलते ।
ये वन्दना-पूर्वक पूछने लगे-
माँ से, पिता क्यों परिताप में पगे? ।।३।।
माता बोली, सुचिर-काल से मम दो वर थे थाती,
जो भूपति के प्रतिज्ञात थे, वे मैं आज उठाती ।
वत्स! एक तो भरत- [2]वत्स का राज्य- [3]धुरा धर बहना,
फिर चौदह-वर्षान्त तुम्हारा शान्तवृत्ति वन रहना ।।४।।

★ ★ ★

पहले का देना तो फिर भी इष्ट हो गया इनको,
पर द्वितीय पर कहा न जाता जाने तुम्हें विपिन को ।
यही ताप-[4]अनुताप आपको, हर पाओ तो हरलो,
[5]तात! तात का ताप हरण कर आज नाम फिर करलो ।।५।।

---

१ यह दोहा हिन्दी-संस्कृत दोनों भाषाओं में समानता रखता है । अतएव भाषा-सम अलङ्कार है । २ प्यारे भरत का और भरतरूप बछड़े का । ३ राज्य का भार । ४ दुख और पछितावा। ५ हे भैया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुर-मधुर मुसकाते रघुवर बोले, पदार्थ तोले,
क्या साधारण इसी बात से मुझ से तात न बोले? ।
अभी क्लेश हरता नरेश का, शेष न कुछ भी रखता,
बार-बार विधि अम्ब! विविध-विधि धृति मम क्यों न परखता? ।।६।।

अम्ब! न विलम्ब अब, सिद्ध मम काम सब,
ऐसा मिले योग कब, अभी गेह छोड़ूँगा;
रात का प्रभात हुआ, सूर्य [१]उपयात हुआ,
तात का न ज्ञात हुआ ताप अब तोड़ूँगा ।
तात का निदेश-रथ [२]स्तब्ध चाहे क्यों न रहे,
मात के निदेश-[३]रथ्य वर-रूप जोड़ूँगा;
उसी के सहारे जन-वास से प्रवास कर,
वन्य-वास के विलास से न मुख मोड़ूँगा ।।७।।

कहने लगे पिता से रघुवर, हे पर-ताप निवारण!,
निज विषाद तज सु-प्रसाद का करिए दृग-संचारण ।
मैं अतीव सौभाग्य समझता, बात सभी हृदयंगम,
माता-पिता-[४]सदाज्ञा-पालन, वन-विनोद, मुनि-संगम ।।८।।

सब प्रकार से सुखावास है वन-निवास मम प्यारा,
गुरु-आज्ञा-कवचित शरीर पर विफल विषद-[५]असि-धारा ।
सुत के ऐसे शुभ-अवसर पर यह संताप पिता का-
[६]प्रत्युत मुझ को तपा रहा है ज्यों आतप सविता का ।।९।।

कहा गिड़गिड़ाते वचनों से हो [७]ससंज्ञ राजा ने,
बना कौनसा मुख मङ्गलमुख! कहूँ तुम्हें वन जाने ।
कौशिक-कारण सुत-वियोग को सहा हृदय ने कैसे?,
यह यदि पूछा जाय इसी से, काँपे [८]चलदल जैसे ।।१०।।
सुचिर काल से रुचिर रीति से मैं आनन्द मनाता,
बार-बार सुविहार हृदय को यह [९]निर्धार जनाता ।

---

१ पास आया अर्थात् चढ़ गया । २ रुका । ३ आज्ञा- रूप रथ के घोड़े । ४ सत् आज्ञा=माननीय आदेश । ५ विपत्ति रूप तलवार की धार । ६ उल्टा । ७ सचेत । ८ पीपल। ९ निश्चित बात ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुख के उत्तर दुःख आता है, ज्यों दिन-उत्तर रात्री,
सदा सम्हल कर रहो इसी से, हे मम जीवन-यात्री! ।।११।।
आज वही सुख विमुख हो रहा, दुःख है संमुख आता,
यों मन से सुमनन करते भी मुझ को मोह दुखाता ।
माया ही तो सजग जीव को फुसलाती व फँसाती,
सौंप खिलौना ज्यों मा शिशु को बहलाती व हँसाती ।।१२।।
इस माया पर जय पाने की तुम-से निज नन्दन को,
घर सम्हला कर तप के कारण सेते सज्जन वन को ।
किन्तु हाय! मुझ मन्दभाग्य को पूर्व-पाप घर रखते-
और तुम्हें वन भेज रहे है, कटु बोते [1]कटु चखते ।।१३।।

★ ★ ★

कर जोड़े बोले रघुनन्दन, सुनिए पूज्य पिताजी!,
आप स्वयं ही ज्ञानवान हैं पूर्णानुभवी याजी ।
अहो! आप के सम्मुख कुछ भी कहना एक हँसी है;
श्रीसहस्रकर के सम्मुख तो कौतुकमात्र शशी है ।।१४।।
बिना धैर्य के धीर-धूर्य! अब कुछ भी है न सहारा,
अन्धकार सब का मिटाइए ज्ञान-सूर्य के द्वारा ।
कर्णधार यदि अधीर होंगे डूब जायगी नैया,
डूब जायगा कुटुम्ब, कुछ भी कर न सकेंगे [2]भैया ।।१५।।
मुझ को आप अशीष विदा दें, माँगू माताओं से,
गुरूवर, मन्त्री, स्वजन, सखाओं औ वरदाताओं से ।
शुभ-साधन में विलम्ब करना भला! भूल है भारी,
सुप्रभात है, मन-उछाह है गुरू-आज्ञा शुभ-कारी ।।१६।।
यों सुनते सुत-वचन पिता के अविरत आँसू टपके,
क्या[3] धैर्याणुक तात-हृदय तज प्रणत पुत्र पर लपके? ।
बोल न सके तनिक भी राजा, करके एक इशारे-
सारे स्वस्ति उचारे, मा को नति कर राम सिधारे ।।१७।।

★ ★ ★

१ कडुवा बीज बोने वाले को फल भी कडुवा ही मिलता है । २ भरत । ३ धीरज के परमाणु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह प्रसङ्ग जन-जन के द्वारा, व्यापा तुरत नगर में सारा ।
ज्यों तन्त्री-[1]उपतन्त्री-द्वारा, व्याप जाय [2]विद्युत की धारा ।।१८।।

तब कौशल्या और सुमित्रा, मिली हुई ज्यों स्वाति व चित्रा ।
इसी बात पर बतियाती थीं, बीच-बीच में अकुलाती थीं ।।१९।।

[3]अपरा बोलीं, देव मनावें, संकट लख यदि नृप नट जावें ।
भरत भले भूपति-पद पावें, किन्तु किसी विधि राम न जावें ।।२०।।

प्रथमा बोली नृप न नटेंगे, प्रण से धीर कभी न हटेंगे ।
राम यहाँ पर नहीं रहेंगे, चाहे वे अति क्लेश सहेंगे ।।२१।।

मर्यादा-लङ्घन वन जानो-तो तुम रघुवर को [4]दव मानो ।
विधि ने जो जैसा कि विचारा, यह वैसा होगा क्या चारा? ।।२२।।

★ ★ ★

इतने में रघुवर वहीं ज्यों सपने में भानु ।
उनके दृग-गोचर हुए मन्दित-शोक-[5]कृशानु ।।२३।।

दोनों को करके अभिवादन, किया धैर्य का नव उत्पादन ।
तुम्हें आज परमाभिमान है, पति धार्मिक, सुत उदयमान है ।।२४।।

इससे अधिक और क्या चाहें, सुजन धन्य कह तुम्हें सराहें ।
जिनके पति-सुत पतनोन्मुख हैं, उन सतियों के सदैव दुख हैं ।।२५।।

ज्यों-ज्यों कहते थे रघुनन्दन, त्यों-त्यों वे करतीं कुछ क्रन्दन ।
वचन अन्त में रघुवर बोले, उत्साहन- [6]वर्धन-रस-घोले ।।२६।।

वीर-वधू कहलानेवालीं वीर-प्रसू कहलानेवालीं ।
तुम कायरपन रखतीं खाली, वीर-सुता कहलानेवाली ।।२७।।

आज नवेन्दु-समान निरखतीं-जिस सुतको तुम, धीरज रखती ।
यदि चौदह [7]वर्षाह्न बिताओ, उस को पूर्णचन्द्र-सम पाओ ।।२८।।

---

१ तारों और उपतारों से । २ बिजली। ३ दूसरी (सुमित्रा)। ४ दावाग्नि। ५ जिन्होंने शोकाग्नि को मन्द कर दिया ऐसे, सूर्य के सामने अग्नि का तेज फीका पड़ जाता है। स्वप्न का सूर्य-दर्शन भी शोक मिटाता है । ६ वीर-रस । ७ बरस-रूप दिन (धैर्य के कारण) नवीन चन्द्र-दर्शन से १४ दिन के बाद पूर्णचन्द्र-दर्शन होता ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समय निकलते क्या लगता है नर सोता है, फिर जगता है ।
सोते-जगते अवधि जायगी, ईश-भक्ति-तरणी तरायगी ।।२९।।

पद-प्रणाम करते समय दोनो के स्तन-नैन ।
[1]पयोबिन्दु झरने लगे, क्योंकि [2]अरस वे थे न ।।३०।।

पथ में विदा सुमन्त्र से ले, उनसे अनुयात ।
पहुँचे राघव गुरू-निकट ज्यों सप्रकाश प्रभात ।।३१।।

★ ★ ★

योगी वसिष्ठ उनके देख द्वार-प्रवेश को ।
उठे जैसे [3]उपस्थायी देख प्रातः दिनेश को ।।३२।।

देखके निर्विकार-श्री श्रीराममुख-इन्दु को ।
मनः-प्रणाम करने लगे ज्यों [4]स्वर्णबिन्दु को ।।३३।।

मुखिया मुखियों के जो दुखियों के सहायक !
बारम्बार नमस्कार आपको रघुनायक! ।।३४।।

पाद-प्रणाम प्रभुने किया भक्ति-[5]समृद्ध हो ।
आशीष दी वरद ने, कामना सब सिद्ध हो ।।३५।।

मुनि बोले, निकाला था मुहर्त अभिषेक का ।
निकला वनयात्रा का, क्या करें विधि-टेक[6] का? ।।३६।।

बलात्कार-चमत्कार देखते होनहार को ।
बारम्बार नमस्कार वा ईश्वर-विहार को ।।३७।।

प्रभु बोले, महायोगिन् ! शुभकारी मुहूर्त है ।
उससे भी तपोभूमी महामङ्गल मूर्त है ।।३८।।

आप तो हैं पूर्ण ज्ञानी क्या विषाद [7]प्रसाद में? ।
गुणकारी ओषधि हो, कटु हो क्यों न स्वाद में? ।।३९।।

मुनि बोले, बात क्या थी, क्या बात अब हो गई? ।
चिर-काल जगी मानो उत्सव-श्री न सो गई? ।।४०।।

---

१ पय [दूध और पानी] की बूँदे । स्तन दूध की और नैन पानी की । २ वे स्तन-नैन अरस=नीरस अर्थात् वात्सल्य और करुणा-रहित (सूखे) । ३ सूर्योपस्थान करने वाला । ४ नारायण को । ५ संपन्न (युक्त)। ६ लीला । ७ अर्थात् प्रसन्नता के अवसर पर क्या दु:ख है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिन की रात हो आई छाई वत्स! [१]तमश्छटा ।
चाँद-तारे छिप गये छाई मेघ-महाघटा ।।४१।।
न दृष्टि काम देती है, क्योंकि दृष्टि- [२]प्रसङ्ग है ।
सत्सङ्ग बिछुड़ा जानो, रङ्ग में यह भङ्ग है ।।४२।।
राम बोले, आप के तो [३]हस्तामलक लोक है ।
फिर भी अद्भुत तथा शोक है, जो कि शोक है ।।४३।।
मुनि बोले, महामाया-जालान्तरित लोक है ।
छोड़ते आप जिनको उन्हें शोकातिशोक है ।।४४।।
योगी समाधि-पर्यन्त पहुँचे यदि जोहते ।
क्या हुआ, आपको देख करें प्रत्यक्ष सोहते ।।४५।।
अस्तु, अस्तु [४]प्रस्तुत है, जो चाहा विधि ने वही ।
उसे साक्षात विधि [५]भी न मिटा सकता कहीं ।।४६।।
प्रभु बोले, आप ही से मुझे आशा घनिष्ठ है ।
अवश्य [६]वश्य बाधा है जहाँ गुरू वशिष्ठ है ।।४७।।
जो है नृप-व्याकुलता, कुल-तापकरी वही ।
वैफल्य कामना का जो [७]वैकल्य रचता सही ।।४८।।
कुल की आप से रक्षा होगी पूर्ण [८]प्रतीति है ।
कुल-रक्षी कुल-गुरू धर्म-मूलक नीति है ।।४९।।
पिताजी का बुढ़ापा है, व्यापा [९]कौटुम्ब भेद है ।
यहाँ नहीं भरत भी, तभी तो मम खेद है ।।५०।।
किन्तु पीछे [१०]रघुकुलाराम-मालिक आप हैं ।
यों सोचते हृदय में मम तोष-[११]कलाप हैं ।।५१।।

---

१ अँधियारी । २ यहाँ आँसू झरने से तात्पर्य । ३ हथेली में आँवले के समान अर्थात् पूरा जाना-बूझा । ४ सामने । ५ ब्रह्म । विधि का चाहा विधि न मिटा सकता, यह विचित्रता है। ६ अधीन । वशिष्ठ का अर्थ होता है, जो स्वयं सब से बढ़ कर अधीन रहे, उसके बाधा भी अधीन है । ७ व्याकुलता । ८ विश्वास । ९ कुटुम्ब-संबन्धी । १० रघुवंशरूप बगीचे के माली। ११ संतोष के समूह ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्त्य है प्रार्थना मेरी, कृपा कर [१]कबूलिए ।
ध्यान-झूले झूलिए भी, भक्त को मत भूलिए ।।५२।।

मुनि बोले, क्या अशीषूँ, तुम हो सर्वदा सुखी ।
तुम्हीं को तात! सेती है सिद्धि भी मुख-संमुखी ।।५३।।

जहाँ सुमन्त्र [२]मन्त्री है [३]राज्यगन्त्रीस्थ-सूत-से ।
वहाँ से भाग जाते हैं बाधा- [४]संबाध भूत-से ।।५४।।

बोले आँसू बहा मन्त्री, नेत्र तो जा रहे अभी ।
मेरे लिए जगत् होगा अन्धकार-भरा सभी ।।५५।।

प्रभु बोले, स्वगुरू का सुज्ञानाञ्जन डालना ।
धीर हो, धीरज धरे यह काल निकालना ।।५६।।

अरुन्धती-चरण में गिरते राम ने कहा ।
हे माता! मम माता को तुम्हारा बल है महा ।।५७।।

वे बोलीं, हम दोनों को तुम्हारा बल है महा ।
तुमको कब देखेंगी? इस पै अश्रु ही बहा ।।५८।।

राम आके भवन को ज्योंही कि सजने लगे ।
सीता तथा लक्ष्मणादि वहीं पहुँचने लगे ।।५९।।

सीता बोलीं, आर्यपुत्र! क्या मुझे छोड़ जायँगे? ।
[५]सहचर्या-नियम को आज ही तोड़ जायँगे? ।।६०।।

सौभाग्य है अहो! मेरा, जो ऐसी घटना घटी ।
क्यों हटूँगी सुहठ से मा भी न हठ से हटी ।।६१।।

तरुणी परखी जाती पड़े दुर्दैव-दृष्टि के ।
तरणी परखी जाती पड़े दुर्वात-[६]वृष्टि के ।।६२।।

---

१ स्वीकार करें । २ मन्त्री मन्त्र-शास्त्री को भी कहते हैं; उससे भूतों का भाग जाना स्वाभाविक है । ३ राज्य-शकट के सारथि-समान । ४ दुखों की भीड़ । ५ साथ धर्माचरण करने के व्रत को । ६ वेढब हवा वाली वर्षा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने जो कुछ दाँपत्य-पथ [१]सत्पान्थता सुनी ।
पिता से, पुण्य-पूँजी-सी यह [२]हृत्कोष में चुनी ।।६३।।
[३]चतुष्पादादि में भूने न हों, युग-लगे रहें ।
समाऽन्त में, न विषमाऽन्त में चाहे, सु-पद्य हैं ।।६४।।

प्रभु बोले, अये मुग्धे! अटवी है सुभीषणा ।
तुम हो सुकुमाराङ्गी चकोर-चकितेक्षणा ।।६५।।
चिंघाड़ते जहाँ हाथी, दृप्त सिंह दहाड़ते ।
फाड़ते हैं मनुज को, धीर-धैर्य उखाड़ते ।।६६।।
फण-फुंकार रचते लगाते सर्प सर्पटें ।
हाय ! हुंकार रचते लगाते चौर चर्पटें ।।६७।।
नदी-नाले बहा देते, देते न कुछ थाह को ।
दूर से दूर दावाग्नि देते दारुण दाह को ।।६८।।
झाड़ियाँ झूर देती हैं झाड़-झंखाड़-झुंड में ।
क्या स्वच्छ रह पाता है पड़ा कर्दम-कुण्ड में? ।।६९।।
गृह ही गुणकारी है गृहिणी को सुलोचने! ।
तुम्हारा ही सहारा है माता को ताप-मोचने! ।।७०।।

बोलीं सीता विनीता हो जहाँ वल्लभ! आप हैं ।
वहाँ न हानि, आपत्ति तथा ताप-कलाप हैं ।।७१।।
वियोग आपका स्वामिन्! मुझे नरक-वास है ।
ऐसा ही जो विचारा है, चारा है न, विनाश है ।।७२।।

---

१ पति-पत्नी-धर्म-मार्ग के एक अच्छे यात्री की स्थिति। २ हृदय-रूप खजाने में । ३ चौपाये आदि प्राणियों में मेल न रहें । इससे सजातीय मनुष्यों में बसे न रहना तो स्वतः सिद्ध है। समाऽन्त में अर्थात् विषम काल में, युग-लगे रहें अर्थात् जोड़े से दोनों साथ रहें; चाहे समकाल में साथ न रहें; तो वे सु-पद्य अर्थात् (दाँपत्य धर्म के) सन्मार्गी कहलाते हैं। दूसरा अर्थ अनुष्टुबजाति के 'सुपद्य' के लक्षण की ओर निकलता है। चारों चरणों के आदि में 'भूने' भगण-नगण न रहें । समान्त में दूसरे चौथे पाद के अन्त में। 'युग-लगे'=लघु-गुरु इस तरह दो युगल रहें, यह विषम (पहले-तीसरे पाद) के अन्त में न रहें; तो मनचाहे सुपद्य' हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गृहिणी को गृह गुणी, गृही को न, प्रमाण क्या? ।
प्राणेश ! काम करती देह निर्गत-प्राण क्या? ।।७३।।

बोले प्रभु, भला जाओ पूज्यों से पूर्व पूछ लो ।
ललने! चलने ही की ठान ली तो, चलो-चलो ।।७४।।

सीता प्रीता प्राप्त हुई पूछने निज सास को ।
बोले लक्ष्मण, हे स्वामिन्! क्या आज्ञा निज दास को? ।।७५।।

राम बोले, कहूँ क्या मैं, अतीव दुविधा अहो! ।
माता-पिता की सेवा में, अच्छा हो कि यहीं रहो ।।७६।।

वे बोले, कि पिता-माता तो हैं भवन-वास में ।
आप होंगे चिर-स्थायी एकाकी वन-वास में ।।७७।।

भाइयों में न कोई भी रहे तो यह [1]युक्त है ।
घर की सुविधा माता-पिता सेवोपयुक्त है ।।७८।।

माता-पिता गुरु-भ्राता त्राता भी मम आप हैं ।
शरणागत हूँ मैं तो भरण-क्षम आप हैं ।।७९।।

खेले अकेले न, नहीं अकेले-
रहे, किये [2]लेह नहीं अकेले ।
तो क्या झमेले पड़ते अकेले-
सहें, न झेले प्रियबन्धु ले-ले ।।८०।।

श्रीराम बोले, सब बात तोले,
सारांश को ले स्व-रहस्य खोले ।
[3]निदेश को ले, वन-वेश को ले-
चलो, तजो लेप, निकाल [4]चोले ।।८१।।

सौमित्रि मा के पद-मूल जा के,
हामी भरा के [5]हुलसे, न [6]थाके ।
बोलीं सुमित्रा, करलो पवित्रा-
स्व-जीव- [7]यात्रा यह सच्चरित्रा ।।८२।।

---

१ यहाँ रहना । २ भोजन । ३ आज्ञा (पूज्यों की) । ४ गृहवेश [दूर कर लेप (घर का मोह) तजो] । ५ प्रसन्न हुए । ६ विफल हुए । ७ अपना जीवन ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मा की अनुज्ञा सुख-पूर्व पाके
समीप आये फिर उर्मिला के ।
बोले, पृथक् हो हम दें [1]सदीक्षा-
आदर्श-सेवा-व्रत की परीक्षा ॥८३॥

श्रीराम की वन्य-निवास-वेला-
दिखायगी [2]नैक-प्रकार [3]खेला ।
यही परीक्षा-युग सज्जनों का,
है स्वार्थ का [4]संयुग दुर्जनों का ॥८४॥

सच्ची सुनाऊँ कुछ कैकयी को,
जो भेजती राघव-से [5]नयी को ।
पीटूँ, घसीटूँ उस कूबरी को,
जो मैं न सेऊँ नर-केसरी को ॥८५॥

[6]प्राग्ज़न्म-दुष्कर्म-सुकर्म के ही
होते फलास्वादक सर्व देही ।
[7]निपात-उत्थान-दशा निराली,
सदा बताती [8]करनी-प्रणाली ॥८६॥

भयावना है कि सुहावना है-
मेरा कहा, क्या निज भावना है? ।
कहो, कुलानन्दिनि! हो न देरी,
जँचे तुम्हें तो, बस सिद्धि मेरी ॥८७॥

कहा उदाराशय ऊर्मिला ने,
दिखा दिया सत्पथ [9]अग्रजा ने ।
जो मैं कहाती उसकी कनिष्ठा,
तो मैं धरूँगी प्रभु! एक-[10]निष्ठा ॥८८॥

पृथक् हुओं का मन एक होगा,
उद्देश्य का साधन एक होगा ।

---

१ व्रत-ग्रहण के साथ । २ अनेक । ३ लीला । ४ युद्ध-स्थल । ५ न्यायवान । ६ पूर्व जन्म के । ७ गिरती व चढ़ती हालत । ८ पूर्व जन्म की करतूतों का ढङ्ग । ९ बड़ी बहिन (सीता) ने १० धर्म-विश्वास । जहाँ 'एक' का अर्थ है कि पति से अभिन्न ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदर्श-सेवा-व्रत की परीक्षा-
देंगे, करे क्यों न यती [१]समीक्षा? ।।८९।।

प्रसन्न हो लक्ष्मण-ऊर्मिला ने-
स्व [२]स्वोर्मिका दी स्मृति को दिलाने ।
[३]कनिष्ठिका और [४]प्रदेशिनी ने
उसे धरे चुम्बन-मर्म चीन्हें ।।९०।।

ज्यों पाठशालीय महोच्च कक्षा,
तरे दिखाते निज-शील-[५]रक्षा ।
[६]कालेज में छात्र प्रवेश पाते,
कृतार्थ त्यों वे प्रभु-पास जाते ।।९१।।

श्री ऊर्मिला व श्रुतिकीर्ति न बोल पाई,
सीता-गले लग शनैः रुदती [७]दिखाई ।
बोली मना वह इन्हें, बहिनो! न खोओ-
धीरत्व, पुण्य-पथ[८]-पारण-सिद्ध होओ ।।९२।।

★ ★ ★

कर सीता-पद-वन्दना रेणु [९]चन्दनाभास ।
धरे भाल पर माण्डवी कहने लगी उदास ।।९३।।

जीजी! कुछ न हाय! कह सकती, वे [१०]न यहाँ, इस पर मैं थकती ।
घटी अचिन्तित घटना कैसी, जो चिन्तित थी घटी न वैसी ।।९४।।

अहो! दिवस की रात हो गई, अनहोनी-सी बात हो गई ।
न मुख दिखा सकती मैं तुमको, सुकुल-वधू ज्यों धरे [११]कुसुम को ।।९५।।

महिप-वधू महिषी न रहूँगी, पर महि-सी मैं सर्व सहूँगी ।
साहूकार-बही-सी सारा, आय-व्यय रख न्यारा-न्यारा ।।९६।।

---

१ पूरी जाँच । २ अपनी अपनी अँगूठी [आपस में दी] ३ सबसे छोटी हाथ की उंगली [यहाँ पूर्वोक्त क्रम के अनुसार लक्ष्मण की समझना]। ४ अँगूठे के पास की उंगली [तर्जनी] यह ऊर्मिला को समझना। ५ सदाचार का प्रमाण-पत्र। ६ काले जायते इति कालेज। ७ दिखाई दीं। ८ पार करने में सफल। ९ चन्दन के समान झलकवाली। १० भर्ता [भरत] ११ रजस्वलापन ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकट करूँगी अवसर आये, मम यह काम हाथ का बाँये ।
राज-काज की देख-भाल में सहाय बनकर विषम काल में ।।९७।।
प्रभु-सेवा में निरत रहूँगी, व्यर्थ नहीं विश्राम गहूँगी ।
क्या जीजी! अति कहूँ मरूँगी पर, न [१]अनुजता मलिन करूँगी ।।९८।।
तुम प्रभु-संग सौध ही वन को मानोगी, मैं विपिन भवन को ।
सोहेगी मम तभी अनुजता, रहेगी न अन्यथा मनुज़ता ।।९९।।

लखूँगी न जब तक तुम्हें राज्य-प्राप्त पति-सङ्ग ।
तब तक होगा ही नहीं कभी नियम का भङ्ग ।।१००।।

सीता बोलीं, हृदय-दुलारी!, तू है मम प्राणों से प्यारी ।
तू इतनी गहरी सकुचाती, मम आत्मा को दुख पहुँचाती ।।१०१।।

होनहार पर किसकी चलती, जो रविरुचि बढ़ती, वह ढलती ।
तिस पर भी प्रभु यदि प्रसन्नतर, तो क्यों हों हम शुभे! [२]खिन्नतर ।।१०२।।
उनके दुख में दुख है मेरा, उनके सुख में सुख है मेरा ।
ग्रस्त चन्द्र रुचि समला होती, शुद्ध-चन्द्र-रुचि अमला होती ।।१०३।।
तुझ पर कौन करे अपशङ्का, मेरी हृदयवृत्ति गत-[३]पङ्का ।
तू मन में कु-विचार न लाना, वही जानकी यह न भुलाना ।।१०४।।
मैं बचपन से तुझे जानती, मैं अपनी विश्वस्त मानती ।
भिन्न देह हैं हृदय एक है, मुझे भगिनि! पूरा विवेक है ।।१०५।।
दुर्गति हो, जो दाँत पीसती, मैं प्रसन्न तुम को अशीषती ।
सदा-सुहाग-सुखों को सेना, कर सु-कर्म जीवन-फल लेना ।।१०६।।

सास-ससुर-सेवा-सजग पति-भक्ता रह पूर्ण ।
गृहिणी! गृह को गृह समझ भगिनि! मिलूँगी तूर्ण ।।१०७।।

ऊर्मिला व श्रुतिकीर्ति भी लग-लग गले अधीर ।
बार-बार मिलती रहीं, मैं न कर सकी धीर ।।१०८।।

धीरे! धीरज तज न यों, तव सिर पर सब भार ।
मैं [४]लघु होकर जा रही, तू हिम्मत मत हार ।।१०९।।

★ ★ ★

---

१ तुम्हारा लघु-बहिनपन । २ अतिदुःखी । ३ निर्मल [है] ४ हलकी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री राम ने हा! वन-वेष धारा, न यौवराज्याङ्कन वेष धारा ।
न हाय! तीर्थोदक से नहाये, कुटुम्बि-नेत्रोदक से नहाये ।।११०।।
न सीस पै सार किरीट बाँधा, अहो! जटाभार-किरीट बाँधा ।
न पादुकायें पग में कला की, हा! किन्तु थीं काष्ठिक पट्टिका की ।।१११।।
बन्दी न गाते विजयाभिनन्दी, रोने लगे हा! गृह-बन्धु [1]बन्दी ।
बाजे न बाज़े, उर-घात बाजे, न स्थान साजे, वन-यान साजे ।।११२।।

प्रभु, सीता, लक्ष्मण चले घर से हा! दुर्भाग्य! ।
ज्यों मोहान्धित हृदय से ज्ञान, भक्ति, वैराग्य ।।११३।।

माङ्गल्य-प्रार्थना की, बस कुल-गुरु ने सिद्धि की [2]शाल खोली,
सीता की [3]कंधरा में तब गुरु-गृहिणी डाल के माल बोली।
वत्से! सीते! तुम्हारा स्मरण कर तभी पूर्ण आनन्द पाऊँ,
मेरे भी [4]नाय यों ये जगमुनि यति हों, स्त्रग्धरा साथ आऊँ ।।११४।।

आया वहाँ रथ तुरन्त सुमन्त्र-लाया,
संप्रार्थना कर उन्हें उसमें बिठाया ।
आँसू भरे नयन से लखते उन्हें ही,
पीछे चले सकल पौर सदा-सनेही ।।११५।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता पञ्चदश प्रतान समाप्त ।

---

१ घर के कैदी । २ शाला । ३ गले में । ४ इसी प्रकार मेरे नाय=ले जाने वाले जगत-मुनि यति [वशिष्ठ] हों और माला धरे साथ आऊँ । छन्द की ओर–म, र, भ, न, य, य, य [गण] हों, ७, ७, ७ वर्णों पर यति हो तो स्त्रग्धरा जानना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

सोलहवाँ प्रतान

प्रवेशिका

वनगमन के समय अनेकों साकेतवासी प्रभु के साथ-साथ चल देते हैं। पहला विश्राम तमसा नदी के तट पर होता है। शृङ्गवेरपुर में भक्त गुहराज निषाद से भेंट होती है। श्रीराम सभी साकेतवासियों को सम्यक् उपदेश देक़र वहाँ से अयोध्या के लिए लौटा देते हैं। इधर सुत रघुवर के वनगमन के पश्चात् राजा दशरथ ध्यानमग्न होकर ज्ञान और वैराग्य में निमग्न हो जाते हैं। कवि ने उपप्रतान में इस स्थिति का बड़ा दार्शनिक एवं आध्यात्मिक वर्णन किया है। दूसरे दिन गुहराज गङ्गा नदी को पार कराने और साथ में थोड़ी दूर तक चलने की अनुमति प्राप्त कर लेते हैं। देवनदी गङ्गा को पार कराने के लिए पाँच नाविक दौड़ते हुए आ जाते हैं किन्तु एक चिट के द्वारा जिस भाग्यशाली नाविक को चुना जाता है, वह इन सभी को गङ्गाजी के पार पहुँचा देता है। मुनि भरद्वाज-आश्रम, गुहराज से विदाई, प्रकृति-सुषमा, चित्रकूट की शोभा, पर्णकुटी में निवास आदि का इस प्रतान में सुन्दर वर्णन है।

विशेष : उपप्रतान (ज्ञान-विराग) में राजा दशरथ का पश्चात्ताप जन्य आत्म-मंथन, काम को जीतने का मन को उद्‌बोधन कवि के दार्शनिक चिंतन का द्योतक है।

गुह के बुलाने पर पाँच नाविकों का दौड़कर आना तथा चिट के द्वारा सौभाग्यशाली नाविक को चुनना कवि की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है।

उक्ति-वैचित्र्य : ग्राम-वर्णन में **कचहरी** शब्द का प्रयोग दृष्टव्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोलहवाँ प्रतान

वन्दन यदि करते रहें रघुनन्दन-पद [1]प्राय ।
[2]हरिचन्दन से कम नहीं रस-[3]स्यन्दन फल पाँय ॥१६॥

वनयात्री भगवान को पथिक निहार-निहार ।
नमस्कार सत्कार से करते बारम्बार ॥१॥

*चढ़े न गाड़ी पर जो अगाड़ी-
रहे, यथार्थ-स्थिति बात ताड़ी ।
आरूढ़ गाड़ी पर जो अगाड़ी-
रहे, न सो मार्मिक बात ताड़ी ॥२॥

बने हुए भी जन पार्श्व-चारी,
कई न [4]पाये बन पार्श्वचारी ।
कई बिचारे रहते पिछाड़ी,
धूली-भरे भी न रहे [5]पिछाड़ी ॥३॥

[6]परतम साकेती-रहित निःश्रम ही थे राम ।
पर तमसा के तीर हित प्रथम हुआ विश्राम ॥४॥

★ ★ ★

---

१ विशेषता से । २ 'हरिचन्दन' एक प्रकार का कल्पवृक्ष, यहाँ उसी का फल लेना होगा। ३ रस-वर्षक । ४ गाड़ी पर नहीं चढ़े अ-गाड़ी=बे-गाड़ी यह तो ठीक, पर गाड़ी-चढ़े अ-गाड़ी रहे, यह बात समझ न पड़ी । यह विरोधाभास है । भाव यह है कि जो पैदल थे, वे तो मुख-दर्शन-लालसा से अगाड़ी-गाड़ी रहे, यह तो ठीक, पर गाड़ी-चढ़े आगे क्यों रहें; इसका समझना कठिन है । आशय यह है कि कहीं आगे रहा रथ आँखों की ओझल न हो जाय, यह जान वे आगे २ चले । ४ रथ की तेजी के कारण पार्श्व-चर बन न पाये । ५ राम-रथ की धूली से भर जाने पर वे लोग किसी से पीछे न रहे किन्तु उनका दर्जा ऊँचा ही रहा । ६ साकेतियों (अयोध्या-वासियों) से रहित । परतम=सब से परे वा उत्कृष्ट (राम)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री शृङ्गवेर पहुँचे सब शीघ्रता से,
गङ्गा-प्रतीर पहुँचे कुछ भक्त प्यासे ।
प्यासे वहीं टिक रहे प्रभु-दर्शनों के,
पीते रहे रस पदाब्ज-[१]विमर्शनों के ।।५।।

सीता-सहित राम तत्सम्मुख लक्ष्मण वहाँ बिराजे,
ज्यों गौरी-युत शिव के सम्मुख गजमुख आसन साजे ।
भक्त-जनों की रुचि थी अब तो गुह फिर सभा सँवारे,
इतने ही में नृपति वहाँ के श्रीगुहराज पधारे ।।६।।

श्री रघुवर भक्तों की रुचि को कैसे पूरा करते,
यह सब को सु-ज्ञात हो गया, सद्यः स्वसिद्धि धरते ।
प्रभु-रुचि थी ये सुख से लौटें, पर न नियम प्रभु तोड़ें,
और भक्त-रुचि सुदृढ़ हुई, क्यों ऐसे प्रभु को छोड़ें ।।७।।

गुहराज चरणों में चिपट बोले, विनय सुन लीजिए,
इस दास की कलुषित कुटी को नाथ! पावन कीजिए ।
यों कह पदाब्ज पखारकर पादाम्बु को चट पी गये,
बोले कि हम भव-भीति से मरते हुए अब जी गये ।।८।।

संकेत कर जन-वर्ग से फल, कन्द, मूल मँगा लिये,
मन-कर्म-वचनों से सभी के प्रीति से स्वागत किये ।
प्रभु ने कहा, हे मित्र! हार्दिक प्रेम-हेतु कृतज्ञ हैं,
गुह साश्रु बोले आप तो सर्वज्ञ हैं, हम अज्ञ हैं ।।९।।

लेने दिया विश्राम सब को फिर समाश्वासन किया;
श्रीराम ने उपदेश हित स्थिति-देश-कालोचित दिया ।
किस भाँति लौटाया उन्हें साकेत को किस युक्ति से,
यह राम की सहचारिणी कवि-मति कहे किस उक्ति से? ।।१०।।

---

१ चरण-कमल पर के ध्यानों के अर्थात् यह गङ्गा भी तो इन्हीं में से टपकी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उप-प्रतान ३

(ज्ञान-विराग)

सुत रघुवर को कर विदा, कर प्रपञ्च का त्याग ।
प्राप्त किया ध्याते उन्हें नृप ने ज्ञान-विराग ॥१॥
न्हाकर भी तृषित रहा संयोग-विनोद-यमुना में ।
हे मन! नहा, सुधा पी, अब ज्ञान-विराग-गंगा में ॥२॥
रघुवर-यौवराज्य-सुमनोरथ पार न पहुँचा कैसे?,
आत्मसिद्धि में मनोविकृति जो हुई [1]विघातक वैसे ।
मन:शुद्धि से आत्मशुद्धि है, आत्मशुद्धि ही फलती,
शुद्ध तड़ित की [2]तन्त्री ही तो निधि प्रभाव से [3]चलती ॥३॥
क्या राजहंस! परहंस-समीप सीखा?
मीनाङ्क-हेतु जिसका मलिनत्व दीखा ।
वृद्धत्व में जगत ने यह मान्द्य जाना,
हा! क्या रहा युवक का [4]वक का ठिकाना? ॥४॥
चोरी के धन के समान क्रम से हा! दन्त जाते रहे,
सारी स्फूर्ति घटी व उत्तर सभी देहांग जो दे रहे ।
आँधी में जिस भाँति [5]दिग्दशक, त्यों [6]निस्तेज हैं इन्द्रियाँ,
तो भी हा! मुझ वृद्ध को चटक से आती सुहाती स्त्रियाँ ॥५॥
लज्जा जाय कहीं, महाव्रत कहीं, संन्यास-दीक्षा कहीं,
शिक्षा जाय कहीं, बहुश्रुत कहीं, सम्यक्-[7]समीक्षा कहीं ।
मानो शान्ति बड़ी रसातल पड़ी, एवं तपस्या कड़ी,
कान्ता काम-छड़ी अहो! जिस घड़ी आ सामने हो खड़ी ॥६॥
जब तक बहु भोज्य-स्वाद की लालसा है,
डट-डट कर खाने को न [8]काछा कसा है ।

---

१ विघ्नकारक । २ बिजली का तार, आगे तडित के निधि-प्रभाव से । ३ काम करती है । ४ वशिष्ठ-जैसे परमहँसों का साथ करने वाला मैं क्या राजहंस (उत्तमराजा) हूँ, जिसने मीनाङ्क= काम के कारण मलिनता पाई। राजहँस जब मीनाङ्ग= मत्स्यों के संसर्ग से मैला हो जाता है, तो जगत् उसे हँसता ही है। तो अब युवक पन का और बगुले का तो ठिकाना ही क्या रहा? ५ दसों दिशायें । ६ शक्ति हीन और प्रकाश हीन। ७ भली भाँति की जाँच । ८ लंगोट ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब तक न पिया है ज्ञान--नीरौषधों को,
तबतक सकते क्या मेट काम-ज्वरों को? ॥७॥

भव-गति अँधियारी रात है भीति-कारी,
न कुछ गुरु-सुशिक्षा-चन्द्रिका की तयारी।
फिर [१]अपमति-आँधी दैव ने ला पसारी,
हरि-हरि जपते ही सिद्धि होगी हमारी ॥८॥

क्या मैं कहूँ अहह! यौवन की कथा को,
जो अन्धता रच दिखाय नई प्रथा को।
हों नेत्र भी प्रसृत किन्तु न दीख पाता,
भ्राता, पितामह, पिता, भगिनी व माता ॥९॥

विभव से विषयान्तर-वासना प्रकटती कटती सविकासना।
फिर नई बढ़ती, घटती नहीं, विभव-सा [२]भव-साह्यद है कहीं ॥१०॥

संसारबीच कुछ सार नहीं रखा है,
[३]तल्लीन क्या कह सकें, इनको लखा है।
जो अस्थि-मांस-मल-मूत्र भरा घिनौना-
स्त्री-अङ्ग पा समझते उसको खिलौना ॥११॥

ज्यों चीरा मेंढक-उदर, लथपथ पा स्त्री-अङ्ग।
कामि-कीट ही रीझते, न कि सत्पुरूष असङ्ग ॥१२॥

चोरी, जारी, जुवारीपन, कपट, [४]मृषावादिता, क्रूरता को,
बेईमानी, गुमानीपन, छल-चतुराई गृहे-[५]शूरता को।
जो जो है कार्य नीचा वह-वह सब ही, इन्द्रियाँ ही कराती,
[६]जिह्वा, जी को जताती प्रमुख, वर-वधू-युग्म को ज्यों बराती ॥१३॥

भोले-भाले बिचारे इधर-उधर से ढूँढ़के घास-दाने-
जो खाके पी जलों को ठहरकर कहीं, जी रहे बे-ठिकाने।
ऐसे भी जन्तुओं को छिप-छिपकर ये मारते माँस खाने,
जिह्वे! तू क्यों चटोरी बनकर रचती व्यर्थ हिंसा, न जाने ॥१४॥

---

१ कुबुद्धि रूप। २ संसार का सहायक। ३ संसारलीन और प्रभुलीन क्या कह सकें, इन (प्रभु) को देखा है। यह भी ध्वनित है। ४ मिथ्यावाद। ५ घर में बहादुर बने रहना। ६ सब इन्द्रियाँ रसना और मन को अगुआ दिखाती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लड्डू, पेड़ा जलेबी, मगद घृत भरा, दाल सेवें, कचौरी,
बारी-बारी मँगाती नित रस-रसिका, जार से ज्यों किशोरी ।
त्यों देही से मँगाती यह बस रसना, चाट की जो चटोरी,
होती दातों तले भी इस मुख-पुर की क्यों डरे रक्त[१]-पौरी? ॥१५॥

न कोई संसारी सुख-सहित सारी निज दशा-
बिता पाता, ऐसा स्व-अनुभव से सार दरसा ।
दुखावस्था पाते जब, सुख दुखाते प्रथम के,
तभी जाने जाते सकल भव-नाते [२]विषम के ॥१६॥

तभी होते योगी, सुमति जन भोगी न रहते,
भले बाधा लाता प्रथम तप का ताप सहते ।
न वे कोई नाता पकड़ भव का ताप सहते,
उसी को तो धन्याशय मनुज संन्यास कहते ॥१७॥

बने वे संन्यासी विजन-वन-वासी प्रथमतः,
प्रवासी अभ्यासी रहकर उदासीन क्रमतः ।
यती योगाभ्यासी प्रभुपद-विलासी जन रहे,
सदा आत्मोल्लासी परम-पद वासी बन, रहे ॥१८॥

संसार ही से दुख-भार होता, संसार को स्त्री-[३]सहकार बोता ।
स्त्री-सङ्ग को काम बली कराता, जो काम जीते वह सिद्धि पाता ॥१९॥

जो काम को मैं तब जीत लेता, तो क्यों मुझे दुर्विधि कष्ट देता ।
क्यों व्याहता स्त्री पर, एक होते, कामान्ध ही तो दुःख बीज बोते ॥२०॥

[४]यदि गौरी-मुक्तावली पहले से थी पास ।
तो फिर डाला क्यों गले मन! भरताम्बा-पाश ॥२१॥

ज्यों वैद्यराज [५]रसराज-सुसाधना को,
त्यों योगिराज मन-राज-विबाधना को ।
जो सिद्ध-[६]हस्त निज हस्त-गता जताते,
धन्यातिधन्य उनको ऋषि भी बताते ॥२२॥

---

१ मुखरूप नगर की रक्त=लाल और प्रेमिका पौरी=पुरवासिनी । २ कठिनता (खराबी) के। ३ स्त्री-सम्बन्ध । ४ दशरथ कहता है—हे मन ! गौरियों [स्त्रियों] रूप मोतियों की पंक्ति (हार के होते भी भरताम्बा=कैकेयी का पाश गले क्यों डाला? 'मन-भर ताम्बा का पाश' यह भी ध्वनित है । ५ पारे की सिद्धि को । ६ उस काम में मँजे हुए ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संतानोपम पाल-पोष जिनको सेते, उन्हें प्यार से-
खाते मार, बिगाड़ते फिर पर-स्त्री को बलात्कार से ।
जो हैं इन्द्रिय-तुष्ट दुष्ट, उनको सौ-बार धिक्कार है,
जो हैं मारूति-से जितेन्द्रिय उन्हें मेरा नमस्कार है ॥२३॥

[१]किनके खाकर जी रही ये चिड़ियाँ असहाय ।
चिड़ीमार तो भी छली इन्हें मारता हाय! ॥२४॥

[२]मनों भरे घृत-दूध शर्करा-पाकों से अविराम-
पोषा तुझे, फँसाया मुझ को रे मन! नमकहराम! ।
तुझ को आती लाज न बदले यही दिया क्या [३]दाम,
बीती सो तो बीत गई पर अब तो नम, कह 'राम' ॥२५॥

आहा! कूच किया प्रकोप, मद ने, औ साथ ही काम ने,
प्रारम्भोत्तर अन्तराय फटका कोई नहीं सामने ।
भागा मोह, तुरन्त लोभ खिसका, मात्सर्य ज़ाता रहा,
राम-ध्यान-निमग्न मैं जब हुआ, आनन्द आता रहा ॥२६॥

चाहे उत्तम धाम की वसति हो, शोभा पुर-ग्राम की,
चाहे राज-ललाम की परख हो, हो उच्चता नाम की ।
चाहे हो अभिराम कीर्ति, फिर हो [४]सद्वृत्ति विश्राम की,
जो हो भक्ति न राम की न नर की सत्ता किसी काम की ॥२७॥

आशा! तू अपना [५]सहाय मुख ले दूरों चली जा कहीं,
तेरा भी कुछ भी यहाँ पर अरी तृष्णे! ठिकाना नहीं ।
तेरा वास न वासने! अब यहाँ, जा-जा किसी स्थान में,
नित्यानन्द-निमग्न मैं बन रहा श्रीराम के ध्यान में ॥२८॥

मेरी बात कबूलना, नित, नहीं श्रीराम को भूलना,
भाग्यों में मत फूलना, मत किसी के चित्त को शूलना ।
शिष्टों को अनुकूलना, अलसता, रोगारि उन्मूलना,
[६]षड़-वर्ग प्रतिकूलना, विरत हो, सद्-ध्यान में झूलना ॥२९॥

★ ★ ★

---

१ किन लोगों के? इस प्रश्न पर इसी में उत्तर है कि किनके अर्थात् अन्न या अनाज के कण; अतएव प्रश्नोत्तर अलंकार है । २ मनों को लगाकर एक मन का पोसना चमत्कार है । ३ बाँधने की रस्सी और मूल्य । ४ अच्छी जीविका । ५ 'अपनास हाय!' यों भङ्ग करते हुए अपनास= बिना नाक का (मुख) ऐसा ध्वनित हो जाता है । ६ कामादि छहों भीतरी शत्रुओं के वर्ग के प्रतिकूल चलना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भव-सागर की नाव के राम! तुम्ही मल्लाह ।
[१]मतज-भेद-कारण कई कहते हैं अल्लाह ॥३०॥

कई बुद्ध, फिर जिन कई, कोई यीशु मसीह ।
कहें कई कुछ, हो तुम्ही एक अनादि निरीह ॥३१॥

पर ब्रह्म के लक्ष्य पर हो कुछ भी शुभ नाम ।
ज्यों कुछ भी ध्वनि वर्ण को, तुम्हें सुझाता राम! ॥३२॥

[२]ब्राह्म तत्व में, विष्णु हर आद्याक्षर संयुक्त ।
प्रथम निकाल स्वरूप वह लखो राम फिर उक्त ॥३३॥

दीखे नील अरूप भी व्यापक ज्यों आकाश ।
नित्य [३]तारकाश्रित, तथा राम ब्रह्म स्व-प्रकाश ॥३४॥

विष्णु, [४]वसति, वन, वर-वधू, वैद्य वदन, विद्वान ।
ये न [५]सुदर्शन के बिना पायँ पूर्ण सम्मान ॥३५॥

अरे रे मानस! मम भीतरी निकाल भ्रम,
हो भले भ्रमर भ्रम, जग ब्रह्म-बाग है
वा देवी-देवों के ठाट जिसके अनेक घाट
अकल अथाह ब्रह्म मानस-तड़ाग है ।
किसी भी घाट के द्वारा करले प्रवेश प्यारा,
वह ही मिलेगा सारा, उसका न भाग है ।
अन्तर-अथाह वह, यदि कहीं याद पावें-
मायोपाधि-द्वारा पद्म, हंस वक, झाग है ॥३६॥

★ ★ ★

१ मत से उत्पन्न हुए भेद से और 'म तज' अर्थात् मकार को छोड़ कर वे लोग 'म'=चाँद को प्रथक् मानते हैं, इसलिए यह ध्वनित है । २ 'ब्रह्म' शब्द वकार-बकार दोनों से लिखा जाता है। 'ब्राह्म' से संयुक्त (मिले हुए और संयोगी) विष्णु और हर-रूप आदिम अक्षर (क्षर हीन) स्वरूप की ओर इन्हीं दोनों के प्रथमाक्षरों [वह] को निकालकर तथा वह (सगुण) स्वरूप निकाल फिर उक्त पूर्ववर्णित (निगुण) 'राम' को देखों । ३ राम-पक्ष में तारकों गुरुओं से आश्रित । आकाश पक्ष में ताराओं द्वारा आश्रित । ४ बस्ती । ५ चक्र, अच्छा धर्म, औषधी, बुद्धि तथा दिखाव, सुदर्शन चूर्ण, नेत्र और आस्तिक तत्त्व-शास्त्र क्रम से जानना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्य दिवस गमनोन्मुख प्रभु को लख गुह बोले स्व-[१]रुचित,
[२]विषमजनों से विषम नदी का तरना होगा अनुचित ।
अतः आपकी सेवा में कुछ दूर चलूँगा मैं भी,
श्रम-स्वेद-जल हरने के हित व्यजन झलूँगा मैं भी ।।११।।
यों कह वे तीनों के अगुए पथ-दर्शक बड़भागी-
बनकर चलने लगे मुदितमन सेवा के अनुरागी ।
स्वयं [३]समुद्गत सुर-सरिता ने सब के चरण पखारे,
चंल चिड़ियों की चहकारों से बोली भले पधारे ।।१२।।
वन्दन किया राम ने, गुह ने नाविक एक बुलाया,
अद्भुत भुवन-विभूति भाँप कर नाविक-पञ्चक आया ।
असमञ्जस में पड़कर गुह ने कहा, कहो उतराई,
सब ने साथ कहा, [४]तारक से लें न अहो! उतराई ।।१३।।
पाद-पखारन भवाब्धितारन तुमने पिया अकेले,
देव! हमारे शुभ अवसर पर रचते वृथा झमेले ।
लक्ष्मण बोले, सभी सफल हों, जो प्रभु यहाँ पधारे,
तुम्ही परस्पर निर्णय करलो, कोई हमें उतारे ।।१४।।
जिस भागी के पुण्य नाम की चेट- [५]चुनी चिट निकली,
सिद्ध हुआ वह सिद्धि-वधू के [६]भूष्य भाल की [७]टिकली ।
उसने रघुवर-विजय मनाकर उन्हें पार पहुँचाया,
भाग्योदय के साथ चमकता भव्योदय मन-भाया ।।१५।।
लक्ष्मण देने लगे उसे कुछ, उसने कहा, न लेता,
लूँगा क्या मैं यही, जिसे ये मिले त्रिलोकी-नेता ।
पद-पङ्कज का पराग लूँगा, यों कह प्रभु-पद-धूली-
निधि-सी लेकर साथ बाँध ली, हृदय-कली अति फूली ।।१६।।
आगे बढ़े निषाद उन तीनों को ले साथ ।
ज्यों प्रताप, नृप-नीति, [८]बल साथ लिए नरनाथ ।।१७।।

---

१ अपनी चाही [बात] । २ विषम संख्या वालों तीन जनों से । ३ स्वयं उछल कर आई हुई। ४ पार उतारने वाले से । ५ किसी अल्हड़ का चुना हुआ कागज का टुकड़ा । ६ सजाने योग्य। ७ ललाट का भूषण । ८ सैन्य ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपयुक्त प्रासङ्गिक सकल इतिहास जतलाते हुए,
प्राचीन स्थानों को कहीं गुहराज बतलाते हुए ।
करते रहे थे चित्त-रञ्जन श्रम-विभञ्जन पन्थ में,
संदर्भ जैसे व्यासजी के भव्य भारत ग्रन्थ में ।।१८।।
जलधर-पटल का धर अटल छदि-[१]वास, वासर-नाथ ने-
देखा न, फिर की छाँह भी, फिर पन्थ छिड़का [२]पाथ ने ।
शीतल, सुगन्धि, सुमन्द मारुत चल रहा वा [३]झल रहा,
अशनार्थ तरु से फल गिरे, पानार्थ सोत निकल रहा ।।१९।।

★ ★ ★

वहीं श्रीसीता के चरणतल में कण्टक लगा,
परन्तु स्वामी के दुख हृदय चिन्तामय जगा ।
उन्हीं के आँसू से प्रभु-हृदय सूखा रस-भरा,
तभी बोले, मा भी सति! विपद में दुःखद [४]धरा ।।२०।।
निषाद-स्वामी ने सु-वचन कहा साहस-भरा,
प्रभो! क्या चिन्ता है, निकट चिमटी कण्टक-हरा ।
उसे ले स्वामी ने जिस विधि निकाला चट [५]इसे,
[६]उसे वा स्वामी को स्मरण न करेंगे, फिर किसे? ।।२१।।

★ ★ ★

कहा सीता-पादाहति पर निषादाधिपति ने,
दिखाया क्यों कष्टावसर यह दुष्टा नियति ने ।
कहाँ माता सीता मृदुतनु विनीता सुखमयी?,
कहाँ ऐसी घोरा वनमही कठोरा दुखमयी? ।।२२।।
धरा थी [७]संचाराभिमत जल-धारा-पतन से,
चले धीरे-धीरे तरणि-कुल-[८]हीरे जतन से ।
स्व-भर्ता के पादाङ्कन पर स्व-पादाब्ज रखती,
चलीं सीता माता सु-छवि नव-जाता निरखती ।।२३।।

---

१ पर्दा-निवास अपनी कुल-संतान इस अवस्था में वन को जाती न दीख पड़े, इसलिए ।
२ जलधर-पटल के जल ने । ३ पंखा कर रहा । ४ भूमि (सीता की माता) । ५ काँटे को।
६ उस विधि को । ७ चलने के अनुकूल । ८ सूर्य-वंश के हीरे (राम) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिला [१]यद्वा-तद्वा यह पद भरद्वाज यति का,
पिया [२]श्रेयोवादामृत यह निषादाधिपति का ।
हुई प्रीता सीता यह कह विनीता रमण से,
टिकेंगे हे स्वामी! विनय कर नामी श्रमण से ॥२४॥
थके पूरे यात्री हम सब सु-रात्री यह बिता,
सवेरे देखेंगे, यदि अति चढ़ेंगे न सविता ।
नहीं तो, भूदेवानुगत-मुनि-सेवा-रत यहीं-
रहेंगे, काटेंगे कुछ दिन, चलेंगे फिर कहीं ॥२५॥
प्रिया की यों दीनाक्षर रस-विहीना सुन गिरा,
थके दीन-स्वामी, दृग-पलक थामी, जल गिरा ।
न जो जी से थाके सब विधि न थाके वचन से,
न कर्मों से थाके, वह इस व्यथा के वचन से ॥२६॥
कहा यों भर्त्ता ने वचन धृति लाने, जनकजे!,
सुधन्या ने मेरे हित विभव-डेरे सब तजे ।
अभी से सस्नेहा दुख विपिन के हा! सह रहीं,
करूँगा मैं वैसा, तुम वचन जैसा कह रहीं ॥२७॥

★ ★ ★

सीता के हरने विषाद को निषाद बोले,
बुला रहा वह पुण्याश्रम [३]द्वारावृति खोले ।
हम न पहुँचते, वही आ रहा सम्मुख मानो,
श्रमियों का विश्राम यही आश्रम है, जानो ॥२८॥
मुनि-दर्शन की उत्कण्ठा का सु-प्रभाव ले-
सीता-पद तापद गति तज कर अति उतावले ।
हुए, हुए मुनिवटु भी सम्मुख, फिर तो क्या था,
उन्हें देखते झुका सभी का उन्नत .माथा ॥२९॥
प्रथम सभी ने वन्दन करके भरद्वाज को,
किया नमस्कृत क्रमशः सारे मुनि-समाज को ।
देख राम को सब ने निज को कृतार्थ माना,
उन्हें इन्होंने लख स्ववनागम को हित जाना ॥३०॥

---

१ जैसे-तैसे । २ शुभ समाचार-रूप अमृत । ३ दरवाजे की फाटक ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया अतिथि-सत्कार यथावत भरद्वाज ने,
सेवा-अवसर-प्राप्त किया झट भिल्लराज ने।
पग पलोट कर लक्ष्मण ने प्रभु को पोढ़ाया,
गुह ने [१]उनके पग पलोट कर उन्हें सुलाया ।।३१।।
तपस्विनी-जन मनस्विनी सीता को प्रीता-
प्रियालाप से किया किया, पर भाग्यानीता।
एक मालिनी ने पद-सेवा का जो फल पाया-
छिन ही में क्या उसे देख [२]वह भी न लजाया? ।।३२।।
भगे सभी के श्रम, स्फूर्ति में पगे-
जगे उषा में सब कृत्य में लगे।
रँगे हुए भी गुरु [३]राग-रङ्ग से
अहो! सभी थे [४]शुचि अन्तरङ्ग से ।।३३।।
प्रयाग को पा उदयाग[५] याग या
गया [६]गया जी न, कहीं सुभाग या।
कोई नहीं तीर्थ रुचा नया-नया,
न यान-[७]यात्रा, न [८]पदानुयान या ।।३४।।
तपश्चमत्कार वहाँ नवीन था,
शरीर ही क्या मन भी अधीन था।
तभी वहाँ दैहिक-मानस-व्यथा
कभी किसी को फटकी न सर्वथा ।।३५।।
सदा-विरोधी पशु-पक्षि- [९]गोध था,
न किन्तु अन्योन्य वहाँ विरोध था।
तभी सभी आपस के विरोध से
सबोध भी तापस थे अबोध-से ।।३६।।

★ ★ ★

१ लक्ष्मण के। २ तपस्विनीजन। ३ गुरु [भरद्वाज] के प्रेम रङ्ग से और गहरे लाल रंग से। ४ शुद्ध और श्वेत। ५ उदय-पर्वत। याग=यज्ञ तीर्थ, जहाँ दक्ष ने यज्ञ किया था। ६ एक तीर्थ। ७ सवारी पर चलना। ८ पगों के बल चलना। ९ मंडराव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कभी वहाँ पूर्व [१]विचित्र कूट की-
निहार शोभा फिर चित्रकूट की।
विदेहजा ने प्रिय से कही गिरा,
यहाँ व्यथा भी, न कि शोक ही गिरा ।।३७।।

तथापि [२]लक्ष्मी गिरि की बुला रही,
हमें यहाँ की स्थिति को भुला रही।
अतः सवेरे यदि ईश को जँचे,
चलें वहीं, और मुनीश को जँचे ।।३८।।

प्रवृत्त ही थे कथनार्थ [३]ईशिता,
बुला उन्हें बोल उठे मुनीशिता।
छटा अदूरस्थित चित्रकूट की-
निहार लो जा कल, ज्यों [४]त्रिकूट की ।।३९।।

कहा उन्होंने कि मुनीन्द्र! आपका-
निदेश हो जो क्षयमूल ताप का।
बनूँ तपोराज्य-[५]प्रधान-दुर्ग का
सुरक्षिता बारक दुष्ट-वर्ग का ।।४०।।

कहा व्रती ने व्रतिपाल! क्या कहूँ,
कदापि मैं [६]द्वारप आपका रहूँ।
यही रुची है, करना प्रभो! दया,
भवाब्धि से व्याकुल पूर्ण हो गया ।।४१।।

प्रविष्ट होके गुरु-पाद-वास में-
कृपालु बोले, प्रभु आप दास मैं।
महागुरो ! छात्र मुझे बनाइए,
सदा कृपा-पात्र मुझे बनाइए ।।४२।।

कहा यती ने, हृदयाब्ज क्या खिला,
कली-कली भी, शुभ योग आ मिला,

---

१ रंग-रँगीले शिखर की। २ शोभा। ३ स्वामी (राम)। ४ एक पर्वत। ५ मुख्य किला (चित्रकूट)। ६ द्वारपाल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नरेन्द्र ज्यों भू-[१]भरणार्थ सिद्ध है,
नगेन्द्र त्यों भू-[२]भरणार्थ सिद्ध है ।।४३।।
गिरीन्द्र को गौरव-दान दीजिए,
पदार्पणा से परिपूत कीजिए ।
दयालु बोले, [३]द्विजराज की रुची,
अशेष [४]दोषान्ध निवारती शुची ।।४४।।
देके कथंचित् गुहराज को विदा,
प्रातः हुए वे नगराज को विदा ।
रामाननोच्चारित वन्दन-[५]क्रिया-
ज्यों कर्ण, [६]दोनों धरने लगे प्रिया ।।४५।।

★ ★ ★

सुधा-बीची मानो [७]शुचि पवन ही एक बस है,
सवेरे की वेला, फिर सु-पथ सर्वत्र [८]रस है ।
[९]रसान्ते. विश्रामायमन सुभ लेंगे शिखरिणी-
स्थली में, यों सीता लख कुछ बढ़ी ज्यों कि करिणी ।।४६।।
कहीं धीरे-धीरे द्रुत-गति कहीं, मध्यम कहीं,
चले स्वामी, त्यों [१०]वे पद-शकटि- [११]चक्रोपम सही ।
वहाँ तीनों सङ्गी पथिक पहुँचे सत्वर तथा,
सुराजा को भाग्योदय, सफलता, उद्यम यथा ।।४७।।

★ ★ ★

नहीं विशाला न [१२]परा ऽविशाला
दुरात्म- [१३]शालावृक को कराला ।

---

१ पालन के लिए । २ धारण के लिए । ३ श्रेष्ठ ब्राह्मणे की और चन्द्र की । ४ दूषण रूप अँधेरा और दोषा=रात का अँधेरा । ५ देव-वन्दन कार्य। ६ सीता -लक्ष्मण अर्थात् राम ने चलते समय जो वन्दन-पाठ पढ़ा, कानों की तरह उन दोनों ने ग्रहण किया। ७ स्वच्छ । ८ आनन्द स्वाद । ९ इस रस के बाद पर्वत-शिखर के स्थल में सु-भ=सुहावना विश्रामा ऽऽ यमन=पूर्ण विश्राम लेंगे। छन्द की ओर, जहाँ रस ६ और अन्त में ११ वर्णों पर विश्राम हो, य-म-न-स-भ-गण और लघु गुरु हों, वह शिखरिणी छन्द है। १० सीता-लक्ष्मण। ११ साईकिल के पहियों के समान । १२ बहुत छोटी भी नहीं। १३ बन्दर, व्याघ्र या कुत्ता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]सुवर्णशालायित पर्णशाला
रची [२]सजाला, पर थी [३]अजाला ।।४८।।
पीछे रची सम्मुख-सी सुमित्रा-
कुमार ने अन्य कुटी पवित्रा ।
सावित्रिका-सम्मुख शारदा ज्यों,
थी ब्रह्म-माया प्रति [४]द्वारदा त्यों ।।४९।।
सीता-सुमित्रासुतयुक्त स्वामी
वहाँ रहे वे सुख से अकामी ।
जैसे कि काली-गुह-सङ्गशाली
कैलास-शैलासन पै कपाली ।।५०।।

★ ★ ★

वहाँ कभी राम [५]पराह्न काल में
प्रिया-विनोदार्थ वनान्तराल में ।
उन्हें स्वछाया-सहचारिणी बना-
चले कुटी से गणराज को मना ।।५१।।
कहा कृपा-सागर ने शुभानने,
प्रवृत्त होती तुम को बखानने ।
वनाधिदेवी कलकण्ठ-गान को
सुना पिलाती [६]अमृत-प्रपान को ।।५२।।
हे [७]भौमि! भूमिघर ने स्थल पै तुम्हारे-
पादार्पणार्थ तरु-पुष्प घने पसारे ।
स्नेहार्द्र खान-मणि-नैन [८]यहीं उघाड़े,
है देखता धरणि-संतति- [९]भाव ताड़े ।।५३।।
देता सु-जीवन यही झरने झराता,
अन्योपकार-विधि की स्मृति को कराता ।
वा भौमि! भूमि जननी तुमको रमाती-
स्नेहार्द्र हो पय गिरि-स्तन से झराती ।।५४।।

---

१ सुवर्ण-शालासी। २ जालियों वाली । ३ फंदरहित । ४ द्वार दिखाने वाली । ५ दिन ढलते समय । ६ अमृत की ठंडाई । ७ सीता ! । ८ पर्वत। ९ तुम्हारा भूमि संतान पन । अथवा भूमि संतान के भाव [आशय] को ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोते यहीं अभिसृता[१]- विट सङ्ग-रातें,
शङ्का-विहीन करते गृह-गुप्त बातें।
ये वंश छिद्रधर तो धरते [२]उन्हीं को
भेदी-[३]समान करते स्फुट [४]लालसी को ॥५५॥

ज्यों कश्यपाख्य मुनि की, इस भाग्यशाली-
शैलेन्द्र की विविध वंश-[५]छटा निराली।
कोरे सुरासुर न, मानव आदि सारे-
होते सुखाश्रित अहो ! जिसके सहारे ॥५६॥

क्या उच्च[६]-वंश-मिष से गिरि हे सु-माने?
[७]उद्बाहु हो उछलता सुर-लोक जाने।
[८]निश्रेणि वा रच रहा, अथवा मिलाता-
आकाश-भू, नभ-[९]वितानक वा टिकाता? ॥५७॥

वा बाहु ऊर्ध्व करके, पथ जो भुलाता-
लीला-रसी उस सुर [१०]ब्रज को बुलाता? ।
वा जाँचता गगन [११]का हरिपाद-द्वारा-
माँपा हुआ तल सुदीर्घ [१२]विशाल सारा ॥५८॥

मन्दार-सुन्दर सुगन्धि समीर सेते,
पीयूष-[१३]पान असमान सुलाभ लेते।
स्वर्गीय दंपति यहाँ सुख-वास पाते
आनन्द नन्दन [१४]सुनन्दन भूल जाते ॥५९॥

पादाश्रयी सकल [१५]भूत धरे निराला-
माथे [१६]हिमांशु, गल-बीच [१७]भुजङ्ग-माला।

---

१ अभिसृता=संकेत स्थान पर खुद पहुँची हुई, विट=जार। २ उन बातों को। ३ रहस्य का पता लगाने वाला। ४ पक्के इच्छुक को। ५ कुल-शोभा और बाँसों की छवि। ६ ऊँचे बाँसों के बहाने से। ७ भुजा उठाये। ८ निसेनी। ९ आकाश रूप तंबू को। १० देव-समूह को। ११ आकाश का तल। १२ लम्बा-चौड़ा। १३ तत्काल निकाला दूध और अमृत। १४ नन्दनवन के आमोद-प्रमोद। १५ [पैरों और पहाड़ी भूमि पड़े] प्राणी और पिशाच। १६ चाँद। १७ साँप रूप माला और साँपों की पक्ति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[1]गौरी-समेत यह ढुण्ढि-[2]गुहोपशोभी,
प्रत्यक्ष है [3]शिव स्व-सेवक-नैन-लोभी ।।६०।।
योगी यहाँ सुलभ-साधन [4]कन्दरों में
भोगी यथा सुलभ-साधन [5]मन्दिरों में ।
[6]सद्-गोत्र की वसति के गुण-गान गाते,
कर्त्तव्य पाल निज अन्तिम सिद्धि पाते ।।६१।।

★ ★ ★

सुमुखि! क्या शुभ शान्ति-निवास है,
[7]पदपदे [8]प्रतिभा-प्रतिभास है ।
सफल हो सकता रचता महा-
सुकविता कवि ताप-हरा यहाँ ।।६२।।
अचल- [9]पुण्यपद-स्थिति पा लता-
भवन में स्व- [10]रहस्य निकालता ।
अचल [11]पुण्यपद-स्थिति पालता
मनुज [12]चिन्मय रूप सम्हालता ।।६३।।
चहचहा चिड़ियाँ चल चित्त को,
जिस प्रकार कि चौर सु-वित्त को ।
नहिं चुरा सकतीं, अचलेश का-
[13]अपहरा पहरा किसने [14]तका? ।।६४।।
ललित लोल-लतामय कुञ्ज हैं,
मधुप-गुञ्ज-भरे सुम-[15]पुञ्ज हैं ।
हरित नैन-मनोहर दूब है,
वर समीर समीहित खूब है ।।६५।।

---

१ पार्वती और स्त्री । २ (तत्व को) ढूँढने वालों [योगियों की] गुफाओं से शोभित और ढुण्ढि=गणेश तथा गुह [स्वामी कार्तिक] से शोभित । ३ कल्याण स्वरूप और महादेव । ४ गुफाओं में । ५ महलों में । ६ अच्छे पर्वत के और सुन्दर कुल के । ७ कदम-कदम पर और शब्द-शब्द पर जो विभक्ति वाला हो । ८ विकस्वर बुद्धि की फुरना । ९ पर्वत के रमणीय स्थान का निवास । १० आत्मा के मर्म को [ढूँढता हुआ] । ११ पुण्य की महिमा रूप मर्यादा को अचल=अविचल (पालता हुआ) । १२ चैतन्यमय [परमात्मा-स्वरूप को] । १३ हटाया। १४ ताक लगाया हुआ । अर्थात् इस पर्वत राज का पहरा इतना प्रबल है । १५ फूलों के ढेर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कमल-बीज-मधुद्रव से भरी
मधुर शीत सुगन्धित सुन्दरी ।
नित यहाँ हरती सब की सुधा-
प्रसर-सी सरसी सतृषा क्षुधा ।।६६।।
'प्रथम शुद्धि करें फिर छूइये-
सुजन!' यों नटती जन को प्रिये! ।
यह सती हिलती न तरङ्ग से
कमलिनी मलिनीकृत[१] भृङ्ग से ।।६७।।
अतिथि-मान यहाँ वन ही नहीं,
पर वनाश्रित भी करता सही ।
फिर वनस्पति का कहना वृथा,
प्रमुख तो मुख [२]तोषद सर्वथा ।।६८।।
मधुर सुन्दर कुन्द-[३]मरन्द-से
विमल मिष्ट मनोहर कन्द-से ।
स्वजननी-सम [४]कानन-सिन्धु के
न [५]पय हैं, [६]पय हैं सुर-धेनु के ।।६९।।
अति-दयालु-तपस्वि-प्रभाव से
सदुपदेश-[७]प्रभावित भाव से ।
शुचि-समीर-फलाम्बु मिले यहाँ,
शवर-[८]धीवर-धी शुचि है अहा! ।।७०।।
जनकजे! मन पा नव राग का-
रस, विचार करे सब त्याग का ।
बस, उसी विधि पा सुख-भाग का-
जनक जेमन-पान [९]वराऽग का ।।७१।।

★ ★ ★

१ भौंरे से और कामुक से मलिनीकृत=काली की हुई और दूषित । यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है। २ तोषद=आनन्द-दायक मुख ही है । ३ कुन्द (पुष्प) के रस के समान। ४ वन-नदी के। ५ जल। ६ दूध । ७ अच्छे उपदेशों से सुधरे विचार से । ८ भीलों और मच्छीमारों की बुद्धि। ९ वराऽग का=श्रेष्ठ पर्वत का जेमन-पान (पाकर मन सब त्याग का विचार करता है)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महा [1]रजत का स्थान मणि- [2]महारजत की खान ।
तजकर सजकर सहचरी पति-सेवा-सुख मान ।।
पति-सेवा सुख मान मान-मर्यादा धरती,
तुम-सम प्रिय-परिवार मोह को [3]युगपद हरती ।
प्रिय-सँग जाती मृगी गहन वन असह्य-विरहा,
विषम काल में सती निभाती प्रेम विषम हा! ।।७२।।
सुर-राज को भी देवि! ऐसे पुण्यतर अचलेश का-
परिचय सु-दुर्लभ जानिए जैसे [4]महा कमलेश का ।
अवतार [5]अनुसृत मत्स्य, कच्छप, कोल, वामन-मुख कई-
धर रूप देता अन्त में पहिचान अपनी जो नई ।।७३।।
निकट, निकटतर और निकटतम दृष्टि दिये कमलेश-
[6]अणु अणुतर अणुतम भासित है व्यापे अन्तरदेश ।
दूर दूरतर दृष्टि दूरतम दिये वही सुप्रतीत-
महा, महत्तर और महत्तम; गिरि तो तद्-विपरीत ।।७४।।
[7]जो सिंहासन-राजमान रहता उच्चामरोल्लास से-
होता शोभित, मोर छत्र-छवि से एवं गुरु-व्यास से ।
मन्त्री कञ्चुकि-वृंद-दास सब हैं, शुद्धान्त का ठाट है,
पादों में रहते नरेन्द्र, यह तो भूभर्तृ-सम्राट है ।।७५।।

---

१ चाँदी का । २ सोने का । ३ एक साथ । ४ महाविष्णु । ५ स्वर्ग से ज्यों-ज्यों उतरे त्यों-त्यों दूर-समीपता के क्रम से । मत्स्य-कोल (सूकर) आदि रूप (इस पर्वत के दीख पड़ते हैं)। विष्णु-पक्ष में मत्स्यादि अवतारों के अनुसार । ६ भगवान का अन्तः स्थित स्वरूप ज्यों-ज्यों निकट दृष्टि (ज्ञान) से देखा जायेगा त्यों त्यों सक्ष्म-सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम दिखाई देगा और वही (विष्णु) अन्तर देश=बर्हिदेश, व्यापे त्यों २ दूर-दूर दृष्टि से देखे जाते हैं त्यों -त्यों २ बड़े दीख पड़ेंगे, पर यह पर्वत तो इससे विपरीत है अर्थात् ज्यों २ निकट दृष्टि (नजर) से देखा जायेगा बड़े से बड़ा दिखाई देगा और दूर दृष्टि से क्रम २ से छोटा दिखाई देगा । ७ सिहों के आसन (बैठक) से और सिंहासन पर विराजमान । उच्च=ऊँचे दर्जे के अमरोल्लास=देवों के खेल से और उत्=उत्कृष्ट चामरोल्लास=चँवरों के डुलाव से। गुरुव्यास (लम्बे-चौड़े विस्तार) से और गुरु और व्यासजी से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निज प्रदेश को नित सकल-[१]कण्ठीरव-सुखवास ।
[२]मधुसम पुष्पित पल्लवित रखता यह सविलास ।।७६।।

धातु-[३]लिङ्ग यह नित नये प्रकृति-[४]प्रत्यय-योग ।
बतलाता व्याकरण-सम हरता [५]जड़ता रोग ।।७७।।

सकल-प्रकार [६]पदार्थ स्थान स्थान पर प्रकट कर ।
यही [७]तर्क को सार्थ कर सकता, थकता नहीं ।।७८।।

मापे जाते [८]गजों से प्रतिदिवस यहाँ [९]थान, हेमादि सारा-
धातु-प्राग्भार, रक्तादिक नित मिलती श्री अशेष-प्रकारा ।
स्थानों में भोज्य-वस्तु प्रकर, फल यथा-भाव है प्राप्य सारे,
मानो साकेत ही के विपणिपथ सभी दैव ने ला पसारे ।।७९।।

★ ★ ★

जो है दिनेश-मुख, सम्मुख ये तपस्वी,
हैं ब्रह्मवर्चस-निधान महा-वचस्वी ।
जो भाल में यह त्रिपुण्ड् विभूति का है
त्रि-ब्रह्म-काल-गति-दर्शक दूतिका है ।।८०।।

तीर्थर्षि-वाक्य-अनुसार अनित्य-वासी
वाल्मीकि ही जँच रहे मुझको उदासी ।
योगीन्द्र-योग-विधि में सति! हो न बाधा,
होगा अतः उचित वन्दन दूर-साधा ।।८१।।

---

१ सब कण्ठीरवों (सिहों) का और स-कलकण्ठी-रव कोयल की कुहक वाला, तथा सुख का स्थान । २ चैत्र-मास के समान । ३ गेरूँ आदि धातुओं के चिन्ह और क्रिया का मूलस्वरूप [धातु] तथा पुल्लिंगादि लिंग । ४ प्रकृति-पर्य-वेक्षणा [प्रकृति के नये २ दिखाव] के अवसर और शब्दधातुओं से लगाये जाने वाले प्रत्ययों का मिलान । ५ अज्ञानता का रोग/ और मन्दता। ६ वस्तुएँ और द्रव्य-गुणादि । ७ न्याय-दर्शन को । ८ हाथियों से और दो हाथ के परिमाणों से । ९ स्थान और कपड़े के थान ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुद्ध-ध्यान-प्रभाव आत्म-बल को क्लेशों बिना साधता,
नित्याभ्यास-सुपुष्ट आत्म-बल ही [१]षड्वर्ग को बाधता ।
षड्-वर्ग-प्रतिबाध से उदय हो सत्तत्व के ज्ञान का,
ज्ञानी को वरती सुमुक्ति-युवती, [२]ऐश्वर्य है ध्यान का ।।८२।।

ध्यानी के दृढ़ ध्यान की परख को सज्ञान ही जानता,
श्रद्धा की वह दृष्टि से निरखता पूरा उसे मानता ।
ध्यानी के दृढ़ ध्यान का उलटना वा जंतु का मारना,
दोनों एक-समान मानिनि! वही है जन्म का हारना ।।८३।।

योगी का-सा सुकवि-जन का ध्यान एकाग्र होता,
योगी जैसे पर वह तभी पुण्य-सद्-बीज बोता ।
जो भव्या हो [३]भणिति उसकी [४]ईश-हेतु-प्रयुक्ता,
जैसे स्त्री हो प्रवर-फलदा सु-प्रजा- हेतु [५]भुक्ता ।।८४।।

★ ★ ★

आवासार्थ कुटीर है, पहिरने चाहा· हुआ चीर है,
खाने को फल, [६]छीर है तुरत का, पीने नदी-नीर है ।
सेने को सु-समीर है, टहलने शोभा- भरा तीर है,
तो भी जो नर धीर है न वन में, सो एक [७]आभीर है ।।८५।।

जो हो आश्रय चित्रकूट शिखरी, तो स्वर्ग निःसार है,
जो माला तुलसीय कण्ठ-गत हो, तो व्यर्थ-सा हार है ।
जो आवास कुटीर है अचल का, तो व्यर्थ प्रासाद है,
ओं-नामामृत हो यदि स्वमुख में, पीयूष निःस्वाद है ।।८६।।

जो हो शान्ति सदा-प्रिया सहचरी, तो व्यर्थ नारी-कथा,
जो हों ये मृग-वृन्द बन्धु-जन तो सद्-बन्धु भी हैं वृथा ।
जीता जाय मनःस्थ शत्रु-कुल जो, तो बाहरी क्या करे?,
जो हो ज्ञान-समृद्धि वृद्धि-युत, तो क्या चौर लक्ष्मी हरे? ।।८७।।

★ ★ ★

---

१ काम क्रोधादि भीतरी शत्रु । २ बोलबाला । ३ रचना ४ ईश्वर के निमित्त काम में लाई गई । ५ अच्छी संतान के लिए भोगी गई । ६ दूध । ७ महाशूद्र (नीच) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखो सम्मुख ग्राम है, निकट ही सद्-गन्ध आराम है,
धान्यों का यह धाम है कि जिससे जीता पुर-ग्राम है ।
दुर्गन्धीय-विराम है, फिर यहाँ वैसा नहीं धाम है,
है प्रेमाश्रम, नाम है न छल का, क्या शान्ति-विश्राम है ।।८८।।

सच्चा दूध-दही यहीं, घृत यहीं, संशुद्ध पानी यहीं,
वायु स्वच्छ यहीं, सुभोजन यहीं, आतिथ्य-दानी यहीं !
माया-जाल नहीं, कहीं मल नहीं, चोरी व जारी नहीं,
भीड़ा-भीड़ नहीं, ठसाठस नहीं, है स्वर्ग-लीला यहीं ।।८९।।

[१]कुतूहलों से बहुधा भरे हुए,
किंचित्प्रकारच्छल से नहीं छुए ।
जी को रिझाते प्रिय दुग्ध-पान से,
सुहा रहे ग्राम शिशु-प्रधान-से ।।९०।।

क्या है ग्राम यहाँ कहीं कचहरी भी दीख पाती नहीं,
यों वाणी कुटिला किसी नगर के वाक्कील ने जो कही ।
नाई बोल उठा तभी, [२]'कचहरी' मेरी बहू है यहाँ,
बोला ग्राम-अधीश, धन्य! तुम ही हो [३]ग्रामणी, मैं [४]न हा! ।।९१।।

होता विकल-[५]ग-युत न जो, तो [६]सुरभि-क्षण-धाम ।
साधु-शरासन-बाण यह, अहो! [७]ग्राम भी राम ।।९२।।

★ ★ ★

वसन्त जैसे ऋतु-मण्डली का माधुर्य ज्यों सर्व-रसावली का ।
प्रजेशिता ने उस भाँति आँका, गुलाब राजा कुसुम-प्रजा का ।।९३।।
सुपत्र [८]के लाभ-निमित्त मेला
किसी सु-वेला पर था [९]सकेला ।
केला अकेला जय-[१०]रङ्ग खेला,
न नारिकेलादिक भी, न [११]एला ।।९४।।

---

१ कुतू=चर्म पात्रों (कुप्पों और हलों से) । प्रधान शिशु/की ओर कौतुकों से । २ कचहर=केस काटनेवाले की स्त्री । ३ गाँव का स्वामी और नाई । ४ उत्तर न उपजने से । ५ अधूरे ज्ञान से युक्त और स्वर-हीन गकार से युक्त । ६ गायों का उत्तसव घर और राम पद में सुर-भिक्षण-धाम=देवों का याचना-गृह । ७ राम पक्ष में अच्छे धनुषबाण वाले, ग्राम-पक्ष में अच्छे शर-कण्डों के आसनों और मूजों की रस्सियों वाला। ८ पत्र किसका, अच्छा, इसकी जाँच के लिए । ९ इकट्ठा किया था । १० विजय के अखाड़े में । ११ इलायची।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]शचीश ने नन्दन में वरोरु से कहा कि जो सत्-[२]फल, दो मुझे उसे ।
न [३]दीप्र काशीफल दीखता रहा, सुनारिकेली-फल ही जँचा महा ।।९५।।

"मैं नाथ! जो नाथ-सनाथ होती,-
गोष्ठी वहाँ जो यह साथ होती ।
तो आपकी मैं [४]सहकार देती,
यों बोल सीता तरु-आड़ लेती ।।९६।।

सी०-[५]तारुण्य पा ये फल भी रँगीले,
रा०-होते प्रिये! पा मद लाल-पीले ।
सी०-तो क्यों रहे जामुन शीत-नीले,
रा०-क्यों हों न सीताफल लाल-पीले? ।।९७।।

कान्ते! अस्ताद्रि के ये मुकुट बन रहे [६]अन्धकाराभिघाती,
लम्बे-लम्बे हिलाके [७]लहर-कर हमें है [८]स्रवन्ती बुलाती ।
आओ देवी! नहालें प्रथम, निबटलें [९]सांध्य-संध्या-क्रिया से,
देखो, वे श्री सुमित्रा-सुत प्रथम खड़े दर्श के पूर्ण प्यासे ।।९८।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता षोडश प्रतान समाप्त ।

---

१ इन्द्रने=अपनी स्त्री (इन्द्राणी) से । २ अच्छा फल (हो)। ३ बड़े होने के कारण दीप्र=चमकनेवाला काशीफल=कद्दू दीखता न रह सका अर्थात् दीखता ही रहा, (परन्तु) बड़ा तो अच्छा नारियल ही जँचा । ध्वनित अर्थ और भी है—नदी-प्रकाशी=नदी पर प्रकट होनेवाला फल [खरबूजे-ककड़ियाँ आदि], जाति में एक वचन है । दीखता रहा; पर हे सुनारि! सीते! केली फल (सैर-सपाटे का लाभ देना ही) अधिक जँचा । यह सीता के साथ राम का नर्म-वचन है । ४ परम सुगन्धित आम । यह भी ध्वनित है कि-सहकार=कार्य-सहायता और स-हकार केली-फल अर्थात् हकेली फल [हाँक देने-टरकादेने का परिणाम] । ५ सीताराम पर यौवन-मद काप्रभाव नहीं पड़ा, यह बात इस पद्य से झलकाई गई है । लाल-पीले का अर्थ क्रोधदि-विकार-युक्त भी होता है । ६ अन्धकार के वैरी सूर्य । ७ तरङ्ग रूप हाथ । ८ नदी । ९ साँझ के सन्ध्या-कर्म से ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

सत्रहवाँ प्रतान

प्रवेशिका

अयोध्या में पुत्र राम के वनगमन के कारण राजा दशरथ विषण्ण अवस्था में शोक-मग्न हैं। उन्हें पुत्र-वियोग की असह्य वेदना है। सामने महारानी कौशल्या बैठी हुई हैं, विलाप करते हुए राजा दैव को उलाहना देते हैं। वे किंकर्त्तव्य विमूढ़ हैं। उनकी समझ में नहीं आ रहा कि यह सब कुछ कैसे हो गया। वे राम के गुणों का गान करते हुए, आर्त स्वर में चिल्ला उठते हैं– हे राम! अब तुम कब मिलोगे? पश्चात्ताप की मुद्रा में श्रवण कुमार के संदर्भ का स्मरण करते हुए और राम, राम कहते हुए राजा दशरथ का स्वर्गवास हो जाता है। सर्वत्र हाहाकार मच जाता है। तुरन्त भरतजी को ननिहाल से बुलवाया जाता है। संतप्तहृदय भरतजी से गुरु वशिष्ठ राजा दशरथ की अन्त्येष्टि क्रियाएँ करवाते हैं। भरतजी द्वारा माता कैकेयी के व्यवहार की आलोचना करने पर गुरु वशिष्ठ नियति की प्रबलता बताते हुए दार्शनिक ज्ञान का उपदेश करते हैं। भरतजी गुरुजी के समक्ष श्रीराम के दर्शनों के लिए अयोध्या से प्रयाण करने की प्रार्थना करते हैं। गुरु द्वारा अनुमोदित होने पर श्रीराम से मिलने की तैयारियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। प्रतान के अन्त में कवि ने श्रीराम के स्तवन में भक्तिपूर्ण स्तोत्र लिखा है।

विशेष : शब्द-निहितार्थ – भरत जी द्वारा माता **कैकेयी** के शब्द का निहितार्थ स्पष्ट करना कवि की अद्भुत प्रतिभा का द्योतक है:-

'एक-प्रकार के यह बना देगी विभेद कई-कई ।
यों जान इनकी कैकयी संज्ञा नियति से की गई ।।'

आर्तानुपालन स्तोत्र : समवृत्त-हिन्दी-भावानुवाद सहित संस्कृत में रचित आर्तानुपालन स्तोत्र भक्ति भावना से ओत-प्रोत है एवं सर्व मङ्गलकारी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्रहवाँ प्रतान

यद्वा- [1]तद्वा कर रहा, अखर रहा कुछ भी न ।
यदि दयालु न करें दया, उदयाशा हो लीन ।।१७।।

यदि पाठको! अविचल-विमल जलकुण्ड-से प्रभु-चित्त में-
ज्यों मीन-चाल, कभी-कभी भ्रम-भान ज्यों सु-निमित्त में ।
निज तात-ताप-दशा-स्मरण हो आ रहा, तो हम न क्यों-
श्रीराम-विरह-व्यथित की सुध लें, करें [2]प्रतिगम न क्यों? ।।१।।

निज-प्राण सुत के विरह से साकेत में मृत-देह-से,
अथवा अहार्दिक स्नेह-से वा शून्य गर्भित गेह-से ।
गत-कान्ति राजा [3]नाम ही के [4]रूप्यमय पर्यङ्क में-
लेटे हुए थे ज्यों शशक संपूर्ण मञ्जु मयंक में ।।२।।

बैठी हुई थी सामने महिषी महीश-[5]ललाम के,
जैसे कि तुलसी राजतासन-शालि-[6]शालग्राम के ।
[7]उनका अतीव पृथक् पृथक प्रस्तुत विलाप-कलाप था,
न कि प्रेममय पारस्परिक उस काल शुचि संलाप था ।।३।।

★ ★ ★

"अरे दैव! तू कहाँ ले गया मुझ अन्धे की लकड़ी,
संमुखता में ली जाती भी मैंने हाय! न पकड़ी ।
हाय! हाय! रे! किसने छीनी शिर-नंगे . की पगड़ी,
किस विधि ढूँढ संकूँ रे ठगिया! मेरी टँगड़ी लँगड़ी ।।४।।

हे हत्यारे ! तेरे कैसे हथकंडे व हथौटी,
धन-कुबेर छिन भर में मरते रटते रोटी-रोटी ।
छाये हुए उजाले का लो चट कर दिया अँधेरा,
मानों विद्युत-बटन चढाया, भीषण हुआ बसेरा ।।५।।

---

१ जैसा-वैसा, भला-बुरा अर्थात् अनियमित । २ लौटना । ३ नाममात्र के राजा न कि 'राजते इति राजा अर्थात जो शोभा दे, वह राजा' इस व्युत्पत्ति से सार्थक । ४ चाँदी के । ५ राजश्रेष्ठ के । ६ चाँदी के सिंहासन में विराजमान शालग्राम के (सामने) । ७ उक्र क्रम से दशरथ और कौसल्या का ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक साथ भीतर-का-भीतर ऐसा मुझे उबाला,
जो मैं हाय! किसी से कुछ भी रहा न कहनेवाला ।
विषमज्वर के समान तू ने सारा सत्त्व निकाला,
मेरे भावी भव्य-भवन के लगा दिया चट ताला ।।६।।
तू ने दैव! मुझे क्यों मारा बेढब काढ़ कलेजा,
कुचला जाता कंकर होकर हीरा हाय! अतेजा ।
भूरि भला भगवान करेगा, अब भी मुझको दे जा,
यह तुझको स्वीकार नहीं तो मुझ को भी झट लेजा ।।७।।

★ ★ ★

"मम मञ्जु नैन-तारे ! सब के सदैव प्यारे
गुण-रत्न के पिटारे! हे राम! कब मिलोगे? ।।८।।
यह एक-साथ सारी, दिखला विपत्ति भारी ।
विधि ने कुचोट मारी, हे राम! कब०।।
जन-नैन के सु-अञ्जन! सीतामनोऽनुरञ्जन! ।
हे दुष्ट-गर्व-गञ्जन! हे राम! कब०।।
शिव-चाप के विदारी! सरयू-वनी-बिहारी ।
हे मङ्गल-प्रचारी! हे राम! कब० ।।
आदर्श धर्म-धारी ! गुरुशासनानुसारी ! ।
निर्दोष निर्विकारी! हे राम ! कब० ।।
हा! छा गया अँधेरा, दुख ने अतीव घेरा ।
मिलता न दीप हेरा, हे राम! कब० ।।
बल-हीन के निराले बल चाप-बाणवाले ।
सब लोक के उजाले हे राम! कब० ।।
कैसा प्रभाव जागा, परिवार-मोह भागा ।
सब को तुरन्त त्यागा, हे राम! कब० ।।
सुदयालु रूपराशे ! हैं नैन दर्श-प्यासे ।
इस संकटातुरा से, हे राम! कब० ।।

★ ★ ★

गुरू, मन्त्री, भिषगादि ने किये अनेक उपाय ।
किन्तु राम-विरहार्ति तो राम-मिलन से जाय ।।९।।
कभी चेत कभी मूर्च्छा यों दशा थी नरेश की ।
प्रकाश-[1]मेघावृत्ति से ज्यों कदापि दिनेश की ।।१०।।

१ बादल का घेरा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा कोशलभर्त्ता ने कौशल्या से प्रिये! अभी ।
मुझे छोड़ा चाहता है यह मेरा शरीर भी ।।११।।
स्त्री-पुत्र-बन्धु-मित्रों की बात तो अति दूर है ।
तीर-वानीर-तरु को ले जाता नीर-पूर है ।।१२।।
तेजोबलादि क्या देवी! स्मृति भी नष्ट हो रही ।
करो चारा, यदि रहे राम के ओर-छोर ही ।।१३।।
हाय! दुर्भाग्य है मेरा न अभी राम पास है ।
धन्य सौमित्रि है पूरा, जिसका सहवास है ।।१४।।
न जाने, कौनसा कान्ते! उघड़ा घोर पाप है ।
स्मृति में आ गया हाँ, हाँ, मुझे तो एक शाप है ।।१५।।
उसी का है फल, अभी राम से जो वियुक्त हूँ ।
प्रायश्चित्तानुतापों से मन से न [१]विमुक्त हूँ ।।१६।।
कहते-कहते ऐसे अन्ध-श्रवण-तात की ।
आदि से अन्त-पर्यन्त कैसे भी सब बात की ।।१७।।
तथा श्रीराम-संबन्धि-कथा को कहते हुए ।
तथा श्रीराम-चरिताम्बुधि में बहते हुए ।।१८।।
"राम राम हरे राम राम राम हरे हरे" ।
कहते-सुनते राजा सिधारे स्वर्ग [२]आदरे ।।१९।।युग्म।।

★ ★ ★

तैल-नाव में शव रहा रक्षित सु-समीचीन ।
जैसे माखन तक्र में, वा ज्यों जल में मीन ।।२०।।

★ ★ ★

मची हलबली कुछ नृप-घर में, धीरे-धीरे सकल नगर में ।
वह प्रबन्ध करने में आया, हा-हाकार नहीं मच पाया ।।२१।।
भरत तुरन्त अति गये बुलाये, पथ में मिले ज्यों कि, वे आये ।
परसे में लक्षण-गति-जैसी-मिली, देखती रचना वैसी ।।२२।।
तात-मरण सुन मन कुम्हिलाया, राम-गमन सुन अति अकुलाया ।
प्रथम दिवसकर के अँथने से, फिर हिमऋतु-हिम के मथने से ।।२३।।

---

१ अर्थात् हृदय से राम से विमुक्त नहीं हूँ । २ आदर पाये हुए ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो गति होती सरोज-वन की, वह गति हुई भरत के मन की ।
निज को जान राम से सूना, हाहा-कार मचाया दूना ॥२४॥
गुरु ने निज कर्तव्य सुझाया, क्रन्दन-दहन तुरन्त बुझाया ।
करवाई [१]निर्हार-तयारी, अहह! हारकर की तब सारी ॥२५॥
शव भी आज महारथी, दशरथ का स-प्रभाव ।
दबा [२]रथी को ही चला, है तनु-सहग स्वभाव ॥२६॥
अन्तःपुर ही का नहीं, पुर का भी आक्रन्द ।
प्रतिशब्दों से द्विगुणतर उठा अतीव अमन्द ॥२७॥

स्त्री, सखा, [३]अपत्य हैं,
[४]भाव ये असत्य हैं ।
एक राम सत्य है
राम-नाम सत्य है ॥२८॥
गेह, बन्धु, भृत्य है,
मानना असत्य है ।
क्यों भला, अनित्य है,
राम नाम सत्य है ॥२९॥
जो [५]चिदग्नि के रखे,
*रे! जगे [६]शिखा सखे? ।
तो [७]स्फुरा अहत्य है
'राम-नाम सत्य है' ॥३०॥
कीर्ति ही [८]इहत्य है,
अत्र [९]ऐकमत्य है ।
विश्व ही असत्य है,
राम-नाम सत्य है' ॥३१॥

---

१ निर्हार=शव को ले जाने की । निर्हार तैयारी कराई गई, पर हार कर की, यह विचित्रता है । २ जिस पर स्थापन कर शव ढोया जाता है वह और रथयात्री । ३ संतान । ४ विचार। ५ ज्ञान रूप अग्नि के । ६ ज्वाला । ७ 'राम नाम सत्य है' यह स्फुरण ही अहत्य=अखण्ड शिखा=ज्वाला है। ८ यहाँ की । ९ इस बात पर सब का एक विचार है।
*छन्द के विषय में इसका अर्थ है-रगण, जगण और एक गुरु हो तो 'शिखा' छन्द होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यों कहते, करते मनन पहुँचे सभी श्मशान ।
किया अग्नि-संस्कार फिर [१]अपस्नान औ [२]स्नान ।।३२।।

★ ★ ★

ज्यों उर्दू लिपि-लेख कहीं बाल बिखरे हुए ।
अस्थि [३]सशोणित-रेख-थल-चौपड़ पर कौड़ियाँ ।।३३।।
दीर्घोच्छ्वास-निसाँस-पूर्वकं महा 'हाहा' कराते हुए,
ईश-ध्यान-विराग के प्रति जरा संयोग लाते हुए ।
रूखे-से विधवा-सती-हृदय-से प्राय: [४]चिताओं भरे-
प्रेतात्मा व मसान को शिर झुका लौटे उदासी धरे ।।३४।।

★ ★ ★

अस्थि-संचयन पिण्डदान भी,
पुत्र ने दश-[५]तनू-विधान भी ।
श्री-रमेश-[६]बलि-गो-[७]विसर्ग भी
औ सपिण्ड-[८]विधि ये किये सभी ।।३५।।
विप्र-बन्धु-पुर-भोजनादि की,
दान-पुण्य-विधि-योजनादि की ।
पा समाप्ति तिलकानुरोधना
की उन्हें सुगुरु ने स-बोधना ।।३६।।
हाँ, गुरो! उचित है अब [९]टीका,
योग है भरत! शुद्ध घटी का ।
भाव है शुभ गुरूक्ति-नटी का,
की यहाँ सकल ने यह [१०]टीका ।।३७।।
कर्ण-मार्ग कर के कपाट से-
रोक, मूँद अँखियाँ उचाट से ।
राम-नाम रटते सवन्दना-
की व्रती भरत ने निवेदना ।।३८।।

★ ★ ★

---

१ मुर्दा जलने के बाद का स्नान । २ शुद्ध स्नान (सपिण्डेतर जनों के लिए)। ३ लोहू की रेखाओं से भरे स्थल रूप । ४ जैसे दिश् का वैकल्पिक रूप दिशा होता है, वैसे 'चित' का चिता भी बनता है । विधवा-हृदय-पक्ष में प्रायश्चित्तों भरे, प्रेतात्मा चित् [ज्ञानों] भरा । श्मशान विशेषकर चिताओं भरा होता ही है । ५ दशपिण्ड-शरीर की विधि । ६ नारायण-बलि। ७ वृषोत्सर्ग । ८ सापिण्डय-विधान । ९ तिलक । १० व्याख्या ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हा! कौन से मुख से कहूँ, मा कैकयी ने जो किया,
अविवेक से एक-[१]प्रकर को तीन-[२]तेरह कर दिया ।
कुछ कर न पाये पञ्च भी दशरथ-[३]वचन-बल था महा,
जो पूर्णिमा का चन्द्र करता, तीज-[४]तेरस का न हा! ।।३९।।

एक-प्रकार के यह बना देगी विभेद कई-कई,
यों जान इनकी कैकयी संज्ञा नियति से की गई ।
उस युक्ति से संस्कृत किया [५]इसको कि, पूर्व न ज्ञात हो,
घटना घटी जाकर पुनः संसार में विख्यात हो ।।४०।।

निज प्राणमय सुत राम के आकस्मिकातिवियोग से,
हा! तात को तजना पड़ा निज देह, ज्यों हृद्-रोग से ।
श्री राम की विरह-व्यथा को सह रहा, मैं जी रहा,
जो विष रचा मा ने उसे, हा! क्या करूँ, यह पी रहा ।।४१।।

गुरु का, बड़ी मा का कि जो आश्वासनादि-विधान है,
विष-पान पर घृत-पान वह स्वादिष्ट फिर दधिपान है ।
यदि आप इनका यत्न से सेवन करा पाते नहीं,
क्या और्ध्वदैहिक-[६]सिन्धु को मैं पार कर सकता कहीं? ।।४२।।

ऐसी दशा में आप गुरुवर! बाध्य मुझ को कर रहे-
टीकार्थ, टीका कर वहीं फिर स्पष्टता सब भर रहे ।
शुभ [७]भाल की यदि है नहीं, टीका कभी न सराहिए,
सब देख-भाल [८]नियोज्य का सु-नियोग करना चाहिए ।।४३।।

---

१ संघ को । २ तितर-बितर । ३ अर्थात् दशरथ के वचन-बल के सामने पञ्चों की क्या चल सकती थी । ४ तीज और तेरस का चाँद (भरत) कलाओं की कमी के कारण पूनों के चाँद (राम) की बराबरी नहीं कर सकता। पूर्ण कला वाला ही तीन-तेरह के दोष को मिटा सकता है, तीज तेरस का नहीं। ५ संज्ञा को । ६ अन्त्येष्टिकर्म-रूप सागर को । ७ ललाट की शुभता भाग्यशालिता की द्योतक है और भाग्यशालिता राम की संमुखता पर है; यहाँ भरत का यही आशय है । ८ सोचविचार कर, दूसरा ध्वनितार्थ है भाल=ललाट देखकर नियोज्य=कर्मचारी का सु-नियोग= कार्य-नियुक्ति ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हा! कैकयी की क्रूरतर करतूत से [1]अवसन्न हूँ,
पितृ-शोक से भी खिन्न हूँ फिर राम-विरहा-[2]ऽऽपन्न हूँ ।
अतएव दारुण दुःख में मुझ से हुआ अविवेक है,
मुझको [3]क्षमार्पण कीजिए, सच्चा यही अभिषेक है ।।४४।।

★ ★ ★

बोले वशिष्ठ प्रिय वत्स! सुनो तुम्हारा-
मैं जानता प्रथम से शुभ शील सारा ।
आपत्ति ने पर तुम्हें यह साथ घेरा,
होगा प्रबोध अतएव सुयुक्त मेरा ।।४५।।

★ ★ ★

ब्रह्माण्ड में निरखिए एक परब्रह्म से पृथक् क्या है? ।
जो कुछ दीख रहा है यह खेल, निदान मिथ्या है ।।४६।।
परमब्रह्म परात्मा मूल प्रकृति को प्रकाश दो बनते ।
प्रकृति-गुणों से त्रय हो [4]मर्कट ज्यों जाल को तनते ।।४७।।
आता जो रचने में, पाता वह खण्डशः व सब लय को ।
इस ही नित्य नियम से पाते चिर वा अचिर सभी क्षय को ।।४८।।
जब कि अविद्या अथवा [5]अहंमति-स्फूर्ति-माया में ।
रत हो, जीव कहाता, ज्यों [6]ब्रह्मव्रत गृहस्थ जाया में ।।४९।।
अव्यक्त बीज से जड़, जड़ से अङ्कुर, इसी क्रम से ।
होती विकृत प्रकृति भी, ज्यों स्त्री अन्तः [7]पुरोद्गम से ।।५०।।
[8]व्यञ्जन-विपरीति हुए कि बीज का जीव बन जाता ।
परमात्मा-जीव-अन्तर-मर्म यही भेद सिखलाता ।।५१।।

---

१ हैरान । २ विपद्-ग्रस्त । ३ क्षमा-प्रदान और क्षमा=भूमि का समर्पण । अर्थात् इसी से आपका भूमि-राज्य सौंपना सिद्ध समझिए । ४ मकड़ी । ५ अहंकार की फुरनारूप माया में (रत=आसक्त हो) । ६ ज्यों ब्रह्मचारी स्त्री में आसक्त होते ही गृहस्थ कहाता है । ७ अन्तःपुर के बाहिर आने से अर्थात् बाहिरी वातावरण से । ८ व्यञ्जन=स्वर-रहित वर्ण और निर्मल इसका विपरीत मलिन देहोपाधि के कारण ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो होता लिप्त उसे कर्मज फल भोगने पड़ते ।
देह तभी [१]वह धरता, लेप तजे कर्म भी झड़ते ।।५२।।
जब वह विशुद्ध होता, तब वह उस ही स्वरूप में मिलता !
मलिन हुआ वस्त्राञ्चल जैसे धुलकर स्व-रूप में खिलता ।।५३।।
हस्तक्षेप न करते राजा के राज्य में प्रधान करता ज्यों ।
[२]प्रभु के प्रभाव के बल जो कुछ करता [३]प्रधान करता त्यों ।।५४।।
अचलगुहान्तर-बिल में राजपुरुष तो नहीं पहुँच पाते ।
पर प्रभु[४]-प्रकृति-प्रेरित कर्म वहाँ भी पहुँच जाते ।।५५।।
चाहे तुम यों कह दो, ईश-महानट स्व-दृष्टि-दाता है ।
नियमित प्रकृति-नटी से जग-नाटक को कराता है ।।५६।।
इस सब प्रपञ्च को जब जीवात्मक पात्र पार कर जाता ।
इच्छामय-प्रकृति से मुक्त हुआ ब्रह्म हो जाता ।।५७।।
सोऽहं ब्रह्मास्मीति ज्ञान [५]क्रियामय उसे जब कि होता ।
तब जाकर माया के प्रलेप को पूर्णतः खोता ।।५८।।
वा योगाभ्यास रचे नित्य समाधिस्थ पूर्ण होने से ।
यह जीव उसी पद को पाता सारा प्रपञ्च खोने से ।।५९।।
अथवा स्वभक्ति के बल विरक्त [६]तल्लीनता पाता !
चाहे किसी सुपथ से पथिक बना सिद्धिपुर जाता ।।६०।।
प्रकृतिगुण-वेषधर भी परमात्मा तो विशुद्ध परमात्मा ।
सुख-दुख-लिप्त न वह है, उसे न लख पाय मूढात्मा ।।६१।।
पाकर निमित्त धरता नर भी तो नाट्य-बीच वानरता ।
[७]मुग्धों को वानरता दीख पड़े, [८]विज्ञ को नरता ।।६२।।
माया का भरमाया शुद्धात्मा भी विकार को पाता ।
किस पर दूषण मँढ़ना, यह जाने तत्व का ज्ञाता ।।६३।।
अतएव सुप्रकृति भी कैकेयी बाह्य वात-आवृति से ।
अति-विकृत मन्थरा की बातों में आ च्युत हुई धृति से ।।६४।।
स्वाभाविक भव-नाता भाई माता पिता सुत व [९]नाती ।
हे भरत! तुम्हें कैसे भाई मा तपिता [१०]सुत बनाती ।।६५।।

---

१ जीव २ ईश्वर । ३ प्रकृति । ४ ईश्वर की प्रकृति के द्वारा प्रेरित हुआ । ५ आचरण में आनेवाला न कि कहने ही से । ६ अर्थात् परमात्मा में लीन हो जाता । ७ "नाटक में" रीझे हुओं को । ८ सचेत को । ९ पोता । १० राजा [बनाती मा सताई हुई कैसे अच्छी लगी?]।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]शिर अर्धचन्द्र बिन्दु ब्रह्मज्योतिः, स्फुट-प्रकृति-रेखा ।
त्रिगुणा निदान बनती, यह वाचक-वाच्यॐन क्या देखा? ॥६६॥
ऊँची नीची सीधी लहरों में झूलते ऐसे ।
भवसिन्धु-सुखों का तुम मूल्य कहो [२]गुरुविचार-नौ पै-से ॥६७॥
इस ही लिए कर गये अहो ! किनारा वही [३]तीनों ।
चुपके क्यों बैठे हो छानो [४]सब धूल वस्तु को बीनो ॥६८॥
होती उत्तम-मध्यमाधम यहाँ यात्रा सुखा वा कड़ी,
है लोकत्रितयी त्रिखण्ड टिकने शाला विशाला बड़ी ।
पूँजी हो जिसके समीप जितनी जैसी जहाँ के लिए,
यात्रा जीवनयात्रि-हेतु उतनी वैसी वहाँ के लिए ॥६९॥
विश्रामार्थ जहाँ-तहाँ समय भी संप्राप्त होता जँचा,
कोई भी न उधार सौंप सकता [५]वैधान ऐसा रचा ।
थाती जो कि रखा, अवश्य मिलता, भूले न [६]जो राम को,
यात्री को वह ही निदान पहुँचा देता तजे [७]धाम को ॥७०॥

★ ★ ★

यह समुचित मैने आज [८]आर्योपदेशा-
वलि विषम दशा को देख दी [९]निर्विशेषा ।
[१०]सपरिकर तुम्हारी शोक-बाधा हरेगी,
यदि मनन करो तो तत्त्वबोधी करेगी ॥७१॥

---

१ यह वाचक [शब्द] और वाच्य (लक्ष्य=अर्थ) दोनों है। जिसके शिरपर अर्धचन्द्रबिन्दु है, उसी में से प्रकट होनेवाली प्रकृति-रेखा अन्त में तीनों गुणोंवाली बन जाती है।

२ उच्च-विचाररूप नाव पर से (संसार-सागर-सुखों का मूल्य कहो) दूसरा ध्वनित अर्थ गुरु=खूब विचार कर कहो, इसका उत्तर इसी के आगे झलक रहा है कि नौ पैसे (त्रिगुणों के अन्योन्याश्रित होने से) ।

३ राम [ब्रह्म] लक्ष्मण (जीव), सीता [माया] के लिए कहा है । ४ अर्थात् असार में से सार को ढूँढो। 'चलकर रामादि से मिलो' यह ध्वनित है । ५ कानून । ६ यदि । ७ घर को अर्थात् परमात्मरूप तेज को । ८ आर्यों की उपदेश माला । ३०-२७ पूर्वोत्तरार्ध मात्राओं वाली आर्याओं की उपदेश-माला यह भी झलकता है। इसमें कहीं ३०-३० मात्राओं वाली गीति और २७-२७ मात्राओं वाली उपगीति भी है, २७-३० पूर्वोत्तरार्ध-मात्राओं वाली उद्गीति भी है। पर वे भी आर्यान्तर्गत हैं । ९ संक्षिप्त । १० सपरिवार ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नि:सूचना नर-समीप विपत्ति आती-
[१]आकस्मिकातिथि-समा, फिर साथ लाती ।
सत्पात्र हो अतिथि तो न कभी दुखाता,
आपत्ति-संघ नव-मानव को सुखाता ।।७२।।

हे धीर! किन्तु उसके सम ही इसे भी-
मानो सुदृष्टि कर स्वागत, सूक्ति से भी ।
माना न जाय यदि तो, वह तो सिधारे,
आपत्ति तो अकड़के बदला उतारे ।।७३।।

आपत्ति-भार सहता मति-शक्ति-शाली,
सद्भाग्य से सुमति-शक्ति मिले निराली ।
सद्भाग्य पुण्य-फल है, वह पुण्य-सोता,
गङ्गा-प्रवाह-सम [२]विष्णुपदाप्त होता ।।७४।।

माता की करतूत बताना तात-मरण का कारण-
वत्स! तुम्हारा उचित कहाँ तक, करिए सूक्ष्म विचारण ।
आयुः- क्षय के आजाने पर काल कभी क्या टलता?,
अस्त अन्त में होता ही है दिनकर ढलता-ढलता ।।७५।।

'सूर्य प्रतीची-[३]समुद्र-बीची-करास्फाल से डूबा'
यह तो है कवि-सूक्ति, वस्तुतः [४]'नियत काल से डूबा' ।
यही मानना होगा सब को, क्योंकि न यह है कल्पित,
व्यवहृत भी होती है जग में बात वास्तविक [५]जल्पित ।।७६।।

स्वाभाविक है जीर्ण वस्तु का सौम्य! अन्त में जाना,
हो तन नूतन, तरुण, पुरातन ध्रुव इसका क्षय पाना ।
तनुज छोड़कर तनु का जाना, शुभ संयोग महा है,
स्वर्गत नृप का कीर्ति-काय यह कैसा अमर रहा है ।।७७।।

---

१ अचानक आये पहुने के समान । २ भगवच्चरण से और आकाश से प्राप्त । ३ पश्चिम समुद्र के तरंगरूप हाथ की फटकार से । ४ 'नियत काल से डूबा' यह कल्पना-कथित नहीं। ५ असलीपन से कही गई ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी नियत दशा में चिन्तित होना कातरता है,
नहीं हारना, धैर्य धारना यही [1]धीरतरता है ।
किंकर्तव्य-[2]मूढ हो जाना, मूढ-कार्य है भैया!
कर्णधार के बिना चलेगी कैसे शासन-नैया? ।।७८।।

★ ★ ★

छूते हुए पद मृदु-स्वर [3]भारती से,
बोले रघुप्रवर-[4]भक्त महाव्रती से ।
जो आपकी विपद में सम-[5]वेदना है,
स्वीकारिए, यह मदीय निवेदना है ।।७९।।

आचार्य के सुवचनामृत-पान-द्वारा
[6]तृष्णातिदाह अब है मम शान्त सारा ।
है ताप किन्तु प्रभु के विरहाक्रमों से,
ज्यों ग्रीष्म के परम-भीष्म परिश्रमों से ।।८०।।

जो राम-पाद-सुरपादप की न छाया-
होगी सहायक अहो! [7]अचलाऽनपाया ।
होगी दशा मम गुरो! अति शोचनीया,
आज्ञा करें झट तदर्थ अतः स्वकीया ।।८१।।

वशिष्ठ बोले, रघुवीर-दर्श की-
रुची, अहा ! बात अतीव हर्ष की ।
उठायँगे लाभ अनेक एक से
[8]प्ररोह ज्यों तर्षित नीर-[9]सेक से ।।८२।।

बोले नृपात्मज, मनोरथ सिद्ध मेरे,
लाने उन्हें हम ससैन्य चलें सवेरे ।
आशा-समेत विकसी सब की [10]अवस्था
की साथ-साथ अगली-पिछली व्यवस्था ।।८३।।

---

१ अधिक धैर्यशीलता । २ हाय! अब क्या करना ? यों गाफिल हो बैठना । ३ वाणी से । ४ रामभक्त (भरत) । ५ सहानुभूति । ६ प्यास के कारण कण्ठ-शोष अर्थात् गहन शोक। ७ स्थिर और अक्षीण । ८ प्ररोह=अंकुर । ९ जल=सेचन से । १० दशा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभी स्वदेवाऽतिकृपा मनाते,
[१]रामानुजन्मा-गुण-गान गाते ।
उमंग के साथ कटी सुरात्री,
यात्रार्थ [२]संनद्ध हुए सुयात्री ।।८४।।

★ ★ ★

उपप्रतान ४

भरत पहुँचने को तभी आर्त्त-दशा के पार ।
नित्य-स्तुति करने लगे [३]स्वगुरु-वचन-अनुसार ॥
आर्तानामार्ति-हर्तारं भीतानां भीति-नाशनम् ।
द्विषतां कालदण्डन्तं रामचन्द्रं नमाम्यहम् ॥
नमः कोदण्ड-हस्ताय संधीकृत-शराय च ।
दण्डिताखिल-दैत्याय रामायापन्निवारिणे ॥

आर्तानुपालन-स्तोत्रम् ।

आर्तानुपालन-परो न परोऽस्ति रामात्,
तातो यथोपकुरुते, कुरुते किमन्यः? ।
नाथं त्रिलोक-जननं जन-नन्दकं त-
मार्द्र सुदृष्ट्युदयया दयया, श्रयेऽतः ।।१।।

समवृत्त हिन्दी-भावानुवाद ।
(है दुःखि-दुःख-हर राम बिना न कोई,
होता हितू अहह! बाप बिना न कोई ।
त्रैलोक्य-जन्मद दयामय की इसी से-
मैं ले रहा शरण दास-विकास जी से) ॥

तिग्मांशु-वंश-सविता सविता सुखानां
हर्ता तथा सुमनसां मनसां व्यथानाम् ।
ताराधिपानन-वरो नव-रोग-नाशी
रंरन्तु चित्त-भवने भव-नेत्र-तर्पी ।।२।।

---

१ भरत । २ तैयार । ३ त्रिकालदर्शी गुरु के वचनों के अनुसार कहने से आगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(जो सूर्य-वंश-रवि दायक हैं सुखों के,
जो धर्षिता सुजन के मन के दुखों के ।
वे पूर्णचन्द्र-मुख रोग-प्रसङ्ग-नाशी,
जी में रमें शिवविलोचन के विकासी) ॥

भीतोऽहमद्य भवतो, भवतोऽङ्घ्रि-युग्मं
तापच्छिदेऽचिरमये रमये च चेतः ।
नांशोऽपि संभवि-पदो विपदोऽस्ति यत्र,
भीरुत्वमेत्वनुकथं नु कथं तदीश! ॥३॥

(संसार से डर यही प्रभु! मैं तुम्हारा-
लेता पदाश्रय स्व-शान्ति-निमित्त प्यारा ।
आपत्ति-नाम न जहाँ कुछ दृष्टि आता,
तो बार-बार भय क्या फिर दीख पाता?) ॥

तिष्ठन् व्रजन् रघुप! जाग्रदथो शयानो
नाम स्मरामि भवतः किमपीह कुर्वन् ।
शक्तो न संमदयितुं तप-आदिभिस्त्वां
नंनन्मि केवलमहं कुरु किंकरं माम् ॥४॥

(सोता हुआ व जगता, टिकता व जाता,
मैं राम-नाम सुमिरुँ कुछ भी बनाता ।
मैं तुष्ट क्या कर सकूँ तप आदिकों से,
हे नाथ! दास करिए बस वन्दनों से) ॥

द्वित्रानरीनपि न जेतुमलं मनःस्थान्,
षड्वर्ग-निर्जय-कथा तु दवीयसी मे ।
तां त्वत्कृपैव रघुराज! करोतु सिद्धां
कामादितप्त-जनतां न मिलेद्धि सिद्धिः ॥५॥

(दो तीन ही प्रथम हृद्-रिपु जो अड़े हैं,
षड्वर्ग के दलन तो मुझ को कड़े हैं ।
हो सर्व-सिद्धि प्रभु-पाद-कृपा-सहारे,
कामादि-तप्त बस सिद्धि-निमित्त हारे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्म्याऽम्बया सदयया प्रतिमोदितस्य
दण्ड्यः सुतो भवति नैव जगत्पितुस्तत् ।
डल्ले कडङ्गरमिवोद्भृतमात्मनीम-
न्तं मेऽपराध-निचयं भगवन्! क्षमस्व ॥६॥

(जो श्री दयार्द्र जननी समझाय जाके,
तो दण्ड-योग्य सुत हो न जगत्पिता के ।
डाला-भरा बुस यथा, मुझ में न-माया-
हो क्षम्य नाथ! अपराध-समूह छाया ॥

राम! त्वदीय-कृपयैव कृपानिधे! स्वं
मत्तो महत्तममहं मनुजेषु मन्ये ।
चन्द्रस्य चारुतरचन्द्रिकया चकोरो
रंरन्ति पक्षिषु रिरंसुषु धन्यमानी ॥७॥

(हो मत्त हे प्रभु! कृपाबल से तुम्हारे,
मैं आपको समझता सु-महा [१]खरारे! ।
हाँ, चाँद की अति-मनोहर चाँदनी का-
भोगी चकोर करता निज-मान नीका) ॥

नम्रःपदाम्बुज-गतो जगतोऽधिपास्मि,
माम्पाहि पाहि शरणागतमार्तमार्तम् ।
यंद्येवमार्तमपि मोक्ष्यस आर्त-बन्धोऽ-
हं कं व्रजामि शरणं शरणं त्रिलोक्याः? ॥८॥

(मैं हूँ गिरा चरण-पङ्कज में तुम्हारे,
हा! रक्ष रक्ष अति-दुःखित को [१]खरारे! ।
जो दीनबन्धु हमको दुख में तजेंगे,
तो कौन से त्रिभुवनाधिप को भजेंगे) ॥

नम्योऽर्यमैव महसामिह, योऽक्षराणा-
म, प्राणकाश्च मरुतां, मरुतां च शक्रः ।
कोदण्ड-[२]काण्ड-परिमण्डित-बाहुदण्डो
दण्ड्यात् स चण्डमहितं दशतुण्डखण्डी ॥९॥

(जो तैजस-प्रसर में रवि, अक्षरों में-
नेता 'अ', [३]वायुवर प्राण, [४]वृषा सुरों में ।
श्रीराम! आप कर में धनु-बाण धारें,
उद्दण्ड दुष्ट रिपु-पामर को विदारें ॥

---

१ त्रिकालदर्शी वशिष्ठ की उक्ति में 'खरारे!' आदि कहना दूषित नहीं । २ बाण-। ३ पवनों में नेता । ४ इन्द्र ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डल्लं यथा सुम-चयेन सुमालिकस्य,
हस्तश्च सौरभ-भरेण सु-गान्धिकस्य ।
तात्कालिकेन वचनेन मुखं कवेश्चाऽ-
यत्नं विराजतु मनो मम रामभक्त्या ॥१०॥

(ज्यों गन्धि पुष्प-चय से वनपाल-डाली,
ज्यों गन्ध से कर सु-गान्धिक का न खाली ।
ज्यों काव्य कारि-मुख वाङ्मय से न खाली,
हो नित्य चित्त प्रभु-आश्रय से न खाली ॥)

संसार-नैश-तमसाऽन्धितदृष्टिरस्मि,
धीरत्वमस्ति न मनाग्, न च कोऽपि दीपः ।
कृत्वा कृपां हृदय-खे स्फुर रामचन्द्र!,
तत्तन्निशाचरकुलं नहि यावदेयात् ॥११॥

(संसार-रात्रितम ने दृग-शक्ति खोई,
मैं हूँ अधीर, फिर दीप मिला न कोई ।
हे रामचन्द्र हृदयाम्बर में विराजें,
ऐसा न हो, प्रथम दुष्ट निशाट गाजें ॥

शक्नोमि नो गुणयितुं गुणरत्नराशिं
राम ! त्वदीयमहमल्पमतिः कथंचित् ।
यत्रोत्तरङ्ग-जलराशि-जलायमाने
चञ्चुप्रवेशमपि नैति हि शास्त्रचञ्चुः ॥१२॥

(स्वामिन्! कदापि न बखान सकूँ तुम्हारे-
हे राम! मन्दमति मैं गुणरत्न सारे ।
दुष्पार सागर उन्हें किसने न माना?,
षट्शास्त्र विज्ञ-जन का न वहाँ ठिकाना ॥)

दण्डेन किं परिमिमीत नु नाविकोऽब्धिं?
डित्थः पदैः किमु वनान्तमतिव्रजेन्नु? ।
तावत् त्वदीयगुणगुम्फनमाकलय्य
खिन्नोऽस्म्यहं प्रतिभयाऽतिभयात् स्खलन्त्या ॥१३॥

(क्या दण्ड से जलधि को कनधार जाने?
क्या काष्ठ का गज पगों वन-भूमि छाने? ।
मैं नाथ! जान गुण-वर्णन को असीमा,
हूँ खिन्न जाँच निज-बुद्धि-विकास धीमा ॥)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मीपते ! रघुपते ! ननु दीनबन्धो!
दैन्यं गतं विपदि मा त्यज बालकं माम् ।
त्यागो विपद्-गत-सुतस्य कृतो हि पित्रा
यद् हास्यतां पितरमेव नयेद्, न पुत्रम् ॥१४॥

(हे श्रीपते! रघुपते! दुखिया-सहारे!
दुःखी हुए स्व-सुत को तजिए न प्यारे! ।
आपत्ति-मग्न सुत को तजते पिता की-
होती हँसी, न उस बालक सेविता की ॥)

राम ! प्रकाममहमेव महापराधी,
मायाऽपि किन्तु भवतो भव-तोयधि-द्वाः ।
यातोऽस्म्यहो! इति वदन्नपराधमेवाऽऽ-
पन्नं न चेद्दयसि, मे गतिरेव नास्ति ॥१५॥

(क्या राम! हूँ बस महीं सुमहापराधी?,
माया भला! न प्रभु की भवसिन्धु-साधी ।
यों बोलता फिर हुआ जगदीश! दोषी,
देंगे न जो निज पदाश्रय, कौन पोषी? ॥)

नित्योऽस्मियद्यपि, तथापि विभो! भवाब्धा-
वानन्दपूर्तिरहितोऽहित- मोह- योगात् ।
रिक्तो भ्रियै परमुदा भवतेति पर्या-
णेयं मदीय-हृदयं निज-पाद-पद्मम् ॥१६॥

(मैं नित्य हूँ, तदपि हा! भव-बीच पूरे-
आनन्द से रहित, मोहक के न चूरे ।
होऊँ प्रमोद-भृत पूर्ण कृपालु ही से,
जोड़ें अतः मम हृदब्ज पद-द्वयी से ॥)

प्रागार्तेन कृतान्नातमनुभूतफलं पुनः ।
नित्येनेति व्यक्तमिमं राम-प्रीत्यै स्तवं श्रयेत् ॥

(दुखिया नित्यानन्द ने रच, पढ़, कर अनुभूत
किया प्रकट; इस स्तोत्र को पढ़े, द्रवें रघुपूत ॥)

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता सप्तदश प्रतान समाप्त ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

अठारहवाँ प्रतान

प्रवेशिका

प्रातः काल ही भरतजी वनयात्रा के लिए वाहनों की व्यवस्था का निर्देश देते हैं। सभी परिजनों, परिकरों आदि के साथ भरतजी जब शृङ्गवेरपुर पहुँचते हैं तब उनकी भेंट गुहराज निषाद से होती है। गुहराज के साथ गङ्गा-यमुना के सङ्गम में स्नानादि के पश्चात् सभी मुनि भरद्वाज का आतिथ्य ग्रहण करते हैं। इसके पश्चात् चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा देखकर सभी मंत्रमुग्ध हैं। उधर भरतजी को दल-बल सहित देखकर लक्ष्मणजी आवेश में आ जाते हैं। श्रीराम उन्हें भरतजी के शील-स्वभाव का स्मरण दिलाकर शान्त कर देते हैं। चित्रकूट में भरतजी और श्रीराम का मिलन होता है। श्रीराम भरतजी को हृदय से लगा लेते हैं। राजा दशरथ के स्वर्गवास के समाचार से व्यथित श्रीराम को गुरु वशिष्ठ दार्शनिक ज्ञानोपदेश से सान्त्वना प्रदान करते हैं। जनकपुरी से राजा जनक भी चित्रकूट आ जाते हैं। भरतजी श्रीराम से अयोध्या लौटकर राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना करते हैं। किन्तु, श्रीराम कर्त्तव्य की सीख देकर भरतजी को अयोध्या का शासन सँभालने के लिए प्रेरित करते हैं। भरतजी द्वारा माता कैकेयी पर दोषारोपण का प्रतीकार करते हुए श्रीराम नियति को ही प्रमुख कारण बताते हैं। भरतजी के आग्रह पर श्रीराम अपनी पादुकाएँ उन्हें देते हैं जिन्हें लेकर भरतजी अयोध्या और जनकजी जनकपुर लौट जाते हैं। भरतजी नन्दिग्राम में पादुकाओं की प्रतिष्ठा करके अयोध्या का शासन सञ्चालित करते हैं।

विशेष : माता कैकेयी का श्रीराम के पास आकर पश्चात्ताप प्रकट करना और श्रीराम का उन्हें सम्मानपूर्वक समझाना अत्यंत भावपूर्ण है।

छन्दों का लाक्षणिक निदर्शन : प्रतान में रेखांकित अंश दृष्टव्य हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अठारहवाँ प्रतान

भद्र–भावना यदि रखो, रामभद्र का नाम।
स्मरण करो अशरंण–शरण शरण करो अभिराम ॥१८॥

प्रातः [१]नेता बोले, बूढ़े तो चलें [२]यान से ही,
मैं [३]पच्चारी, *विश्रामाशा आश्रमों, अन्त में ही।
तीनों मार्यें ये ही [४]चित्राभिख्य छन्दानुसारी–
स्त्रीयानों में बैठें, एवं साथ जावें सवारी ॥१॥
मङ्गल मना उमङ्ग से भरत–वचन–अनुसार।
[५]नट न कार्य पर सब चले जैसे [६]नाटककार ॥२॥
सुगुणाश्रित जन–हृदय के होते शुचि शृङ्गार।
भरत भक्त–प्रिय तब अहो! सोहे †मुक्ताहार ॥३॥
भरत– [७]वातकी ने 'कब प्रिय गुह भेटें' यों [८]दुहराया,
[९]शृङ्गवेर मिलते ही उनको सुविश्राम–सुख आया।
थके हुए उन भक्त भरत को गुह–नृप सुरथ–सरीखे–
उस स्फटिक मालास्थ [१०]अक्ष को नित्य घुमाते दीखे ॥४॥

---

१ नायक (भरत)। २ वाहन से। ३ पैदल। ४ चित्र विचित्र शोभा वाले और मंशा के अनुसार चलने वाले (स्त्री–वाहनों में) *यहाँ से तीसरे चरण तक 'चित्रा' नामक छन्द का लक्षण झलकाया गया है। अर्थात् आशा (दिशा ४), आश्रमों ४ और अन्त में विश्राम हो और तीन मगण और दो यगण हों तो 'चित्रा' नामक छन्द होता है।। ५ काम पर नहीं–नट कर। ६ नाटक रचने वाले भी मङ्गल (नान्दी) मना कर भरताचार्य के वचनानुसार नटन–कार्य=अभिनय पर चलते हैं। †भक्तों के प्यारे भरत तब मुक्ताहार अर्थात भोजन त्यागे हुए सोहे। जो भक्त अन्न प्रिय होता है, वह भोजन कैसे त्याग सकता है ? इस आश्चर्य का द्योतक है 'अहो'। मुक्ताहार का दूसरा अर्थ है मोतियों का हार। वह भी सुगुणाश्रित=धागे के सहारे रहा और हृदय का शृङ्गार होता है। ७ बौराहे, (वातरोगी, प्रेमोन्मत्त)। ८ बार बार कहा। ९ नगर का नाम। वात रोगी को। शृङ्गवेर=अदरख मिलते ही (सेवन करते ही) चैन पड़ जाता है। १० मनके को (जो स्फटिक मणि की माला में पिरोया हुआ था)। रथ भी अक्ष (पहिये के मझले भाग) को घुमाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो था प्रभु-मृदुचरण-कमल का छुआ सु-कर्कर मानो,
वा जो सीता-पाणि-पद्म-का स्वीकृत शंकर मानो।
वा जो प्रभु-पद-प्रसाद-गङ्गा-संगत मोटा मोती,
सचमुच तभी [१]उसे सेवन कर दृष्टि विकस्वर होती ॥५॥
देख भरत को उठे, बढ़े गुह धर आनन्द-उमंगें,
जैसे पूर्णचन्द्र को लखकर सिन्धु पसार तरङ्गें।
दोनों का सहयोग देखकर दोनों के सह-चारक-
अति-उल्लसित हुए कि जैसे कैरव-कुवलय, तारक ॥६॥
निज घर की नाई लगी पहुनाई प्रिय-साथ।
अहो! रात विश्रान्ति की कटी [२]श्रान्ति के साथ ॥७॥
सीता-गौरी-राम-शिव-दर्शन को कर [३]लक्ष।
मुदित वहाँ से चल पड़े गुह गणपति [४]प्रत्यक्ष ॥८॥

★ ★ ★

विप्र-[५]याग-वन-भाग को पाते अहो! प्रयाग।
तुरत पहुँच गुहने कहा उनसे सहानुराग ॥९॥
गङ्गा-यमुना-सङ्ग देखिये, मिला दैव के द्वारा,
क्या कर्पूर-पूर-रस में यह मिली [६]सु-मृगमद-धारा।
मृगमद-मिश्र [७]मृगाङ्क मानकर मानो मृग मँडराते,
सच [८]सवर्णता-स्नेह-सुखों से दर्शक-दृग मँडराते ॥१०॥
मुक्ता-द्रव में [९]सौवीराञ्जन मिला-मिला मन-भाया-
धन्वन्तरि ने दृष्टि-दिव्यता करने पूर बहाया।
धनुषाकार स्नान-घाटों पर शर हैं लहरें मानो,
दुरित-दैत्य-दारण-हित राघव-लक्ष्मण-संगम जानो ॥११॥

---

१ मनका रूप मोती को। २ अर्थात् थकावट और रात साथ साथ कटी। सहोक्ति है। विश्राम की रात थकावट के साथ कटी यों कहने में विरोध झलकता है, इसी से 'अहो' कहा गया है। ३ लक्ष्य बना कर। ४ सामने देखने में गण=संघ के पति। (पथ-दर्शक होने से)। शिव की ओर गुह (स्वामि कार्तिक और गणपति। ५ ब्राह्मणों की यज्ञ-वन-भूमी को। इस अर्थ से विरोधाभास का परिहार है। ६ धारा शब्द के साहचर्य से द्रवित मृगमद=कस्तूरी समझना। ७ कर्पूर। ८ समान वर्ण (श्याम-श्वेत) होने से। ९ सुर्मा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धवल बही पर श्यामवर्णमय रामचरित अङ्कित है,
[१]सुमन आदिक-व्यादृत-तुलसी-समभिख्याऽलंकृत है ।
वा [२]उपरक्त चन्द्रमा की यह चारु चन्द्रिका चल है,
अथवा पौष्टिक पय-पूर में मधु-[३]मृगमद-संकल है ॥१२॥
सबल [४]पदार्थ-चतुष्क-योग है, तभी [५]मान्द्य-हर फल है,
वा रोगान्तक [६]सहज सुधारस-विषरस-सङ्ग अटल है ।
वा गङ्गाजल में यह [७]पाविल मख-मृत्तिका-पटल है,
अथवा केलिकार-करि-मद-जल-मिश्रित गङ्गाजल है ॥१३॥

★ ★ ★

स्नानादि में प्रवृत्त सब क्रम से हुए निवृत्त ।
पर प्रवृत्त छवि-दर्श में हुआ निवृत्त न चित्त ॥१४॥
[८]भरद्वाज-सम चित्त को भरद्वाज की ओर ।
खींच, चले रखते हुए सब ही संयम-डोर ॥१५॥
सङ्गी मन नद-सङ्ग में, [९]संयत संयमि-संग ।
जैसे की संगति रहे, वैसा हो रँग-ढंग ॥१६॥

★ ★ ★

भक्त भरत को देख हुए मुनि अपूर्व [१०]मोदी,
सब सामग्री सजी उन्होंने अतिथि-विनोदी ।
मुनि-आज्ञा, कुल-मर्यादा ने भरत-हृदय को-
खींचा निज-निज ओर जताने निज-निज जय को ॥१७॥
मुनि-आज्ञा के पालन को कुल-मर्यादा ही-
सुझा सभी ने सत्कृति-स्वीकृति उचित सराही ।

---

१ प्रयाग की ओर-पुष्प आदि और व्यादृत=बहाई हुई तुलसी की समभिख्या=शोभा से भूषित। रामचरित की ओर-शिष्ट आदिकवि और आदृत (मान्य) तुलसीदासजी की समभिख्या=नाम से भूषित है । २ ग्रस्त । ३ शहद और कस्तूरी का मिश्रण है । ४ बल-सहित चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम; मोक्ष) का योग (नुसखा) है । ५ मन्दता को मिटानेवाला । ६ साथ उत्पन्न होने वाले । ७ बहाया-हुआ यज्ञ की मिट्टी का ढेर ८ भरद्वाज पक्षी के समान । । ९ संयमी। १० अनोखे आनन्दवाले और अनोखे खाने-पीने की परचून चीजों वाला व्यापारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माना जन-मत पर वे तब सकुचाये वैसे,
[१]उत्तमर्ण से ऋण लेकर [२]अधमर्णक जैसे ।।१८।।
भरद्वाज ने तप के बल वह भोज्य-सम्पदा-
समुपस्थित की अमृताधिक [३]अमृताश-कम्पदा ।
दर्शन ही से प्रथम सभी [४]अनिमेष हो गये,
करके तो उपभोग, रोग भव-भोग खो गये ।।१९।।
'वंश-हीर! रघुवीर-नीरधर-व्रतधर-चातक!,
रघुकुल के बल ही प्रयाग से बहुतर [५]स्नातक ।
निकले हुए धर्म का शासन करते जग में;'
यों सुन कुलपति-वचन भरत फिर लिपटे पग में ।।२०।।
चिरजीवी हो सफल राम के आज्ञा-पालक!,
यों अशीषकर हुए मुदित मुनि व्रत-संचालक ।
विप्र[६]-योग हर लेगा मम विप्रयोग[७]-दुख,
यों कहते ही भरत हुए प्रभु-पद के सम्मुख ।।२१।।

★ ★ ★

गुह बोले, प्रभु-भक्ति पर करिए सार विचार ।
रघुवर से भी अधिकतर हुआ भरत-सत्कार ।।२२।।
उसी काल वे माण्डवी-नाथ बोले,
वही धन्य जो आपके पाद धो ले ।
तुम्हारे सहारे न [८]हारे, निहारे-
प्रयागादि सारे, ऋणी हैं तुम्हारे ।।२३।।
पुनः राम के दर्शनानन्द लेंगे,
हमी क्या, हमारे हिये श्रेय देंगे ।
तुम्हीं धन्य हो भक्त, हे मित्र! मेरे-
तुम्हारे बिना मैं कहाँ लूँ बसेरे ।।२४।।

---

१ बहुरा। २ आसामी । ३ देवों को कँपा देने वाली । ४ टकटकी लगाये और देवता । ५ ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले । ६ ब्राह्मणों का संग । ७ राम-वियोग-दुःख। ८ थके ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]श्रुति-द्वार मूँदे भले सार को ले
पुनः हाथ जोड़े निषादेश बोले ।
अहा ! भक्त-तारेश ! हैं धन्य तारे,
न [२]खद्योत, वे तो पगों के सहारे ।।२५।।

★ ★ ★

गुणारम्भ-[३]रत भरत से फिर बोले गुह-भूप ।
चित्रकूट का देखिए कूट [४]नाम-अनुरूप ।।२६।।
अष्ट-[५]दिग-नाग-आदि-रम्य अन्त्य [६]सप्तवर्ण
सयति [७]सुगति-रम्य यह लोक-[८]वित्त है;
सृष्टिकार ने सुसृष्टि की यही विचारके कि,
यह गिरि राम-वनवास के निमित्त है ।
वास तो सुदूर, किन्तु विहग-विहार[९]-कान्त
केवल निहार प्रान्त शान्त-दान्त चित्त है;
मधुर-मधुरतर भृङ्ग-गुञ्ज-बीन-युत
कोकिल-सुगान, केकि-नृत्त भी प्रवृत्त है ।।२७।।

★ ★ ★

लखे भरत ने सप्रणति चित्रकूट के वेणु ।
ऊर्मिलेश ने कल्पना-पूर्वक रेणु [१०]करेणु ।।२८।।
सचतुरङ्ग-बल भरत का आगम-निश्चय बाँध ।
रघुवर से बोले अनुज बाण धनुष पर साँध ।।२९।।

---

१ कान । २ जुगनू धन्य नहीं है; हे भक्तरूप तारों के स्वामी! (चन्द्र) तारे धन्य हैं; दूसरा ध्वनित अर्थ है, वे नख-द्योत=नख के प्रकाश तो चरणों के सहारे धन्य हैं । ३ फिर गुण-गान में संलग्न । ४ अर्थात् विचित्र । ५आठों दिग्गजों आदि (सिंहादिश्वापदों से) । ६ अन्त में रहे सातों शुक्लादि वर्णों वाला (चित्रकूटता प्रकट की गई है । ७ यतियों सहित । सु-गति=सुमार्ग से रमणीय । ८ यह चित्रकूट जग प्रसिद्ध है। अब छन्द की ओर देखिए- आदि में रमणीय अष्ट=आठ, दिग=आठ, नाग=आठ, इस प्रकार तीन यति और गति से रमणीय-आठ-आठ-आठ वर्ण और अन्त में सप्तवर्ण=सात वर्ण, यों 31 वर्णों का; यह लो कवित्त है। इसी लक्षण को उदाहरण में देखिए। प्रथम दोनों यतियों में दो-दो-दो-दो से आठ वर्ण हैं और तृतीय यति में तीन, तीन, दो यों मिलकर के आठ हैं। इस प्रकार दोनों बात बता दी गई है। अन्त में सप्तवर्ण-'गुच्छक अन्तिम चतुर्थ' यति है। । ९ पक्षियों की क्रीड़ा से मनोहर। १० हाथी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनिए अनाथ-नाथ!, सकल सैन्य के साथ-
चढ़ आये कैकयेय, उठी खाज रण की;
कण्टक-विहीन राज करने सजी है साज,
आज दें निजानुमति आयुध-धरण की।
सैन्य-रज चूम रहा व्योम, ज्यों कि धूम महा,
शत्रु शिर घूम रहा, ठानिए त्वरण की,
पल-पल काट-काट कौन सी जोहते वाट,
अभी करूँ काट-छाँट, शपथ चरण की ।।३०।।
श्रम से सताये हुए आये हुए सज्जनों की
[१]स्वच्छतरवारि-सर-पानी तो पिलादूँ मैं;
मञ्जु मधुपर्क-सम विविध- [२]वितर्क-तर्क-
शर्कराऽऽज्य-मिश्र राज्य-मोदक खिलादूँ मैं।
भरत-अखर्व-गर्व सर्व चूर-मूर कर
मा के मन-मोदकों को धूल में मिलादूँ मैं;
रखके पगों पै हाथ कह रहा प्राण-नाथ!
कुलगिरि-साथ-साथ भूमि को हिलादूँ मैं ।।३१।।
बोले राम बोधकर क्रोध के निरोधकर
भ्रम के विशोधकर वाक्य ऊर्मिलेश से;
वीरवर! धीरवर! जानता तुम्हारी वर
वीरता व धीरता को यौवन-प्रवेश से।
किन्तु पर-कर्म-मर्म जाने बिना, क्षत्र-धर्म-
नहीं है कि, युद्ध-कर्म छेड़ना [३]प्रजेश से,
साहस सराहनीय, किन्तु है [४]पतङ्गकीय-
दुःसाहस निन्दनीय अमति-विशेष से ।।३२।।

कण्टक हैं हम, यों [५]वह निश्चय क्यों कर पायँ निमित्त बिना ही;
क्या हम भूल गये अब ही उनकी स्थिति, प्रीति, विनीति सराही।

---

१ स्वच्छ तलवार और बाण के पानी को, ध्वनित अर्थ- स्वच्छतर-वारि-सर=अत्यंत निर्मल पानी के तालाब कं (पानी को)। २ तर्क-वितर्क रूप खाँड-घी से मिले हुए। ३ (अपनी) प्रजा के ईश अर्थात् आश्रय-दाता से। ४ पतङ्ग का दुःसाहस अर्थात् बिना सोचे-समझे जलती आग में अपने को झोंक बैठना। ५ भरत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्यों न दिनेश, निशेश टलें, करलें नियमस्थिति को मन-चाही,
किन्तु टले न कभी भरत-व्रत की स्थिति हे प्रिय! नित्य निंवाही ।।३३।।
मम बाहु-समाश्रित [१]सिद्धि-सकार यथा [२]द्रुमिला वर वल्लि हहा!
मिथिला-मणि-सव्य-भुजा फरकी, तब तो कल बे-कल चित्त रहा ।
पर आज प्रभात हुए फरका मम दक्षिण बाहु सुबाहु! अहा!
इस कारण जान रहा, भरतागम है कुशलागम एक महा ।।३४।।
होगा यह प्रत्यक्ष सब अपनाये स्व-विवेक ।
निज दुहृद वा सुहृद का साक्षी है मन एक ।।३५।।

★ ★ ★

इधर भरत थे प्रभु-मिलन-अवसर के जिज्ञासु ।
लख चुपके तरु-जाल से, आ बोले गुह [३]आशु ।।३६।।
दास-वेश ऊर्मिलेश दूर कर क्लेश-लेश
मैथिलेश-कन्यकेश-सेवन-प्रवृत्त हैं;
बीनती सुगन्ध-सार जानकी प्रसून, हार-
गूँथती निहार रही, जो मयूर-नृत्त हैं ।
धनु-शर-तूणवान बल्कल-वसन-बान
बीच में विराजमान प्रभु हर्षि-चित हैं;
आठ आठ आठ सात सुगति-विराम-चारु-
वर्ण पुष्प-हारयुत [४]कण्ठ वा कवित्त हैं ।।३७।।
"आगम-[५]निगम पूर्व ही इन्हीं पै लक्ष्य बाँध-
न हुए, अभी भी किन्तु, कह रहा चित्त है;
खेल-कूद, दौड़-धूप, वापी-कूप, रंक-भूप
एक ही स्वरूप यह जो भी कुछ [६]वित्त है ।

---

१ सिद्धि के लिए स्वाभाविक कारगर [यह मिथिला-मणि [सीता] के सव्य-[दक्षिण] भुजा का विशेषण है] । २ जैसे वृत्त से मिलनेवाली (लता और द्रुमिला-छंद भी सिद्धि=आठ सकार=सगण वाला होता है । ३ शीघ्र । ४ राम का कण्ठ है वा कविता-कण्ठ-पक्ष में-आठ, आठ, आठ व सात अच्छी हालत और विराम=थाक वाले सुन्दर रँगीले फूलों का हार पहिने। कवित्त पक्ष में आठ, आठ, आठ और सात सुन्दर-गति, यति वाले अक्षरों-रूप पुष्पों के हार से युक्त। अर्थात्-पूर्वोक्त विराम व सुगतिवाले 31 वर्ण होने चाहिए । ५ छः शास्त्र और चारों वेद; अभी (वर्तमान दशा में) आना जाना; अर्थात् हम लोगों का जो आना-जाना लग रहा है, वह । ६ जान पड़ा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्व, रज और तम इन्ही का चलायां क्रम,
भिन्न-मति पाय भ्रम वात, कफ, पित्त है;
भूमि व्योम सूर्य सोम यही है स्वरूप ओम
वायु, जल, तेज-[१]तोंम, राज ही निमित्त है ।।३८।।"
"ब्रह्म-तत्त्व मूर्तिमाान क्षेम-प्रेम पूर्तिमान
ज्ञान-ध्यान स्फूर्तिमान यही बस राम हैं;
यही विष्णु यही [२]जिष्णु यही विधि यही शम्भु
प्रभुओं के प्रभु विभु राम गत-काम हैं ।
मत्स्य, कूर्म, कोल और वामन, नृसिंह आदि,
समय वसन्त आदि इन्ही के सुनाम हैं;
सारी यह धूम-धाम धाम-[३]धाम यही [४]धाम
लोक-[५]धाम धर्म-[६]धाम राम अभिराम हैं ।।३९।।
यों करते सुमनन भरत पल में पुलकित-देह ।
सजल-नैन प्रभु-चरण में जा लिपटे सस्नेह ।।४०।।

★ ★ ★

ज्यों श्रमि-मोर अशोक-प्रकाण्ड-सुखस्थिति पाय लगाकर झम्पा[७];
वा नवनील-सरोरुह पै अलि शोभित हो स्थिति बाँध [८]अकम्पा ।
त्यों वह भक्त लसे; मिथिला-मणि थी घनमिश्र-[९]घनोपग शम्पा;
वा नव-अंकुर-संकुल आम्र-तरूपरि राजित हो [१०]स्फुट चम्पा ।।४१।।
श्रीभवमोचन ने जल-मोचन लोचन के जल को टपकाया;
और उठा दहिने [११]करसे निज सोदर को उर में चिपकाया ।
गद्गदता-वश बोल सके नहिं, आपस के उर को नहलाया;
दर्शक-[१२]दृग्जल-वर्ष दिखाकर अन्तर-प्रेम प्रकर्ष जताया ।।४२।।
धीर-धुरन्धर ने धरके निज धैर्य कहा, प्रिय! धैर्य सम्हालो;
हो तुम वीर गभीर सुधीर, चिरायु रहो, निज वंश उजालो ।
हो अति-नम्र कहा [१३]लघु राघव ने उन राघव से कि, कृपालो!;
हो प्रतिपालक बालक को दुख-जालक से इस काल निकालो ।।४३।।

★ ★ ★

---

१ तेज का समूह । २ इन्द्र । ३ स्थान-स्थान । ४ तेज । ५ जगन्निवास । ६ धर्म-शरीर। ७ कुदकन । ८ स्थिर ९ बादल से मिले हुए बादल के पास की बिजली । १० खिली हुई । ११ दक्षिण हाथ । १२ आँसू की वर्षा १३ छोटे राघव=भरत ने।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम का गुरुजनानति में नँवाया-
माथा महा-गठन का ठनका सवाया ।
ज्यों ही पड़ी भनक स्वर्गति की पिता की,
हृद्वृत्ति गाढ़ धृति धार सकी न, थांकी ।।४४।।

छाती लगाकर उन्हें कुछ कण्ठ खोले
माथा पपोल स-कपोल वशिष्ठ बोले ।
हे धीर-धूर्य! लख धैर्य घना तुम्हारा,
मैंने प्रवास-[१]छिन से कुछ धैर्य धारा ।।४५।।

जो हार जायँ तुम-से, हम-से बिचारे-
मोक्षेच्छु क्या, जगत भी अ-सहाय हारे ।
हैं कौन आप, अपनी स्थिति को विचारें,
शोकाग्नि से दहकते सब को उबारें ।।४६।।

स्थायी सभी वस्तु न, जो बनाई जाती किसी, से अत एव भाई! ।
स्थायी वही एक परेश कर्ता, कैसे रहें वे फिर भूमि-भर्ता? ।।४७।।

स्वभू, स्वयंभू फिर शम्भु ये जयी
तथा जगत्-सृष्टि गुण-त्रयी-मयी ।
स्थिरा कही जाय, परन्तु [२]ऐश्वरी-
सु-शक्ति के सम्मुख है विनश्वरी ।।४८।।

रथी जीवात्मा का [३]क्षयिक तनु ही एक रथ है,
उसी का जो संचालन-[४]विषय, संसार-पथ है ।
तभी आते-जाते बहुविध रथों को निरखिए,
गया है राजा का तनु-रथ, न आत्मा, परखिए ।।४९।।

सवेरा आ बीता, तप दुपहरी पूर्ण गहरी-
मिटी, धीरे-धीरे दिन ढल चला, साँझ पसरी ।
हुई रात्री, सो भी तरुण बन बीती, फिर [५]वही,
रथी विश्वात्मा का समय रथ भी तो स्थिर [६]नहीं ।।५०।।

---

१ अर्थात् तुम्हारे बिछुड़ने के समय से । २ ईश्वर (निर्गुण) की । ३ नाशवान् । ४ चलाये जाने की जगह । ५ सवेरा आदि । ६ अर्थात् वह भी चलता ही रहता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहो! होते, जाते इस समय के साथ सब ही,
जनी रक्षा संहारण समय के हाथ सब ही ।
परात्मा विश्वात्मा समय-मय है, सार यह है,
अनाशी है आत्मा क्षयिक तनु [१]निर्धार यह है ।।५१।।
तनू वा आत्मा का मनुज किसका शोक करता?,
कहो, क्या जीता है, इस समय में कौन मरता? ।
निजात्मा को भूले क्षयिक तनु का शोक करना-
अँधेरा लाना है, फिर समझिए [२]दीप हरना ।।५२।।
सभी को है जाना, अमर कर जाना स्व-यश को,
न किंचित् ले जाना, न रख कर जाना अयश को ।
न कोई है साथी, शुभ-अशुभ साथी पुरुष के,
बनो सार-ग्राही, न कि सरसता-[३]हीन तुष के ।।५३।।
पहले, काल निकाल [४]जीव को खाता जो फिर [५]वेर,
उसको निर्दय कह देना भी कितना है अन्धेर? ।
[६]जगत्पाल को निर्दय कहते मूढ जगत का रोष-
निरखो, परखो तथापि उसकी क्षमा, दया, संतोष ।।५४।।

★ ★ ★

[७]सत् काल ही जन्म-लयादि-मूल है,
यों ठान लेना पर, एक भूल है ।
देही स्व-कर्मार्जित-भोग-पात्र है,
सत् काल तो एक निमित्त-मात्र है ।।५५।।
देही का जीवन विकृति, मरण प्रकृति, यह सार ।
दुख क्यों, सुकृतिनरेश का आत्मा विगत-विकार ।।५६।।

★ ★ ★

---

१ निष्कर्ष (निचोड़) । २ ज्ञान-रूप । ३ अर्थात् दुखदायी कुकर्म के । ४ जीवात्मा को और जन्तु को । ५ वेर=शरीर। अर्थात्-जीवात्मा के निकलने पर समय शरीर को मिट्टी में मिलाता है। वेर का दूसरा अर्थ है वदरी-फल । ६ ईश्वर को । ७ गुजरने वाला समय ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाते गीत सभी, [१]दशांक-नृप ने पा अत्र [२]उन्मञ्चता,
आत्मा के तज चार रूप, यश भी पाई [३]अहो! पञ्चता ।
पीछे भी धरके रहे [४]त्रिदशत, तत्तुल्य क्या अन्य हैं?,
[५]रोते भी जिनके मरे जग सभी, वे भी न क्या धन्य हैं? ।।५७।।

हैं आप सर्वज्ञ समस्त जानते,
परन्तु सर्वज्ञ मुझे बखानते ।
संधा सिखाने नर-जन्म आपका-
हुआ यहाँ नाशक पाप-ताप का ।।५८।।

तुम्हें सिखाने न, इन्हें दिखाने,
क्रिया निभाने, स्थिति को दिखाने ।
चिन्ता हराने, धृत्ति को धराने,
मैंने कहा [६]नेक सभा रिझाने ।।५९।।

★ ★ ★

वशिष्ठ के पाद-सरोज छूते,
श्रीराम बोले कि जगद्-विभूते! ।
त्रिलोक-विद्या सब जानते हो,
क्यों शिष्य को व्यर्थ बखानते हो? ।।६०।।

हे वत्स! हे भरत! क्यों गुरु-छात्र-छाया-
पाते सु-शीत तुमने अति ताप पाया? ।
शोकापसार सुख-सार उदार माता-
पाणि-प्रसार् मिलते दुख कौन पाता? ।।६१।।

मैं वृद्धि-रक्ष [७]शुचि पक्ष रहा तुम्हारा-
छाया कृशत्व फिर क्यों कुलचन्द्र! सारा? ।
वा क्या मुझे मलिन पक्ष विपक्ष माना?,
संदेह देह-दुख-भूल गया बखाना ।।६२।।

---

१ दशं, से चिंहित अर्थात् दशरथ, राजा ने। २ उच्चासनता (दर्जे में ऊँचाई)। ३ यहाँ अहो प्रशंसा के लिए है। पञ्चता= मृत्यु और पाँचपन अर्थात् जो दश-चिंहित था, उसने अपने ४ बेटों को और ५वें यश को छोड़ के पञ्चता पाई। ४ देवपन और त्रिगुणित दश-पर अर्थात् 30 पन। ५ इनके मरे तो गीत गाते हैं, और जिनके मरे चाहे रोयँ भी, वे भी क्योंकि सज्जन-वियोग से रोते हैं और दुर्जन-वियोग से हँसते। ६ कुछ। ७ शुद्ध सहायक और शुक्ल पक्ष।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोले कुलेन्दु, इन [१]मा-वसनाशनों को
मैं देख-देख कृश हूँ तम-[२]आसनों को ।
जो वंश-सूर्य रहते, रहता उजाला,
था ताप सर्व-दिन नाथ-वियोगवाला ॥६३॥

हाँ, प्राप्त थी गुरुतरा गुरु-छत्र-छाया,
थे पास [३]जीवन न, प्यास बुझा न पाया ।
पाई अभी सुरनदी-पद पाद-छाया,
विश्रान्ति, शान्ति, मुख-कान्ति मिली [४]सकाया ॥६४॥

पाया सनातन सनातन-नाथ! [५]ज्येष्ठा-
हस्त-प्रसार फिर [६]तारक-प्रीति श्रेष्ठा ।
जीता तभी रह सका, न जना सका हूँ-
[७]कार्य-क्रिया-त्रुटि, शुभाश्रय पा सका हूँ ॥६५॥

माता-पिता मिल गये, अनुजात प्यारे-
सौमित्रि भी, मिल गये सुख-वास सारे ।
मैं दास हूँ अब कदापि मुझे न छोड़ें,
हा! कैकयीज समझे मुख को न मोड़ें ॥६६॥

★ ★ ★

यों कहते वह जा लिपटे पग में जल-आर्द्र सु-चैल-सरीखे,
नील सरोरुह में चिपटे जिस भाँति सु-शैवल, त्यों वह दीखे ।
राघव के कर-चालन थे उनके शिर पै प्रति-पालन-सीखे,
ज्यों नव-सूर्य-करार्पण हों असितोत्पल पै पल-मात्र [८]न-तीखे ॥६७॥

सीस तथा पग पै दृग-अश्रु पड़े उस राघव-[९]यामल के,
नील-सरोरुह पै झलकें हिम-बिन्दु यथा शुचि, त्यों झलके-

---

१ माताओं के वस्त्र और भोजनों को। विधवापन में जो सतियों के पहिनाव व खान-पान पलट जाते हैं, उन्हें देख-देख। चन्द्र-पक्ष में-मावस-नाशनों को=(अमावस) के कारण अपने अदर्शनों को । २ शोक के रहन-सहनों को और अंधेरे के ठहरावों को । ३ आपरूप प्राण और जल । ४ मूर्तिमती । ५ बड़ी मा का कर-लालन; चन्द्र-पक्ष में ज्येष्ठा और हस्त नक्षत्र का संपर्क । ६ गुरु वशिष्ठ की प्रसन्नता और तारों का प्रेम । ७ कर्त्तव्य क्रियाओं (पिण्ड-दानादि) में कसर । ८ मन्द-मन्द । ९ रघुवंशी-युगल (राम-भरत) के ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे ढलते-ढलते क्रमशः मिलते-मिलते गिरि-भूतल के-
ऊपर जाकर हेतु बने अवलोकक- [१]लोक-कुतूहल के ।।६८।।

★ ★ ★

अवध-वृत्त पाकर प्रथम चले हुए मिथिलेश ।
तब आ पहुँचे, की गई मिलन-रीति स-विशेष ।।६९।।

स्नान-सुतर्पण-आदि से राघव हुए निवृत्त ।
सब ही निज-निज कृत्य कर हुए समाहित-चित्त ।।७०।।

निज-निज आसन पर सभी मर्यादा-अनुसार ।
बैठे गुरु-आदेश से करने कार्य-विचार ।।७१।।

★ ★ ★

हाथ जोड़े विनय के साथ पाद-प्रणाम से ।
संतुष्ट हो हृदय में बोले भरत राम से ।।७२।।
अन्तर्यामिन् अहो स्वामिन्! मन की आप जानते ।
तथापि मैं वचन से कहता जानकी-पते! ।।७३।।

पिता की क्या गति हुई माता की करतूत से ।
शून्य है राज्य प्रभु से जैसे कि रथ [२]सूत से ।।७४।।

वत्स से अब क्या आशा शान्ति की, ज्यों अभद्र से ।
हे रामभद्र! होता है भद्र का काम [३]भद्र से ।।७५।।

उसके चालक तुम्हीं, तुम्हीं सुमति-[४]सूत हो ।
त्रिलोकी-राज्य के जैसे त्रिलोकीश [५]प्रभूत हो ।।७६।।

लीजिए स्वाम्य अपना मुझे दासत्व दीजिए ।
शरणागत की रक्षा भगवन् ! आप कीजिए ।।७७।।

★ ★ ★

प्रभु बोले, सुनो भैया! दैव ही प्रतिकूल है ।
माता पै दोष मढ़ना सर्वथा भूरि भूल है ।।७८।।

---

१ दर्शकों के कौतुक के (हेतु)। २ सारथि से। ३ कल्याणकारी से दूसरा अर्थ झलकता है कि जो काम भद्र (बैल) से होता है वह वत्स (बछड़े) से नहीं। ४ सुबुद्धि (कौसल्या) से उत्पन्न और सुबुद्धि सारथि। ५ बहुत। "एकोऽहं बहु स्याम्" इत्यादि वेदमन्त्र प्रमाण हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतिज्ञात वरों का जो देना था ऋण था वही ।
चुका देना पिताजी का भव्य कर्तव्य था सही ।।७९।।
निराकारोपासना थी तब स्वीकृत तात की ।
[1]प्राण दे प्रण को पाला उन्होंने सत्य बात की ।।८०।। (वा)
साकार-कक्षा तर जो निराकार सम्हालना ।
था पिता का, वही प्राण-त्याग से प्रण पालना ।।८०।। (वा)
नहीं सफल हो सेवा आज्ञा-पालन के बिना ।
क्रिया सफल हो कैसे कर-चालन के बिना ।।८१।।
पितृ-देवो मातृ-देवो [2]भवेत्याज्ञा पले बिना ।
जगत्पिता की सेवा भी व्यर्थ होती फले बिना ।।८२।।
हम चारों पिता-आज्ञा-रथ के चक्र चार हैं ।
उसे हमें चलाना है यही कथन-सार है ।।८३।।

★ ★ ★

बोले भरत, हे स्वामिन्! आप ही के वियोग से ।
पिता को देह तजना पड़ा है, न कि रोग से ।।८४।।
जो मैं होता तब वहाँ, जाता न ननसाल को ।
समझाता स्व-माता को, सुलझाता कु-जाल को ।।८५।।
मेरे हृदय में पूरा यही [3]तापानुताप है ।
अस्तु, जो भी कुछ हुआ, ममं कर्माभिशाप है ।।८६।।
अब एक सुनें मेरी नाथ! नम्र निवेदना ।
स्वीकारें यदि कैसे भी मिटे मानस-वेदना ।।८७।।
राज्यश्री को आप दोनों सनाथ प्रभु! कीजिए ।
निदेश हम दोनों को वन-वासार्थ दीजिए ।।८८।।
प्रभु बोले सुनो भैया! जो पित्रादेश है [4]जिसे ।
उसे [5]पलट देने का अधिकार भला! किसे? ।।८९।।

---

१ प्राण। आकार (आ की मात्रा)-सहित है और 'प्रण' आकार-रहित है। २ ये उपनिषद्-वाक्य हैं-अर्थात् पिता का और माता का उपासक हो। ३ दुख पर पछितावा। ४ जिस (पुत्र) को। ५ उस (पिता के आदेश) को और पुत्र को।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाना ही था पिताजी को, भला अनृण हो गये ।
प्रण-लङ्घन का पूरा कलङ्क निज खो गये ।।९०।।
जो शंकर करे, सो ही भद्र, यों भद्र-भावना ।
भक्त को फल देती है शान्ति-मूल सुहावना ।।९१।।
जिन्होंने तज डाला है देह मेरे वियोग से ।
आज्ञा पालूँ न उनकी, तो बचूँ क्या कु-भोग से? ।।९२।।
हे धीर! धैर्य धरके स्व-कर्त्तव्य सम्हालिए ।
इन चौदह वर्षों को आँख [१]मूँद निकालिए ।।९३।।
फिर तो ईश-कृपया करूँगा न विलम्ब को ।
अकुलाओ न कुछ भी, दूँगा पूर्णावलम्ब को ।।९४।।
भरत बोले, अभी पाके किस [२]नौकाप्रकार को ।
पहुँचूँगा दूरवर्ती इस कालाब्धि-पार को ।।९५।।
प्रभु बोले, प्रिय भ्राता! यह लो पद-पादुका ।
मेरी हृद्-वृत्ति सी होगी यह [३]भद्राभिलाषुका ।।९६।।
स्वर्गापवर्ग की सीधी उसे [४]पद्धति जानके ।
स्वीकार ली भरत ने रामाज्ञा मान्य मानके ।।९७।।
पल ही में भरत के उत्साह मन के जगे ।
जो चाहे प्रभु, क्या देरी दशा पलटते लगे? ।।९८।।
कहा उन्होंने भगवन्! आज्ञा दें, तो रहूँ यहाँ ।
कुछ काल पदालम्बी, सेना को भेज दूँ वहाँ ।।९९।।
कहा श्रीराम ने भैया! तुम्हारी यह भूल है ।
राज्य-शासन राजा का नीति-पालन-मूल है ।।१००।।

* * *

निज [५]मान्द्य नरेश-वीर को, अथवा पावस-पूर-नीर को ।
बढते पथ-बीच रोकता, उनका [६]शोष जगत् विलोकता ।।१०१।।
जनता जल-थाह कूप का, नव उत्साह नवीन भूप का ।
[७]गुण के बल पूर्व जानती, फिर जाँचे-अनुसार मानती ।।१०२।।

---

१ जैसे-तैसे। २ नौका के रूप को । ३ कल्याण की इच्छुक। ४ पग-डंडी । ५ मन्दता (सुस्ती और कमी)। ६ सूखना। ७ गुण और डोर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका यह सार छानना रखता पूर्ण प्रभाव जानना? ।
घटते-बढते नरेश की परखी जाय कला, [१]निशेश की ।।१०३।।
घटते नृप को न मानते, बढते को सब ही बखानते ।
नँवते शुचि-[२]धाम-दूज़ के [३]विधु को, किन्तु न श्याम दूज के ।।१०४।।
नव-वंश-वधू तथा नई-नृप-लक्ष्मी सदृशी कही गई ।
सह-वासन योग्य है तभी, नहिं सूनी रखना उन्हें कभी ।।१०५।।
जनता उनके प्रभाव को लखती, पा पति के स्वभाव को ।
द्युति का उतना [४]विलास हो जितना चन्द्रकला-विकास हो ।।१०६।।
उनको [५]पर-पक्ष ताकता रहता है, कुछ भी न थाकता ।
वह [६]योग पड़े न चूकता, उसकी लाभद [७]पूर्व-मूकता ।।१०७।।
जब प्रौढ दशा सम्हालती [८]प्रथमा तो फिर धर्म पालती ।
पर [९]अन्य परेच्छु हो कभी, न [१०]उदासीन-पतिव्रता सभी ।।१०८।।
[११]पहले सु-सजी गहे धनी, फिर सो भार लगे **वियोगिनी** ।
अतएव अशून्य पूर्वतः नृप-लक्ष्मी-पद को करो स्वतः ।।१०९।।

विपक्ष-मद गालना, कुल उजालना, पालना-
प्रजा, विपद टालना, स्थिति सम्हालना, लालना ।
[१२]जिसे जस यही लगे वसु-निधान, पृथ्वी सभी-
तजे न उस भूप को अथच राज्य-लक्ष्मी कभी ।।११०।।

[१३]इस भाँति हितोपदेश नाना गुरु, मन्त्री, जनकादि ने बखाना ।
सुनके अनुजात ने उचारा, प्रभु! थाती समझें स्वराज्य सारा ।।१११।।

---

१ और घटते-बढ़ते चाँद की। २ अर्थात शुक्ल पक्ष की द्वितीया के। ३ चाँद को। ४ छटा। ५ पर-पक्ष=शत्रु-पक्ष और अन्य लोग। ६ अवसर मिलने पर । ७ पहले चुप साध लेना। ८ कुल वधू। ९ राज-लक्ष्मी। १० निःसंग (बेपरवा) पति के व्रत वाली ११ स्वामी पहले तो सु-सजी=सजी-धजी (उसे) ग्रहण कर लेता है, फिर सो (वह राज-लक्ष्मी) वियोगिनी (स्ववियुक्त और पररक्त) होने से भार जान पड़ती है। छन्द-पक्ष में पूर्वार्ध में स, स, ज, गुरु, फिर (उत्तरार्ध में) स, भ, र, लघु,-गुरु हो तो वियोगिनी छन्द होता है। यह वैतालीय' से मिल जाता है। १२ जिसे पूर्वोक्त बात ही धन-निधान जस मालूम हो, आगे स्पष्ट हैं। छन्द की ओर-ज,स,ज,स,य, लघु गुरु हों बसु ८, विधान ९ पर यति हो, वह पृथ्वी छन्द है। १३ इस भाँति नाना (अनेक रूप) हितोपदेश। उपरि-निर्दिष्ट 'वियोगिनी' अथवा 'वैतालीय'। छन्द के पाद के आगे एक गुरु बढ़ जाने से 'औपच्छन्दसिक' छन्द होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभूपदेश-[१]वाणिका [२]जरा लगी प्रमाणिका ।
वही नग-[३]स्वरूपिणी मदर्थ हो फलार्पिणी ।।११२।।

★ ★ ★

श्री कैकयी राम-समीप आके-
बोली शनैः, अश्रु बहा-बहाके ।
हा! कौनसे मैं मुख को बताऊँ?,
क्या बोलके मैं मन की जताऊँ? ।।११३।।

मै दुष्ट हूँ, कर्कश हूँ कराला,
हरा-भरा बाग उजाड़ डाला ।
मैं पाप से हा! कब मुक्त हूँगी?,
माता कहाने कब युक्त हूँगी? ।।११४।।

स्वामी तभी बोल उठे कि माता!-
माता तुम्हीं हो यह मैं जताता ।
किया पिता को अनृणी तुम्हीं ने,
हमें दिखाया न ऋणी तुम्ही ने ।।११५।।

क्षारौषधी पूर्व नहीं सुहाती,
पीछे दिखाती गुण नाम पाती ।
[४]शल्योपचर्या पहले सताती,
पीछे अनोखे सुख को जताती ।।११६।।

मैं अन्यथा क्या मुख को बताता?,
न क्या लजाता जन-बीच आता?।
मैंने तुम्हारा मन खूब जाना,
किसी व्यथा को मन में न लाना ।।११७।।

---

१ स्वामी के उपदेश की वाणी। २ प्रमाणिका=निश्चित साध्य को सिद्ध करने वाली अथवा मान्य कुछ मालूम पड़ी। छन्द-पक्ष में– जगण, रमण, लघु-गुरु हो तो 'प्रमाणिका छन्द, वही नगस्वरूपिणी है। यही द्विगुण-रूप में 'पञ्च-चामर' छन्द हो जाता है। ३ वृक्षरूपिणी, मदर्थ=मेरे लिए। 'प्रमाणिका' को 'नगस्वरूपिणी' भी कहते हैं। ४ शल्य -चिकित्सा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छाती लगाके फिर खूब रोती,
निजाश्रुओं से प्रभु-वक्ष धोती ।
बोली किसी भाँति कनिष्ठ माता,
[१]सुजात हो राघव! मैं कु-जाता ।।११८।।

मैं मन्थरा के अह! जाल में फँसी,
अहा! रहा पुत्र सुबुद्धि के वशी ।
रँगा रहे जो प्रिय श्याम-रङ्ग से,
बचा रहे अन्य विरङ्ग सङ्ग से ।।११९।।

मैंने गँवाया वह काल हाथ से,
हा! काल के हाथ पड़े [२]नृनाथ-से ।
मैं काल के हाथ पड़ी न साथ में,
क्या हाथ आया स्थिति के [३]प्रमाथ में ।।१२०।।

खोया हुआ [४]पालक भी कहीं मिले,
खोया हुआ [५]बालक भी कहीं मिले ।
खोया हुआ [६]माल कभी कहीं मिले,
खोया हुआ काल कभी नहीं मिले ।।१२१।।

* * *

छाती-भरे राम न बोल पाये,
वशिष्ठ बोले कर को लगाये ।
वत्से! तुम्हारे [७]अनुताप ही ने,
दुष्काल के दैविक पाप छीने ।।१२२।।

[८]दंपति ये [९]मिलितामिलित, अमिलित, मिलित-प्रकार;
सेते सीताराम को माया-ब्रह्माकार ।
मायाब्रह्माकार जिन्हें तत्त्वज्ञ बखानें;
जिन्हें जनावें ये करुणाकर, वे ही जानें ।

---

१ धन्य जन्मा। २ राजा (दशरथ) जैसे । ३ बिगाड़ में । ४ रक्षक (यहाँ राम)। ५ यहाँ भरत । ६ यहाँ विश्वास। ७ पश्चात्ताप। ८ माण्ढवी भरत, उर्मिला लक्ष्मण और श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न। ९ मिलित=दीखने में संयुक्त किन्तु अमिलित=वास्तव में वियुक्त। यों क्रम से समझिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नित्य आदिकवि [१]प्रभु-वशिष्ठ पहिचानें संप्रति;
कैसे हैं [१]प्रभु-आज्ञा-व्रतधर तीनों दंपति ॥१२३॥

★ ★ ★

कहा जनक ने मुने! आपका निर्णय परम प्रशस्य,
संदेही मुझ-से देही को समझा दिया रहस्य ।
[२]गुरु-दंपति-दर्शन से सफलित हुई सभा स्थिर-चित्त,
[३]शुभ-शृङ्गार रुद्र-मात्राश्रित सरसी यथा सुवृत्त ॥१२४॥

[३]कला-रत्न की कलोपरति से ककुभ-छटा उस दिन कैसी-
हुई अचानक अहह! भयानक, मावस-मलिन-रजनि जैसी ।
किन्तु हर्ष है, इधर-उधर भी दोनों ओर उजाले हैं,
[४]कला-रत्न की कलोपरति ने क्या ताटङ्क निकाले हैं? ॥१२५॥

कठिन काल-गति क्रूर कर्म-गति कोई जान न पावे,
दारुण दुष्ट दैव दुःखों की क्यों कुदशा दरसावे ?
होनहार होकर ही रहता, वह क्या टलनेवाला?,
[५]कलाराशि-मात्रागति यति ने पर शुभ सार निकाला ॥१२६॥

---

१ प्रभु (राम) के पूर्ण वशी अर्थात् शरणागत आदिकवि वाल्मीकि। वशिष्ठ ने तत्व बताते हुए भी अपना नाम स्पष्ट न कह कर वाल्मीकि का नाम-निर्देश किया। यदि इसी प्रकार नित्य आदि कवि भी शरणापन्न हों तो वे भी; यों भी झलक रहा है। २ आप और अरुन्धती । ३ जैसे सुवृत्त गोलाकार सरसी=तलैया अच्छे शृङ्गार स्वरूप शिव और माता (गौरी) से आवासित हो. छन्द की ओर- शृङ्गार १६ रुद्र ११ मात्रा के आश्रित सरसी-नामक सुवृत्त=सुन्दर छन्द होता है। यहाँ मात्राओं के पृथक २ निर्देश से यति स्पष्ट है । ४ कलाओं के कारण रत्न अर्थात राजा दशरथ की कला क्षोणता से सभी दिशा-छटा मावस की रात जेसी हो गई। छन्द की ओर कला १६ और रत्न १४ की कलोपरति=मात्रा-विराम से 'ककुभ' छन्द जानना । ५ इसमें दो गुरू अन्त में आवश्यक हैं। जैसे कि यहाँ हैं। ४ दशरथ-रूप कलारत्न=पूर्णचन्द्र के अँध जाने पर भी राम-रूप बाल रवि के उदय से जो यहाँ पर और अयोध्या की ओर प्रकाश विद्यमान है, सो मानो दिक् छटा के लिए ताटक कुण्डल हैं अर्थात भरत का उजाला भी राम-बाल रवि का कर-प्रकाश है छन्द की ओर-जो अन्त में तीन गुरु हों तो वही तार्टक कहाता है। ५ कलाराशि भरत और माताओं के आगमन तथा यति (वशिष्ठ) ने सब बात का निष्कर्ष छान डाला। छन्द की ओर-कला १६, राशि १२, मात्रायें और गति-यति वैसा ही हो वह 'सार' छंद है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनिवर बोले, कहलाते हो तुम सदेह भी अहो! विदेह,
विदेहजा फिर सुता तुम्हारी, तुम्हें भला क्यों हो संदेह? ।
विषम समय में स्वजन-मिलन है गुणकारी यों जान सुधीर!,
[1]पर-संस्कार-पक्ष-दिन-मात्रा पूर्ण हुए भी आये वीर! ।।१२७।।

"भक्त-जगत के [2]सार्वभौम हे प्रभु-प्राणों के प्यारे-
भरत! क्षमा करिये, मैं भूला फूला राम-सहारे ।
'धन्य तुम्हीं, जो प्रभु से फूले, न कि विषयों से, ऐसे-
लक्ष्मण-भरत-मिलन की गोष्ठी लगी, [3]सुधा-स्रुति जैसे ।।१२८।।
इत्यादिक उपचार का प्रभु ने अन्त विलोक ।
मातृवर्ग-जनवर्ग को समझा किया [4]विशोक ।।१२९।।
निकले कुछ ही काल के लखकर शान्ति-प्रसंग ।
विदा किया धैर्योक्ति से सबकी बढ़ा उमंग ।।१३०।।
'जय-जय सीताराम' कह विरह-विषाद-समेत ।
जनक सिधारे जनकपुर भरत भव्य साकेत ।।१३१।।
तब से नन्दि-ग्राम में किया भरत ने वास ।
चरण-पादुकाधार पर किया राज्य रह दास ।।१३२।।
सुमधुर रामरसामृत चखते
[5]चार-चतुष्क लगन कर रखते ।
षोड़श-कल-पादाकुल रहते
भरत कभी न नियम से ढहते ।।१३३।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता ऽष्टादश प्रतान समाप्त ।

---

१ अन्त्येष्टि पर पक्ष दिवस का कालमान पूरा (१५) होने पर भी हे वीर! तुम आये। छन्द की ओर-संस्कार १६, पक्ष दिन १५ मात्रा होने पर 'वीर' छन्द होता है। इसमें अन्त में गुरु लघु होना जरूरी है, जैसा कि यहाँ है। २ चक्रवर्ती। ३ अमृतवृष्टि । ४ शोक-रहित । ५ दूसरे और तीसरे चरण का अर्थः-लगन (चाव) करके चार गुप्त चरों को (मुख्यता से चारों दिशाओं के लिए) रखते हुए षोडशकल (सोलहों कलावाले अर्थात पूर्ण पुरुष राम) के चरणों में संलग्न। छन्द की ओर-'चार चतुष्कल गन कर रखते' अर्थात चार चौकल गणों को रखते हुए सोलह मात्रा वाले 'पादाकुलक' छंद हुआ करते हैं। वे चौपाई में अन्तर्भूत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

उन्नीसवाँ प्रतान

प्रवेशिका

सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ श्रीराम चित्रकूट से आगे प्रस्थान करते हैं। मुनि अत्रि के आश्रम में निवास करते हुए मुनि उन्हें सनातन धर्म के स्वरूप का, सृष्टि-प्रक्रिया आदि का विस्तार से उपदेश करते हैं। मुनि-पत्नी अनसूया और सीताजी का परम कल्याणकारी पारस्परिक संवाद होता है। सीताजी आश्रम में एक महीने ठहर कर गौ की पूजा का संकल्प लेती हैं। इसके पश्चात् लक्ष्मणजी तथा सीताजी सहित श्रीराम दण्डक-धाम पहुँचते हैं। वहाँ राक्षस विराध का संहार करते हैं। मुनि शरभङ्ग तथा मुनि सुतीक्ष्ण से मिलने के पश्चात् वे मुनि दधीच के आश्रम में पहुँचते हैं। वहाँ एक पथिक मुनि के द्वारा दधीच के वृत्त का गुणगान है– 'जाँच मन, मुनि दधीच उपकार'– वे तीनों मुनि अगस्त्य तथा उनके भाई के आश्रमों में जाते हैं। मुनि अगस्त्य शस्त्रास्त्र प्रदान करते हैं। आगे चलकर वे पञ्चवटी में पहुँचते हैं। पञ्चवटी की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने षट्ऋतु का अत्यन्त मनोहर वर्णन किया है।

विशेष : विशिष्ट आस्था–दधीचिवंशी कवि ने **वनगमन क्रम में** मुनि दधीचि के आश्रम तथा उनकी महिमा का उल्लेख करके अपनी विशिष्ट आस्था का परिचय दिया है।

शब्द निहितार्थ-अभिव्यञ्जना : नारायण शब्द के निहितार्थ- नार-नाम जल में जिसका शुभ अयन-वास है, नारायण वह परमात्मा प्रथम-प्रकाश है, की अभिव्यक्ति में कवि का वैदुष्य स्पष्ट है।

कवि का समाधिस्थ स्वरूप : 'एक नित्य-सेवक वहीं प्रभु-प्रसाद-कविताप्त, स्वयं गुनगुनाया किया लख-लख अवसर-प्राप्त' में कवि की समाधिस्थ अवस्था का भावपूर्ण चित्रण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्नीसवाँ प्रतान

रंक-राव को एक-सम राम-नाममय रत्न ।
लूट सको तो लूट-लो, करना पड़े न यत्न ॥१९॥

अवसर पाकर चित्रकूट को जन साकेत-निवासी-
श्रीसाकेत बना बैठेंगे भुक्त-भोग-[1]अभिलाषी ।
ज्यों सुमेरु को सुर-पुरियों ने सुर-निवास कर माना,
यों प्रभु ने निरधार वहाँ से गमन विवश-मन ठाना ॥१॥
सौमित्रि की पा ध्वनि शैल गाजा,
मानें जिसे लोक वही सु-राजा ।
राजा जहाँ हो वह राजधानी,
मैंने अयोध्या प्रभु-[2]भूमि मानी ॥२॥
प्रस्थान के समय सुन्दर सारिकायें ।
जो थीं विदेह-जनि[3] की परिचारिकायें ।
बोली कि देवि! चुपचाप सिधारती हो,
हैं दूरदृष्टि हम, यों न विचारती हो ॥३॥
सोत्कण्ठ मोर, कलकण्ठ, मृगी, मयूरी,
जो पा चुके प्रथम पालन-प्रीति पूरी ।
वे साथ ही चल पड़े बनते खिलौना,
तिर्यञ्च भी न सहते प्रिय-मुक्त होना ॥४॥
[4]संभ्रान्त आ शुक विहार-भव-व्यथा से,
सानन्द होकर चला प्रभु-प्रेरणा से ।

---

१ पहले माँगे हुए सुखों के लालसी । २ स्वामी के स्थान को । ३ सीता की । ४ विहार-घूमने के कारण जो थकान हुई, उससे संभ्रान्त=हलफलाया हुआ शुक राम का पाला और सीता का पढ़ाया हुआ था। कवि ने इस पद्य को अपने पर भी झलकाया है–: आशु कवि हार भव व्यथा से। अर्थ स्पष्ट है। राम-नामक भतीजे का लालन मुख्यता से कवि के द्वारा ही हुआ था और कवि ने अपने ज्येष्ठ भ्राता भगवती लालजी से शिक्षा पाई थी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो राम के ललित लालन से बढ़ा था,
सत्पाठ भी भगवती-मुख से पढ़ा था ।।५।।
[१]अ-त्रिताप सालोक-रुचि सानुज और ससीत ।
[२]अत्रि-तापसालोक-रुचि राम चले सु-प्रीत ।।६।।
वीरेन्द्रवंशाति-[३]तजा रहे कहाँ,
आलस्य श्रीराघव-देह में वहाँ ।
विदेह-वंशस्य जता जरा [४]स्व को
विदेहजा थीं द्रुत योगि-धाम को ।।७।।

★ ★ ★

कण्ठस्थ माला जिसके विशाला-
वा संस्कृतालाप, ऋचा [५]अचाला ।
तपस्वि-बालावलि भव्य-भाला-
मिली स्वशाला-छवि का उजाला ।।८।।

वे तीनों उसके द्वारा पहुँचे [६]शान्ति-गेह को ।
जैसे प्रकृति के द्वारा गुण संसारि-देह को ।।९।।

तीनों प्रणाम करके वे विराजे विनीत हो ।
मुनीश ने शुभाशीषें उचारी अति-प्रीत हो ।।१०।।
सौन्दर्य-मन्दिर अहो ! रामचन्द्र सुहावने ।
[७]अत्रि-नेत्र-प्रिय हुए त्रिनेत्र-प्रिय भी बने ।।११।।
अनसूया तथा सीता देह आत्मा चरित्र के ।
तभी से मिल भोगा की सुख जीवन-चित्र के ।।१२।।
[८]नियन्ता की प्रकृति के अनिवार्य विकास से ।
[९]आगन्तु-दंपति वहाँ ठहरे ऋतु-मास-से ।।१३।।

---

१ त्रिताप-रहित, सालोक सप्रकाश कान्ति-वाली । २ अत्रि मुनि के दर्शनेच्छु। प्रथम-तृतीय-पाद का यमक है । ३ वीरवरों के वंश से अत्यन्त छोड़ा हुआ। छन्द की ओरः –त, त, ज, र, गणों से इन्द्रवंशा। ४ आत्मा को विदेहवंशीय जताकर । छन्द की ओरः–ज, त, ज, र-गण हो तो वंशस्थ। ५ त्रुटि-रहित। ६ आश्रम को। ७ त्रिनेत्र-प्रिय नहीं, इस अर्थ से विरोधाभास है। शेष अर्थ स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त चन्द्र का अत्रि-नेत्र को प्रिय लगना स्वाभाविक बात है। ८ परमात्मा। ९ सीताराम।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देख दंपति की दिव्या दिन-चर्या सुहावनी ।
[१]उन्हें लगी स्व-विश्रान्ति अतीव मन-भावनी ॥१४॥
सती-शिरोमणि मिली मेरा भाग्य सुहावना ।
यों सीता-अनसूया ने की अन्योन्य सराहना ॥१५॥
सीता बोलीं यहाँ आने मनाये अति-देवता ।
वह बोलीं तुम्हें पाने मनाये पति-देवता ॥१६॥
सीता बोलीं, [२]तभी माता! तुम्ही साध्वी-शिरोमणी ।
वह बोलीं, मुझे माता तुम्ही [३]साध्वी शिरोमणी ॥१७॥
[४]त्रिदश-कलाश्रय विषम में सम में केवल ईश ।
यों इच्छित दोहा करें सज्जन बिस्वे बीस ॥१८॥

★ ★ ★

कभी राम-रुचि जानकर मुनि ने चार-प्रकार ।
कहा सनातन धर्म को कक्षा के अनुसार ॥१९॥
सत्यस्य सद्ब्रह्मण आद्युपासना,
नारायणस्याश्रयणं परात्मनः ।
तद्रूप - नानाविध - देवतार्चनं
नरत्व-सेवेति सनातनव्रतम् ॥२०॥
सत्यरूप उस ब्रह्म-तत्व का चिन्तन करना,
सर्व चराचर दृश्य जगत को ब्रह्म समझना ।
समझ-समझकर वैसा ही व्यवहार निभाना,
सर्वोत्तम इस ज्ञान-मार्ग से पर पद पाना ॥२१॥

---

१ आगन्तु दंपति को । २ देवों से भी पति को अधिक समझने के कारण । ३ पति की सेवा में रहने के कारण देवों के मनाने में । ४ अनसूया अपने वचन के समर्थन में कह रही हैं—कठिनाई में देवता-रूप जो ईश्वर ही की कलायें हैं, उनका सहारा और सम में=शान्ति समय में केवल स्वामी अर्थात् उसीका सहारा; इस प्रकार सजन पूर्ण-रूप अपना चाहा पूर्ण किया करते हैं। अर्थात् तब तुम विषम में थी और मैं सम में थीं, इसी से तो। छन्द की ओर-विषम पहले तीसरे (पाद) में त्रिदश=१३ मात्रायें और सम (दूसरे-चौथे) में केवल ईश=(रुद्र) ग्यारह मात्रायें । इस प्रकार मन-चाहा पूर्ण-रूप से 'दोहा' छन्द बना लिया करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नार-नाम जल में जिसका शुभ अयन-वास है,
नारायण वह परमात्मा प्रथम-प्रकाश है ।
नाभि-जात ब्रह्मादि जगत का वह कारण है,
नानाविधि से उसका आश्रय भव-तारण है ।।२२।।
तन्मय है सब देव हृदय में यही ठानना,
तत्व वही प्रतिमा में भी है यही मानना ।
तप है यह भी एक, मूर्ति-पूजा जो करना,
तन की-सी सब इष्ट देव की सेवा भरना ।।२३।।
नर-शरीर को पा विद्या-धन अर्जन करना,
नम्र-भाव से गुरु-जन की आज्ञा अनुसरना ।
नदी-नाव संयोग जानकर हिल-मिल रहना,
नरता को तजना न कभी चाहे दुख सहना ।।२४।।
धर्म वही है जिससे आत्मा उन्नत होता,
धर्म वही है वस्तु जो कि पापों को खोता ।
धर्म नही बस, अष्ट-सिद्धि नव निधि ही देता,
धर्म भक्त को कर देता है मुक्ति-विजेता ।।२५।।
मनुज वही है जो [1]मनूक्त नियमों पर चलता,
मन वश में कर धर्म-मार्ग से कभी न टलता ।
मधुर अमृत-रस पीते रहना मनुजो! अपना,
महामन्त्र श्रीराम-नाम को नित-प्रति जपना ।।२६।।
ईश्वर सब का एक है, धर्म [2]सनातन एक ।
यथादेश-कालस्थिति जन-मत धर्म अनेक ।।२७।।
आत्मा को धारे रहे, न डुबोवे, वह धर्म ।
धरे रहे आत्मा उसे ज्यों नाविक नौ-कर्म ।।२८।।
यों गुरु-संस्कृत-सूत्र का भाषा-भाष्य [3]अमात्र ।
रचते सब को धर्म-पथ दरसाते वे छात्र ।।२९।।

★ ★ ★

---

१ मनुजी के कहे हुए और 'मनु' शब्द में कहे हुए, अर्थात् तत्त्व के मनन करने से 'मनु' कहा गया है। अतएव मनुज तत्त्व-ज्ञाता होना चाहिए। २ सदा से जो रहता आया है और रहता रहेगा, उसे 'सनातन' कहते हैं । ३ सविस्तार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कभी सृष्टि-विषयक वहाँ चलता था यों पाठ ।
ये दंपति लखते रहे सुलझाते मन-गाँठ ।।३०।।
सृष्टि-प्रथमावस्था माया अव्यक्त-शक्ति [१]अवदाता ।
मूल-प्रकृति इसे ही कहते हैं साँख्य के ज्ञाता ।।३१।।
इसके समनन्तर तो महदादिक प्रकृति-विकृति है जाता ।
प्रभु का सृष्टि-विषय जो मान, महत्तत्त्व कहलाता ।।३२।।
"मैं बहु बनूँ" यही [२]प्रभु-मनन अहंकार नामक कहाता ।
इससे आकाशादिक पञ्च-महाभूत हो जाता ।।३३।।
इसके सत्त्वांशों से श्रोत्रादिक ज्ञान-इन्द्रियाँ हुई पांचों ।
राजस-अंशों से फिर वाचादिक कर्म-इन्द्रियाँ हुई पांचों ।।३४।।
सत्त्वाँशों का संघट, अन्तः करण-प्रकाश उपजाता ।
जो राजसांश-संघट, उससे तो 'प्राण' बन जाता ।।३५।।
ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण तथा पाँच, बुद्धि-मन मिलते ।
सप्तदश-तत्त्व सुघटित 'सूक्ष्म-शरीर'-स्वरूप में खिलते ।।३६।।
[३]पञ्चीकृत भूतों से स्थूलशरीरक व 'अन्नमय कोष' ।
जिससे पिण्ड-ब्रह्माण्ड-जन्म जानो ससन्तोष ।।३७।।
मन, कर्मेन्द्रिय मिलित 'मनोमय कोष' बुधों ने समझ कहा,
पाँच प्राण औ कर्मेन्द्रिय वे मिलित 'प्राणमय कोष' रहा ।
निश्चय-बुद्धि व ज्ञानेन्द्रिय मिल सु-'विज्ञानमय कोष' अहा!,
एवं कारण-शरीर समझो कि 'आनन्दमय कोष' महा ।।३८।।
यही सृष्टि की प्रक्रिया सब समझे संक्षिप्त ।
[४]यह अनित्य है, नित्य है 'आत्मा' एक अलिप्त ।।३९।।
प्रभु-रुख फिर मुनि-युवति का पा अनुरोध अनल्प ।
हिलीं न व्रत से मैथिली करके यों संकल्प ।।४०।।

★ ★ ★

---

१ शुद्ध। २ ईश्वर-संकल्प । ३ आकाशदि पंच महाभूतों का पञ्चीकरण। ४ यह सृष्टि जो उत्पन्न होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]मासान्त-स्थिति मैं सजी सतत गौ शार्दूल-विक्रीड़िता-
पूजूँगी इस शान्ति-केलिवन में, स्वर्धेनु-सी ईड़िता ।
जो मन्दाकिनिकाम्बु-वायु-तृण से संतोष पाती हुई-
बालों को-थकती न-दूध अपना मा ज्यों पिलाती हुई ।।४१।।

माता शान्ति, स्त्री गुहा योगियों की,
निःसामर्थ्यों, भोगियों, रोगियों की-
स्त्री है संपद्, हो स्थिरा चालिनी वा;
[२]माता तो गौ गोष्ठ की शालिनी वा ।।४२।।

★ ★ ★

"श्रुति-पठन की शैली, अध्यापना-विधि, सत्क्रिया,
[३]प्रवचन तथा [४]शास्त्रार्थों की छटा कितनी प्रिया ।
न कि मनुज ही, तिर्यग्-योनी तपोवन में जगी,
[५]कब सु-हरिणी शास्त्रार्थान्ते न सामरसे लगी"? ।।४३।।

"मानो सिद्धि प्रकटित हुई देह से पुण्य-पात्री,
साक्षात् पूर्ण अमृत-रस से दर्शनानन्द-दात्री ।
[६]मन्दाक्रान्ता श्रुति-रस-सुखा मैं भनूँ तात! गङ्गा-
श्रीमत्सेवा-हित गगन की है उपायात गङ्गा" ।।४४।।

---

१ मैं इस आश्रम में महीने भर ठहर कर सजी-धजी गौ को निरन्तर पूजूँगी। जो बाघों के साथ खेली हुई और स्वर्धेनु=कामदुधा के समान सम्मान पाई हुई है। छन्द की ओर —मास १२ और अन्त में विराम तथा म, स, ज, स, त, त और गुरु हो तो शार्दूल विक्रीड़ित समझना। उत्तरार्ध में गौ के लिए जो कहा गया है, वह स्पष्ट है। २ माता तो गौ है; चाहे वह गौ-स्थान की हो वा घर की। छन्द की ओर-म, त, त, ग, ग, हो तो 'शालिनी'-छन्द। इसका पहला विराम ४ वर्णों पर है। यह बात शीला-शब्द से झलकती है-क्योंकि चौसाला घर हुआ करता है। ३ व्याख्यान ४ जिसके द्वारा वाद-विवाद पर निर्णय निकाला जाय, उसे 'शास्त्रार्थ' कहते हैं। ५ तीसरे पाद की पुष्टि में कहते हैं —शास्त्रार्थ के अन्त में अच्छी-हरिणी साम-रस अर्थात् सामवेद के गान के श्रवण-रस में कब न लगी? छन्द की ओर शास्त्र ६ अर्थ ४ और अन्त में यति तथा न, स, म, र, स, लघु-गुरु हो तो 'हरिणी'। ६ जिसका आक्रान्त (आक्रमण=प्रवाह वेग) मन्द है, इसी से कानों को सुखदायक जो गङ्गा है वह आपकी सेवा करने आई हुई आकाश-गङ्गा है। छन्द की ओर-श्रुति (वेद ४), रस ६, सुख ७ पर यति और म, भ, न, त, त, और दो गुरु हो तो 'मन्दाक्रान्ता' छन्द होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"क्या क्या कहूँ, यदि न दण्डक-तापसों का-
संसार और परितापन राक्षसों का ।
होता न ज्ञान, टिकता फिर काल थोड़े,
संतोष किन्तु रहता न स्व-कार्य छोड़े" ।।४५।।

यों प्रयाण-मण्डक वचन कह काल-खण्डक राम ।
चले अखण्डक विनय कर, पहुँचे दण्डक-धाम ।।४६।।

★ ★ ★

अनसूया ने अत्रि से पूछा परम रहस्य ।
क्या समाधि-दुर्लभ अधिक वा यह रूप प्रशस्य? ।।४७।।

कहा अत्रि-गुणवान ने जो कि [1]अ-त्रिगुणावान ।
दुर्गम वह ही राम यह सगुण सु-रूप निधान ।।४८।।

हाँ, [2]प्राणायमन-क्रिया [3]शिवार्पिणी है,
[4]संध्या दिग् मनुज-रंग-**प्रहर्पिणी** है ।
किन्तु श्रीहरि-जय राम-नाम प्यारा,
है सीधा इस भव-सिंधु में सहारा ।।४९।।

राम-नाम, [5]तत्प्रेमिजन-वचन, उभय रस-खान ।
क्या कहना, यदि वे स्वयं बोलें प्रेम-निधान ।।५०।।

पयों से [6]गौ! आशा-जनक धन का [7]स्वादर सजो,
न वे [8]वैसे, प्रेमी-जन-कथन का स्वाद-रस जो ।
सुधा में भी पाते अमर सपने में न रस ही,
नहीं वैसा पाते अमरस-पने में नर सही ।।५१।।

★ ★ ★

---

१ तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) से रहित । २ प्राणायाम-साधन । ३ ब्रह्मानन्द दायिनी । ४ भली-भाँति ध्यान करने का मार्ग और मनुष्य की रंगों को स्वच्छ-स्वस्थ रखने वाली है। छन्द की ओर-संध्या ३ और दिग १० पर विराम तथा म, न, ज, र, और गुरु हो तो 'प्रहर्षिणी' छन्द होता है । ५ उसके भक्त का वचन। ६ प्रेममग्न अत्रि अपनी प्रिया से न कहकर इसी प्रसंग पर अपनी गौ से कहते हैं। ७ सु-आदर। ८ पय (दूध)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राम का संग्राम-रुचि तब कृष्णरूप [1]विराध,
तापसों का ताप-कर सम्मुख मिला ज्यों व्याध ।
प्राण हर पहुँचा दिया प्रभु ने उसे पर-धाम,
मृत्यु भी करुणाब्धि-कर की साधती शुभ काम ।।५२।।

प्रभु पधारे अग्रतः जब, मुनि मिले शरभङ्ग,
धन्य दोनों ने गिना निजको, किया जब सङ्ग ।
[2]मर्म जाना, जब हुआ शरभङ्ग का निर्वाण,
प्रभु-कृपा से साऽर्थ होता नाम का निर्माण ।।५३।।

★ ★ ★

अङ्ग-अङ्ग पुलकित हुए अन्तरङ्ग स-उमङ्ग ।
[3]सुर-विमान में बैठते बोले मुनि शरभङ्ग ।।५४।।

हे राम! मैं जिसलिए तड़पा कभी से,
सो आज दर्शन किया इस काल जी से ।
पूरा किया मम मनोरथ नाथ! वैसा,
जो माँगते जल, मिले अमृताब्धि, ऐसा ।।५५।।

[4]मेरे हरे सकल रूपक आपने तो,
आने दिये न षट भी पर धर्म सेतो! ।
क्या [5]उत्तमर्णपन ही अपना बताया?,
तो भी सलाभ अधमर्ण मुझे जताया ।।५६।।

---

१ कृष्ण-स्वरूप होते हुए भी वि-राध=राधा-रहित, इस अर्थ से विरोधाभास । २ शर का नाश=निर्वाण (बाण के अभाव) ही का तो रूप है, वास्तव में शर (शीर्ण-स्वभाव=शरीर) के सनातन नाश ही को निर्वाण=मोक्ष कहते हैं। यहाँ शर-पदका री-च्युतक मानने से शरीर का बोधक जानना। ३ वासना वश स्वर्ग सिधारने को विमान में बैठना पड़ा किन्तु वे वहीं से मोक्षाधिकारी हो चुके थे । ४ हे धर्म के सेतु राम! षट भी पर=छहों शत्रु भी (काम-क्रोधादि षड्वर्ग जो संसार-मूलक है) । इसी से मेरे सारे रूपक संसार-गत योनि-रूप मिटा दिये। दूसरा अर्थ है:-मेरे सब रुपये भी ले लिये, परन्तु गुजारे के छः आने भी नहीं दिये। यह ब्याज-स्तुति है। ५ ऋण-दायी (बहुरा)। ६ ऋण-ग्राही (कर्जदार) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घोरापराध मम थे कितने, न जाने,
तो भी क्षमाम्बुनिधि ने न कदापि माने ।
जो मानते, न लगता कुछ थाह मेरा,
क्या कीट दृष्टि-गत हो कि जहाँ अँधेरा ।।५७।।
क्या मैं कृतज्ञ प्रभु का बदला चुकाऊँ,
हा! मैं कृतघ्न प्रभु का कहला चुका हूँ ।
यों बार बार अपराध विचार सारे-
रोते प्रणाम कर प्रीत यती सिधारे ।।५८।।

★ ★ ★

सुतीक्ष्ण जो थे निज नाम, काम से,
इन्हें मिले वे मुनि पर्शुराम-से ।
ज्यों ही किया वन्दन नम्र राम ने,
किसे न दीखे वह शान्त सामने? ।।५९।।
वहीं महा आश्रम था दधीच का,
सुजीर्ण था शीर्ण विभाग बीच का ।
अलापते यों लख एक पान्थ को-
सुधन्य माना प्रभु ने वनान्त को ।।६०।।
जाँच मन! मुनि दधीचि-उपकार, समझ मन! आत्म-समर्पण-सार।
मन-मानी घर-जानी वृत्रा-
सुर ने वृत्ति विचार ।
निर्दयता के साथ सताया
सन्तत सब संसार ।।
सुर-सेना को सजग सजाकर
सुरपति सर्व-प्रकार ।
दुष्ट-दनुज-दारण के कारण
झूँझा कर ललकार ।।
पर प्रतिकूल दैव के कारण
हुई इन्द्र की हार ।
जगदाशा पर फिरकर पानी,
छाया हाहा -कार ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरगण अशरण-शरण श्रीश की
चरण-शरण मन धार ।
वहीं गया, की त्राहि-त्राहि की-
करुणा-भरी पुकार ।।
प्रभु ने सूझ सुझाई पहुँची-
मुनि दधीच के द्वार ।
उन से माँगो दिव्य देह के
दृढ़तर अस्थि उदार ।।
उससे बड़ा बनाओ दृढ़तर
दीर्ध-तपस्या - सार ।
दृढ़ प्रहार से रिपु को मारो,
और न कुछ उपचार ।।
भिक्षु-वेश देवेश देव-युत
पहुँच दधीचि-अगार ।
बोले देह दधीचि! दीजिए,
करिए जगदुपकार ।।
दिव्यदृष्टि दानी दधीचि ने
दिया देह दुख-द्वार ।
दुर्लभ अर्जित किया परमपद
नित्य नाम सुख-कार ।।६१।।

★ ★ ★

अगस्त्य के दर्शन औ अगस्ति के-
भ्रातृ व्रती के कर मूल [१]स्वस्ति के ।
[२]स्व-भ्रातृ-संज्ञा-प्रथन बखानते,
जो नाम का भी शुभ त्याग मानते ।।६२।।
अगस्त्य ने शस्त्र दिये प्रहृष्ट हो,
उन्हें दिये जो हरि ने सु-तुष्ट हो ।
आदान के साथ सुपात्र-दान से-
फलें द्विजन्मा, न कि एक [३]लान से ।।६३।।

१ मङ्गल के। २ अपने भाई (अगस्त्य)ही के नाम से प्रसिद्धि पाना। ३ आदान (लेने) से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]विप्र-वास प्रभु को न प्रिय, मुनि को प्रिय न [२]प्रवास ।
अतः शिष्य कहने लगे रखे [३]उभय-अभिलाष ।।६४।।

यह समीप है पञ्चवटी,
[४]चारु- चैत्ररथ -चित्रपटी ।
वा नन्दन-छवि आ प्रकटी,
किमुत पञ्च-सुर [५]नगी डटी? ।।६५।।
[६]गोदावर्य- तिरम्य -तटी,
वनलक्ष्मी की केलि-कुटी ।
आनंदामृत की सुघटी,
ठहरी हुई शान्ति-शकटी ।।६६।।
पुष्प-पटल से पूर्ण पटी,
शुचि सुगन्ध से सदा सटी ।
तरु-तरु से सुलता चिंपटी,
ज्यों प्रिय से ललना लिपटी ।।६७।।
यहीं नाचती प्रकृति-नटी,
शिखि-अति-पिक की [७]आरभटी ।
एक निराली छटा छँटी,
यहाँ अरुचि किसकी न हटी? ।।६८।।
जहाँ खेलते हरि-करटी,
जगह-जगह पर मुनि-गुमटी ।
क्या विधि-मन से गुप्त घटी-
[८]मानव-भुवन-कला प्रकटी? ।।६९।।

---

१ ब्राह्मणों के साथ डेरा डाल लेना। २ राम का वहाँ से चले जाना। ३ राम और अगस्त्य की रुचि। ४ मानो कुबेर के बाग ही का सुन्दर चित्रण हो। ५ क्या पाँचों कल्पवृक्ष यहाँ आ डटे हों। ६ गोदावरी नदी का अत्यन्त रमणीय किनारा। ७ आरभटी उस नाटकीय शाखा को कहते हैं, जहाँ नाच, बाजा और गान का ठाठ हो, यहाँ क्रम से इनके कारण-भूत मोर, भौंरे और कोकिल जानिए। ८ मनुष्य लोक (रचना) की कला। छन्द की ओर-यदि भुवन १४ मात्रायें हों तो मानव छन्द होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यही दण्डक-स्थिति पलटी,
क्या विधि ने प्रभु-हित उलटी? ।
मनोवृत्ति लग कब उचटी?,
इधर-उधर वह नही बटी ।।७०।।

दूध-सदृश न कदापि फटी,
चन्द्र-कान्ति-सम नही घटी ।
भू-विभूति ऊपर [1]उकटी,
रमती यहाँ [2]रमा न नटी ।।७१।।

अहा! राम हैं आप जटी,
यहाँ सु-वृक्ष-कलाप जटी ।
अतः वास करिए निकटी,
रिक्त न करिए उक्ति रटी ।।७२।।

सुनके उनके प्रिय वचन राम वहीं स्व-निवास ।
कुटिया में करने लगे सबको हुआ हुलास ।।७३।।

[3]अहो! एक-दो दिवस हुए, तीनों को सेने-
चतुर्वदन ने पञ्चवटी में यश को लेने ।
षट ऋतुओं को सप्त-रूप प्रकटा सरसाया,
अष्ट-सिद्धि-नवनिधि-युत दश-दिशि रच दरसाया ।।७४।।

एक नित्य-सेवक वहीं प्रभु-प्रसाद-कविताप्त ।
स्वयं गुनगुनाया किया लख-लख अवसर-प्राप्त ।।७५।।

★ ★ ★

शोभी वसन्त [4]तिलकाङ्कित तुण्ड प्यारा-
है नव्य-वर्ष-छवि का, भुज ग्रीष्म सारा ।
वर्षा स्तन-द्वय, शरद् कटि श्री-मयी है,
हेमन्त ऊरु, शिशिरर्तु पद-द्वयी है ।।७६।।

---

१ उघड़ी (निकली)। २ सीता के लिए ध्वनित किया है। ३ इसमें क्रम से दस तक संख्या का युक्ति-संगत निर्देश है, सप्तरूप =सात वर्ण वाली। ४ तिलक वृक्ष से चिह्नित और तिलक-रचना से। 'वसन्त तिलका' छन्द का नाम भी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्द-मन्द शीत और चन्दन-सुगन्धि वात-
गात को सुहाता अब शीत-ऋतु-अन्त है;
रसिकों के अङ्ग पर मानों केलि-रङ्ग पर-
नूतनता नाच रही उमँग अनन्त है।
फूले वन, वाटी, बाग; धारती धमाल राग-
फगुओं की फवी फाग, हसित दिगन्त है;
साथी सब साथ-साथ लेके पिचकारी हाथ,
गाते [1]गुण-गौरी-गाथ, विजयी वसन्त है ।।७७।।

छत्र-छवि आम्र-कुञ्ज, चामर [2]कणिश-पुञ्ज,
जय-बीन भृङ्ग-गुञ्ज, सत्र सब साज है;
पत्र-फूल-शस्त्र-शूल-धारी अनुकूल वन-
सैन्य लिये साथ यह आया ऋतु-राज है।
[3]विरहि-हृदय-माथ यह सर्व-सैन्य-नाथ
दक्षिण पवन वहीं आता नहीं बाज है;
बन्दी पिक सावधान यत्र-तत्र निःसमान
बाँध रहा कीर्ति-गान दैव-हाथ लाज है ।।७८।।

सङ्गी ऋतुराज-काज धारे नव फूल-साज
फूली वन-राजी आज कैसी यह सोहती;
मालिन प्रकृति मानो विशद-वसन्त-वेष-
शाली वनमाली-हेतु वन्य-माला पोहती।
चीत-चीत चित्त-चाव धारती अनेक भाव-
जनता सतर्क इसे एकटक जोहती।
मत्त गज-गामिनी के, भूल-भरी भामिनी के,
मानवती मानिनी के मानस को मोहती ।।७९।।

जगते [4]कोयलों से जो भरी हैं अमराइयाँ।
वियोगि-हृदयों को वे लगती हैं अँगीठियाँ ।।८०।।

---

१ गनगौर का गाना। २ गेहूँ आदि अनाज की बालों का संग्रह। ३ हृदय विदारक। ४ सजग कोकिलों से और जलते अँगारों से। जगते=पुँस्कोकिलों को समझते हुए पुँलिङ्ग प्रयोग किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तनी हुई हृदाकर्षी गहरी आम्र-भञ्जरी ।
[1]उन्हीं को जान पड़ती [2]काल-चर्पट-पँखुरी ।।८१।।
इस समय मिली द्रुवल्लि-माला,
पतझड़ के दिन जो रही कराला ।
[3]विषम न नर-योषिताभ साग्रा,
सम निज जोर गभीर-पुष्पिताग्रा ।।८२।।

★ ★ ★

संतप्त वायु [4]बल-नाथ [5]दवाभिनन्दी,
आरूक्ष शुष्क गिरि सैनिक, [6]द्रोण बन्दी ।
खर्जूर चामरक, छत्र बबूल तेरे,
रे ग्रीष्म! भीष्म निज साधन साधु हेरे ।।८३।।
मध्याह्न पा प्रतपनास्त्र धरे तपाता,
तू हो [7]कुशासन अरे! जग को सताता ।
स्वेदार्द्र नग्न करके उसको बताता,
होगा [8]दिनान्त मम, यों न विचार लाता ।।८४।।
ले साधु-संगम हिमालय का सहारा,
कोई निकाल सकता यह काल प्यारा ।
कूपस्थ भी जल अभी सुबहूपकारी,
जो [9]कूपकार वह है अति सूपकारी ।।८५।।

---

१ वियोगि-हृदयों ही को। २ चपेट की तनावट। ३ प्रतिकूल दशा में रही हुई वह (वृक्ष-लता-पंक्ति) नर-योषिताभ=स्त्री-पुरुष के समान, साग्रा=आलम्बन (सहारा) सहित नहीं थी। अर्थात एक-दूसरे से प्रार्थना करने का साधन नहीं रख सकती थी और अनुकूल दशा को प्राप्त होकर अपने आपके बल अपने प्रार्थना के साधन को गहरा पुष्पित कर लेती है। कहने का भाव यह है कि नर-नारी और वृक्ष-लता दोनों ही पुष्पित होते हुए आपस में मिल लेते हैं। जब मिलते हैं, नर नारियों के मनोरथ पुष्पित हो ही जाते हैं। छन्द की ओर:—विषम १-३चरण में न, न, र, य, और सम २-४ चरण में न, ज, ज, र, गुरु हो तो पुष्पिताग्रा। ४ सेनापति। ५ दावाग्नि को बधाई देने वाला। ६ द्रोण काक। ७ कुशों का आसन रखनेवाला और बुरे शासनवाला। ८ साँझ और चढ़ती दशा का अन्त। ९ कुँआ बनानेवाला और खराब उपकार करने वाला इस अर्थ से विरोध झलक जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या आपको वट-वनस्पति! मैं बखानूँ,
क्या राम-छाँह-रत मैं परिताप जानूँ? ।
पाता न मैं यदि [1]इसे न कभी तुम्हें भी,
क्या दाव से [2]अवट में पड़ता न मैं भी ।।८६।।
हैं ग्रीष्म-तापहर द्वि-स्तन कामिनी के,
वा अन्त्य द्वि-प्रहर है बस [3]यामिनी के ।
वे किन्तु आम्रफल-से मिलते किसी को,
[4]ये तो दयालु-दृग-से मिलते सभी को ।।८७।।

★ ★ ★

अहा! आह! क्या खूब हर रही मन हरियाली,
छाई है घन-घोर-घटा फिर नभ में काली ।
[5]सांध्याम्बुद की रेख चीर सुर-धनुष तना है,
श्याम-पट्ट पर चौपड़ का शृङ्गार बना है ।।
धवल-धवल है उड़ रही वहीं वलाका-पंक्तियाँ ।
मानो चौपड़ खेलती प्रकृति चलाती कौड़ियाँ ।।८८।।
धरती पर अति शोभा धरती वीर-बहूटी,
हरे बिछौने पर ज्यों शोभित [6]रोहित बूँटी ।
अथवा विधि ने रक्त पुष्प पावन बरसाये,
अथवा कुंकुम-बिन्दु मांगलिक क्या दरसाये? ।।
वा रत्नाकर-सलिल के साथ मेघ को जो मिले-
पद्म-राग, [7]रत्न-प्रसू भू से वे मिलकर खिले? ।।८९।।
किसके स्वागत-हेतु हुई है यह तैयारी,
किसकी उत्सुक वाट जोहती जनता सारी?
कौन भुवन-भर की भूषण है भाग्य-शालिनी,
अहा! कौन पावस की पावन प्रेम-पालिनी ।।
सोह रही सम्मुख सरस यह सावन की तीज है ।
नित्य यही सुख-बीज है प्रिय-जन-मन की चीज है ।।९०।।

---

१ राम की छाँह (कृपा) को। २ गढहे में। अर्थात् जिसके भाग्य में वट नहीं, उसे अवट ही मिले। ३ रात के। ४ रात के पिछले दो पहर। ५ साँझ का बादल। ६ लाल ७ रत्नगर्भा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊपर घनतर घोर घन-घटा घुमड़ रही है,
नदी और प्रिय-मिलन-लालसा उमड़ रही है ।
रात अँधेरी, घन-गर्जन [1]स्मर-सर्जन, [2]वर्जन-
निर्जन वन है [3]तर्जन, तो भी हित [4]धृति-अर्जन ।।
घर की न रही व न घाट की, यों न सोच अभिसारिका! ।
यह पहुँचा देगी अभिलषित स्थान तड़ित [5]सहकारिका ।।९१।।

[6]अब्धि से अब्द के द्वारा आ आप सर, कूप में ।
थमे; मिले; जो न थमे नदी-नाले-स्वरूप में ।।९२।।

अब [7]कलुषित वर्षा लुप्त है रात-जैसी,
शरद-ऋतु विशुद्ध छा गई प्रात-जैसी ।
रवि-छवि कर-माला-मालिनी सोहती है,
विकच कमल-माला चित्त को मोहती है ।।९३।।

हृदय पर सभी के [8]शारदानन्द छाया,
वह पथ [9]निगमों वा [10]आगमों का दिखाया ।
अहह! छिप रहा जो [11]भूरि-वर्षान्तरों से,
कथमपि न मिला जो [12]दुर्दिनों के भरों से ।।९४।।

द्युति दमक उठी है चन्द्रमा-दर्पणों की,
सु-विधि छिड़ पड़ी है श्राद्ध-संतर्पणों की ।
कलरव, शुक, मैना, हंस भी कूजते हैं,
सुजन प्रकृति-देवी को अभी पूजते हैं ।।९५।।

---

१ कामोत्पादक। २ मना करने वाला। ३ डरावना। ४ धैर्य-धारण। ५ मददगार। ६ पानी और जीवात्मा ध्वनित है। समुद्र (परमात्मा) से अब्द (मेघ और माया) के द्वारा आकर सर-कूप निष्क्रिय-संसार) में थम गये; जो नदी-नाले स्वरूप (सक्रिय-संसार) में नहीं थमे; वे फिर से समुद्र (परमात्मा) में मिल गये। ७ गदली। ८ शरद् का आनन्द और सरस्वती का प्रसाद। ९ निगम-आगम=जाने-आने का। सरस्वती-प्रसाद पक्ष में वेदों और शास्त्रों का। १० बहुत सी बरसात के कारण ढक जाने से और बहुत वर्षों का अन्तर पड़ जाने से। ११ बादलों के धुँधले दिनों की भरमारों से और दुर्भाग्य से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धवल-धवल शोभा आज सर्वत्र छाई,
नयन-पथ पड़ी क्या राम की कीर्ति [1]गाई ।
जगह-जगह लक्ष्मी-उत्सव-श्री निराली,
जगत जगमगाती दीपकों से दिवाली ।।९६।।

[2]स्मित मुख सब के हैं, धान्य सारे पके हैं,
कृषिक-मन छके हैं, शान्ति भी पा सके हैं ।
सकल वन खिले है [3]धान्य-जूटोत्सवों से,
सुर-भवन खिले हैं अन्नकूटोत्सवों से ।।९७।।

[4]विमल-गगनवाली रात्रि है कान्तिशाली,
गगन-छवि निराली चन्द्र की है उजाली ।
प्रचुर चमकता है चन्द्र सच्चन्द्रिका से,
छिन-छिन छिटकी है चन्द्रिका भी छटा से ।।९८।।

★ ★ ★

हँफा रहा जो हमको कँपा रहा,
श्रीराम का नाम बलात् जपा रहा ।
चण्डांशु भी देख जिसे कि शान्त है,
हेमन्त है भीरु!, नहीं [5]कृतान्त है ।।९९।।

[6]पूप-प्रकाश, [7]पिनु, पावक, [8]पाकशाला,
पत्नी, प्रगाढ़ पट, [9]पाक, [10]पयस्वि-प्याला ।
हेमन्त में सुविधि के यह [11]पाद्य मानों,
दीनो! स्व-बन्धु बस आद्य, [12]तृतीय जानो ।।१००।।

---

१ दशहरे को गाई गई। २ अर्थात्-प्रसन्न । ३ अनाज को इकट्ठा करने के उत्सवों से। ४ एकावली अलंकार है। ५ यमराज, यह सूर्य का पुत्र है। ६ धूप। ७ रुई। ८ रसोई। ९ पौष्टिक भोज्य पदार्थ। १० दूध-भरा प्याला। ११ पाद्य-पूजा सामग्री और पकारादि पदार्थ संग्रह। १२ पहला और तीसरा अर्थात् धूप और अग्नि तथा दीनबन्धु राम-लक्ष्मण यह ध्वनित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]हेमन्ती प्रिय लगती सदा [१]हसन्ती,
[२]वासन्ती जिस विधि चैत्र में लसन्ती ।
कान्ता की मृदु-मधुरा कपोल-पाली
वा [३]फेनी इस ऋतु में लगे निराली ।।१०१।।

हे [४]मन्तव्य-विमूढ़ गुढ़! गहरे! हेमन्त! संसर्ग से-
क्यों सीत्कार करा रहा विफल ही भोले वधू-वर्ग से? ।
जो है साथ [५]रतेश के कि, उनमें जैसे रसोद्गार है,
वैसे किंचित-मात्र भी न इनमें, ये तो बलात्कार है ।।१०२।।

[६]जड़ उपकृत भी दुखद है, क्या फिर यदि [७]अपकाल ।
यह [८]पाला भी मारता, बूढ़ों को विकराल ।।१०३।।

★ ★ ★

क्या यात्रोचित है सखे! शिशिर है, पा पूर्ण हेमन्त क्या?,
आगामी फिर है वसन्त?, ऋतु का पाते कहीं अन्त क्या? ।
यों तो वर्ष-छटा सभी ऋतुमती; कान्ता नहीं क्या, कहो,
मेरा तो कहना यही, ऋतुमती [९]होते यहाँ ही रहो ।।१०४।।

क्यों हे मित्र! विदेश में रह रहे, यों ही पड़े क्लेश में;
हा! आवश्यक है धनार्जन मुझे, व्यापार क्या देश में? ।
ओहो! राज्य स्वतन्त्र है न; पर क्या श्रीमन्! नहीं है पता?,
[१०]मोती है बरसा रही भवन में [११]अश्रान्त हैमी [१२]लता ।।१०५।।

[१३]कमलाकर में कमल को म्लान शिशिर से जान ।
कमलनैनि! मुख-कमल पर तू घूँघट मत तान ।।१०६।।

---

१ हेमन्त की अँगीठी। २ माधवी लता (लसन्ती=खिलती)। ३ एक-प्रकार की मिठाई। ४ विचार-मूढ़। ५ प्राण=वल्लभ। ६ जाड़ा और मूर्ख। ७ कु-समय। ८ रक्षित, पोसा हुआ और हिम (तुषार)। ९ अर्थात् गर्भाधान के बाद भले जा सकते हो। १० आँसू ध्वनित है। ११ लगातार। १२ सोने की बेल अर्थात् स्त्री। १३ तालाब में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[1]दन्तक्षताधरपुटा अति-गौर दीखी –
जो पूर्ण-शंकित शशाङ्क-कला सरीखी –
कामाङ्गना, शिशिर का बल सो बताती,
लज्जा-कलङ्क-तम से बच शान्ति पाती ।।१०७।।
[2]प्रिय कान्ति, प्रसाद, ओज को-
क्रम से पा धरते प्रमोद को ।
रघुवंश-कुमार माघ से
रुचि पूरी करते सुखी वसें ।।१०८।।

धनिकों के कर-चरण भी [3]मौजों में इस काल ।
झेल रहे [4]आपद कृषिक, अहो! कर्मगति-जाल ।।१०९।।

★ ★ ★

वनलक्ष्मी-दर्शन-रसिक प्रिय-अलि को लख चूर ।
यों अलापती जानकी फिरने लगी अदूर ।।११०।।
प्रिय [5]मधु-सूदन आप हैं मैं [6]कमलालय कथ्य ।
अतः दोहरी प्रीति में [7]छन्द [8]दोहरा पथ्य ।।१११।।
[9]षट्पद के सम्मुख नहीं द्विपद-चतुष्पद-शक्ति ।
नहिं की वामन-कोल ने, तुमने की मधु-भक्ति ।।११२।।

---

१ जिसका होठ प्रिय का काटा हुआ था, जो कलङ्की चन्द्र-कला के समान पूर्ण शंकित दीखी, ऐसी वह कामांगना (कामिनी स्त्री) शिशिर का बल बताती हुई अपने लज्जा-कलंक से बचकर शान्ति पाती है। अर्थात् वह शीत का बल बता कर अपने होठ के फटने को सिद्ध कर देती है। चन्द्रकला भी कामाङ्गनाशि-शिर=शिव के शिर का बल बता कर तम=राहु से बचकर शांति पाती है। २ ऋतु समागम के कारण क्रम से कान्ति, प्रसन्नता और तेज की वृद्धि को पाकर राम शिशिर-प्राप्त माघ मास से अपनी रुचि को पूर्ण करें। ध्वनित अर्थ:-रघुवंश में कान्ति, कुमार-संभव में प्रसाद और माघ (शिशुपाल-वध) में ओज गुण पाकर अपनी रुचि को पूर्ण करें। ३ मौजा (करच्छद व पदच्छद) और मौज=आनन्द-लहर। ४ विपदा और आ (आकर) पद=पैर (झेलते=पकड़ते)। ५ विष्णु और भौंरा। ६ लक्ष्मी और कमलों का स्थान। कथ्य काले योग। ७ आशय और वृत्त। ८ द्विगुण और दोहा। ९ षट् (छः) पद (ऐश्वर्य) वाले के सामने और छः पैर वाले के सामने। इसी से वामन दो पैर वाले ने और कोल=चार पैर वाले वराह ने मधु दैत्य का नाश और मधु (पुष्प-रस) का सेवन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे मधु-सूदन ! [१]कमल में रमते-रमते आप ।
बढ़कर किस [२]लय में लगे खूब रहा रस-माप ॥११३॥
[३]रामचन्द्र, रघुवर, तथा रामभद्र-रघुवीर ।
तुम द्विरेफ हो पद्मिनी-प्रिय बनने को धीर! ॥११४॥
प्रिया-संग में हे रसिक! प्रिय नकार को मान ।
करते [४]नलिनी-सङ्ग अब [५]अलिनी को कम जान ॥११५॥
[६]पद्मबन्धु कहला अहो! [७]अन्धकार-सम-भाव ।
रखते हो, लखते नहीं क्या है आत्म-प्रभाव ॥११६॥
[८]पद्म-रक्त होता कि जो वह है पद्मारक्त ।
क्योंकि व्यक्त साकार है, निराकार अव्यक्त ॥११७॥
पद्म-राग यदि प्रिय तुम्हें क्यों नहि पद्मारागा? ।
सम जल-झाग मराल को, अलि को सम वन-बाग ॥११८॥
यों दंपति ने आपसी रचते हृदय-विनोद ।
[९]पञ्च-बटी संपत्ति का लिया अकेले मोद ॥११९॥

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता एकोनविंश प्रतान समाप्त ।

---

१ कमल में और कमला (लक्ष्मी) में यह ध्वनित है। २ यहाँ प्रश्नोत्तर अलंकार है:—किस लय में लगे? इसी में उत्तर है कि किस लय अर्थात नवीन पत्ते में। ३ इन पर्याय-वाची चारों ही शब्दों में दो-दो रेफ है। द्विरेफ=भ्रमर। पद्मिनी=कमलिनी और उत्तम जाति की स्त्री। ४ नलिनी=कमलिनी। ५ अलिनी=भौंरी। इन दोनों में नकार-मात्र का अन्तर है। ६ भ्रमर और सूर्य। ७ अन्धकार की समानता अर्थात् कृष्णता। ८ जो कमल-रागी होता है, वह कमला (लक्ष्मी) अनुरागी होता ही है, क्योंकि लक्ष्मी पद्मालया है। ये दोनों शब्द विरोध भी झलका रहे हैं। पहला शब्द आकार की मात्रा न होने से। अव्यक्त=अप्रकट है। आकार=आकृति से रहित अव्यक्त होता ही है; इसी प्रकार पद्मारक्त साकार होने से व्यक्त=प्रकट है। पद्म एक प्रकार की निधि भी है, उसका अनुरागी भी लक्ष्मी का अनुरागी हुए बिना नहीं रह सकता। ९ दूसरा अर्थ यह झलक रहा है कि पाँच महाभूतों में बटी हुई संपत्ति का।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

बीसवाँ प्रतान

प्रवेशिका

राक्षसी शूर्पणखा का श्रीराम को देखते ही मोहित हो जाना, उनके साथ विवाह का प्रस्ताव करना, श्रीराम द्वारा अस्वीकृत होने पर उसका लक्ष्मणजी के पास जाना, लक्ष्मणजी द्वारा उसके नाक-कान काटना, क्रुद्ध शूर्पणखा का राक्षस नायक खर-दूषण-त्रिशिर को चौदह हजार सेना के साथ आक्रमण के लिए भेजना, श्रीराम द्वारा राक्षस-सेना का संहार, दण्डकारण्य में शान्ति से मुनियों का निश्चिन्त हो जाना, शूर्पणखा द्वारा लङ्केश रावण को वृत्तान्त सुनाकर सीता-हरण के लिए उत्तेजित करना, मायावी राक्षस मारीच का कञ्चन-मृग बनना, श्रीराम का उसके पीछे दौड़ना, कपटमुनिवेश में रावण द्वारा सीता-हरण, गीधराज जटायु का रावण के साथ संघर्ष, श्रीराम का सीताजी के लिए विलाप, रावण का सीताजी को वाटिका में ठहराना, श्रीराम द्वारा जटायु की अन्त्येष्टि, सीताजी की खोज करते हुए राक्षस कबन्धक का वध, उसके संकेतानुसार भक्तिमती शबरी से श्रीराम-लक्ष्मण की भेंट आदि का इस प्रतान में विशद वर्णन है।

विशेष : उक्ति-वैचित्र्य- सीताजी और रावण के हितार्थ शुक (ध्वनितार्थ भावस्थ आशुकवि) के ये शब्द विलक्षण कवि-प्रतिभा के प्रतीक हैं :-

'रच निजर हार आ, हृदय-हित शारदा ! ।
पद पलट मार है, मम वचन सार है'' ।।'

इसकी व्याख्या प्रतान में यथास्थान द्रष्टव्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बीसवाँ प्रतान

[1]तन्द्रा को तजिए, तनिक चन्द्रालोक-समान–।
लखिए सब संसार को, रखिए [2]प्रभु-शशि-ध्यान ॥२०॥

दोनों दाँतों से परिमण्डित ज्यों सिन्दूरित शुण्डा,
दाढ़ों से युत जीभ काढ़ती, [3]दृग-ज्वालोज्वल-तुण्डा ।
काल-कराल-कलेवर, दुर्दम गति से [4]पथिकोन्मथिनी–
कभी वहाँ आई शूर्पणखा, ज्यों बिगड़ी मद-हथिनी ॥१॥

★ ★ ★

फूलों को चुनती लता-भवन में संन्यस्त नारी छिपी,
माता का घँघरा उघाड़ गहरा भिल्ली-कुमारी छिपी ।
धीरे-से मृग-चर्म ओढ़ वटु तो लेटे वहीं, मैथिली–
स्वामी की चट पीठ आड़ रख जा बैठी न किंचित् हिली ॥२॥
स्वामी को रतिनाथ-रूप उसने ज्यों ही लखा दूर से,
माया के बल रूप को धर लिया [5]सौवर्ण-आपूर-से ।
बोली आकर पास, हे रति-पते! मैं आपके दर्श से–
ऐसी मोहित हूँ, चकोर-वनिता ज्यों [6]चन्द्रिकोत्कर्ष से ॥३॥
मै हूँ उच्च-कुलीन रूप-निधि ज्यों, त्यों आप भी रत्न-से–
होते ज्ञात, मुझे कृतार्थ करिए, क्या सोचते यत्न-से! ।
है सौभाग्य अतीव जो तुम मिले, सद्देह को प्राण-से,
रक्षा आप करें, अति-व्यथित हूँ मैं काम के बाण-से ॥४॥
माया के बल पलट लें मायावी आकार ।
पर क्या पलटा जाय निज [7]प्रकृतालाप-प्रकार ॥५॥

★ ★ ★

---

१ नींद की झलक। २ ईश्वर-रूप चन्द्र को ध्यान में रखिये। ३ नेत्ररूप-ज्वालाओं से जिसका मुख चमकता था। ४ बटौहियों को हानि-कारिणी। ५ सोने के ढेर के समान। ६ गहरी चाँदनी से। ७ स्वाभाविक बातचीत करने का ढंग (यहाँ मैं काम के बाण से अति-व्यथित हूँ, यह कहना कुलीन स्त्री की सभ्यता के बाहर है)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोले राम, मिलान तो मिल [१]गया, तो भी निरा भेद है,
हे मायाविनि! [२]यातुधानि! मुझ में माया नहीं खेद है ।
मायावी यदि कान्त हो न कुछ भी, स्त्री हो सु-मायाविनी,
भावी पूर्ण [३]विचार्य है, कि नर की कैसी दशा भाविनी? ।।६।।

सारे जीवन का नियामक अहो ! दाँपत्य-सम्बन्ध है,
जो हो पूर्ण न छान-बीन इसमें, विघ्नों भरा बन्ध है ।
हाथों कीच लपेटना, फिर उसे जो तोड़ देना वही,
सद्दाम्पत्य यथार्थ प्राप्त करना पुण्यों बिना हो नहीं ।।७।।

तूने क्या कुल को कलङ्कित किया प्राणेश औ बाप के?,
त्यागा हो तुझ को तभी स्व-पति ने मारे मनस्ताप के? ।
या तूने उसको परा-रत तजा?, दोषी यहाँ कौन है?,
दोषी को नृप-दण्ड क्या कुछ हुआ?, यों पूछते मौन है ।।८।।

जो है तू विधवा महाकुल-भया, तो क्यों न [५]एक-व्रता?,
ऐकव्रत्य न दे रही निवहने जो काम की तीव्रता ।
तो [६]आत्मोपम ही बना पति, [७]पुनर्भू के पुनर्भू भला,
मैं एकव्रत हूँ सती-सुमणि से, [८]सद्वृत्ति ही मङ्गला ।।९।।

★ ★ ★

जाना, दाल गली यहाँ न, न टली, सौमित्रि से जा मिली,
बोली, [९]एकक आप हैं, मम यही आशा-लता है खिली ।
ये तो हैं विपरीत-[१०]वर्ण, भगवन्! ज्यों नाक और कान हैं,
दोनों हैं हम एक-वर्ण अपने दाम्पत्य से मान हैं ।।१०।।

---

१ यह उसके वचनानुसार बाहिरी मिलान के लिए कहा गया है। २ हे राक्षसी!। ३ विचारने योग्य। ४ पर स्त्री में आसक्त। ५ एक ही धर्म-विवाहित पति का व्रत निभानेवाली। ६ अपने सरीखा। ७ रौंड के रेंडुआ (भला=हितकर)। ८ सदाचार ही कल्याणकारी है। ९ अकेले। १० ज्यों नाक-कान विपरीत वर्ण (व्यञ्जना) हैं, त्यों ये (सीताराम) विपरीत-वर्ण (गौर श्याम) हैं; वा ये (राम) मुझ (गौरवर्ण) से विपरीत श्यामम हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे बोले, तुम युक्त हो कह रहीं, भद्रे! मुझे भी कहीं–
हा! ऐसी विपरीत वर्ण-रचना पूरी सुहाती नहीं ।
जो चाहो, [१]इनको विलुप्त कर दूँ ?, बोली कि, बाधा टले,
काटे सत्वर नाक-कान उसके सौमित्रि ने खड्ग ले ।।११।।
ये तीनों पिचकारियाँ रुधिर की भावी जताने लगी,
थी मानो खर-दूषण-त्रिशिर के विध्वंस की बानगी ।
चिल्लाई वह घोर रूप धरके उच्छ्वास ले आह से,
लौटी यों कहती हिमायत-भरे उत्ताल उत्साह से ।।१२।।
हत्यारे ! अति-निर्दयी! कुटिल! रे विश्वासघाताग्रणी!
रे चालाक-चरित्र ! चंट! चुगले! रे चौर-चूड़ामणी! ।
तू ने दाम्भिक! दम्भ दारुण किया, ये देखते हैं सभी,
रे उद्दण्ड! प्रचण्ड दण्ड तुझको मैं हूँ दिलाती अभी ।।१३।।
[२]''चण्डांशुवंशाग्रग को [३]वितण्डा–
रण्डा बताती न टली प्रचण्डा ।
[४]दण्डार्ह जाना फिर अङ्ग खण्डा,
[५]चण्डार्य नें यों प्रतिवाक्य [६]मण्डा ।।१४।।
स्व-स्त्री को [७]मन-भर राम ने बखाना,
अन्या को उस छिन में [८]छटाङ्क छाना ।
[९]मासा ही रघुप-कलत्र को यती ने,
अन्या को मन-उपरान्त [१०]तोल चीन्हे ।।१५।।

★ ★ ★

श्रीराम देख घटना कुछ मुस्कराये,
सीतादि का कुल हँसा, वटु खिल्खिलाये ।
अट्टाट्ट-हास कर भिल्ल-कुटुम्ब कूदा,
साश्चर्य दर्शि-जन ने दृग को न मूँदा ।।१६।।

---

१ शूर्पणखा के आशयानुसार सीता-राम की लक्ष्मण के आशयानुसार नाक-कान की। । २ सूर्यवंश के अग्रणी राम को। ३ मिथ्यावाद। ४ दण्डयोग्य। ५ क्रुद्ध हुए आर्य (लक्ष्मण) ने। ६ सजाया (दिया)। ७ जी भर कर, और मन (परिमाण) वाली। ८ छटा (तड़क भड़क से चिह्नित और छटाँक (चरित्र से)। ९माता समान और मासे-भर)। १० तोल (तुलना) की दृष्टि से चरित्र-रूप को हुए जाने (राम की ओर) तथा वजन को पहचाने हुए लक्ष्मण की ओर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोले [१]व्रती, रघुपते ! हमने गिनी है,
पीछे [२]चतुर्दश-सहस्र-अनीकिनी है ।
सो आयगी सब यहाँ बदला चुकाने,
ये भिल्ल अध्वग लगे निज को लुकाने ।।१७।।

बोले [३]जयी, अनुज! मैथिल-बालिका को-
ले साथ शोभित करो तृण-शालिका को ।
आया सु-योग, बस मैं भिड़ता अकेला,
देखें सकौतुक सभी रण-रङ्ग-खेला ।।१८।।

मैं आज शान्ति-वन दण्डक को करुँगा,
उद्दण्ड चण्ड रिपु-मण्डल को हरूँगा ।
यों सिंहनाद करते प्रभु के करारे-
दीखे खर-त्रिशिर-दूषण-सैन्य सारे ।।१९।।

[४]संचाली खर, दूषण त्रिशिर थे पीछे तथा बीच के-
[५]रक्षी, शूर्पणखा-मुखेंजिन जिसे लाया बलात् खींचके ।
ठेलाठेल-भरी भटादि-जन से, चीत्कार से चेहरे-
चेताती वह सैन्य-रेल-शकटी आई धड़ाका धरे ।।२०।।

लगी बरसने उधर बाण-रज सेना-आँधी,
राम-मेघ ने इधर झड़ी शर-जल की बाँधी ।
[६]यही अन्त में दीखी वैसी मूसल-धारा,
फटक पाय जिसके कि सामने कौन करारा? ।।२१।।

सब विलीन [७]वह हो गई लगी एक-दो ही घड़ी ।
केवल शूर्पणखा बची ज्यों [८]तप-लू शीतल पड़ी ।।

★ ★ ★

---

१ वहाँ के निवासी मुनि। २ हिमायत में १४००० सेना है। ३ राम। ४ ड्राइवर। ५ गार्ड। ६ झड़ी ही। ७ सेना-आँधी। ८ गरमी की उष्ण वायु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वत्र शान्ति प्रकटी सु-तपोवनों में,
श्रीजानकीश-जय-जल्प जगा जनों में ।
माङ्गल्य-मण्डक हुई वह दण्डक-श्री,
छाई अतीव प्रभु-कीर्ति अखण्डकश्री ।।२२।।

भेजा पूर्व अकम्पनाख्य [१]चर को देके स्व-संदेश को,
पीछे शूर्पणखा विलम्ब लखके दौड़ी स्वयं देश को ।
सारी बात बढ़ा-बढ़ा कर कही [२]साक्रन्द लंकेश से,
सो सानन्द सुना किया, तब वही बोली [३]रसोन्मेष से ।।२३।।

मैंने भेजा प्रथम चर को हे दशग्रीव! तो भी,
आनाकानी तुम कर गये क्यों भला शौर्य-शोभी? ।
मैंने सारा जगत विजयिन्! साधके यत्न देखा,
वैसा कोई पर नहिं कहीं दिव्य स्त्री-रत्न देखा ।।२४।।

सौन्दर्य क्या कह सकूँ जनकात्मजा का,
होती मुखेन्दु-बल से जिसके कि [४]राका ।
पूरी लगी टकटकी अतएव रम्भा-
आके जिसे निरखती रखती अचम्भा ।।२५।।

रामोन्नति-स्मरण से कुछ क्रोध जागा,
स्त्री-रत्न के श्रवण से स्मर-योध जागा ।
मात्सर्य, लोभ, मद आदिक ज्ञान-द्वारा-
षड्वर्ग [५]वीर-वर से न गया निवारा ।।२६।।

बोला दशानन, दशा न [६]नटे हमारी,
तो बात साहस किये बन जाय सारी ।
आया सु-योग, न विलम्ब अतः करूँगा,
स्त्री-रत्न को कर प्रयत्न अभी हरूँगा ।।२७।।

---

१ गुप्त दूत। २ रोने के साथ। ३ इसको प्रकट कर। ४ पूनो (की रात)। इसलिए चन्द्र को राकेश कहते हैं। ५ मोह-सहित षड्वर्ग वीर रावण से ज्ञान-द्वारा रोका नहीं गया, क्योंकि ज्ञान-वीर नहीं था। ६ मना नहीं करे अर्थात् यदि साथ दे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यों ठान के चल पड़ा, दशकण्ठ आया–
मारीच के निकट, वृत्त सभी सुनाया।
बोला कि जो तुम रचो सु-विचित्र माया,
स्त्री-रत्न को समझ लूँ निज हाथ आया ॥२८॥

★ ★ ★

मारीच बोला मति है तुम्हारी–
मारी गई, जो यह बात धारी।
हा! रीति से नीति नहीं विचारी,
नारी हरे तो क्षति है हमारी ॥२९॥
स्व-कार्य में सार-असार सारे–
एकान्त में पूर्व नहीं निहारे।
न मंत्रियों के मत ही विचारे,
षड्वर्ग-हारे सब भ्राँति हारे ॥३०॥
जो क्रोध में आकर ऐंठता है,
बिगाड़ को सो कर बैठता है।
बिगाड़ के बाद सुधार होना–
दुःसाध्य है, ज्यों क्षय-रोग खोना ॥३१॥
वार्ता अभी तो निज हाथ की है,
जो बन्धु ही के यह साथ की है।
जो हाथ से वा घर से कढ़ेगी,
दाहार्थ [1]धूमानलवद् बढ़ेगी ॥३२॥
लङ्केश बोला, तुम बात वैसी–
बना रहे, भीरु-कराह जैसी।
उत्साहना दूर, उलाहना है,
सराहना दूर, कराहना है ॥३३॥
मैंने हरी नाग-कुमारियाँ हैं,
हरी अनेकों सुर-नारियाँ हैं।
कोई हुआ क्या मम हानिकारी?,
अदम्य है शक्ति अहो! हमारी ॥३४॥

★ ★ ★

१ धुएँ की आग के समान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मारीच बोला तुम भूलते हो,
[१]अहंक्रिया के वश फूलते हो।
अदम्य है शक्ति परेश ही की,
न शेष की है, न सुरेश ही की ॥३५॥
हाँ, मैं तुम्हारा बल जानता हूँ,
वीराग्रणी हो यह मानता हूँ।
परन्तु [२]रामारुण के करारे–
प्रताप के सम्मुख एक तारे ॥३६॥
मैंने [३]बली का बल आजमाया,
सुना न कोरा कवि का सुनाया।
जीते हमारे, सुनते हमारे,
सहस्त्रशः राक्षस क्या न मारे ॥३७॥
श्रीकार्तवीर्य–विजयी भृगुनाथ को भी,
आलोकके जिन [४]भवायुध–माथ को भी।
होना पड़ा कुछ विमन्द प्रभाविता से,
यज्ञाग्नि को जिस प्रकार दिनेशिता से ॥३८॥
क्यों स्त्री–मणी–हरण के हित छेड़ते हो–
[५]सुप्ताहि को, विफल बन्ध [६]उधेड़ते हो।
उत्कृष्ट से न भिड़ना सविवेकता है,
है पूर्णलाभ, उससे यदि एकता है ॥३९॥
भूले अभी क्या तुम, [७]पुञ्जिकस्थला–
प्रसङ्ग का ध्यान धरो जंरा भला? ।
सामान्य स्त्री भी पर की अभोग्य है,
स्त्री पै बलात्कार सदा अयोग्य है ॥४०॥

---

१ अहंकार। २ राम–रूप सूर्य। ३ (यहाँ) राम का। ४ शिव–धनुष के भञ्जक को भी (आलोक के=देखकर)। भवायुध–माथ (संसार–रूप शस्त्र को=भञ्जक) यह अर्थ ध्वनित है। ५ सोते साँप को। ६ बन्ध उधेड़ना=बनी हुई बात का बिगाड़ बैठना। ७ पुञ्जिकस्थला की छेड़–छाड़ से रावण को ब्रह्मा का शाप हो चुका था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोये द्विज-षट्कर्म सब, रहा एक आदान ।
कहाँ दान की श्रेष्ठता कहाँ निन्दिताऽऽदान ।।४१।।

राम को जो जनक ने दी सीता, [1]संप्रदान है ।
तुम्हारा [2]छुन्न से लाना [3]अपादान महान् है ।।४२।।

क्या क्या कहूँ सुकार्य के [4]कारक हैं श्रीराम ।
तुम [5]दारक हो, कह रहे दोनों ही के नाम ।।४३।।

क्या क्या कारक राम है, मैं दारक किस भाँति? ।
उपकारक उसके तुम्हीं, अपकारक मम ज्ञाति ! ।।४४।।

कारक भाव न राम के सुने, सुनो रख ध्यान ।
अपनी दारकता सुनो मुझे हितू निज जान ।।४५।।

भर्ता राम, न राम को तुम तजो, श्री-वृद्धि है राम से,
आत्मा दो चट राम को तुम, पृथक् क्या सिद्धि है रामसे? ।
सारा नाटक राम का यह रचा, होओ रसी राम में,
स्वामी राम ! सुबुद्धि दें, फिर उसे जोड़े भले काम में ।।४६।।

छोड़ा पैतृक कर्म भद्र! तुमने, तोड़ा [6]सुसम्बन्ध को,
घोड़ा जो हय-मेध [7]हेतु, उसको मोड़ा लगा बन्ध को ।
थोड़ा भी न रखा सुशिष्टपन जो फोड़ा महामर्म को,
जोड़ा क्या शुभकर्म, दारक तभी हो डालते धर्म को ।।४७।।

यों दुःसाहस एक ही कर रहे अन्याङ्गना छीनने,
होंगे किन्तु निदान वंशभर को नाकों चने बीनने ।
होता नाविक एक [8]अन्य तरणी सम्पर्क का जो रसी,
नो-यात्री-युत मग्न हो वह स्वयं भारी कराता हँसी ।।४८।।

---

१ श्रेष्ठ दान और 'राम को' यह संप्रदान कारक। २ सूनी जगह से। ३ निन्दित आदान और छुन्न (सूनी जगह) से' यह अपादान कारक। । ४ करने वाले (पिता)। ५ नाशक और बालक। ६ कुबेर का बंधुत्व। ७ विश्रवा ने जो घोड़ा छोड़ा था, उसे रावण ने लाकर बाँध दिया था। ८ दूसरे की नाव से टक्कर। रेफ में उकार की मात्रा को च्युत मानने से अन्य-तरुणी=पर स्त्री का अर्थ भी झलकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]कर्मठ नर विद्या-पठन, ईश-रटन निज धर्म।
गिनते तन-धन-जन गठन, हठ न कभी, न कु-कर्म ।।४९।।

★ ★ ★

बोला दशास्य अति-रुष्ट, बखानते हो–
शत्रु-प्रकर्ष, मम बात न मानते हो।
मारीच ने लख लिया कि दुराग्रही है,
रक्षा-कुलान्त-विधि ही कहला रही है ।।५०।।
हो जो [२]विधीहित वही, जय को मनाऊँ,
जो रामचन्द्र-कर से [३]अमृताऽर्घ पाऊँ।
यों चित्त में लख कहा, मरना पड़ेगा,
जैसा कहा, विवश हो करना पड़ेगा ।।५१।।
बोला दशानन, वृथा मन मारते हो,
क्या [४]मर्त्य मारक बने, न विचारते हो।
मायावि-मौलिमणि! कौन कहे तुम्हारी–
मायामयी गति तथा मति भी न-हारी ।।५२।।

★ ★ ★

बोला [५]नयज्ञ, रचते जिससे कि माया,
माया अधीन उसके, सब में समाया।
हो जानते न उसको यह भी उसी का–
माया-प्रभाव, जिससे क्षय [६]शेमुषी का ।।५३।।
सौभाग्य है मम कि जो सु-सहाय हूँगा,
माया पसार उससे हृय-[७]माय हूँगा।
देखा किया सभय केवल राम को ही,
होगा तथापि शुभ लाभ [८]विमुक्ति-दोही ।।५४।।
यों लङ्केश्वर से निजोक्ति कहते सद्भावना से भरी–
माया से मृग-मूर्ति मञ्जु मृदुला मारीच ने जो धरी।
सो थी चित्र-विचित्र काञ्चनमयी, वैदूर्य के शृङ्ग थे,
पन्ने के खुर, बिन्दु श्याम-मणि के जो थे वही भृङ्ग थे ।।५५।।

★ ★ ★

---

१ सच्चे कर्मवीर। २ दैव का चाहा। ३ राम के हाथ से मोक्ष-वस्तु। ध्वनित अर्थ है:–चन्द्र की किरण से अमृत। ४ मरण-शील (मनुष्य)। ५ नीतिज्ञ (मारीच)। ६ बुद्धि। ७ माया (अविद्या) हीन। ८ मोक्ष-दायक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

औधेश-दम्पति जहाँ स्थित थे, वह भी वहाँ ।
फिरता मन की आँकी झाँकी को करता रहा ।।५६।।
राम के वाम केली से बैठी जनक-दारिका ।
जैसे लगा टकटकी देखा की सु-कुमारिका ।।५७।।
ज्यों जातरूप-[१]सारंग क्या-[२]प्रसर में [३]रमा ।
ज्यों जात-[४]रूप-सा रंग क्या-[५]प्रसर में [६]रमा ।।५८।।
चकराता रहा तो भी चकराता रहा उन्हें ।
बहलाता रहा तो भी बहलाता रहा उन्हें ।।५९।।
कभी टकटकी दोनों ओर से मिलती रही ।
मन की कलियाँ दोनों ओर से खिलती रही ।।६०।।
चमू-[७]रुके न जो दीखे वे पा खेल [८]चमुरु के ।
चकचौंध रहे राम, क्या ठिकाने [९]वरोरु के? ।।६१।।
अन्त में जानकी बोली, इसे प्राणेश! लाइए ।
कुटीर का सलौना-सा खिलौना ही बनाइए ।।६२।।
बोले सौमित्रि से स्वामी, रखना तुम चौकसी ।
ऐसा न हो कहीं वीर! कुटी हो शून्य चौक-सी ।।६३।।
यों चेताके [१०]सचेता भी हुए लुब्ध कुरङ्ग में ।
ज्ञानी की भी मति फिरा देता दैव उमङ्ग में ।।६४।।

★ ★ ★

जिधर-जिधर भागा स्वर्ण-सारङ्ग आगे,
उधर-उधर पीछे राम धानुष्क भागे ।
जिस विधि मृग-वेषि-[११]ब्रह्मदेवानुसारी,
मदन-[१२]मथन भागे थे पुरा धन्व-धारी ।।६५।।

---

१ सोने का हरिण। २ पक्षी-समूह में। ३ खेला । ४ उमड़े हुए सौन्दर्य के समान रंग। ५ यौवन के वेग में। ६ समाया हो। ७ सेना में रुके नहीं दीख पड़े। ८ हरिण के। ९ स्त्री (सीता) के। १० सचेता ज्ञानी। ११ मृग वेषबनाये ब्रह्मा के पीछे २। १२ शिव। (हरिणी-वेषा सरस्वती के पीछे पढ़े हुए मृगवेष ब्रह्मा का धनुर्धारी शिव ने पीछा किया था)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकाग्र कर दृग्-[१]बाण, लक्ष को बींध राम ने।
भावी रक्षोऽन्त-फल को दिखाया पूर्व सामने ।।६६।।

''सीते! सौमित्रि! [२]सामी रे! रज में लोटते मुझे।
आराम-संगत करो ये बैरी घोटते [३]मुझे ।।६७।।

यों युक्ति-युक्त चिल्लाते दिखाते भी छल-क्रिया।
[४]ण को मिटा हरिण को हरिने हरि ही किया ।।६८।।

[५]मृगतृष्णा धरी सीता-माया-की रुचि पूरने।
[६]मृगतृष्णा हरी किन्तु परेश-रघुशूर ने ।।६९।।

उसकी आर्त-वाणी को सीता-लक्ष्मण ने सुना।
रघुनन्दन ही का है [७]आक्रन्दन यही चुना ।।७०।।

★ ★ ★

[८]देवी दे [९]वर को देने लगी देवर को विदा।
[१०]देव! दे [११]वर को स्वस्ति यों बोली [१२]वर-कोविदा ।।७१।।

सौमित्रि तो चुप रहे, पर हेम-कुरङ्ग की।
माया को ताड़ सोचा यों घटना है न ढंग की ।।७२।।

ज्यों-ज्यों देर लगी, सीता भीता संदेह में भरी।
बोली लक्ष्मण से, भागो, नहीं तो यह मैं मरी ।।७३।।

---

१ दृष्टि और बाण को एकाग्र करके। दूसरा अर्थ दृग (2) बाण (5) लक्ष को एकाधिक करके अर्थात् ५२००००१। तात्पर्य यह कि एक रावण के साथ बावन लाख राक्षस मरेंगे। २ सामने। ३ यह हरिण ने राम के करुण पुकार का अभिनय किया है, जिसे सुन लक्ष्मण का वहाँ पहुँचना आवश्यक हो जाय। मोक्ष-पथ के पथिक की पुकार भी ध्वनित है। सीता, सौमित्रि और हनुमान की कृपा बिना भक्त राम से नहीं मिल सकता। क्योंकि उसे कामादि शत्रु दबाते हैं। इसी से सीते! सौमित्रि! हे सामीरे! (समीर के अपत्य हनुमान!) यों दुःखावस्था में व्यतिक्रम से कहा गया है। आ (आकर) राम-संगत करो (राम से मिला दो)। ४ णकार को त्रिगुणा-विकार को णकार की तीनों रेखायें मानों त्रिगुण हैं। ५ स्वर्णमृग की इच्छा। ६ मृग (मारीच) की मन की प्यास। ७ आर्त-पुकार। ८ इस पद्य में चरणों में 'वर को' की आवृत्ति के कारण यमक है। ९ जय का वरदान। १० हे ईश्वर। ११ पति को। १२ श्रेष्ठ-विदुषी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुविधा में पड़े वे तो, ज्यों ही वाक्य सुना कड़ा ।
अन्त में स्वस्ति कहके प्रस्थान करना पड़ा ।।७४।।

बीच पा नीच लंकेश भिक्षु-वेश धरे भला ।
शिक्षा से माँगता भिक्षा सीता को हर ले चला ।।७५।।

"[१]रच निजर हार आ,
हृदय-हित शारदा ! ।
पद पलट मार है,
मम वचन सार है" ।।७६।।

यों आ शुक विख्यात द्विज दोनों के हित-अर्थ ।
रटा किया, पर कर दिया होनहार ने व्यर्थ ।।७७।।

★ ★ ★

हे राम! हा! पिता! माता! रक्ष हा! वन-देवता ।
ऐसे विलपती सीता हुईं भीता पति-व्रता ।।७८।।

रोती-रोती [२]पत्र धोती [३]कुररी-सी कु-रीति से ।
रथ-पञ्जर में डाली गई तुरत भीति से ।।७९।।

उलाहते आह-भरे पशु-पक्षी कराहते ।
सराहते सती ही को, नीच को विसराहते ।।८०।।

---

१ सीता और रावण के हितार्थ शुक द्विज-पक्षी तोता (ध्वनितार्थ आशुकवि ब्राह्मण) जो चित्रकूट से प्रभु के साथ आया था, पास आकर यों कह रहा है:-
हे शारदा! (मेरे लिए सरस्वतीरूप सीता!) आकर हृदय, में धरने के लिए, निजर=अजर हार बना। कदम पलट दे। मार=घात है। चौथा चरण स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त वह 'पद पलट' इस से यह मर्म सुझा रहा है कि हृदय के हित-कारक प्रथम चरण के पदों को पलट दे; अर्थात् आ रहा रजनिचर।
रावण की ओरः- हे सरस्वती! आकर इस रावण के हृदय के लिए हार (ज्ञान-रूप) रचदे। हे रावण! तू पद पलट अर्थात् लौटजा, मार=घात है अथवा मार (काम-प्रभाव) है)। ध्वनितार्थः-पद पलटकर 'मार(अर्थात् रमा=लक्ष्मी है, सामान्य स्त्री नहीं । २ पत्र रचना और परें । ३ एक तरह की चिड़िया जो प्रायः रोनेका-सा शब्द किया करती है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पथ में रथ को रोका जरठ-गीध जटायु ने ।
पोत को ज्यों कि रोका हो सिन्धु में वाम वायु ने ।।८१।।
छिन्न-भिन्न किया थोड़ा रथ को पूर्व चोंच से ।
लोहा लेने लगा पीछे उस पामर पोच से ।।८२।।
चोंच से नीच को नोंचा टोचा पाद-नखाग्र से ।
फटकारा व धिक्कारा, ललकारा मुखाग्र से ।।८३।।
पतोहू के लिए ठाना बलि-दान, शरीर से ।
लोहा न ले सका किन्तु उस राक्षस-वीर से ।।८४।।
था नाम-मात्र, पक्षी का युद्ध वीर निशाट से ।
क्या लोहा ले सके चूहा दृढ़ लोह-कपाट से? ।।८५।।
बखानी खेचरों ने भी गीध कीर्ति जहाँ-तहाँ ।
परार्थ साहस भला [१]आत्मोत्सर्गान्ति है कहाँ? ।।८६।।
अन्त में ले गया लंका भीत भी वह भीति से ।
टिकाया वाटिका में ही सीता को नीति-रीति से ।।८७।।
त्रिजटा से [२]भक्त बोले, तू सेवा से न हारना ।
ज्यों व्याकरण भाषा को सीता को अनुसारना ।।८८।।
त्रिजटा ने निज सहानुभूति असमान की ।
तो भी विलाप करने लगी विकल जानकी ।।८९।।

★ ★ ★

अह! नाथ! अनाथ हो गई, सहसा क्यों मन बुद्धि खो गई? ।
किसके शिर दोष मैं मढूँ निज दुर्लेख स्वयं मही पढूँ ।।९०।।
विधि-शाप मिटे कभी,? हठ का हो [३]अनुताप क्यों नहीं?
अब मैं हृदयेश? क्या करूँ?, मरना है किस यत्न से मरूँ? ।।९१।।
प्रिय-बोधन में न जी दिया, हठ से लक्ष्मण को विदा किया ।
उसका फल हाय ! पा रही, सच है, अन्त-दुखी दुराग्रही ।।९२।।
बिछुडूँ न कभी स्व-रत्न से, लख यों साथ चली प्रयत्न से ।
न हुआ यह इष्ट [४]दिष्ट को, प्रकटाया तब ही अनिष्ट को ।।९३।।

---

१ जहाँ आत्मा तक का त्याग कर दिया जाय (वैसा साहस)। २ विभीषण। ३ पश्चात्ताप। ४ दैव को।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अति-दूर अतीव आप हो, अब तो नाथ! कहाँ मिलाप हो? ।
प्रिय से मिलना असाध्य है, मम आत्मा मरणार्थ बाध्य है ।।९४।।
चुप-चाप कु-चौर-सा मुआ, हर लाया यह दुष्ट, क्या हुआ? ।
सिर पीट हताश जायगा, प्रभु मेरे व्रत को निभायगा ।।९५।।
टल जाय निशेश नेम से, टल जावे दिवसेश नेम से ।
न सती-व्रत तो कभी टले, जल जावे, मर जाय भी भले ।।९६।।
मरना मुझको अतीष्ट है, न कि जीना मुझको अभीष्ट है ।
प्रिय-हीन सती दिवंगता, बचती है हठि-दुष्ट-संगता ।।९७।।
पति हो वह ही सुहावना, यह ही अंतिम एक भावना ।
दिननाथ! तुम्हीं सहाय हो, व्रत के पालन का उपाय हो ।।९८।।
जब यों सुनके विलाप को, त्रिजटा थाम सकी न आप को ।
तब क्यों थम पाय जानकी, अनुभूतार्ति-कथा बखान की ।।९९।।

★ ★ ★

सुनो सखि! राम बिना जग सूना ।
प्रिय-वियोग-पावक ने मेरे हाय! हृदय को भूना ।।
उपवन-पवन दव न तुम कहती, मुझे तपाता दूना ।
इसीलिए गुमटी से बाहिर आते अति शिर धूना ।।
मुझको कुछ भी नहीं सुहाता इसका भी अब छूना ।
कन्द मूल फल सरस बताती सब है मुझे अलूना ।।
नागबेल नहिं किसी काम की जब न [१]खैर नहि चूना ।
प्रेमि-विरह-दुख हाय! सती को होता कभी न जूना ।।
त्रिभवन-खेल न पूरा पड़ता एक राम से ऊना ।
दुर्विधि ने [२]दुर्विधि दिखलाया मुझ को नरक नमूना ।।१००।।

★ ★ ★

यों जानकी-विकटसंकट जान आये-
[३]स्वर्नाथ साथ [४]अशनार्थ पदार्थ लाये ।
'होगा जयीश-मिलना' धृति यों बँधाई,
स्वार्थी स्वपक्ष-दुख में बनते उपायी ।।१०१।।

★ ★ ★

१ कत्था । २ बुरी तरह । ३ इन्द्र । ४ आहार के लिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उधर लौटते रघुनन्दन को [1]स्पन्दन बाँये भुज का–
दुखा रहा ही था कि, आगमन सम्मुख लखा अनुज का ।
माथा ठनका, कँपा कलेजा, जब अन्योन्य निहारा,
कह देते हैं लक्षण पहले भावी अनिष्ट सारा ।।१०२।।

लगा सपाटा चट पथ काटा, ज्यों ही कुटी निहारी,
शून्य खुली लख पड़ी, खड़ी ज्यों मुख फाड़े हत्यारी ।
फिर तो क्या कहना, गहनाशय! तुम तो सम्हले रहना,
मूर्च्छित हो रघुराज गिर पड़े, यह दुख तुम भी सहना ।।१०३।।

मन्द-क्रन्दन मन्द सुमित्रानन्दन वन्दन करते–
बोले रघुनन्दन पर दृग-जल-बिन्दु-[2]स्पन्दन करते ।
दीनबन्धु! हे धैर्यसिन्धु! प्रभु! मुख कौन सा दिखाऊँ?,
क्या कह कर मैं आज अल्पमति शिक्षा तुम्हें सिखाऊँ ।।१०४।।

हा दुर्विधि! मुझ मन्दभाग्य पर कैसी नौबत बाजी,
दुर्घटना-घन-घटा घोर क्यों आज अकालिक गाजी ।
'शिव-शिव' जपते, प्रभु-तनु छूते पुनः विलपते बोले,
आशुतोष! कुछ आशु तोष दें प्रभु को हे भव! भोले! ।।१०५।।

शोक-विमोचन! विश्व-विलोचन! अब तो लोचन खोलो,
अब मेरा है कठिन सम्हलना कुछ तो रघुवर! बोलो ।
कमलनैन के नैन खुले कुछ, पड़ी चैन कुछ [3]इनको,
[4]बोले गद्गद, घबराओ मत, छानो सकल विपिन को ।।१०६।।

दक्षिण-मुख ही चलो सु-दक्षिण! दनुज इधर ही रहते,
हुए अग्रसर धीर-अग्रसर रघुवर ऐसे कहते ।
कान्ता को कान्तार-भूमि में लगे ढूँढ़ने स्वामी,–
कभी विलपते ऐसे; शिव शिव रटा किये [5]अनुगामी ।।१०७।।

★ ★ ★

दयिते! इस प्राणनाथ को, हँसती क्या तुम त्याग साथ को? ।
न हुआ करती घनी हँसी, यदि हो तो वह हो अनर्थ-सी ।।१०८।।

---

१ फड़कना । २ अर्थात् आँसू झराते । ३ लक्ष्मण को । ४ राम बोले । ५ लक्ष्मण ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुमने मुझ को विदा किया, तब ही से तुम व्यर्थ, ज्यों क्रिया ।
न भला अब निष्फलार्थ हो, मुझ से शीघ्र मिलो, कृतार्थ हो ।।१०९।।
ढलता दिन है अये प्रिये!, फल हो क्या अति टेक के किये? ।
अरुणाम्बर शीघ्र साँझ-सी निकलो, उक्ति न जाय [1]बाँझ-सी ।।११०।।
यह है सति! रात [2]तामसी, फिर है आज अहो! [3]अमामसी ।
वन है अति ही भयावना, तुम हो भीरु, धरो सु-भावना ।।१११।।
विधि ने यह नाट्य क्या रचा, कुटिया में न सहाय भी बचा ।
वन में भय खाय क्यों नहीं, अकेली घर बीच भी रहीं ।।११२।।
तुम ने मृग की [4]धृणाकरी सुन वाणी [5]मदनिष्टता-भरी ।
[6]मृति जान, स्व-घात जो किया, वह मैं भी यह ठानता-प्रिया! ।।११३।।
मम पूर्ण यहीं विलाप हो, अगले जन्म प्रीति-[7]मिलाप हो ।
तुमने पथ जो लिया वही, मम होगा सम-लाभ-संग्रही ।।११४।।
अनुजात इसी वनान्त से मुख मोड़े घर को सु-शान्त-से ।
प्रिय-दम्पति-अन्तिम-क्रिया यदि हो साथ, कृतार्थ हों प्रिया! ।।११५।।

★ ★ ★

इस विलाप को यहीं रोकने चट बोले लघु भाई,
इधर आइए, सुन पड़ती है वाणी कुछ अकुलाई ।
आगे चल कर प्रांण-शेष उस खग जटायु को देखा,
वह बोला, मम अहो-भाग्य है, जो चिरायु को देखा ।।११६।।
देख दशा प्रभु ने जटायु को पल्थी-बीच लिटाया,
निज दर्शन करतल-स्पर्श से प्यास-प्रयास मिटाया ।
चिल्लू भर-भर सलिल पिलाया, पोंछ शरीर पपाला,
खुल उसके दृग-जल-द्वार ने [8]उनका भी चट खोला ।।११७।।
रुके-कण्ठ अति थके साँस से सकल सुनाकर घटना,
अहो ! अन्त में उसने छेड़ा राम-नाम का रटना ।

---

१ व्यर्थ सी। २ अँधियारी । ३ अमावस। ४ करूणा-जनक। ५ मेरी अप्रिय-घटना से भरी। ६ मृत्यु (मेरी) । ७ आपस का मेल। ८ राम का भी (दृगजल द्वार)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम पखेरु के पञ्जर से प्राण-पखेरू छूटे,
अन्तिम सेवानन्द [१]धन्यतर जटायु ने ही लूटे ॥११८॥
अन्तिम भी संस्कार राम ने उसका किया स्व-कर से,
लक्ष्मण ने की चिता-शीतली-करण-क्रिया स्व-कर से ।
कुसुम न केवल तरु-निकरों ने, अमरों ने भी बरसे,
इसीलिए रघुवर-कर-लालन नित्य चतुर्मुख तरसे ॥११९॥

★ ★ ★

कान्ता को कान्तार-भूमि में उन्हें ढूँढ़ने आगे,
मिला कबन्धक-नाम निशाचर नम्र-भाव को त्यागे ।
ज्यों कि तरसते महर्घ मणि को महा-सिंधु में भारी-
महा-मकर मिल जावे कोई भूरि-भीषणाकारी ॥१२०॥
नहीं [२]नाम ही केवल जिसका, किन्तु काम भी जिसका-
धोखा देता, वह जगती में हित-कारक हो किसका? ।
यही जान जानकी-रमण ने उस भक्षक को मारा,
सज्जन-रञ्जन पुरुषोत्तम को दुर्जन-भञ्जन प्यारा ॥१२१॥
अशरण-शरण कृपालु-चरण को शरण किया, उस शर से-
बिन्धे हुए उसने तो गिरकर, दैविक शुभावसर से ।
यों कहते चल बसा कि, हे प्रभु ! शुचि शबरी से मिलना,
अंतिम भव्य भावना क्या थी, [३]स्मित अमरी से मिलना ॥१२२॥
भक्षक की भी भद्र भावना भाँप भूमिजा-[४]पति ने,
उसका दाह किया निज कर से, की [५]कृति शरणागति ने ।
आगे चल निज-दर्शन प्यासी शुचि शबरी को देखा,
गिर चरणों में उसने मन-भर देखी रेखा-[६]रेखा ॥१२३॥

★ ★ ★

---

१ यहाँ 'तर' प्रत्यय 'दशरथ' की अपेक्षा जटायु की अधिक धन्यता जताता है। २ नाम तो कबन्ध (अर्थात् बिना-शिर का) और अन्य को मुख फाड़कर खाने को तैयार। ३ मुसकराई (देवाँगना से)। ४ राम ने। ५ वह काम उसकी शरणागति ने सिद्ध किया। ६ चरण की प्रत्येक रेख को।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाथ ने शबरी को अपनाया ।
झुककर कर-कमलों को धोकर पद-युग समुद धुलाया ।।
सुचिर-काल के भूखे-प्यासे रूखा-सूखा खाया ।
सरस-सरस दरसाते निज [1]रस [2]गोरस पिया सवाया ।।
उसको अति सकुचाते लख कर धन्य-धन्य बतलाया ।
अति-मनुहार-मनाव मना कर माँग लिया मन-भाया ।।
रखे [3]भरोसे प्रेम-परोसे फल खाये, सुख पाया ।
करके अन्त आचमन [4]सगमन बैठे लख धन छाया ।।
मधुरालाप-कलाप जताकर सरस मिलाप बनाया ।
सेवाऽऽ [5]सव-रीझी शबरी ने सुख सब-रीति मनाया ।।१२४।।

यश [6]वरीय भी तज यहाँ, न कि [7]शव रीता एक ।
त्रिदश-[8]वरीय-निवास को शवरी गई [9]प्रवेक ।।१२५।।

ज्यों [10]स्वर्निर्झरिणी मलापहरणी संताप-संहारिणी,
माता-[11]संस्मरिणी पयः-प्रसरिणी पद्मच्छटा-धारिणी ।
त्यों बाधा-हरणी तटस्थ-हरिणी-[12]माला-मनोहारिणी ,
पम्पा-पुष्कारिणी सु-शान्ति-[13]सरणी आगे मिली तारिणी ।।१२६।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता विंश प्रतान समाप्त ।

---

१ प्रेम वा आनन्द। २ छाछ। ३ अपने निमित्त रखे हुए। ४ कुछ टहलने के साथ। ५ भगवत्सेवा-रूप ही मँदिरा के नशे में चूर। ६ बड़ा भारी। ७ मृत-शरीर। ८ श्रेष्ठ। ९ प्रधान (शबरी) १० गङ्गा। ११ पय (जल-दूध) के पसार के कारण माता की याद दिलाने वाली। १२ तीर पर रही हरिणियों की कतार से मनोहर। १३ सुख-शान्ति की गली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

इक्कीसवाँ प्रतान

प्रवेशिका

ऋष्यमूक पर्वत के समीप विचरण करते हुए लक्ष्मणजी सहित श्रीराम की भिक्षुवेशी हनुमान जी से भेंट, हनुमानजी द्वारा उनकी वन्दना और स्वामी सुग्रीव के अग्रज बाली से भयभीत होने का वृत्तान्त-कथन, अपने कन्धों पर दोनों भाइयों को चढ़ाकर पर्वत शिखर पर पहुँचाकर हनुमानजी द्वारा श्रीराम सुग्रीव मैत्री करवाना, सीताजी के गिराये हुए आभूषणों को देखकर श्रीराम का व्यथित होना, सुग्रीव को आश्वस्त करने के लिए श्रीराम द्वारा पर्वत-समान दुन्दुभि राक्षस के शव को अँगूठे से सरका देना तथा सात ताल वृक्षों का एक तीर से बींधना, श्रीराम द्वारा बाली पर प्रहार, बाली को क्षमादान करके उसे परमधाम की प्राप्ति कराना, सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा और बाली-पुत्र अङ्गद का युवराज बनाना, सीताजी की खोज में वानरों का विभिन्न दिशाओं में गमन, श्रीराम द्वारा विशेष दूत के रूप में हनुमानजी को अभिज्ञान रूप में मुन्दरी देना, हनुमानजी का लङ्का के लिए प्रयाण इस प्रतान के वर्ण्य विषय हैं।

विशेष : शब्द-प्रयोग वैशिष्ट्य- श्रीराम के बाण द्वारा सात ताल वृक्षों के भेदन का कवि ने जो वर्णन किया है उसमें ताल शब्द के प्रयोग का वैशिष्ट्य दर्शनीय है।

श्रीराम के बाण-प्रहार से गिरे हुए बाली की स्थिति का **'श्रीराम'** रूप में वर्णन कवि की विलक्षण प्रतिभा का प्रतीक है।

प्रतान में रेखांकित अंश में **आर्या** छन्द का लाक्षणिक निदर्शन मननीय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इक्कीसवाँ प्रतान

नर-[1]जनि में ही द्योत कर [2]दर्श किया आदर्श ।
रामचन्द्र ही अद्भुत न, यह भी पादस्पर्श ॥२१॥

दोनों परिव्राजक-रूप दूर से
निहार अन्योन्य सुदृष्टि-पूर से ।
[3]अवार एवं पर-पार-तीर से
चले नहाते प्रमदाश्रु-नीर से ॥१॥
रोमाञ्च का कञ्चुक धारते हुए,
प्राग-जन्म का प्रेम विचारते हुए ।
"क्या बात है आज इन्हें निहारते-
कभी न मेरे यह नैन हारते ॥२॥

★ ★ ★

हानि-प्रणाशार्थ धरे सु-मूर्ति को
क्या पुण्य आते करने सु-पूर्ति को? ।
दूरस्थ भी संप्रति पास आ रहे,
[4]इष्टार्थ पार-[5]द्रुम ज्यों जना रहे ॥"॥३॥
ऐसी तरङ्गायित [6]नैक कल्पना-
पसारते मानस में अ-[7]जल्पना ।

---

१ नर-जन्म में ही द्योत (उजाला) कर। २ दर्श (निज दर्शन) को आदर्श बना दिया। 'न रजनि में ही' रात्रि में उजाला न कर अर्थात् सदा करके, दर्श (अमावस) को आदर्श (दर्पण) बना देना चन्द्र का अद्भुत काम है। वैसे ही उसके पाद-(किरण-) स्पर्श की अद्भुतता है। राम के पाद-स्पर्श ने अद्भुत किया ही था। ३ पम्पा के उरले और परले किनारे से। आमने-सामने से मिलने वाले दोनों राम और हनुमान की समता दिखाई गई है। ४ मन चाहे मनोरथ। ५ पार-तीर के वृक्ष ज्यों चलने वाले के पास आते दिखाई पड़ते हैं, त्यों मनोरथ भी। ६ लहरों के समान नैक-अनेक । ७ जिसमें बोलने का काम नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम-वातात्मज [१]बीच में मिले
ज्यों सिंह-शार्दूल नगीच में मिले ।।४।।

★ ★ ★

रघुवीर-जयी-पद नीरज में कपिवीर वनी-[२]रज ज्यों लिपटे,
जिस भाँति प्रियंकर शंकर के पद-पंकज में गुह [३]ठाट-ठटे ।
इन नायक के, उन पायक के न दृगश्रु बहे, मुद ही प्रकटे,
प्रभु ने कपि को, कपि ने प्रभु के पग को नहला जय-जल्प रटे। ।।५।।

मारुति ने व सियापति ने अपनी-अपनी पहिचान जनाई,
रीति-समेत विनीति-[४]सुनीति दिखा मन में अति-प्रीति मनाई ।
योग मिले, अपनी अपनी अपनीति-रची [५]खल-खोट सुनाई,
मानस में सब जान लिया, फिर मान लिया, तरने [६]तरि पाई ।।६।।

मारुति ने प्रभु को परखा, फिर दण्ड-प्रणाम किया चरणों को,
क्या उनके [७]अनिमेष बने दृग ढूँढ रहे द्युनदी-झरणों को? ।
वा शुचि [८]मानस ढूँढ रहा बहुधा [९]महिमालय के शरणों को?,
वा मन-वाल्मीकि गूँथ रहा पद के [१०]गुण-मौक्तिक-आभरणों को ।।७।।

राघव ने उनको कर से करते मनुहार-प्रयास उठाया,
मान लिया कि न काल लगा इतना, जब शम्भु-[११]शरास उठाया ।
अस्तु, यही जय-मैथिलजा-मिलनार्थ-निदर्शक लक्षण पाया,
[१२]पूर्व बरात कढ़े, अब रात-चमू-बहु-व्रात कढ़े वह जाया ।।८।।

---

१ पम्पा के आमने-सामने के किनारों के बीचों-बीच। २ वन की धूलि। ३ युद्ध-साज सजे हुए। ४ हनुमान् का विनय और राम का सु-नय। यथासंख्य अलंकार है। ५ दुष्ट (बालि-रावण) की बदमाशी। ६ आपस के मेल को मान लिया कि पार उतरने नाव मिली। ७ टकटकी लगाये। ८ मन और मान सरोवर। ९ कई तरह की महिमा की खान के हिमालय के शरणों को अपने बहु धाम (स्थान) देख रहा हो। १० गुण रूप मोतियों के हारों को। ११ शिव-धनुष। १२ पहले तो बारात निकले पर वह (जाया=स्त्री) मिली थी अब रात और सेना का बहुत व्रात=समूह निकलने पर मिलेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मारुत-नन्दन-चन्दन को रघुनन्दन ने उर-बीच लगाया,
आप निजापद-ताप, विलाप-कलाप भुला परिमोद जगाया ।
राघव के नयनोदक से कपि का मुख औ [1]उस से [2]उर न्हाया,
ज्यों घट के जल से शिव-लिङ्ग, तथा उससे जल-पट्ट सुहाया ॥९॥

★ ★ ★

ऐसे पारस्परिक मिलनानन्द को लूटते भी,
अन्तर्गुप्त-स्थिति-कथन के बन्ध से छूटते भी ।
संकोचों से अति सिकुड़ते भक्त को देख स्वामी—
बोले, क्यों हो सुभग! अब भी आप संकोच-गामी? ॥१०॥
यों स्वामी के वचन सुनते दास के नेत्र-कोये—
[3]दुःखास्रों से झट भर उठे, फूटके खूब रोये ।
पादाब्जों में फिर गिर पड़े, अङ्ग ज्यों ही पपोले,
उच्छ्वासों को भर-भर शनैः वीर यों वाक्य बोले ॥११॥
देखा मैंने, अपरिचित का जान लूँ मर्म सारा,
धोखा खायें हम न, लख यों भिक्षु का वेष धारा ।
अन्तर्यामी परख प्रभु को लाज से किन्तु ऊबा,
जी ही जी में यह कह रहा, नीर में क्यों न डूबा ? ॥१२॥
सर्वज्ञों से कपट-पटुता जो कि मैंने रची है,
हे त्रैलोक्याधिपति ! कहिए, बात ही क्या बची है? ।
मैं दोषी हूँ प्रभुवर? क्षमा कीजिए हे दयालो!,
स्वामी बोले शिर पर रखे हाथ, कर्त्तव्य पालो ॥१३॥

बोले वातात्मज मुदित हो भावि-कार्यानुसारी,
स्वामिन्! जो सम्मुख दिख रहा ऋष्यमूकाद्रि भारी ।
बालि-भ्राता-भय-वश वहाँ साधु सुग्रीव हारे—
पक्षालम्बी-सहित रहते मान्य स्वामी हमारे ॥१४॥
बाली कालावधि निज बता दुन्दुभि-[4]ध्वंस ठाने,
किष्किन्धा का—कह चल दिये—कार्य पूरा चलाने ।

---

१ कपि के मुख से अर्थात् आँसू पड़ते कपि-मुख से। २ राम का वक्षः स्थल । ३ दुःख के आँसुओं से। ४ दुन्दुभि-नामक असुर के नाश को।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोकों ने पा अवधि पर भी काल बीता घना-सा,
सौंपा राज्यासन तब [१]इन्हें, जो न थी [२]प्रोषिताशा ।।१५।।
दैवात् लौटे जब [३]वह तभी, राज्य लौटा दिया था-
भ्राता ही ने, न कि तनिक भी वाद भी तो किया था ।
किन्तु क्रोधी उन कुनृप ने, [४]दाय क्या, छीन स्त्री भी-
काढ़ा दूरों [५]द्रुत कर इन्हें, क्या न पालें [६]नयी भी? ।।१६।।
क्या राजा का [७]अनुजनु न हो तात-राज्यांश-भागी?
किन्तु द्वेषी [८]चपल नृप की हाय! दुर्बुद्धि जागी ।
जो स्त्री का भी सबल [९]उसकी छीनके जाय भोगा,
ईश द्वारा तुरत इसका क्या नहीं न्याय होगा? ।।१७।।

★ ★ ★

बोले सीतापति, पतित का काम है, जो पराई-
स्त्री वा लक्ष्मी अप-[१०]नियति से जाय ऐसे दबाई ।
कोई भी हो कुल-[११]युवति का, पिता-बन्धु, सो भी-
यों दुष्कर्मोद्यत न [१२]बचता, इन्द्र हो क्यों न तो भी ।।१८।।
जो बेचारे स्थितिवश प्रतीकार-सामर्थ्य खोते-
विश्वात्मा के चरण-शरणालम्ब में लीन होते ।
वे होते हैं परम विजयी, अन्त में सिद्धि पाते,
दीनों का तो शरण-द वही एक है, वेद गाते ।।१९।।

★ ★ ★

यों स्वामी के वचन सुनके श्रीहनुमान बोले,
[१३]बीती रात्री अब दिनमणी क्या रतौंधी न खोले ।
जो देखेंगे शुभ-[१४]दृग तुम्हें, क्यों न साफल्य होगा,
जो पापों का अब तक [१५]परीणाम था भोग्य, भोगा ।।२०।।

---

१ सुग्रीव को । २ प्रोषित (प्रवासी) की आशा। ३ बाली। ४ हिस्सेदार (छोटे भाई का) हिस्सा। ५ दुतकार कर । ६ न्यायी (आप भी)। ७ छोटा भाई। ८ लम्पट। ९ छोटे भाई की। १० नियमोल्लंघन (अनीति) से ११ कुल-युवति के लिए कोई भी (घर का न भी हो और भी) बड़ा पिता और छोटा बन्धु है। कुलयुवति कहने से वेश्या पर यह बात लागू नहीं। १२ अर्थात् दण्ड से नहीं बच सकता। १३ अर्थात् आपके पधारने पर दुर्दशा-समय जाता रहा अब क्या शुभ दशा नहीं लौटेगी? सूरज के निकलने पर रतौंधी खुल जाती है। १४ शुभ है दृष्टि जिनकी ऐसे उन आप दिनमणी को। १५ फल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मर्यादातिक्रमक रिपु को दण्ड देके सती का–
दुःखों से उद्धरण करना लक्ष्य है एक नीका ।
दोनों [१]ही को हितकर अतः मित्रता बाँध लेना,
होता श्रेयो-जनक [२]सदृशापत्ति को साथ देना ।।२१।।

मैंने माना रघुकुलपते! आप हैं शक्तिशाली,
मैं स्वामी की जय सुन चुका दण्डकारण्यवाली ।
तो भी साथी प्लवग लघु भी कोटिशः काम आते,
[३]राकाभर्ता समधिक सभी तारकों से सुहाते ।।२२।।

★ ★ ★

बोले भर्ता, सुमति हनुमन्! है तुम्हारी निराली,
नीतिज्ञों से छिप न रहती राजनीति-प्रणाली ।
बोले वायु-प्रभव, भगवन्! दास की क्या बड़ाई?,
प्राणों ही से तन चल रहा, श्वास की क्या बड़ाई? ।।२३।।

देखो स्वामिन्! अभिमुख, सुना ऋष्यमृकाद्रि प्यारी–
केकाओं के रव कर रहा है अगौनी तुम्हारी ।
[४]आसीनों से सहित उसकी हो अतः पूर्ण आशा,
एकाशा के [५]सफलक व्रती पूर देते [६]घनाशा ।।२४।।

क्रूरा भूमी चरण-मृदुता देख के नम्र होती,
ऐसे [७]धीरोद्धत गमन से तो न गाढत्व खोती? ।
सो दोनों ही मम इस प्रतिस्कन्ध को दें बड़ाई,
ऐसे पीछे [८]पड़, धर उन्हें, वीर ने की चढ़ाई ।।२५।।

★ ★ ★

---

१ आप और सुग्रीव को । २ जिसको आपत्ति सरीखी हो। ३ पूर्ण चन्दा। ४ उसके निवासियों से। ५ एक की आशा के पूरक। ६ बहुतों की आशा। ७ आपके वीरतापूर्ण गम्भीर गमन से। ८ पीछे पड़ना=आग्रह करना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीर-[१]स्कन्धाकलित उनकी देखके यों सवारी,
ऐसे वैमानिक तरकते पूर्ण आश्चर्य-धारी ।
क्या हाथी पै यह नर [२]महामात्र है, [३]चाप कैसे?,
सूर्येन्दू वा उदय पर हैं, क्या बने योग ऐसे? ।।२६।।

दूरों से जो द्विपद-[४]घटना दीखती नाभि-चुम्बी,
सो क्या ऐसे समय [५]उपवीताङ्क है कण्ठलम्बी? ।
तीनों ही के मुख-कमल की जो तिरङ्गी छटा थी,
सो सन्ध्या में उदित घन की क्या तिरङ्गी घटा थी? ।।२७।।

ज्यों ही देखा इसविधि उन्हें, ऋष्यमूकाद्रि-वासी-
शङ्का पाते लख मुख-छटा श्याम-गौरारुणा-सी ।
क्या थम्वे के असितं-धवले खण्ड से ही प्रकाशी,
भक्तानन्दी मुख [६]नृहरि का है नवीनार्क-[७]भासी? ।।२८।।

जैसे ऐरावत पर चढ़े इन्द्र हेमाद्रि जाते,
वैसे वातात्मज पर चढ़े राम प्रेमाद्रि पाते ।
जैसे [८]शत्रुञ्जय पर सुखासीन हो नागरों को,
वैसे [९]शत्रुञ्जय पर चढ़े देखते वानरों को ।।२९।।

जो लीला से त्रिजग धरते, शक्ति विश्वेश की है,
विश्वात्मा के शयन-वश, [१०]आसक्ति तो शेष की है ।
जो दोनों [११]को सुरुचि धरते, भक्ति [१२]वीरेन्द्र की है,
तीनों का श्री-सहित धरना, युक्ति [१३]धीरेन्द्र की है ।।३०।।

[१४]मन्दाक्रान्ता न कुछ-कुछ भी कंधरा वीर की थी,
सिंहाक्रान्ता यदपि गिरि-भू [१५]वंधुरा नीर की थी ।

---

१ हनुमान् के कन्धों पर की हुई। २ महावत। ३ धनुष क्यों है। अंकुश होना चाहिए। यह निश्चय-गर्भ संदेह अलङ्कार है। ४ कन्धों पर चढ़े दोनों के एक-एक पैर की माला के सरीखी मिलावट। ५ जनेऊ का चिन्ह। ६ नरसिंह का। ७ बाल-सूर्य-सी। ८ शत्रुंजय नामक अपने हाथी पर। ९ शत्रुविजयी (हनुमान) १० तल्लीनता। ११ विश्वेश (राम) और शेष (लक्ष्मण) को। १२ हनुमान की। १३ धीरोत्तम (भक्त कवि की) १४ थोड़ी दबी। छन्द का नाम होने से मुद्राऽलङ्कार है। १५ ऊबड़-खाबड़।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यानाऽ[१]श्रान्ता प्रकृति जिनकी मानसी पूर्व ही से,
वे क्यों [२]क्लान्ताकुलित-तनु हो योग पाके उन्हीं से? ।।३१।।

★ ★ ★

उन्हीं ने दोनों को गिरि-शिखरिणी भूमि पर के-
शिलाओं के सिंहासन पर बिठाया ठहरके ।
पुजारी के जैसे प्रणति करते वायु-सुत की-
शुभाशीषें देते रघु-तिलक ने पीठ थपकी ।।३२।।

बली ने सुग्रीवादिक स्वजन से वन्दन करा,
मिलाया दोनों को परिचय करा अद्भुत-भरा ।
उन्होंने सूर्येन्दूपम निज समान-[३]व्यसनिता-
जताते मैत्री को स्फुट कर दिया दैव-[४]जनिता ।।३३।।

तभी बोले वायु-प्रभव, सुख-कारी हवन हो,
सुरों का सम्बन्धी [५]सुरभितर-गन्धी पवन हो ।
[६]सुनर्मालापों से मिल-जुल करें भोजन सभी,
यही सन्मैत्री के सुख-जनक आयोजन सभी ।।३४।।

★ ★ ★

[७]वेगदर्शि-नामक कपि को क्या भोज-विलम्ब-सहन है?,
उसने जाना हनूमान का हवन अतीव गहन है ।
अस्तु, अस्तु, प्रभु-मनोमोद का द्वार इन्हीं ने खोला,
यों विचार अवसर निहार कर समुसकान कुछ बोला ।।३५।।

"वीर [८]जप रहे, [९]भविक-भोज में घर के अहो! बचे हैं,
आप और मा-[१०]बाप यहीं हैं, बाकी चची-[११]चचे हैं ।

---

१ ध्यान से नहीं थकी हुई। २ थके और व्याकुल-शरीर। ३ समान विपत्ति (सूर्य चन्द्र को भी राहु के कारण समान विपत्ति है)। ४ दैव-जनिता स्वाभाविक न कि मौखिक। ५ बढ़िया गन्ध वाला। ६ हँसी खुशी की बातचीत से। ७ शीघ्रता दिखानेवाला। ८ मन में सोच रहे। ९ मंगल-भोजन में। १० वायु और अञ्जना। ११ अग्नि और स्वाहा! अर्थात् वायु की मित्रता के कारण ये चाचा और चाची हैं। इन्हीं के लिए यह आयोजन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होम-ठाठ ठहराकर ही ये रहे, खरे [१]मुख-भव हैं,
जो शिव-रूप वायु के बेटे, मुख पर ऋचाऽ[२]वयव हैं'' ।।३६।।

बोले वीर, वेगदर्शी ने वेगदर्शिता स्फुट की,
इन्हें तुरत मृदु भोज चाहिए, बस बजते ही चुटकी ।
बोले भी तो ऐसे बोले, मानों दाँत नहीं हैं,
इनकी वाणी में संयुक्ताक्षर क्या भला! कहीं हैं? ।।३७।।

★ ★ ★

इस प्रकार के परम परस्पर-नर्मालापामृत से-
अधिक सरस उस प्रीति-भोज से वे सब [३]दैवादृत-से
पूर्ण तृप्त होते भी किंचित् तृप्त हुए न मनों से,
यों भी मिल न अघाते सज्जन, फिर क्या सु-साधनों से? ।।३८।।

रघुवर की मृदु-हास-कौमुदी शोक-पयोद-घटा से-
चिर-विलुप्त; वायुज-[४]प्रसङ्ग को पा कुछ कढ़ी छटा से ।
वह ही [५]राजदन्तमय नूतन चन्द्र-कला बतलाती-
विशद [६]पक्ष का बोध कराती [७]तम का क्षय जतलाती ।।३९।।

★ ★ ★

शिष्टाचार, विचार-शीलता, सात्त्विक उपहारों से,
प्रियाहार-सुविहारों से फिर समुचित व्यवहारों से ।
यों समशील-मित्रता-सुख को पाते शम्भु [८]धनद-से-
उन दोनों ने वह दिन पूरा किया अतीव प्रमद से ।।४०।।

अन्य दिवस, जो गगन-पन्थ से जाते समय सती ने-
अश्रु-सहित [९]निज भूषण डाले, जो कपियों ने बीने ।
उन्हें बताया रवि-[१०]नन्दन ने रघुनन्दन को दुख से,
लखते ही प्रभु के लोचन-जल बहे [११]सर्वतोमुख से ।।४१।।

---

१ पक्के ब्राह्मण हैं। २ मुख पर जो रेखाएँ थीं, उनके लिए कहा गया है कि वे मुखोच्चारित मंत्र की स्व-लिपियाँ हैं। ३ दैव-सम्मानित जैसे। ४ हनुमान के प्रसङ्ग को और पवन से उत्पन्न हुए अवसर को। ५ अगला दाँतरूप। ६ शुद्ध सहायक का और शुक्ल पक्ष का। ७ शोक और अँधेरे का। ८ शिव और कुबेर के समान। ९ सहोक्ति अलङ्कार है। १० सुग्रीव ने। ११ सब ओर से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"हाय! दुष्ट-हृत जनक-सुता के केवल आभरणों को–
गजाकृष्ट नलिनी के जैसे केवल 'कमल-कणों को ।
वा झञ्झा-झपटों से झटकी रायबेल का कोरा–
पुष्प-पुञ्ज पाता मुरझाता मेरा वह मन-भौंरा" ।।४२।।

यों दृग-जल तजते राघव-से हनूमान यों बोले,
हे शुभ-मन्दिर! शुभ-मन्दिर के द्वार तुम्हीं ने खोले ।
क्या देरी है, सुनिए मेरी, समय निकट वह आता,
जब, ये अँखियाँ सुखाश्रु, भूषण साथ धरेंगी माता ।।४३।।

शक्तिमान मानव जब अपना दण्ड हाथ में लेता,
तब बैरी क्या, [१]स्वैरी विधि भी वश में आ जय देता ।
स्वामी के आदेश-दान की केवल है अब देरी,
प्रभु-आदेश-शक्ति पर निर्भर प्रभो! शक्ति है मेरी ।।४४।।

ज्यों ही सुने राम ने कपि के सिंहनाद साहस के,
बोल उठे उठकर उछाह से शीघ्र कमर को कस के ।
परम मित्र सुग्रीव! बताओ, रिपु है कहाँ तुम्हारा?,
इस रवि के अँथने के पहले आज करूँ निपटारा ।।४५।।

★ ★ ★

इस प्रकार जब 'परम मित्र!' कह प्रभु ने रुमो-[२]रमण को–
अपनाया, तब तुरत उन्होंने आश्रित किया चरण को ।
कहा कि, प्रभुवर! बालि-अनुज तो सोहे दास कहाया,
यों कहकर गिरकर पद-युग में अति प्रेमाश्रु बहाया ।।४६।।

प्रभु! बोले, यदि बाली को मैं मर्यादा पर पाता,
तो मैं उन ही को अपनाता, उनमें [३]वर्ग समाता ।
ऋक्षराज के पुत्र क्योंकि तुम मेरे लिए सरीखे,
पर वे उतरे दुरित-पन्थ पर, सुपथ-पथिक तुम दीखे ।।४७।।

---

१ स्वेच्छाचारी। २ सुग्रीव को। ३ बाली का स्वजन-वर्ग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भली भाँति से मित्र! मानता, बाली हैं जय-शाली–
विश्व-विदित निज नाम-[१]धाम से धीर-वीर अविचाली ।
यदि अशङ्क हो यह कलङ्क से नहीं कलङ्कित होते,
स्वर्ण-वर्ण-माला से उनके शुचि यश अङ्कित होते ।।४८।।

है रघुकुल-साम्राज्य-[२]तन्त्र में सारा राज्य तुम्हारा,
अतः व्यवस्थित इसको रखना है कर्त्तव्य हमारा ।
अब के भिड़ते यत्न तुम्हारा यदि फिर खण्डित होगा,
तो समझो, वह स्वैरी राजा मुझसे दण्डित होगा ।।४९।।

★ ★ ★

भीषण भट भाई से भिड़ना, सिंह सामना करना,
अति-कल्लोल सिन्धु को तरना, पावक में डग भरना ।
मेरे लिए सदृश हैं स्वामिन्!, यों कह आनाकानी–
करते हुए मित्र से बोले राम अभय के दानी ।।५०।।

क्यों सुकण्ठ! घबराते इतना, हरि-[३]सुत हो तुम दोनों,
दोनों ही की कीर्ति गूँजती भू के कोनों कोनों ।
फिर बाली में प्रभावशाली क्या है शक्ति निराली?
जिससे तुमने एक साथ ही सारी [४]धृति खो डाली ।।५१।।

रुद्ध-[५]कण्ठ बोले सुकण्ठ तब, मन ही मन में हारा,
क्योंकि बालि-दुन्दुभि का मैंने आँखों युद्ध निहारा ।
दनुज-चतुर्दश-[६]सहस्र-बल-हर सुना [७]प्रभूर्जित कानों,
पर मुझमें संशय ने आश्रय किया, भूत ने मानों ।।५२।।

इस गिरि-सम दुन्दुभि-शव को यदि आप तनिक सरका दें,
एक-एक शर से इन सातों तालों को तड़का दें ।

---

१ तेज व प्रभाव से। २ अधीनता में। ३ वानर के पुत्र। दूसरा ध्वनितार्थ=हरि (इन्द्र) का पुत्र बाली तथा हरि (सूर्य) का पुत्र सुग्रीव। ४ धीरज। ५ रुके-कण्ठ। ६ चौदह हजार राक्षसों की सेना का नाशक। ७ आपका शौर्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो मैं साथ नाथ के न गिनूँ कोई भी हरि [१]औरस
अहो! दूध का दाझा फूँके शीतल भी [२]गोरस ।।५३।।

★ ★ ★

यों सुनते ही पदाङ्गु से ज्यों शिशु [३]कन्दुक-वर को,
त्यों प्रभु ने ठुकराया दूरों दुन्दुभि-शव-[४]भूधर को ।
सातों ताल एक ही शर से छेद दिये झट वैसे,
कुल-गिरि-शिखर इन्द्र ने पहले वज्र-घात से जैसे ।।५४।।

यों तालों को छेद कर प्रभु-शर ने तत् काल ।
भूतल-बीच प्रवेश कर भेद दिया पाताल ।।५५।।

नामानुकरण भी कभी करता हानि विशाल ।
ताल-विदारण के समय दीर्ण [५]हुआ पाताल ।।५६।।

ताल-विदारण के समय इसी लिए भय-भीत ।
सरस्वती ने [६]तालमय स्थगित रखा संगीत ।।५७।।

सुग्रीव तो टकटकी गहरी लगाये
देखा किये [७]अहह! क्या [८]रवि के जगाये ।
आश्चर्य-हेतु वह जो अनिमेषता थी,
श्रीराम-दर्शन-निमित्त विशेषता थी ।।५८।।

'हे त्राहि-त्राहि भगवन्!' कहते लजाते
सुग्रीव पूर्ण लिपटे पग में सुहाते ।
स्वाऽज्ञानिता पर उन्हें अनुताप छाया,
श्रीराम ने चट उठा उर में लगाया ।।५९।।

★ ★ ★

---

१ हरि (इन्द्र) के औरस (पुत्र) को भी। २ छाछ। ३ श्रेष्ठ अर्थात् रबर की गेंद को। ४ मृतक शरीर रूप पहाड़ को । ५ फट गया। ६ गाने-बजाने का मिलान से भरा। ७ आश्चर्य! । ८ रवि (पिता) ने मानो उन्हें चेताया कि तू किस भूल में है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किष्किन्धा पहुँचे सुकण्ठ तब ले साथ सीतेश को,
युद्धाह्वान दिया मचाकर महा-हुंकार [१]तारेश को ।
दोनों के उस काल हुंकरण वे दिग्द्वार खोला किये,
'स्वामी की जय हो' यही उभय के वर्गीय बोला किये ।।६०।।
दोनों ही अति भीषणाकृति भिड़े ईर्ष्या-भरे व्याल-से,
क्रोधाक्रान्त करीन्द्र-से, मद-भरे [२]विक्षिप्त बेताल-से ।
दर्पोन्मत्त मृगेन्द्र-से, वृषभ-से, [३]स्पर्धालु शार्दूल-से,
या मल्ल-प्रतिमल्ल से, अति बिंधे जो पूर्व वाक्-शूल से ।।६१।।
बाहू-[४]बाहवि को-पूर्ण भिड़के वे पूर्व आरम्भ से,
केशाकेशि तथा नखोनखि भिड़े भारी भरे दम्भ से ।
शाखा-शाखि तथा शिला-शिलि मचा संग्राम को अन्त में,
ले आये [५]नग को उखाड़, न लिया विश्राम को, अन्त में ।।६२।।
देखा मन्द-प्रताप सूर्य-सुत को औ [६]सूर्य को राम ने,
[७]इन्द्राशा-युत ऐन्द्रि को चमकते चीन्हा तथा सामने ।
दोषी के प्रति दण्ड-तुल्य शर को छोड़ा, उसी [८]घात से,
बाली भू पर थम्भवत् गिर पड़े, ज्यों वृक्ष दुर्वात से ।।६३।।

★ ★ ★

दोनों बलि-रेखें धरे खुली थी दाहिनी आँख,
कन्ध-तूण सीस चढ़ा, यों मुख 'श्री' मान था;
टेढ़ा था दाहिना बाहु, सीधा रहा वाम बाहु,
मझला विभाग ऐसे 'रा' से शोभमान था ।
बाँये घुटने में दबा दीखा न दाहिना पैर,
निचला विभाग ऐसे प्रकट 'म' वान था;
गिर भी गया था तो भी यों सब 'श्रीराम'-शोभी-
बालि-देह नैन-लोभी किसे सुहाया न था? ।।६४।।

★ ★ ★

---

१ बाली को। २ उन्मत्त। ३ जलनवाले। ४ भुजों को आपस में पकड़कर। इस प्रकार 'केशाकेशि' आदि भी आपस का युद्ध-प्रकार समझिए। ५ पेड़ को वा पहाड़ को। ६ ज्यों बाली के शौर्य के सामने सुग्रीव का प्रताप घटने लगा त्यों सायँकाल के कारण सूर्य का भी। ७ इन्द्र-दिशा (पूर्व) से युक्त ऐन्द्रि=बाली को चमकते/सायँकाल की किरण सीधी पूरब में पहुँचती है, अतएव वह चमकती दीखती हैं। ध्वनितार्थ इन्द्र की आशा से युक्त भी जानना। ८ अर्थात् बाण-प्रहार से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीरामशोभी-बालिदेह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रहर्ता रघुभर्त्ता को बाली ने देख यों कहा ।
तुम्हारा क्या बिगाड़ा जो मुझे मारा वृथैव हा ।।६५।।

भाई-भाई लड़ रहे, क्यों पराई [१]प्रपञ्चना? ।
संन्यास-वेश की जो है [२]अञ्चना, वह वञ्चना ।।६६।।

दोनों पक्ष जिसे मानें पञ्चायत वही भली ।
वानरों में नरों का जो न्याय, सो कौन सी गली? ।।६७।।

राजा भी प्राण-दण्डों में उत्तरप्रद है सदा ।
उसे भी घेर लेती है अन्याय-वश आपदा ।।६८।।

मृगया क्या मृगयु भी करते कपि जाति की? ।
बे-रीति हिंसना मेरी कहो, क्यों इस भाँति की? ।।६९।।

प्रभु बोले, बिगाड़ा है हमारा न कि अन्य का ।
साम्राज्य में पिता ही से जो भोगी जाय कन्यका ।।७०।।

भ्रातापन लड़ाई में [३]आतापन निजार्थ में ।
कौन सा न्याय है बाली! सोचो कुछ यथार्थ में ।।७१।।

बाली! तुम्हें राज्य की क्या जानकारी नवीन है?।
रघुवंशी नृपों के जो साम्राज्य-समधीन है ।।७२।।

अभी सम्राट् भरत हैं, हम छन्दानुवृत्त हैं ।
निवृत्त हैं [४]भोग से तो किन्तु धर्म-प्रवृत्त हैं ।।७३।।

बड़ा भाई पिता ही है वैसे भी स्व-कनिष्ठ का ।
राजा पिता चौगुना है, मृत-तात [५]स्व-निष्ठ का ।।७४।।

---

१ झंझट। २ ग्रहण। ३ चारों ओर से हैरान करना, सताना। ४ राज्य-लक्ष्मी के उपभोग से। ५ जिसका बाप मर गया है और जो अपना छन्दानुवर्ती (रुख के अनुकूल चलनेवाला।)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[1]उससे [2]इसकी स्त्री का बलात् भोग अनर्थ है ।
हमारा दण्डन अतः सार्थ है, न कि व्यर्थ है ।।७५।।

तुम वानर हो बाली ! गात्र से, जाति-मात्र से ।
गुणों में तो अधिक हो [3]श्रीवागीश्वर-छात्र से ।।७६।।

इसी से बाध्य करती तुम्हें भी धर्म-पालना ।
अनर्थों में बने कैसे कपिता कह टालना? ।।७७।।

नरों से भी अधिक जो तेजस्वी ज्ञानि-विक्रमी ।
उन्हें वानर जो मानें, वे हैं अति मति-भ्रमी ।।७८।।

इन्द्र सूर्य समीरादि जिनके जन्म-मूल हैं ।
उन्हें भी [4]प्राकृत कपि मानना, क्या न भूल है? ।।७९।।

न्यायी सम्राट् न होने दें अत्याचार नृपाल का ।
निमित्त-मात्र हम हैं, हुआ आह्वान काल का ।।८०।।

की बलाऽ[5]हित-माला की तुमने कूपयोगिता ।
की बला-[6]हित-माला की हमने सूपयोगिता ।।८१।।

न उत्तरोत्तर बने दोषी स्वैर-प्रवृत्ति से ।
यों जानते हित हुआ मेरे हाथ सु-वृत्ति से ।।८२।।

★ ★ ★

---

१ राजा बने हुए जेठे भैया से। २ मृत-तात छन्दानुवर्ती कनिष्ठ की। ३ बृहस्पति के शिष्य (देव) से। ४ मामूली। ५ बल के शत्रु अर्थात इन्द्र माला की। इन्द्र ने बाली को एक माला दी थी, जिसे पहिने भिड़ जाने से सामना करने वाला जीत नहीं पाता था। उसे पहिने सुग्रीव के साथ भिड़जाने से दुरुपयोगिता की। कूप-योगिता का ध्वनित अर्थ है, कूप में डालना। ६ राम को जो विश्वामित्र से बला-नामक विद्या रूप अच्छी माला मिली थी, उससे उन्होंने भूख-प्यास की परवा न कर परोपकार के काम किये अतएव कहा गया है, सदुपयोगिता की। 'बल-बीज औषध को भी कहते हैं, उसे कुएँ में डालने से क्या लाभ?। यदि उसकी सूपयोगिता=दाल (उर्द की) में मिलावट की जाय तो हितकर है।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यों श्रीराघव के सुवाक्य सुनते श्रीमान तारेश के—
कोरे कर्ण-कपाट ही न उखड़े, हृद्-द्वार भी द्वेष के ।
जोड़े हाथ पड़े-पड़े, वच अड़े, आँसू न आते अड़े,
मानो वे कहते कि, शब्द प्रभु को यों ही सुनायें कड़े ।।८३।।
बोले वे फिर वाक्य गद्गद् शनैः, स्वामिन्! क्षमा कीजिए,
चाहे अङ्गद बाल [१]दोष न तजे, पाँवों लिटा लीजिए ।
मैं तो अन्तिम दर्शनामृत अभी जो आपके पी रहा,
पूरा निश्चय है, कि राम! उस ही आलम्ब से जी रहा ।।८४।।
मेरे अन्तिम मेल को तरसती तारा चली आ रही,
मानों रूठ इसी लिए नयन की तारा चली जा रही ।
तारायें यह आयँ-जायँ, इसकी चिन्ता स-सारा नहीं,
हे ताराधिप-[२]तुण्ड! जो न तुमने तारा, न चारा कहीं ।।८५।।

★ ★ ★

ज्यों ही श्रीकरुणाब्धि ने करुण ये बाली-कराहें सुनीं,
तापों के बल हृत्सरोज-कलियाँ तत्काल सारी भुनीं ।
हाथों से कपि-अश्रु पोंछकर भी आँसू बहाते हुए,
सुग्रीवाङ्गद-[३]तारिकाश्रु-जल से बोले नहाते हुए ।।८६।।
हे बाली! तुम धन्य हो, तुम महा-सम्मान के पात्र हो,
चिन्ता किंचित्-मात्र हो न तुमको, स्वः-[४]स्थान के पात्र हो ।
होंगे श्रीयुवराज अङ्गद यहाँ, मेरे कृपापात्र भी,
पाओगे तुम सर्वथा सफलता हो देवता-गात्र भी ।।८७।।
आलीन हो दर्शन में, निराली—
शालीन-[५]वाणी सुन सारवाली ।
बाली सिधारे [६]दिव भाग्यशाली,
खाली गये, किन्तु रहे न खाली ।।८८।।

★ ★ ★

---

१ 'दोष' भुज को भी कहते हैं क्योंकि अङ्गद (बाजूबन्ध) उसे नहीं छोड़ता। २ हे चंद्रमुख!। ३ ये तीनों राम के पीठ में खड़े थे, इसी से ऐसा कहा गया है। ४ स्वर्गवास के। ५ विशिष्ट वचन। ६ स्वर्ग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम ने युवति-संयुत राज्य सारा-
सुग्रीव को सविधि दे दुख से उबारा।
दे यौवराज्य प्रिय अंगद को सुहाया,
तारेश की चरम स्वीकृति को निभाया ॥८९॥
सुजन बन्दिग़ण उस समय करने लगे [१]सु-घोष।
जय हो धार्मिक नृपति की, हो जनता-संतोष ॥९०॥
होते सुधर्मि-नृप धार्मिक-पक्षपाती,
होते सदा वह अधर्मि-विपक्ष-घाती।
साफल्य-युक्त नर-वानर-जाति-मैत्री-
हो, हे परेश्वर! निशाचर-जाति-जैत्री ॥९१॥
गृहश्री राज्यश्री उभय तज सुग्रीव पति को,
गई हा! बाधा के समय, धिक है दुर्नियति को।
गृहश्री राज्यश्री उभय सज सुग्रीव पति से-
मिली पाके संपत्-समय, शुभ है सन्नियति से ॥९२॥

★ ★ ★

वर्षा के बीतते ही कपिकुलपति ने ढूँढने जानकी को-
आज्ञा दी दिक्पथों का परिचय कहते [२]वानरानीकिनी को।
लंका की ओर मैन्द, द्विविद, पवनभू, जाम्बवान् और तारा-
पुत्रादि ख्यातनामा सुभट-समिति से सिद्धि हों, यों उचारा ॥९३॥
बोले श्रीराम से यों तदनु वह, सुनो सूर्यवंशांशुमाली!,
मुख्यों में भी तुम्हारे अनुचर हनुमान् हैं महाभाग्यशाली।
भक्ति, श्री, सिद्धि, विद्या, द्युति, मति, [३]नयिता, शक्ति, कीर्ति प्रिया-सी
ये एका पा इन्हीं से रति-सुख धरतीं दर्श की पूर्ण प्यासी ॥९४॥
'जय' कह हनुमान को बखाना,
रघुवर ने निज सिद्ध दूत माना।
नृप-सचिव-गुण-प्रकर्ष तोले,
फिर विनयानत को अशीष बोले ॥९५॥

---

१ शुभ घोषणा। २ कपिसेना को। ३ नीति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]हनुमत! बल ही अभी तुम्हारा,
सुरपति-विक्रम! राम का सहारा ।
जिस विधि मिल पाय वीर ! सीता,
उस विधि यत्न करो, न जाये रीता ।।९६।।

सीता-परिचय-दान का लक्ष्मण पा संकेत ।
मारुति से कहने लगे शिष्टाचार-समेत ।।९७।।

[२]जिसका अर्थ कलेवर गुरु-कोटि [३]अनन्त-राम-मात्र रहे ।
दाक्षायणी-कलामय [२]परार्ध, आर्या वही बस है ।।९८।।

सीतावल्लभ ने पगों पर पड़े वीरेन्द्र को श्री-भरी-
सिद्धाशीष-समेत नाम-सहिता ऽ[४]भिज्ञान दी मूँदरी ।
देते ही रघुवीर, लक्ष्मण तथा सुग्रीव को वन्दना-
श्रद्धा से कर बोलती जय चली सेना महाऽऽनन्दना ।।९९।।

[५]जो दक्षिणा ले प्रभु-कार्य में लगे,
हो सिद्धि वा नेति विकल्प में पगे ।

---

१ यह पद्य वाल्मीकि के इस पद्य की छाया है :-
"अतिबल! बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर-विक्रम! विक्रमैरनल्पैः।
पवनसुत! यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व ।।"
लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए इसका संपुट देकर सुन्दरकाण्ड का पाठ किया जाता है।
२ पूज्य-श्रेणी के (अनन्त=ईश्वर)। २ परार्ध (दूसरा अर्ध भाग) दाक्षा=पार्वती की विभूति-रूप। आर्या=सीता।
३आर्या-छन्द की परिभाषा:-जिसका पूर्वार्ध गुरु-कोटि=अन्त में गुरु होते हुए अनन्त-राम =३० मात्रा का हो और उत्तरार्ध अन्त-गुरु दाक्षायणी (नक्षत्र)=२७ मात्रा का हो, यस वही आर्या है। । ४ अभिज्ञान=सहिदानी। ५ इसका भाव यही कि दक्षिण दिशा की ओर जानेवालों को संदेह हुआ; क्योंकि चौर प्रायः घर नहीं पहुँचा करते। जो पराशा (दूसरी दिशा) की ओर थे वे कार्योद्यत हो गये। दूसरा ध्वनितार्थ यह है कि जो पहले दक्षिणा ले लेते हैं, उन्हें सिद्धि के लिए संदेह रहता है, अन्य जो पराशा (दूसरों की आशा को पूरने) में उद्यत हों वे कार्यक्षम हो जाते हैं। हनुमान के अनुगामी होने से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो थे पराशोन्मुख दक्षिणा तजे,
वे कार्य के साधन को हुए सजे ।।१००।।
भ्राता-जटायु-बलिदान [१]सराहने से-
सम्पाति ने न रुक प्रीति निवाहने से ।
लंका-निवासन प्रकाश किया सती का,
सत्सङ्ग है पथ-प्रदर्शक संशयी का ।।१०१।।

ज्यों ही मिटी [२]अहह! संशय-जन्य चिन्ता,
है सिन्धु दुस्तर अहो! यह अन्य चिन्ता ।
आशा-लताङ्कु लगी क्रमशः सुखाने,
त्यों ही लगे निज-निजोर्जित ये सुनाने ।।१०२।।

यों अन्त में प्रबल अङ्गद ने उचारा,
तैरूँ परन्तु न [३]निवर्तन का सहारा ।
सर्वानुरोध-वश आत्म-समाधि खोले-
एकान्त में स्थित जयी हनुमान बोले ।।१०३।।

वर्तमान संकट-समय मैं आकर एकान्त ।
प्रभु का दुख-हर ध्यान कर जब कि हुआ विश्रान्त ।।१०४।।
सुमधुर अपनी बीन पर सस्वर-ग्राम-विवेक ।
यह उपगीति अलापते गये गगनचर एक ।।१०५।।
"[४]बत कोमला लताऽनिव, वहमाना या गले कालम् ।
(विलोमहिन्दीक)

---

१ वानरों द्वारा सराहने के कारण । २ हाय! । ३ लौटने का । ४ रावण से हरण की जा रही सीता को देख उसका वर्णन किया जाता है :—हाय! एक कोमल लता, जो भौंरे के समान हृदय-कमल को चूमने वाले काले अपने वल्लभ के चित्र के सहारे को गले में (अनिव=असमान-अनोखा) धारण किये हैं। इस उपगीति का ओंधा पढ़ा गया पूर्वार्थ "लंका ले गया नामाहव वनिताललाम को तब" यों सूचित कर रहा है। यहाँ रावण के लिए 'नामाहव' का प्रयोग इसलिए किया गया है कि प्रस्तुत गगनचर की दृष्टि में रावण का जटायु से युद्ध नाम ही का था। इससे उसने उस घटना का भी स्मरण दिलाया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रोलम्बमिव हृदम्बुज-नुम्बं प्रियविम्बमालम्बम्।।" ।।१०६।।

वनिता-ललाम को तब नामाहन ले गया लङ्का ।
यह कहता उपगीति-प्रथमार्थ-विलोम, क्या शङ्का? ।।१०७।।

रहा जो हे मित्रो! सलिल-निधि का पार करना,
यहाँ सीता माता अभिमुख रही, व्यर्थ डरना ।
तथा पीछे आते अभिमुख रहेंगे रघु-धनी,
वनीचारी को तो जल व अवनी क्या सब वनी ।।१०८।।

यों कह साहस से उन्हें ध्याते पवनकुमार ।
हुए पर्वताकार झट सब ने की जयकार ।।१०९।।

[1]वैसी भारी समस्या लवण-जलधि की लंघना-रूप [2]काली
दासी ही तो रही थी झुककर जिसके सामने स्फूर्तिवाली ।
[3]नित्य-श्रेयोव्रती के उस प्रिय हनुमद्दूत को देख सारे-
देते दाँतों तले वे निज-निज उँगली, लोचनों को पसारे ।।११०।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता एकविंश प्रतान समाप्त ।

---

१ यह पद्य दूत हनुमान् के पक्ष में और नित्य कवि के 'हनुमद्दूत' नामक उस खण्ड काव्य के पक्ष में लागू पड़ता है, जो कालीदासीय मेघदूत के प्रतिपद्य के अन्तिम चरण की समस्या को लेकर पूर्ण किया गया था। । २ कठिन और कालीदासी=कालीदास की। ३ नित्य श्रेय के व्रती राम, नित्य कवि -रूप पुण्य-व्रती ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

बाईसवाँ प्रतान

प्रवेशिका

हनुमानजी का सिन्धु-तरण, मैनाक पर्वत की विश्राम के लिए प्रार्थना, नाग-माता सुरसा का आशीर्वाद, राक्षसी सिंहिका का संहार, लङ्का की अधिष्ठात्री देवी द्वारा हनुमानजी को रोकना, फिर उनके स्वरूप को पहचानकर साशीष-अनुमति प्रदान करना, लङ्का नगरी की भव्यता, हनुमानजी द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में सीताजी की खोज, अशोक वाटिका में दुःखी सीताजी को देखना-आदि का इस प्रतान में आलङ्कारिक वर्णन है। लघुरूप में वृक्ष पर बैठे हुए हनुमानजी के समक्ष रावण आता है, सीताजी को प्रलोभन देता है, धमकाता है, सीताजी उसका घोर तिरस्कार करती हैं। सीताजी को मारने के लिए उद्यत रावण को मन्दोदरी संयमित करती है। राक्षसियों को सीता-त्रास के लिए आदेश देकर रावण लौट जाता है। सीताजी को राक्षसी त्रिजटा सान्त्वना देती है। उसके चले जाने पर सीताजी के आत्म-हत्या के प्रयास के समय हनुमान श्री रामनाम अंकित मुद्रिका पृथ्वी पर गिरा देते हैं। हनुमानजी द्वारा पूरा वृत्तान्त सुनाना, सीताजी द्वारा आत्म-कथा का विस्तार से कथन, विदा से पूर्व हनुमानजी को चूड़ामणि देना, अशोक-वनिका का हनुमानजी द्वारा विनाश, रावण-पुत्र अक्ष का वध, इन्द्रजित द्वारा ब्रह्मास्त्र में बन्धन, रावण की सभा में रावण और हनुमानजी की उक्ति-प्रत्युक्तियाँ, विभीषण का दूत के वध का विरोध, हनुमानजी की पूँछ में आग लगाना, उनके द्वारा लङ्का-दहन, विभीषण का हनुमानजी द्वारा श्रीराम के लिए सन्देश, हनुमानजी का प्रभु के पास लौटना, श्रीराम का हनुमानजी का उपकार मानकर ऋणी होने का वचन-इस प्रतान के वर्ण्य विषय हैं।

विशेष : चित्र-काव्य के निदर्शन के रूप में इस प्रतान में अष्टादश कमलदल-बन्ध, गोमूत्रिका-बन्ध, चक्र-बन्ध, सर्वतोभद्र-बन्ध उपलब्ध हैं। पद्यों में इन बन्धों के माध्यम से कवि की अद्भुत काव्य-साधना, काव्य-शास्त्र का उनका असाधारण ज्ञान एवं उनका अमित शब्द-भण्डार आदि स्पष्टरूपेण प्रतिबिम्बित हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाईसवाँ प्रतान

***आप [1]अचापल चाप-धर, स [2]प्रताप गत-ताप ।**
प्रभु ! मैं क्या गुण गा सकूँ थके चतुर्मुख आप ॥२२॥

पश्चिम दिशा की ओर देख सविता की ओर
पवन-किशोर उन्हें करते प्रणाम को;
उत्तर दिशा की ओर देखा ऋष्यमूक-ओर
करते स्व-सीस-नति सेष्ट [3]जन राम को ।
पूरव दिशा की ओर हृदय, वचन और
कर्म से अराध कर वायु-[4]विभु-धाम को !
दक्षिण दिशा की ओर जानकी का जान जोर
ओमिति प्रघोष कर साधते स्वकाम को ॥१॥

[5]तत्त्व के उजाले निज सत्त्व को सम्हाले [6]बल-
सिन्धु देख सिन्धु-बल कहते कि [7]ताल है;
वा समग्र भूमि-रूप वृक्ष के सुरक्षणार्थ
चारों ही समुद्र जो कि एक [8]आलबाल है ।
उसी का चतुर्थ भाग [9]मुख में दिखाता झाग,
[10]नक्र-चक्र-भेक-बल अधिक-विचाल है;
कीट को कराल क्यों न, चींट को विशाल क्यों न,
रामदूत कपि का तो एक ही उछाल है ॥२॥

---

* इस दोहे में विरोधाभास अलंकार है ।
१ चाप को नही धरने वाले और धीर। २ प्रकृष्ट तापवाले और प्रतापी। ३ इष्टजन लक्ष्मण सुग्रीवादि युक्त। ४ वायु-रूप ईश्वर-स्वरूप को। ५ ब्रह्म-तत्त्व के प्रकाश में। ६ महावीर। ७ तालाब। ८ थाला। ९ समुद्र के किनारे झाग रहता है। उस पर तुच्छ उक्ति है कि भय से मुख पर झाग आ रहे हैं। १० मकर-समूह रूप मेढकों के बल पर विचलित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यों कह उछाह-संग, अग्रिम प्रसार अङ्ग,
पश्चिम सिकोड़ अङ्ग गिरिवर-शृङ्ग से;
मारते छलाँग तेज अधिक-प्रचण्ड-तेज
दीख पड़े स्वर्ण-तेज गरुड़ विहङ्ग-से ।
अरुण-तुरङ्ग पूर्व कनक-कुरङ्ग [1]अनु
अन्त में पतङ्ग फिर लघुतर भृङ्ग-से;
दीखते-दीखते [2]हीन, ऐसे हुए दृष्टि-लीन,
दीख पड़ा अल्प भी न दर्शी रहे दंग-से ।।३।।
खेचर विमान-चर चौंक पड़े पार्श्वचर
आये हुए तीव्रतर मारुति-झपट में;
ज्यों कि वन-भूमि पर दीन-हीन देह-धर
निपट-निदाघ-दाव-पावक-लपट में ।
वा स्वभाव-सिद्ध-चाल मुग्धतर वृद्ध-बाल
पावस की स्निग्धतर सहज रपट में;
वा स्वपाठ-भूल-काल चारु-चटशाल-बाल
गुरु की कराल-[3]भाल डाँट व डपट में ।।४।।
[4]उन्नमित-पूर्वकाय संकुचित-निम्न-काय
लम्बपुच्छ ऊर्ध-छाय ओमिति-प्रकार है;
लक्षित-अलक्षितोडु-नक्रचक्र-पूर्ण व्योम-
सिन्धु-बीच गाहमान प्रबल विसार है ।
देवसिन्धु-केलिकारि-सुन्दरी का पन्नगारि-
चञ्चु-ह्रियमाण-हारि-खण्डि-हेम-हार है;

---

१ बाद में। २ कम। ३ जिसमें (गुरु का) ललाट विकराल हो, ऐसी डपट। ४ आकाश-मार्ग द्वारा समुद्र को लाँघते हुए महावीर का वर्णन है:- जिनका ऊपरी स्वरूप ऊपर को बढ़ाया हुआ और नीचे का सिकोड़ा हुआ और जिनकी लम्बी पूँछ की कान्ति ऊपर छाई हुई थी, ऐसा क्या ओम् का स्वरूप है:-जैसे ॐ। जिसमें अलक्षित तारे-रूप जलजन्तु दिखाई देते हैं, ऐसे आकाश-रूप समुद्र के बीच क्या प्रबल विसार=मकर निकल रहा है? आकाश-गंङ्गा में कीड़ा करने वाली देवाँगना का टूटा स्वर्णहार गरुड़ की चोंच से खींचा जा रहा है। हनुमान पर गरुड़ का आरोप और पुच्छ पर टूटे स्वर्ण-हार का किया है। आगे स्पष्ट है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे लवणोद-देश लाँघते प्लवंगमेश-
तर्कित सुरों से हुए, वर्णन अपार है ।।५।।
मारुति-फलाँग [१]माप बाल्य-[२]चपलाई भाँप
सूरज ने मानो तब अँथने की ठान ली;
दक्षिण दिशा के मत्त [३]गज ने समक्ष वृत्त-
देख मानो सभी निज [४]वामनता मान ली ।
हुंकृति प्रचण्ड सुन [५]वाहन की चौंक चीन्ह
यम ने स्व-धाम बैठे हार निज जान ली;
झपट-निमित्त-[६]जात बात की विशेष बात
वात ने विचार पुत्र-प्रीति पहिचान ली ।।६।।

★ ★ ★

विश्रामार्थ किया निवेद कपि से मध्यस्थ मैनाक ने,
मैं हूँ वायु-कृतज्ञ, मारुति! तुम्हें दूँगा नहीं थाकने ।
वे बोले, तुम कौन हो, गिरि तभी बोला, कि [७]भिक्ष्वाक हूँ-
रामाराधक-भक्ति का, जलधि की मैं नाक, मैनाक हूँ ।।७।।

★ ★ ★

ले सम्मान चले कपीन्द्र, सुरसा श्रीनाग-माता मिली,
मेधा, शौर्य, सु-चातुरी परखके आशीष दे सो खिली ।
रक्षःस्त्री जब सिंहिका मुख, उन्हें खाने, बढ़ाने लगी,
जेता ने लघु हो प्रविष्ट, उसकी हृत्कोष-[८]लक्ष्मी ठगी ।।८।।
झम्पा के बल पार-तीर पहुँचे सत्त्वी हनूमान के-
भारी आक्रम से धरा हिल उठी गाढत्व भी ठानके ।
जो हेमाद्रि, हिमाद्रि, विन्ध्य-गिरि की आक्रान्ति के काल भी-
किंचित् भी न हिली, अहो! [९]न उनका बाँका हुआ बाल भी ।।९।।

★ ★ ★

---

१ अंदाजा देखकर। २ बचपन की चंचलता (चंटपन), जिसने निकले हुए सूरज को फल के भ्रम से हड़पना ठान लिया था। ३ वामन-नामक। ४ अपना ओछापन। ५ भैंसे की। ६ झपट के कारण पवन के बढ़ाव को। ७ भिखारी। ८ अर्थात् उसका कलेजा निकाल लिया। पर्यायोक्त अलंकार है। ९ अर्थात् उनका कुछ भी नहीं बिगड़ा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चारों ओर घिरे हुए सु-परिखाऽ[१]धोवस्त्र से सोहती,
माथे पै स्फुट-तार [२]अम्बर धरे, सौन्दर्य से मोहती ।
नाना-रत्न-जड़े सुवर्ण-[३]भवनालङ्कार भी धारती,
लङ्का दीख पड़ी उन्हें, निरखती मानो सजा [४]आरती ।।१०।।
मानो वज्र-कपाट द्वार उसके प्रत्यर्थियों के लिये-
थे उत्साह-विदार नाथ-उर-से, काँपे तभी तो हिये ।
धैर्य-ध्वंसन के प्रकार प्रकटे [५]साकार प्राकार थे,
बारम्बार तभी विरोधि-कुल के संचार बेकार थे ।।११।।
होके प्राकृत-रूप वायु-सुत ने ज्यों ही कि लङ्का पुरी-
देखी सम्मुख ध्यान से, हृदय में सम्भावना यों फुरी ।
हाँ छक्के कपि-सैन्य के यह छुड़ा दे [६]गाढ़तोत्कर्ष से,
जो आक्रान्त न हो चमूपति-[७]किये भारी शिला-वर्ष से ।।१२।।

★ ★ ★

सीताप्ति और सकल-स्थिति-जानकारी
दोनों यहाँ प्रमुख हैं मम [८]साध्य भारी ।
है सूक्ष्म-रूप अतएव सुलाभकारी,
यों जान मारुति हुए [९]वृषहाऽनुकारी ।।१३।।

★ ★ ★

लङ्कापुरी-अधिष्ठात्री लङ्का नाम निशाचरी ।
पैठते वीर से बोली द्वार पै क्रोध से भरी ।।१४।।

लङ्का में मुझे लङ्का के होते शङ्का न मान के ।
घुसता कौन दुष्टात्मा निज प्राणान्त ठान के? ।।१५।।

---

१ सुन्दर खाई-रूप घँघरे से। २ चमकीले तारों वाले (अम्बर=आकाश और वस्त्र) से। ३ सोने के महलोंरूप जेवर। ४ रोशनी हो जाने के कारण। ५ आकृतिवाले और आकार (आ की मात्रा) जोड़ने से 'प्रकार शब्द प्राकार' बन ही जाता है। ६ बड़ी चढ़ी मजबूती से। ७ सेनापतियों के किये हुए। ८ कर्तव्य। ९ बिलाव के आकार के अनुकारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सधैर्य बात सुनके कहा श्रीहनुमान ने ।
नगरी देखने जाता पटुता पहिचानने ॥१६॥

दुष्टात्मा हूँ कि शिष्टात्मा, तेरा हृदय जानता ।
शिष्टों को शिष्ट, दुष्टों को दुष्ट हूँ, यह मानता ॥१७॥

प्राणान्त यदि ठानूँ तो, दुष्ट प्राणान्त ठानके ।
शङ्का-भय मुझे है तो एक ही भगवान के ॥१८॥

सुन यों उसने ताना प्रहार हनुमान के ।
उन्होंने उत्तर दिया उस ही भाँति तानके ॥१९॥

स्त्री जान बढ़ते रोका रोष को हनुमान ने ।
रे क्रोध! तुझ को जीता ज्ञानी के बस ज्ञान ने ॥२०॥

हाँ, गिरा देह लङ्का का, गिरा में उच्चता रही ।
बोली प्रीता वह अतः अनुभूतानुसार ही ॥२१॥

अहो! कपे! स्वागत हो, मत हो दुष्ट भावना ।
मुझे मिला भाग्य ही से साधु-सङ्ग सुहावना ॥२२॥

कहा था जो कि ब्रह्मा ने वही है आज सामने ।
तुम्हें मारुति! हो पाता साहसी कौन थामने? ॥२३॥

जाना मैंने, तुम्हें भेजा बनाके दूत राम ने ।
हा ला रहा दुराचार वंश-संहार सामने ॥२४॥

रुचि से देख लो लङ्का, मना कौन तुम्हें करे? ।
[1]शङ्कातङ्कादि बेचारे [2]चारेन्द्र! तुमसे डरे ॥२५॥

★ ★ ★

१ आतंक ताप-भय आदि २ श्रेष्ठदूत! ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्द्र की चन्द्रिका का तो तब [१]लोकोपचार था ।
[२]वस्तुतः राम-यश को दर्शी का [३]साह्यकार था ।।२६।।

निर्भीकता से [४]उसमें रमे वायु-कुमार ने ।
धरी [५]चकोरता पूरी, लगे फिर निहारने ।।२७।।

नाना-रत्न-सुवर्णादि-वस्तुओं के [६]सुहट्ट थे ।
जिनके ऊपर महा हिरण्य-मणि-[७]अट्ट थे ।।२८।।

अनेक शिल्प-शालायें कला-कौशल शालिनी ।
कई थीं चित्रशालायें [८]चित्राचार्यक-चालिनी ।।२९।।

कई थी यंत्र-शालायें यत्र-तत्र बढ़ी-चढ़ी ।
कई थीं शस्त्र-शालायें दृढाच्छादन से मढ़ी ।।३०।।

सभी प्रकार के यात्री-[९]यान के योग्य [९]यान थे ।
स्वर्गीय उच्चवर्गीय पुष्पकादि विमान थे ।।३१।।

नाना थीं नाट्य-शालायें साङ्गोपाङ्ग सजी-धजी ।
देखने में वहाँ आईं नटियाँ नाट्य में मँजी ।।३२।।

नाना-प्रकार-मदिरा-माँसों से [१०]मान-गोष्ठियाँ ।
सजी हुई थीं, विविधापानों से पान-गोष्ठियाँ ।।३३।।

अनेक नाग-कन्यायें नाना सुर-कुमारियाँ ।
राजान्तःपुर में देखीं नाना-जातीय नारियाँ ।।३४।।

★ ★ ★

---

१ लोक-व्यवहार। अर्थात् 'चाँदनी' कहने का व्यवहार-मात्र था। २ वास्तव में। ३ सहायक। ४ राम-यश में। ५ चकोरपन और चातुरी। ६ अच्छे बजार। ७ सोने और रत्न की बड़ी-बड़ी अटारियाँ। ८ चित्रों की आचार्यता को हिला देनेवाली। ९ यान=गमन और वाहन। १० सत्कार-सभायें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काच-गुञ्जा-[१]वराटों की माला में ज़्यों महामणी ।
उस स्त्री-मण्डली में त्यों न मिली सुव्रताग्रणी ।।३५।।

वे लगे सोचने, सीता यहाँ भी जो नहीं मिली ।
होगा अनर्थ गहरा, यों ध्याते हृत्कली हिली ।।३६।।

अस्त होते अरुण-से मान्द्य-ग्रस्त हुए बली ।
दोनों ही साथ आती हैं कठिनाई बे-कली ।।३७।।

विचारा कि दशा सारी, जो सँवारी, बिलायगी ।
चिर की दुर्ग-रचना छिन में ढह जायगी ।।३८।।

कौन सा पातक हुआ मेरा घातक यों भला !
परस्त्रियों का निःशङ्क-[२]स्वाप-दर्शन क्या फला? ।।३९।।

यों एक ध्यान में डूबा मन अन्यत्र जा रमा ।
ज्यों एक वृक्ष से छूटा भौंरा अन्यत्र हो थमा ।।४०।।

लेटी नग्न गिनी बेटी, पहिने बहिनें गिनीं ।
नानायाता गिनी माता, क्या क़रे काम-[३]वाहिनी? ।।४१।।

मन था वश में मेरे, मैं था न मन के वशी ।
मन इन्द्रिय-प्रेरी है, इन्द्रियाँ करती रसी ।।४२।।

रस-लोलुपता ही तो गिराती सब लोक को ।
करती है फलित भी उत्तरोत्तर शोक को ।।४३।।

विषयों की वासना है चल-[४]चित्तार्थ चौक-सी ।
अतः [५]चाल चुकाने में चाहिए चारु [६]चौकसी ।।४४।।

अतः माना गया हेतु मन बन्धन-मुक्ति का ।
वह वश्य रहा, तो मैं पात्र क्यों पाप-भुक्ति का? ।।४५।।

---

१ वराट=कौड़ी। २ अर्थात् निधड़क सोती हुई पर-स्त्रियों का देखना। ३ कामदेव की सेना। ४ चपल मन के लिए मैदान के समान। ५ विषय वासना में आते मन की चाल। ६ सावधानी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्य-सिद्धि न होती है कठिनाई पड़े-बिना।
सिन्धु का पार न मिला सिंहिका से लड़े बिना ।।४६।।

अतः पार करूँगा मैं कठिनाई प्रमोद से।
यह है दुस्तर नहीं उलाँघे लवणोद से ।।४७।।

न शेष तो रह गया स्थल कोई स्व-शोध से?।
यों ठान छानना चाहा स्थान-स्थान सुबोध से ।।४८।।

अशोकवनिका को पा देते दृष्टि [1]समन्त में।
किया प्रवेश कपि ने उसी में चट अन्त में ।।४९।।

ज्यों ही वहाँ शिंशपा पै धीरे से चढ़ वीर ने।
दृष्टि डाली तले, त्यों ही देखा स्त्री-कुल को घने ।।५०।।

उसी में [2]मल्लिकाक्षी-सी मृगाक्षी मलिनाम्बरा।
एकान्त में क्लान्तमुखी दुखी दीखी तपोधरा ।।५१।।

चिन्ता-विहीन उन स्त्री-मणियों में अहो! वही।
[3]सचिन्त चिन्तामणि-सी वीर की दृष्टि में रहीं ।।५२।।

कुम्हिलाई कमलिनी मधु और तुषार ज्यों।
बहाती थीं वही रामामृत और अश्रु-धार त्यों ।।५३।।

हुई सुनिश्चित मति तब यों हनुमान कों।
[4]अतान की ज्ञान-[5]कीर्ति-प्रदा है यह जानकी ।।५४।।

---

१ चारों ओर। २ जिसके चोंच-चरण मैले हों, ऐसी हँसी के समान। ३ निश्चिन्त स्त्रियों में चिन्ता-युक्त वह (सीता) कैसी थीं, ज्यों मणियों में चिन्तामणि, क्योंकि दूसरी मणियों की अपेक्षा 'चिन्तामणि'-(शब्द) ही चिन्ता-(पद) युक्त होता है। ४ भूले-भटके की। ५ जानकारी के यश को देनेवाली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी समय यों नीचे घटना घटती रही ।
वीर की जानकारी से बेकारी कटती रही ।।५५।।

★ ★ ★

बन्दि-वृन्द के जयकारों से अति अभिनन्दित,
मागध-मण्डल से पद-पद पर अतीव वन्दित ।
लिये साथ परिवार दीप्ति-[1]धर कामिनियों का,
जैसे वर्षुक मेघ मनोहर दामिनियों का ।।५६।।
चञ्चल चारु-शरीर, सुगन्धित पहिने माला,
चन्द्रोज्ज्वल-मणि-हार-विभूषित निपट निराला ।
मत्तमतङ्ग-गमन मोद-मद में अति छाया,
विशद-वेश लङ्केश वहाँ कामातुर आया ।।५७।।

★ ★ ★

बात बड़ों की कुछ लेकर खल खोड़ खुड़ाते,
न कि उनके मार्मिक सु-गुणों का जोड़ जुड़ाते ।
उसका है परिणाम अन्त में अति दुख-कारी,
रत्न सिन्धु से लाते ज्यों निज [2]मज्जन भारी ।।५८।।
रवि ज्यों बन वह तपन शुभ [3]जनक-कन्या ही पर,
दृष्टि डालता रहा मधु-[4]प्रिय-रस को पीकर ।
पितर-[5]पक्ष का प्रभाव उसने यदपि बताया,
तृप्त उन्हें कर सका न, प्रत्युत और [6]सताया ।।५९।।
कुपित प्रकृति को उसने फिर नौ बार मनाया,
किन्तु प्रकृति-[7]विपरीत हुए फल किमपि न पाया ।

---

१ उजाला रखनेवाली। २ डूब जाना। ३ रवि-पक्ष में शुभ-जनक पृथक करके कन्या-राशि पर। कन्या-गत सूर्य जब होता है, तब पितृ पक्ष और नवरात्र आते हैं। ४ रावण-पक्ष में मदिरा-रूप प्यारा-रस और सूर्य-पक्ष में मधु=शहद के समान प्रिय जल को पीकर (किरणों द्वारा शोध कर)। ५ रावण ने अपने पितरों ब्रह्मा, पुलस्त्य आदि के पक्ष का प्रभाव डाला। ६ अपनी संतान रावण के किये गये पर स्त्रीहरण से पिता तृप्त न हुए, उल्टे और दुखी हुए। ७ नौ बार मनाने पर भी प्रकृति (सीता) के प्रतिकूल पड़ने पर। दूसरा ध्वनितार्थ प्रकृति-देवी के नौरात्र-पूजा पर भी यदि वह किसी कारण कुपित हो तो निष्फलता ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः [१]उन्होंने शाप दिया उसको अति भारी,
तभी हुआ निज वंश-नाश का वह अधिकारी ।।६०।।
उस स्मरान्ध को अहह! नहीं कुछ भी तो दीखा,
मिट्टी में मिल गया अहो! तब सब कुछ सीखा ।
चाटुकारिता का ताँता वह लगा बाँधने,
बेढव उघड़ी हुई साज को लगा साँधने ।।६१।।

★ ★[२] ★

तरुणि! तुम्हारा कान्त कलेवर यह निर्दूषण,
ज्यों तरु पल्लव-पुष्प-हीन, अ-नवाम्बर-भूषण-
नहीं सोहता; यदपि मोहता मेरे मन को,
यौवन को चल जान, हरो अब व्याकुलपन को ।।६२।।
मम अर्धाङ्गी बनकर भोगो त्रिजग-राज को,
अभिमत दो अधिकार बुला बान्धव-समाज को ।
अन्तःपुर यह सकल तुम्हारी टहल करेगा,
मानी आनाकानी कर बे-मौत मरेगा ।।६३।।
कान्त तुम्हारा शान्त-दान्त है भ्रान्त भिखारी,
उसकी मिलनाशा करना है जड़ता भारी ।
इस अपार सागर का तरना नर को दुष्कर,
यह सरयू न, न सिन्धु, न गङ्गा, और न पुष्कर ।।६४।।
नियत अवधि के मास रहे अब बाकी दो ही,
फिर तुमको बनना होगा मम शयनारोही ।
यदि पहले ही इस विनती को तुम कबूल लो,
शरदुत्सव के झूले में मम सङ्ग झूल लो ।।६५।।

★ ★ ★

---

१ पितरों और प्रकृति ने। २* 'इन चार पद्यों के गुच्छक को अगली बात का अवतरण समझिए। इनका अन्तिम वाक्य, धोखा देकर सीता को हरने पर भी आत्म-महिमा करने के कारण कहा गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रूर दुरुक्ति न सहकर सीता उसी काल हो विकराला,
मानो उसे जलाने ही को दूर फेंकती दृग-ज्वाला ।
हिलते हुए होठ को उमड़े आँसू के बल नहलाती,
बोलीं हितचिन्तक त्रिजटा के मृदुल हृदय को दहलाती ।।६६।।

निन्द्य निशाचर! निपट निरङ्कुश! रे दुर्दृष्टि! दुराचारी!,
रे घर-शूर! बाहिरी भीरुक! जीभ जले तव हत्यारी ।
किस बल पर तू नीच! नाचता, क्यों न डूब कर मर जाता?
स्त्री ही रचता क्यों [1]अस्त्री, यों लख धाता भी पछिताता ।।६७।।

ज्यों जगतीपति के बल जगती, यह जगती, हो वञ्चित भी,
सदा जगमगाती ही रहती, न डगमगाती किञ्चित भी ।
त्यों मैं स्वपति-व्रत के बल से जीती-जगती वञ्चित भी,
काल क्यों न आजाय भले ही, नहीं डिगूँगी किञ्चित भी ।।६८।।

श्रेष्ठ सती के जीवन का भी जीवन जो गत-दूषण है,
पति है, वह सौभाग्य-मुकुट है, वह भूषण का भूषण है ।
उसके लिए स्वपति से वर्जित सूनी जगती सारी है,
ज्यों नलिनी के लिए चाँदनी रजनी भी अँधियारी है ।।६९।।

मम बान्धव न भुलाये जाते, जो उस प्रण के हैं पक्के,
जिसने बाणासुर-रावण के छुड़ा दिये थे तब छक्के ।
सरयू-गङ्गा पुष्कर-दर्शन जितना निशिचर को दुष्कर,
उतना यह सागर नर वर को हो सकता न कभी दुस्तर ।।७०।।

कैसा भी क्यों हो न कान्त मम, वही [2]कान्त है बस मरणान्त,
जरा खरादि बन्धुओं से तो जाकर पूछ कि, कितना शान्त ।
अवधि भले हो दो मासों की वा दो श्वासों ही की क्यों न,
मर जाऊँगी, पर न डिगूँगी, यों कह सीता ने ली मौन ।।७१।।

★ ★ ★

---

१ अस्त्र-धारी, और स्त्री न हुआ। २ प्रिय!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस जनक–सुता की वाक्य–बाणावली ने
खल–हृदय–कली को बींधा उल्लास छीने ।
दशमुख–मुख कोपारक्त [१]अङ्गारधानी–
सम तब दिखते थे, नेत्र ज्वालोपमानी ।।७२।।

अहह! जनकजा को मारने धारवाला–
पृथुतर असि[२] ज्यों ही दुष्टधी ने निकाला ।
तुरत लपक त्यों ही [३]धर्मिधुर्याङ्गना ने
यह कह चट रोका, वीर क्या [४]स्त्रयन्त ठाने? ।।७३।।

फिर प्रिय–महिमा का बाँधती पूर्ण ताँता
वह निज प्रणयी को ले गई वीर–माता ।
फिर तुम समझाना चेटियो! भाँति नाना,
यह कह खल ने भी प्रेयसी–वाक्य माना ।।७४।।

★ ★ ★

सीता यों कहने लगीं कि, त्रिजटे! कैसा मिला योग भी?
वाग्–बाणार्दित भी कुधी कुपित भी लौटा वृथोद्योग भी ।
कोई भी मिलता न शस्त्र, विषय वा, गम्भीरता स्रोत भी,
दुर्भागी जन को अहो! न मिलती माँगी हुई मौत भी ।।७५।।

बोली तुरन्त त्रिजटा, अयि देवि! सत्या–
शास्त्रोक्ति है, परम पातक है स्व–हत्या ।
हो सिद्ध स्वप्न–घटना मम आज भोगी,
[५]सिद्धार्थ प्राणपति से झट ही मिलोगी ।।७६।।

अतुल सुतनु–[६]तनु–यन्त्र का अन्तःपुर–षड्यन्त्र ।
हरता विष–व्यवहार से, मानो यह मम मन्त्र ।।७७।।

---

१ अँगीठियों के समान। २ तलवार। ३ धर्मात्मा पटरानी (मन्दोदरी) ने। ४ स्त्री का वध। ५ जिसके मनोरथ सिद्ध हो गये हैं, ऐसे। ६ ऐसे स्त्री के शरीर–यन्त्र को जो अनोखा हो। अर्थात अन्तःपुर विष न दे डाले।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्र-[१]पिटक और देह के गले उतारे बाद ।
न निज हाथ, विधि-हाथ है फल, यह रखिए याद ।।७८।।

★ ★ ★

त्रिजटा ब्राह्ममुहूर्त में कर सीता को धीर,
गई निबटने कार्य से, वे फिर हुईं [२]अधीर ।।
वे फिर हुईं अधीर, क्योंकि वे अबला ही थीं;
फिर वैसी विपदा से पूरी विकला ही थीं ।
मरण ठान ही लिया अन्त में, मन जो उचटा;
पाश बनाया ले अशोक की शाखा [३]त्रिजटा ।।७९।।

ज्यों ही सीता गले पाश को लगीं डालने,
झट नरोक्ति बोले कपि प्रकृतानर्थ टालने ।
सकुशल सानुज राम पूछते कुशल तुम्हारी,
यही अँगूठी डाल रहा सहिदानी प्यारी ।।८०।।

सुन श्रवणामृत वचन, देखते उठा अगूँठी,
उन्हें हुआ निश्चय कि बात यह कभी न झूँठी ।
पनपे आशाङ्कुर से ऊपर देखा ज्यों ही,
दीख पड़े नयनामृत कपिवर शाखारोही ।।८१।।

मृगमाया के ध्यान-बँधे वह फिर व्याकुल-सी-
हुई, मुद्रिका-राम-नाम लख फिर वह हुलसी ।
बुझते दीपक की ज्वाला के समान बोला,
स्फुट करती तब अहो! अँधेरा तथा उजाला ।।८२।।

निदान, संशय-निदान मानस-ताप मिटाने,
कहा धीर हो महावीर से श्रीसीता ने ।

---

१ चिट्ठी डालने की पेटी (Letter-box)। अर्थात् विष जैसी चीज के गले उतारे बाद अपने हाथ की बात नहीं रह जाती। २ निरुत्साह। ३ तीन लम्बी उपशाखाओंवाली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामदूत हो यदि, [१]प्रभूत यह स्थान पूत हो,
प्रभु का परिचय दो वानर! मम भ्रम [२]विधूत हो ।।८३।।

★ ★ ★

सुन सीता का वचन प्रिय बोले पवन कुमार ।
अम्ब! [३]राघवालम्ब से कहता परिचय-सार ।।८४।।

★ ★ ★

महा-मनोहराङ्ग जो अहा! रतीश-से,
जटा-किरीट-कान्त शीश पार्वतीश-से ।
दिनेश-दीप्यमान जो विशाल-भाल हैं,
स्वभक्त-पाल हैं तथा विरोधि-काल हैं ।।८५।।

चरित्र-शिक्षणार्थ जो गुरु-प्रवीर हैं,
महागंभीर धीर सूर्य-वंश हीर हैं ।
उदार चित्त पूज्य-भक्त सत्य-[४]संध हैं,
महाव्रती महारथी अ-[५]कर्म-बन्ध हैं ।।८६।।

शरत्-समय-चन्द्र-सा मुखारविन्द है,
जिसे सराहता जगन्मनो-[६]मिलिन्द है ।
प्रगाढ़ कन्ध-बन्ध हैं, प्रलम्ब बाहु हैं,
उर-कपाट राक्षसार्थ कालराहु हैं ।।८७।।

महा-मृगेन्द्र का यथा गति प्रकार है,
गंभीर धीर अर्थवान वाक्य सार है ।
नखारुण-प्रभा-भरे पदारविन्द हैं,
सुभक्त-भृङ्ग भोगते जिन्हें अनिन्द हैं ।।८८।।

दुखी दयार्ह दीन के दयालु राम हैं,
वही अनादि अक्षयी अनन्त-धाम हैं ।

---

१ खूब। २ नष्ट। ३ राम ही के सहारे पर। ४ सत्य प्रतिज्ञा वाले। ५ कर्मों से अलिप्त। ६ जगत् का मनरूप भौंरा (सराहता है)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन्हें अशोक प्राण पा प्रिया हरी-भरी
समक्ष [१]मातृका लगे अशोक-मञ्जरी ।।८९।।

★ ★ ★

यों परिचय दे राम का, निज परिचय के साथ ।
सुना सकल घटना घटी, ठहरे कपि-दल-नाथ ।।९०।।

★ ★ ★

'यह कपि-पति पति-दूत सत्य' यों [२]पतिरति को पतियारा-
हुआ, डूबती को अवसर पर मानो मिला सहारा ।
धीरे-से बोली; धीरे-से उतरो सु-भाग्यशाली !
बैठो, आसन यही तुम्हारा भूमी दूबों-वाली ।।९१।।
माता के चरणों में लिपटे कपिवर पुत्र-सरीखे,
सीता-कर लालित थे रवि-कर-[३]कलित सान्ध्य घन दीखे ।
सिद्धि-[४]सूत्र होओ! तुम हनुमन् यह आशीष निराली-
उनके मुख-सरोज से निकली, ज्यों मधुरोक्ति [५]मराली ।।९२।।
कहा वीर ने, अम्ब! तुम्हारी यह नियन्त्रणा भारी-
अत्याचारी की निरधारी मैंने यहाँ निहारी ।
अभी इसी का बदला मैं भी चर-अनुसार चुकाता,
पूर्ण चुकादेंगे कुछ दिन में प्रण-रत विपन्न-[६]त्राता ।।९३।।

सुन सीता कपि का कथन टपकाती दृग-नीर ।
बोली लम्ब उसाँस से गरमाती सु-शरीर ।।९४।।

★ ★ ★

मत पूछो मेरी दुर्गति राम-विरह की ।
रम्य शान्ति-केली-गृह वन में हठ-वश हुई अकेली,
फिर तो क्या था, सुन लो गाथा, ऐसी विपदा झेली ।
भिक्षु-वेष धर मुझ को हरने निशिचर-नायक आया,

---

१ माता (आप)। छन्द की ओर मातृका अर्थात् ७ लगें (लघु-गुरु) की आवृत्ति हो, वह अशोक-मञ्जरी छन्द होता है। २ पति-व्रता। ३ सूरज की किरणों से छुआ (साँझ का बादल)। ४ सिद्धि के धाम। ५ हँसी। ६ विपद्-ग्रस्त के रक्षक (राम)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छिन ही भर में उसने दशमुख काल-रूप दिखलाया ।
नीचे सागर, ऊपर अम्बर, महाभयङ्कर पथ से-
जन-शङ्का तज इस लङ्का, में लाया टूटे रथ से ।
शोभन-शोभन बता प्रलोभन मुझे पूर्ण फुसलाया,
हाय! अन्त में मुझे मारने वह कृपाण भी लाया ।
निशिचरियों के गहरे पहरे रखकर भय दिखलाया,
चतुर चेटियों द्वारा मुझको साम-दण्ड सिखलाया ।
मंदोदरी सती ने उसको शाप-[1]विपाक सुझाया,
कई भयानक सुना कथानक बार-बार समझाया ।
दो मासों की अवधि जताकर बता काल का सौटा,
किसी तरह से उसी सती के साथ शयन-घर लौटा ।
रात न सोना, दिन भर रोना, पल भर चैन न पाया,
राम-नाम रटकर संकट पर इतना काल बिताया ।
दहल उठा यह हृदय, फटा नहिं, काँप रही यह काया,
लाज रखी रघुराज-भजन ने पड़ी न उसकी छाया ।।९५।।

★ ★ ★

कपि बोले, रघुवीर तुम्हारे विरह-रोग के मारे,
यदपि धीरता-हेतु न मन से, पर शरीर से हारे ।
दक्षिण फल, जल, वायु सती के सेवित हैं, यों सीते!-
मन में ठान इन्हीं को सेते किसी भाँति प्रभु जीते ।।९६।।
अब तो अम्ब! विलम्ब समझिए केवल मम जाने का,
किन्तु न कुछ भी यहाँ राम के सेनायुत आने का ।
अतः धीरमति! चट दें अनुमति, जाने को उद्यत हूँ,
कुछ परिचायक चिन्ह दीजिए, यह मैं चरणानत हूँ ।।९७।।
दे चूडामणि साश्रु सगद्गद बोलीं, कपि से सीता,
सौम्य! तुम्हारे समागमन से यह छिन सुखमय बीता ।
यदि प्रभु-सङ्ग-रसिक! हे हनुमन्! फिर इस रात तुम्हारा-
हो विश्राम सु-[2]प्रात दिवस हो दुखिया का सु-सहारा ।।९८।।
समुद सुरक्षित कर रुचिर चूडामणि को वीर ।
बोले छूते प्रणत पद, बरसाते दृग-नीर ।।९९।।

---

१ पुञ्जिकस्थला के छेड़ने से ब्रह्मा के शाप का परिणाम। २ अच्छे-प्रभातवाला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

[1]रात मात-युत प्रात शत [2]रात प्रात गत-मात ।
[3]तात-मात-युत रात बत! जात-द्योत शत प्रात ।।१००।।

अष्टादश कमल-दल तथा गोमूत्रिकाबन्ध ।

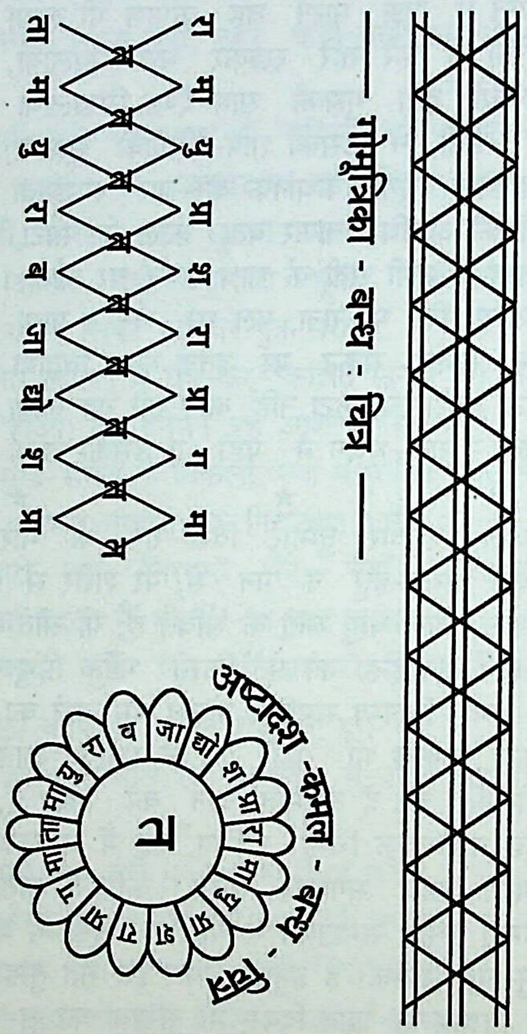

१ एक रात भी माता-युक्त हो तो सौ प्रभात के समान है। २ यदि प्रभात माता-रहित है, तो वह रात ही है। ३ किन्तु बत=अहा! एक भी रात यदि पिता और माता युक्त हों तो वैसे सौ प्रभात हैं। जिनमें जात द्योत=सूरज की रोशनी हो गई हो।

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया चाहता मैं अतः मात-तात-युत प्रात ।
अगले सब [१]गणरात्र को यों कह चले सु-[२]जात ।।१०१।।

★ ★ ★

स्थिति-परिचय पाने को कपि ने फिर वनिका पर ताका,
तहत-नहस कर उसे, दिया [३]पटु परिचय वानरता का ।
शासनार्थ बलपति आ धमके, इनसे लगे झगड़ने,
किन्तु पछाड़ें खा-खा कर वे लगे भूमि पर पड़ने ।।१०२।।

सुन ये वृत्त [४]वरोध में तब रावण ने यों कहा ।
सुर से भी कपि होता विकट अनुभव है मुझको महा ।।१०३।।

[५]उल्लाला <u>त्रिदशक-कला</u> सम वा अविकल विषम में ।
है उल्लालक <u>द्विकला-अधिक</u> वानर केवल विषम में ।।१०४।।

[६]वरवैरी <u>विषम-तपन</u> है <u>सम-वार</u> ।
कपि भी करता बलपति-बल-संहार ।।१०५।।

[७]निदान प्रेरित किया अक्ष को दुष्ट-चित्त ने हरने,
किन्तु अन्त में सत्ता छीनी उसकी भी यति-वर ने ।

१ रात्रि-समूह को। २ जिसका जन्म धन्य हो (हनुमान)। ३ अच्छा। ४ अन्तःपुर में ५ देव-द्वेषी रावण देवों और वानरों की तुलना कर रहा है:--चाहे सम दशा हो चाहे पूरी विषम दशा, उसमें देवों की कला होशियारी (चालाकी) उल्लाला=पराई संपत्ति के हड़प करने में बहुत लार टपकनेवाली होती है, किन्तु बन्दर जब कभी किसी की विषम दशा आ जाय तो उसी में देवों की अपेक्षा दो कलाओं से बढ़कर रहता है। अर्थात् संपत्ति हड़प करता है और बची हुई को नष्ट भी कर देता है। छन्द की ओर-सम और विषम पाद में १३ मात्राओं से उल्लाला छन्द होता है। किन्तु उल्लालक छन्द विषम पादों में इससे दो कला अधिक अर्थात् १५ मात्रा होने से होता है। ६ जो उत्तम श्रेणी का वैरी है, वह विषम दशा में तपाने वाला और सम दशा को रोकने वाला (नहीं आने देनेवाला) होता है। (देखो!) वानर भी सेनापतियों के बल का संहार करता है, जिससे आगे शत्रु को उठने का मौका मिले ही नहीं। छन्द की ओर;वरवै री! यों पृथक् पद समझें। अरी! (स्त्री-संबोधन) विषमपादों में तपन (सूर्य) अर्थात् १२ मात्रा और सम पादों में वार अर्थात् ७ मात्रा हों तो वरवै' छन्द है। ७ इसके पूर्वार्ध का आशयः-दुष्ट-चित्त रावण ने उन्हें मारने के लिए अक्ष को प्रेरणा की हनुमान् ने उसकी भी विद्यमानता को छीन लिया अर्थात् सार डाला। ध्वनित अर्थः-दुष्ट चित्त नाश करने के लिए अक्ष (इन्द्रिय) को प्रेरणा करता है, परन्तु श्रेष्ठ यति (जितेंद्रिय) उसकी भी सत्ता (शक्ति) को छीन लेता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुभट इन्द्रजित् निकल लगाने लगा अनेक झपट्टे,
किन्तु वीर ने [१]बिना बेर ही दाँत किये अति खट्टे ।।१०६।।
ब्रह्मास्त्र डाल कपि को उसने फँसाया,
सो राज-मर्म लखने इनको सुहाया ।
क्या अन्यथा विधि-[२]वराप्त न मुक्ति पाते?,
पा योग विज्ञ निज गौरव भी छिपाते ।।१०७।।
पकड़े गये भी राक्षसों से वीर तो अकड़े गये,
उनको कठिनता झेलते तब मल्ल मिलकर ले गये ।
यश क्योंकि मिलना था [३]उन्हें वा पारितोषिक, यों कहो,
क्या जायँ पकड़े अन्यथा, वे मूर्त्तिधर मारुत अहो? ।।१०८।।
रम्भे! नर्तन का प्रसङ्ग न अभी, लङ्केश सक्लेश है,
स्ववैंद्यो! घुसना न, यद्यपि तुम्हें आमन्त्रणादेश है ।
गन्धर्वो! तुम भी अभी चुप रहो, गाना तुम्हारा वृथा,
यों द्वारस्थित [४]नैर्ऋतोल्लापन से गूँजा हुआ द्वार था ।।१०९।।
प्रधान-द्वाराधिप-धाम सारा
प्रदीप्त था राक्षस-तेज-द्वारा ।
था नैन-तारा चकचौंध हारा,
तो भी निहारा, फिर यों विचारा ।।११०।।
जिसे [६]परेताधिप भीत सेता,
सन्तोष देता न [७]हिरण्यरेता ।
नहीं [८]प्रचेता निज पाश लेता,
औ [९]यक्ष-नेता रहता सचेता ।।१११।।
[१०]जो हो न लङ्काधिप सो कलङ्का-
चारी सपङ्काशय और बङ्का।
न हो अहङ्कारि-स्वकीर्ति-डङ्का,
त्रिलोक्यलङ्कार बने, न शङ्का ।।११२।।

---

१ बिना बेर (बदरीफलों के) दाँत खट्टे कर देना विचित्रता है। बिना देर लगाये दाँत खट्टे करना (परास्त करना) यह स्पष्ट है। २ ब्रह्मा का वर पाये हुए। ३ मल्ल-राक्षसों को। ४ नैर्ऋत नामक चौथे दिक्पाल के गर्जन से। ५ रावण द्वारा स्वर्ग की सफाई करने ही से पवन जैसों को यह स्थान बुहारना पड़ता है। ६ यमराज। ७ अग्नि ८ वरुण। ९ कुबेर। १० यदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृथु-कोल-तनु मानो तमोगुण से अभिन्नतया छुए,
'जय, जीव' कहते लोक-पालक-वर्ग से घेरे हुए ।
सिंहासन-स्थित, चामरों से वीज्यमान, दिनेश-से-
अतिदीप्त रावण को लखा हनुमान ने अनिमेष से ॥११३॥

★ ★ ★

तब नृप को यह स्मृत हुआ चारणोक्त रण-मर्म ।
"कपि न, [1]वृषाकपि है, तदपि, दिखलाया कपि-कर्म ॥११४॥

किंकरों को मार [2]कोविदारकानुकार जम्बू-
माली को विदारकर प्लवग-ललाम ने;
सप्तमन्त्रि-पुत्र-[3]सप्तपर्णों को विचूर्ण कर
पञ्चसैन्य-धुर्य-पञ्च-[4]वल्क चीर सामने ।
[5]अक्ष को विपक्ष-पक्ष जानके समक्ष काट,
रोकी रणखेत-वाट इसी बल-धाम ने;
वृक्षों को उखाड-फाड़ इन्द्रजीत को पछाड़
क्षिप्त ब्रह्म-अस्त्र को भी यत्न किया थामने" ॥११५॥

देखा निर्भय सम्मुख-स्थित इन्हें रात्रीचराधीश ने,
देखा उग्र कराल-नेत्र उसको निःशङ्क हो कीश ने ।
वीरालोकन से सभा रच रही थी कल्पना-युक्तियाँ'
दोनों की [6]उसको तभी सुन पड़ीं यों उक्ति-प्रत्युक्तियाँ ॥११६॥

★ ★ ★

है तू रे शठ! कौन, केसरि [7]प्रजा, क्या सिंह है दुर्मना!,
हे लङ्केश्वर! मैं समीरज, मुझे श्री अञ्जना ने जना ।
क्या है कुञ्जर उत्तरा-गज-वधू-श्रीअञ्जना का जना! ।
मैं तो हूँ हरि, विष्णु, दूत कपि हूँ मैं राम का सोहना ॥११७॥

तू रे मर्कट! सोहना कब बना, सो कौनसा राम है?,
माता के वध से प्रसिद्ध अथवा जो भिक्षु [8]निर्धाम है? ।

---

१ विष्णु। २ 'कोविदार' नामक वृक्ष के समान। ३ वृक्ष-विशेष। ४ पाँचों सेनाग्रगामी-रूप पाँचों वल्कलों को। ५ रावण-पुत्र और बहेड़ा। ६ सभा को। ७ केसरी-नामक वानर की और सिंह की। यों दूसरे अर्थ के प्रकट करने से यहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार है। अञ्जना-हनुमान-माता व उत्तर दिशा की हथिनी। ८ घर से निकला हुआ या गृह-हीन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं हूँ [१]शोभन जन्म से, अधिक हूँ श्रीराम के दास्य से,
जाना हो यदि राम को न अब भी, तो जानिए [२]भाष्य से ।।११८।।

हो कल्पाग्नि-समान दीप्त जिनने बाणार्चि की लाड़ली-
फूँकी साथ खरादि के निशिचरी सेना-पतङ्गावली ।
[३]कुद्दालोपम एक मात्र जिनके नामादि के रेफ ने-
मारीचाख्य निशाट के हृदय में आघात मारे घने ।।११९।।

भौंचक्के जिनसे डरे तुम हुए, स्त्री को चुराते हुए,
धिक्कारा तुमको जटायु खग ने जी को छुपाते हुए ।
मारा है उस बालि को कि जिसने सीधा तुम्हें भी किया,
एवं मित्र सुकण्ठ को कि जिनने तद्-[४]राज्य सारा दिया ।।१२०।।

भूमी पै कपि कोटि कोटि उनके स्त्री-रत्न को ढूँढने-
चारों ओर किये विसृष्ट मुझ-से, कीशेन्द्र सुग्रीव ने ।
मैंने प्राप्त किया उसे, फिर फलाहारार्थ उद्यान को-
छाना और स्व-रक्षणार्थ न दिया मौका रिपूत्थान को ।।१२१।।

सुनिए निशाट-राज! आपकी ही लाई आज
काल-रात्रि अन्त-काज घर में बिराजी है;
एक ही [५]सुबेल पर कठिन कु-[६]बेल पर
दाव ज्यों सु-बेल पर वज्र-[७]तति गाजी है ।
देव की कुमारी नहीं, नाग की कुमारी नहीं,
प्राकृत न नारी यह भुवनाधिराजी है;
जानकी-[८]जानि के बिना जाने, तुम जानकर
जानकी को लाये पर [९]जान-पर बाजी है ।।१२२।।

जो जीना चाहते हो, भटवर! अब भी क्या हुआ, काल ही है,
लो स्वामी का सहारा, रघुवर चरणापन्न के पाल ही है ।
लौटा दें जानकी को, यदि न यह जँचा, सर्वथा [१०]भ्रंश होगा,
सारा निर्वंश होगा परिजन, अपना वंश-विध्वंस होगा ।।१२३।।

१ सोहना। २ विस्तृत टीका ३ कुदाल के समान। 'र' मारीच के लिए मानो कुदाल था, इसी से वह आदि-रेफ नामों से भी काँपता था। ४ बाली का राज। ५ त्रिकूट ही का नामान्तर है। ६ कु समय पर। ७ वज्रपंक्ति। ८ राम। ९ जीवन । १० पतन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशा सभी जीवन में सरीखी–
अहो! किसी की न कदापि दीखी ।
मध्याह्न में जो बस एक जागी,
गो–धूलि से सो रवि–रश्मि भागी ।।१२४।।
दृगोल्का–पातों से हृदय दहलाता समिति का,
अहो! मानो कोप–प्रकर तनुधारी प्रकृति का ।
सुर–द्वेषी बोला, [१]त्रिजग–गढ़ लङ्का यह पुरी,
यहाँ से क्या कोई [२]करग कर पाता मणि चुरी? ।।१२५।।
अरे! लङ्का लङ्काधिपति–[३]हरि की दाढ़ यह है,
तुम्हीं से दुष्टों की दल–विदलिनी गाढ़ यह है ।
रचा है लङ्का को त्रिभुवन–अलङ्कार विधि ने,
इसी को जो घेरा तज सकल रत्नाम्बुनिधि ने ।।१२६।।
ह०–कलङ्काङ्की! लङ्काधिप! न मद लङ्का पर रखो,
तुम्हें जो हो शङ्का सब जगत का [४]मान निरखो ।
तुम्हारी लङ्का तो इस भुवन में है लघु कुटी,
त्रिलोकी–शाला में तुम समझलो तुच्छ चिउँटी ।।१२७।।
रा०–अरे! मूढात्मा हो कपि! [५]कपिल की–सी बतकही–
बनाता ही जाता मम त्रिजगती है गृह–मही ।
दशों दिग्–द्वारों के मुख मम मुखों का दशक है,
उसी में तू तुच्छाशय ! तुनतुनाता [६]मशक है ।।१२८।।
ह०–जरा सोचो, होता जब कि जन निद्रा–वश कभी,
उसे पूरा [७]चेता प्रथम, डसता है मशक भी ।
छुड़ाता क्या निद्रा सुख न [८]उससे, जो न सम्हले,
[९]ज्वरी होता पूरा, फिर समय पा काल [१०]निगले ।।१२९।।

---

१ यह लङ्का पुरी त्रिलोकी का किला है। २ हस्तगत। ३ रावण रूप सिंह की। ४ मानचित्र (नक्शा)। ५ कपिल साँख्य–दर्शन के प्रवर्तक थे। ६ मच्छर। ७ तुनतुनाने के द्वारा चेताकर। ८ उस जन से। ९ संतप्त और ज्वर रोगी। १० इस क्रिया का कर्म 'उसको' समझना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न जाने, ऐसे हैं भुवन विभु के बीच कितने?,
गिने क्या जाते हैं, यह गगन-तारे कि जितने ।
अहो ! जीना चाहो, यदि तुम उसी की शरण लो,
उसी के हाथों से-यदि फिर नहीं तो-मरण लो ॥१३०॥

★ ★ ★

झुँझलाकर नृप ने दिया कपि वध का आदेश ।
किया विसर्जित समिति को, रहे विभीषण शेष ॥१३१॥

★ ★ ★

कहा विभीषण ने कि प्रभु! ऐसे दूत-विनाश ।
उत्तम नरपति के लिए उपजाता उपहास ॥
उपजाता उपहास पूर्व इतिहास विचारो,
क्रोध-विवश हो दूतवधादेश न [1]निरधारो ।
दूतोचित हैं दण्ड कई अपमण्डक सु-महा,
उन्हें दीजिए, किसी शास्त्र ने वध तो न कहा ॥१३२॥

पर्यालोचन-[2]सिन्धु के तरण में तत्त्वज्ञता भाव है,
प्रायः हेतु भली-बुरी परख का सद्भाव-[3]दुर्भाव है ।
न्यायी होकर पक्षपात रखना है [4]वञ्चना, सोचना!,
है दुष्प्राप्य [5]सुलोचना विमल ज्यों, त्यों सत्य आलोचना ॥१३३॥

न्यायी नैतिक न्याय-नीति युग को ले सत्तुला तोलते-
जैसे तात्त्विक पुरुष-प्रकृति को, पीछे भला बोलते।
दोनों को लख छान-बीन करना तत्त्वज्ञ का कार्य है,
भृत्यों को सदसत् पुनः स्व-प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य है ॥१३४॥

---

१ निर्णय करो। २ पूर्ण-जाँच-रूप सागर। ३ सद्भावना और दुर्भावना (परीक्षणीय के प्रति)। ४ धोखा देना। ५ स्त्री (सीता ध्वनित है)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामिन् ! शिक्षण-दुर्ग को न सहसा क्रोधाग्नि से ढाहिए,
पर्यालोचक वस्तु का नृपति को होना सदा चाहिए ।
होते प्रेषक वध्य, दूत न कभी, स्वामी न क्या जानते?,
जो हों हीन प्रताप-बुद्धि-बल में, [१]दूतान्त वे ठानते ।।१३५।।

★ ★ ★

[२]मथ न विभीषण का कथन कथमपि कर स्वीकार ।
उसने दूतोचित कठिन किया दण्ड-निर्धार ।।१३६।।

खल-दल ने कपि को पकड़ किया भयङ्कर रूप ।
जैसे रवि को राहु अस करता [४]धूमल रूप ।।१३७।।

★ ★ ★

मेरा पुच्छ जलायेगा रिपुकुलाधिष्ठान हो वल्कली,
ऐसे जान किया किये अति उसे लम्बाति लम्बा बली ।
तैलाभ्यक्त हुए उसे प्लवग ने पीछे जलाने दिया,
ऐसे जान कि अग्नि है पितृ-सखा, सम्मान जी से किया ।।१३८।।

छूटे साथ प्रघोष के कपि उसी संघात के पाश से,
ज्यों गोला गुरु तोप से धधकता, ज्यों बाण इष्वास से ।
कर्णद्वार-कपाट पाटित हुए दिक्-पालक-स्तोम के,
कानों से बहिरे वपुर्धर हुए पृथ्वी तथा व्योम के ।।१३९।।

[५] 'हैं श्रीराम जयी व लक्ष्मण जयी सुग्रीव भी हैं जयी,
मैं रामानुग रामरक्षित जयी, हों शत्रु सारे क्षयी ।
लङ्कानाथ-सहस्र भी कर सके मेरा नहीं सामना,
लौटूँगा लखते निशाट-कुल के मैं साधके कामना' ।।१४०।।

---

१ दूत-वध। २ नहीं मथकर। ३ आकार कुरूप। ४ लाल काली। ५ ''जयत्यतिबली रामः'' इत्यादि वाल्मीकीय श्लोक-चतुष्क का यह भावानुवाद है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यों आर्त-प्रतिपोषण रस-भरी सीतामनस्तोषणा,
शत्रूत्साह-विशोषणा प्लवग ने भारी सुना घोषणा ।
माता का स्थल त्याग के सुहृद के आवास को त्यागके,
लङ्का के सब भाग केलिगृह ही मानो किये आग के ।।१४१।।

भागा रावण, कुम्भकर्ण खिसका निद्रानुरागी कहीं,
+[१]देवी भी असुरी सवंश [२]अकुला भागी अभागी कहीं ।
ऐसी थी वह दौड़-धूप कि जहाँ दौड़ाक दौड़ा किये,
था जल्पाक-[३]प्रजल्प अल्प न वहाँ तैराक तैराकिये ।।१४२।।

सोने की गृह-भित्ति के पिघलते जाली-झरोखे गिरे,
[४]बारी खूब बँधी रही, रजत के थम्भे अनोखे गिरे ।
मिट्टी में मणि[५]काञ्चनादिक मिले श्री के पराई हरे,
जो हो दैव-प्रकोप-अग्नि वह तो रक्षा न, [५]रक्षा करे ।।१४३।।

अरे! घर छोड़, प्रलोभन तोड़ न मुख को मोड़, स्वजी ले दौड़,
बचा स्वशरीर, बनेंगे वीर, करेंगे हीर-सुकर्ण-करोड़ ।
कई यों शोर मचाते घोर निशाचर पौर भगे वन-ओर,
निरखते हाय! पुरी में लाय कई निरुपाय मरे निज ठौर ।।१४४।।

शिखी बुझाके फिर वे नहाके,
विदेहजा के पद छू न-[६]थाके ।
आशीष पाके प्रभु को मना के
आये वहाँ के उपशल्य-[७]नाके ।।१४५।।

★ ★ ★

उस छिन मैथिल-नन्दिनी करती रहीं बखान ।
धन्य अञ्जना का जना सुत बल-बुद्धि-निधान ।।१४६।।

---

१ 'पटरानी' इस अर्थ से विरोध-परिहार। २ अकुलाकर इस अर्थ से विरोध-परिहार।
३ बकवादियों का बकवाद। ५ क्रम और झरोखा अर्थ झलकाने से विरोधाभास है। ५ भस्म।
६ नहीं थके हुए। ७ परसे के सिरे पर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मम हार्दिक दाह-प्रकार निहार रिपु-[१]प्रतिकारण को रण-बङ्का--
अयि मारुति! क्या तुमने अविदूषित दाह-विदूषित की यह लङ्का? ।
विधि ने [२]तब ज्यों शुचि बुद्धि विवेक बचाकर की सुकृपा अकलङ्का,
तुमने मुझको व विभीषण को रख, भीषण शौर्य रचा तज शङ्का ।।१४७।।

★ ★ ★

ज्ञानी विभीषण वहाँ निज मर्म खोले-
स्नेहार्द्र होकर मिले, फिर नम्र बोले ।
हे रामभक्त! प्रभु को यह दास का भी-
सन्देश देकर बनें उपकार-लाभी ।।१४८।।

हरि-पदजल-झारी-बिन्दु-दानाधिकारी!,
प्रभु-मिलन-अटारी-मुख्य-द्वाराधिकारी ! ।
पवनसुत ! तुम्हारी जो कृपा हो करारी,
अभिरुचित हमारी शीघ्र आ जाय बारी ।।१४९।।

★ ★ ★

दशरथ-नन्दन! जय जन-हर्षक !
असम-अपथ-[३]गत-सम-पथ-दर्शक! ।
अशरणजन-पदशरण-समर्पक ।
भयगत-अभय-समर्पण-तर्पक ! एकस्वर ।।१५०।।

[४]अर्थानर्थ-विवेकवान पथ में जाते नहीं जो खले,
रक्षा-शासन-कर्मयोग पर जो न्याय-स्थली में चले ।

---

१ शत्रु को (मेरे हृदय-दाह का) बदला चुकाने के लिए। २ मेरे हृदय-दाह के समय। ३ ऊजड़ कुमार्ग में पड़े हुओं को सरल मार्ग दिखलाने वाले ! । ४ इस पद्य में नर-शरीर-धारण के कारण विपद्-ग्रस्त प्रभु से कर्मगति का प्रभाव दिखाते हुए सहानुभूति प्रकट की गई है। अर्था०-अर्थ और अनर्थ का भेद जाननेवाले। रक्षा०-पालंन व शासन-कर्म करते हुए जो न्यायपथ में चलते आये हैं; ऐसे इन्द्र सरीखे समर्थ भी कर्म-प्रपञ्च के चक्कर से नहीं टले। चौथा चरण पस्तुत प्रसङ्ग पर स्पष्ट हैं। लेपी=कर्म-लिप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वज्री-से प्रभु भी न कर्म-पटली के चक्र से वे टले,
लेके भी अवतार माधव, न जो लेपी, टले हों भले ।।१५१।।
चक्रबन्ध ।

चक्रबन्ध-चित्र

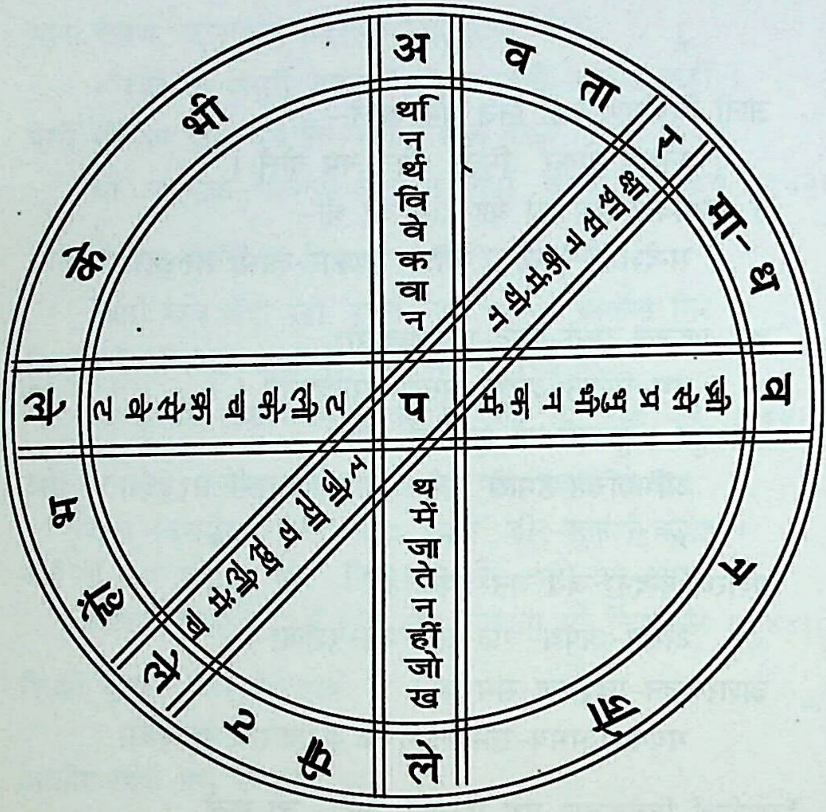

[1]आना इन नैनों न इन !, आना अनून-ऐन! ।
इन नानानन-नैन ने आनी एनी-नैन ।। एक-व्यञ्जन ।।१५२।।

---

१ अनूनऐन=हे पूर्णाधार!। इन =प्रभु! इन आँखों से (मैंने तुम्हें) नहीं आना=देखा। सो आना (पधारना) । इन नाना०-अनेक मुख-नेत्र वाले (रावण) ने एनी-नैन (सीता) हरी। अतएव आना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]उल्लू-आलि उलालने अली लालने नाल।
नलिननैन! ले आइए अनिललाल इनलाल ।।द्विव्यञ्जन ।।१५३।।

[२]मरा न जी जीन राम।
राह-शान-नशा-हरा ।
नशा नया, यान-शान-
जीन, यान नया न जी! ।।सर्वतोभद्र ।।१५४।।

सर्वतोभद्र-चित्र

म	रा	न	जी	जी	न	रा	म
रा	ह	शा	न	न	शा	ह	रा
न	शा	न	या,	या	न	शा	न
जी	न,	या	न	न	या	न	जी
जी	न	या	न	न	या	न	जी
न	शा	न	या	या	न	शा	न
रा	ह	शा	न	न	शा	ह	रा
म	रा	न	जी	जी	न	रा	म

---

१ उल्लूओं (शत्रुओं) की पंक्ति उड़ाने के लिए नाल (बन्दूकनाल) और भौंरों (मित्रों) को प्यार करने के लिए नाल (कमलतन्तु) अनिल-लाल=हनुमान को और इनलाल=रविपुत्र (सुग्रीव) को साथ ले आना। २ आत्मानं रथिनं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च । इंद्रियाणि हयाना-हुर्विषयांस्तत्र गोचरान्। इस वचन के अनुसार शरीर-रथ को इन्द्रियरूप घोड़े विषय-मार्ग में खींच ले जाते हैं; उन्हें रोकने का साधन है तो मन-रूप राश ही है। इस बात को लेकर विभीषण प्रभु से निज दशा का वर्णन करते हैं:-हे राम! मन बूढ़ा हो गया पर भरा नहीं; क्योंकि वह राह (विषयों) की शान के नशे में चूर है! नशा ही नया है, पर यान (रथ-शरीर) की शान जीन=पुरानी है, इसलिए उसका यान (गति नया नहीं रहा न जी! । अर्थात वृद्ध होने पर भी विषय-वासना नहीं गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]कोल्हू में खल-योग पा पिल रहा हे नाथ! मैं आपका-
स्नेही भक्त, शरीर हाय! जब से मैंने धरा ताप का ।
हे लोक-त्रितयी-ललाट-तिलक ! श्रीराम! पीड़ा हरें,
प्राणाधार! उदार ! तारक! हरे! उद्धार मेरा करें ।।१५५।।

अहैतुकी वा बे-तुकी भक्त-भारती मान ।
नाथ ! मुझे करिए क्षमा मैं अविनीत अजान ।।१५६।।

★ ★ ★

'तुम्हीं से रक्षों में प्रचलित हुई [२]पुण्यजनता,
[३]पलाशों में पुण्यार्जित बस तुम्हारी सुमनता ।
अतः धन्यात्मा हो प्रभु-[४]पदाधिकारी तुम भले,?
[५]सधर्मा के यों गा-सुगुण, भर [६]हामी कपि चले ।।१५७।।

★ ★ ★

सारा पार किया समुद्र, न लिया विश्राम, जाके सिया-
प्राप्ति-श्रेय किया विभक्त, दुखिया [७]सौ सैन्य पाके जिया ।
श्रीमान्! क्या न किया, सु-जीवन दिया, यों की गई [८]सत्क्रिया,
पूरा मुक्त किया मधु-स्थल, पिया [९]सो, कूच पीछे किया ।।१५८।।

आये [१०]प्रस्रवणीय धन्य धरणी [११]सानीक वीराग्रणी,
श्रीकाकुत्स्थ-[१२]शिरोमणी-द्विचरणी छू, सौंप चूड़ामणी ।

---

१ अन्त में अपनी जीवन-दशा दिखाते हुए अन्तिम प्रार्थना करते हैं:-आप तो त्रिलोकी के तिलक हैं, मैं गिरकर तिल का तिल रह गया। स्नेही भक्त कहने से तिल का बोध होता है। स्नेही=चिकना, भक्त=अन्न, अर्थात तिल। खल=दुर्जन और तिलों का मैल। २ विपरीत लक्ष्णा से जो राक्षस पुण्यजन कहलाते हैं, उसे छुपाकर कहते हैं कि बस तुम्हीं से राक्षसों में पुण्यजनता प्रचारित हुई। ३ माँस-भक्षकों में तुम सुमना हो। पत्तों में पुष्पपन ध्वनित है। ४ पद=चरण। ५ समानधर्मी भाई के। ६ सन्देश देने की स्वीकृति। ७ सिया के मिलने का श्रेय (पाके सैन्य=साथियों का समाज)। ८ सम्मान। ९ मधु (शहद)। १० प्रस्रवण पर्वत की। ११ सेना-समेत १२ श्रीराम के दोनों चरण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीता की रमणीय-प्राप्ति-करणी वार्ता कही पूरणी,
बोले राम गुणी कि हे कपि-मणी! मैं हूँ तुम्हारा ऋणी ।।१५९।।

★ ★ ★

सुनो प्राणप्रिय पवन-कुमार !
तुमने किया परम उपकार ।

यह मैं नहीं बिसारूँगा,
कब मैं भार उतारूँगा ।।

कठिनाई कुछ भी न विचार,
पार किया सागर दुष्पार ।।

कब जन-काज सुधारूँगा,
कब मैं भार उतारूँगा ।।

अरिपुर के निकले तुम पार,
खाई नहीं जरा भी हार ।

मैं क्या काम सँवारूँगा,
कब मैं भार उतारूँगा ।।

कब पाऊँ मैं वह अवसर,
जब कि रखूँ कुछ भी न कसर ।

सुरपति तुम्हें निहारूँगा,
कब मैं भार उतारूँगा ।।१६०।।

[1]प्रतिपद रखते कान निज [2]प्रतिपद रखते हाथ ।
पवन-तनय नय-विनययुत बोले, सुनिए नाथ! ।।१६१।।

हे त्रिलोक के नाटक-कार !
सब के हो तुम प्राणाधार ।

---

१ पद पद पर। २ दोनों चरणों पर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्यों संकोच मनाते हो;
कैसी बात बनाते हो? ।।

हे करुणा-सागर ! रघुवीर !
किसका है यह रचा शरीर? !

क्या मैं सागर-तारी हूँ;
मैं तो प्रेरित-कारी हूँ ।।

मैं हूँ रचा आपका यन्त्र;
चल सकता मैं नहीं स्वतंत्र ।

संचालक से चलता हूँ;
उसके बल न विचलता हूँ ।

मुझे आपने किया स्व-दूत,
मेरी क्या इस पर करतूत ? ।

मैं सुर-पद न सराह रहा,
चरण-भक्ति बस चाह रहा ।।१६२।।

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता द्वाविंश प्रतान समाप्त ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

तेईसवाँ प्रतान

प्रवेशिका

हनुमानजी का लङ्का से लौटने पर सुग्रीव द्वारा अभिनन्दन, हनुमानजी का सेना को तुरन्त लङ्का भेजने का अनुरोध, लक्ष्मणजी, सुग्रीव तथा श्रीराम के उत्साहवर्द्धक वचन, लङ्का में हनुमानजी के गमन के पश्चात् रावण की मंत्रणा, अन्य मंत्रियों के विपरीत विभीषण की सीताजी लौटा देने के लिए स्पष्टोक्ति, रावण का उन्हें निष्कासित करना, विभीषण का श्रीराम की शरण में आना, विभीषण द्वारा धन्य धन्यता का अनुभव, सागर पार जाने के लिए पहले श्रीराम द्वारा उसकी आराधना, फिर उस पर शोषण–बाण–सन्धान की तत्परता, सागर की क्षमा–याचना, नल–नील को सेतुनिर्माण की क्षमता का संकेत, श्रीराम से म्लेच्छ–भूमि में बाण को विसर्जित कर शङ्करजी की स्तुति की प्रार्थना, कवि द्वारा मारवाड़ प्रदेश की गौरव गाथा, शङ्करजी का स्तवन, सुग्रीव द्वारा भारत का यशोगान का इस प्रतान में विशद वर्णन है। सेतु निर्माण के पश्चात् श्रीराम की सेना के लङ्का पहुँचने पर स्तम्भित रावण को मन्दोदरी श्रीराम के यथार्थ स्वरूप का निरुपण करके सीताजी के लौटाने का असफल प्रयास करती है। विभीषण की प्रार्थना पर श्रीराम अङ्गद को रावण की सभा में दूत बनाकर भेजते हैं। किन्तु अभिमानी रावण पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। प्रतान में मेघनाद, कुम्भकर्ण, रावण आदि के भयङ्कर युद्ध तथा उनके संहार का विस्तार से वर्णन है। विभीषण को लङ्का का राज्य देकर श्रीराम सीताजी, लक्ष्मणजी आदि के साथ विमान से अयोध्या लौटते हैं।

विशेष : मारवाड़ की महिमा – उपप्रतान के रूप में मारवाड़ की महिमा का उल्लेख करके कवि ने स्थानीय परिवेश–पल्लवित संस्कार को अभिव्यञ्जित किया है।

भक्ति और प्रेम के स्वर : 'जय जय दयालु शङ्कर' के रूप में शङ्करजी की स्तुति तथा 'हमें है मान भारत का' के रूप में भारत की महिमा का वर्णन करके कवि ने भक्ति–भावना और राष्ट्रप्रेम के स्वरों को मुखारित किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेईसवाँ प्रतान

[१]सुरसार्थान्वित स्वर्ग-सम बनता काव्य-शरीर ।
जिनके चरित-बखान से, वे मम प्रिय रघुवीर ।।२३।।

सुग्रीव प्रेम-दृग से, नवते त्वरा से-
वीरेन्द्र को [२]सदभिनन्दन दे, सखा से ।
बोले कि सिद्धि इनकी अनुगामिनी है,
जो आपकी चरण-भक्ति अकामिनी है ।।१।।

जाना उसी का प्रभु को सुहाता,
सोत्साह जाता, कर कार्य आता ।
आना उसीका जग में सुहाता,
[३]भू, जाति, वा जन्म सुधार जाता ।।२।।

बोले वीर, न कीजिए अति [४]इसे, [५]सम्पूरणा दीजिए,
मेलानन्द न लीजिए, अब प्रभो! [६]नीराजना कीजिए ।
सेना-सज्जन कीजिए, गमन की आघोषणा दीजिए,
आज्ञा सत्वर दीजिए कि, सुभटो! वीर-[७]प्रपा कीजिए ।।३।।

ज्यों पीयूष-तड़ाग से निकलके मत्सी तपे आग-से-
ग्रीष्मों के स्थल-भाग से, मिल बचे वर्षा-जल-[८]त्याग से ।
वैसे राघव-[९]नाग से बिछुड़के माता मिली आग-से-
लङ्का के उस बाग से, बच रहीं प्राणेश के [१०]राग से ।।४।।

---

१ सुन्दर रस व अर्थ से युक्त; स्वर्ग-पक्ष में-सुर सार्थ=देवगण से युक्त। २ सच्ची बधाई। ३ मातृ-भूमि अर्थात् स्वदेश। ४ प्रशंसा-प्रसङ्ग को। ५ समाप्ति। ६ सेना की सजावट के निमित्त आरती। ७ वीर-पान-गोष्ठी। ८ जलवृष्टि से। ९ रघुवंशियों में श्रेष्ठ (राम) से। १० प्रेम से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्यों ही पूर्व-अड़े प्रसङ्ग-उघड़े ये वाक्य कानों पड़े,
संदेशार्द्र अमर्ष-[१]बह्रिकण में [२]कारीष मानो पड़े ।
श्रीसौमित्रि, दिनेश-नन्दन तथा सीतेशिता का अहा।,
उत्साहानल उत्तरोत्तर क्रमात् जागा तथा यों कहा ।।५।।

★ ★ ★

जब से छिनी है मात, नित्य दुख पाऊँ तात!
जो मैं रुख पाऊँ, बतलाऊँ हथकण्डों को;
एक क्या बिचारा सिन्धु, सूखे कर डालूँ सिन्धु-
सारे, हे प्रभाव-सिन्धु! और भूमि-खण्डों को ।
लङ्कापुर राम-दूत कपिने उजाड़ डाला,
राम-बन्धु चूर डाले सर्व ब्रह्म-अण्डों को,
एक ही निमेष-बीच रिपु के प्रचण्डतर-
कर डालूँ खण्ड-खण्ड बीसों भुज-दण्डों को ।।६।।

अब न तुम्हारा काम, सब है हमारा काम,
करिए [३]विराम राम !, प्रीति-प्रण पालूँगा;
सैनिक-समाज आज प्रस्तुत है युद्ध-काज,
मन्त्री पर त्याग राज कूचकर डालूँगा
सकल प्लवंग-ऋक्ष-द्वारा वृक्ष डाल-डाल-
सेतू को निकालकर सिन्धु-मद गालूँगा;
सागर को पार कर रावण को मार कर-
मित्र-[४]दार-मोप-जन्य वैर को निकालूँगा ।।७।।

अहह! प्रियानुजात! और हे दिनेश-[५]जात?
चोट-सी चोरी की बात राम नहीं भूला है;
बन्धु-मित्र द्वारा [६]ख्यात [७]सुजनोपचार-जात-
दैव की कहाई बात आग पर पूला है ।

---

१ क्रोध की चिनगारी पर। २ आग सुलगाने का साधन। ३ विश्राम। ४ मित्र की स्त्री के हरण से पैदा हुए। ५ सुग्रीव!। ६ कहीं हुई । ७ सज्जनों के व्यवहार से बनी हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रूरतर-कर्म-गति [1]दूरतर-कालगति-
द्वारा जो कि मन्दमति शत्रु यह फूला है;
दण्डनीय नाग की-सी खण्डनीय छाग की-सी
दक्षकीय योग की-सी [2]विधि प्रतिकूला है ।।८।।

★ ★ ★

यों कहते प्रभु के विकसी उस लोचन-यामल में अरुणाई,
क्या दशकण्ठ-निमित्त उठे [3]प्रतिघानल की वह थी तरुणाई ।
काँप उठी अधराधर-कोपल, व्याप उठी मन में निठुराई,
क्या उस काल रघूत्तम ने स्व-[4]धृता नर-केसरिता दुहराई? ।।९।।

★ ★ ★

यों बोले भुज-दण्ड दक्षिण उठा मानो लगे गाजने,
भीतात्मा भगने लगे, [5]मृगकुल-द्वेषी लगे लाजने ।
जो स्त्री वाम भुजा हरी कपट से, सो दक्षिण [6]नीरुजा-
वंश-ध्वंस [7]नृशंस का ध्रुव यही मेरी करेगी भुजा ।।१०।।

सबके हृदयोद्गार का सार-सार अवधार ।
उपसंहार निहारकर बोले पवन-कुमार ।।११।।

मुझको सीतान्वेष का था बस प्रभु-निर्देश ।
यदि पाता रिपु-पेष का साथ, न रखता शेष ।।१२।।

रिपु के घर मातृ-शिरोमणि को दुखिया सुत ने जब जान लिया था,
करतूत दिखा सु-करण्डक-बीच बिठा [8]तदुपानय ठान लिया था ।
पर स्वामि-स्वरूप तथा [9]स्थिति को [10]उनसे सुन, सोच स्वयं, निज माथा-
स्तुति-पूर्व झुका चट लौट पड़ा कर सैन्य-प्रयाण-उतावल-गाथा ।।१३।।

★ ★ ★

---

१ पता लगाने की देर के कारण। २ शत्रु चाहे फूल जाय पर उसका भाग्य इनके समान प्रतिकूल है। 'विधि' शब्द भाषा में प्रायः स्त्रीलिंग है। ३ क्रोधाग्नि की। ४ अपनी धरी हुई नृसिंहता। ५ सिंह। ६ स्वस्थ। ७ दुष्ट (रावण) का। ८ उन (सीता) का यहाँ लाना। ९ कुल-स्त्री-जन की मर्यादा। १० सीता से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुसकान-सदमृत-पान को रघुवर कराते मान से,
बोले पिता ज्यों पुत्र से, कर लालना हनुमान से ।
[१]तुम तीन-तेरह [१]भी हुओं को जोड़ सकते हो सदा,
जो हाथ आठों सिद्धियाँ निधियाँ नवों हैं सर्वदा ।।१४।।

पदनत वे बोले कि क्या कपि-पामर की शक्ति ।
हे कारण तारण प्रभो! इन चरणों की भक्ति ।।१५।।

★ ★ ★

[२]रामचन्द्र-पूर्णचन्द्र, लक्ष्मण-सुकण्ठ-गुरु-
शुक्र, कपि-सैन्य सब तारक-[३]वितान था;
अङ्गद-हनुमदादि अष्ट-दिग-सैन्य नाथ
ध्रुव-युक्त-सप्तऋषि-वर्ग दीप्यमान था ।
आयुध-[४]तड़ित-रक्ष जाम्बवान आदि ऋक्ष-
सैन्य-गण-मेघलक्ष श्यामवर्णवान था,
नियत-समय-योग-सज्जित अनीक वह
पावस-प्रदोष-व्योम प्रसृत महान था ।।१६।।

[५]अङ्गद ने जब लक्ष्मण को निज दक्षिण-कन्ध-सुपट्ट चढ़ाया,
मारुति ने तब राघव को उभयाँस-सुखासन-संस्थ दिखाया ।
वीर ! सुधन्य तुम्ही पटु जो प्रभु को सम-सम्मुख यों बतलाया,
यों युवराज! [६]प्रभूद्वह-वाह तुम्हीं क्षम, यों उभयादर भाया ।।१७।।

---

१ तितर-बितर हुओं को। १ जिसके हाथ में ८+९=१७ संख्यावाली वस्तुएँ हैं वह ३+१३=१६ संख्या वाले को जोड़ सकता है। त्रिगुण और त्रिगुणात्मक सृष्टि के प्रवर्तक षोडशकलात्मक नारायण को ब्रह्मज्ञानी जोड़ सकता है; यह ध्वनित है। २ सेना पर बरसाती साँझ के आकाश का आरोप कर यह रूपक रचा गया है। ३ समूह। ४ शस्त्र-रूप बिजली रखनेवाला। ५ प्रभु (विष्णु) को धारने वाले शेष (लक्ष्मण) को भी ढोनेवाले। ६ अंगद ने लक्ष्मण को जब दाहिने कन्धे पर बिठाया, तब हनुमान ने, यह जानकर कि स्वामी की दृष्टि सब ओर सरीखी रहे, राम को दोनों कन्धों के बीच चरण लटकाये बिठलाया। उस प्रसङ्ग पर उन दोनों ने आपस की चातुरी और क्षमता की प्रशंसा की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]राघव-माधव, लक्ष्मण-शेष, रुमाधव-भूघर से छवि पाये-
आयुध-[२]बाडव-दीप्त हनूमत-[३]तुङ्ग तिमिङ्गिल से लहराये ।
[४]चक्रभटाधिप-नक्रछटायुत पादचरा-[५]भ्युराढ्य सुहाये-
क्या बल-सागर-सोदर से मिल सागर के रस-पूर न माये? ।।१८।।

वेलोपरि-राजमान शंख-मणि-[६]माल्य-मान
प्रचुर-प्रभाववान लहर उछालते,
दुष्ट-दण्ड-[७]काण्ड पर सर्व-भूमि-भाण्ड पर
आप ही का राज्य कर मानो रोष डालते ।
मच्छपति-युद्धधीर, कच्छप-कुलीर-वीर
नीर-बल पा अमीर कसक निकालते;
सिन्धु को निहार पार-हीन सूर्य-वंश-हार
पूजनोपहार-उपचार पूर्व पालते ।।१९।।

★ ★ ★

लङ्का में हनुमान के गमन के पश्चात् प्रतिस्थान के-
सारे नव्य विधान के क्रम छिड़े एवं नवोद्यान के ।
वैरी के पहिचानके नृपति ने हृद-भाव, [८]आस्थान के-
सभ्यों को मतदान के विषय में आज्ञप्ति की [९]जानके ।।२०।।

★ ★ ★

बोले तन्मन-[१०]भावना बहुत से, सोची न सद्भावना,
मानो की प्रति-गुञ्जना स्वपति के हृद्-मन्त्र की [११]रञ्जना ।

---

१ इसमें रूपक द्वारा सैन्य को सागर के समान बताकर उसी के कारण उमड़े हुए सागर जल पर उत्प्रेक्षा की गई है कि क्या सगे भाई से मिलाप होने के कारण जो रस (आनन्द और जल) उसमें माये नहीं, अर्थात् बाहिर निकल पड़े। २ शस्त्ररूप वाडवाग्नि से युक्त। ३ हनुमान रूप बड़ा ऊँचा मगरमच्छ। ४ सैन्य के बड़े बोध रूप मकरों की छटा से युक्त । ५ पैदल सेना रूप ज़लचर जन्तुओं से भरा हुआ। जल पर और आनन्द-प्रवाह (ध्वनित)। ६ शंख, मृणि, मालायें जिसके समान की वस्तुएँ थीं । ७ दुष्टों को दण्ड देने के मौके पर। ८ सभा के। ९ स्वयं जानकर न कि किसी के कहने से। १० रावण का मन-चाहा। ११ प्रसन्न करनेवाली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई काल-विलम्बना पर तुले, कोई रणालम्बना-
बोले, द्वैध-[1]विभाजना फिर कई, बोले कई आसना ।।२१।।

बोले निर्भय हो विभीषण वहाँ, हे पूज्य लङ्केशिता !,
सीता है जगदम्बिका व उनके भर्ता त्रिलोकी-पिता ।
लाये जो कि चुरा इन्हें, छल उन्हें, भारी हुई भूल है,
भावी घोर अनिष्ट जान तब से मेरे मनः-शूल है ।।२२।।

माया पुलस्त्यान्वय को भुला रही,
अज्ञान-भूले तुम को भुला रही ।
भुला स्व-कर्त्तव्य कहाँ बुला रही?,
हा! कौन [2]पापाङ्गन में सुला रही? ।।२३।।

पौलस्त्य-वंश-मणि! विंशति-कर्ण! स्वामी!
सोदर्य का मत सुनें कुल-भव्य-कामी ।
श्रीराम का तुरन्त आश्रय लीजिएगा,
स्त्री-रत्न को विनय से प्रति-[3]दीजिएगा ।।२४।।

आत्मा को बस आत्मा से, समझा जान लीजिए ।
राजोपचार हैं मंन्त्री, सार को छान लीजिए ।।२५।।

★ ★ ★

माया-लेप व हीर-लेप न कभी जाता बिना [4]भाग के,
तप्तारक्त दशास्य के दृग हुए गोले यथा आग के ।
बोला, रे कुल के कलङ्क! कढ़ जा, जो राम प्यारा तुझे,
मैंने जो कि किया, किया फिर किया, है कौन खाता मुझे ।।२६।।

---

१ शत्रु-पक्ष में फूट डाल देना। २ कौन से खराब आँगन में इस प्रश्न पर 'कौन पाऽपाङ्गन से' यही उत्तर है, अर्थात् कौनप=मुर्दे के अपाङ्गन=खराब आँगन में; जहाँ मुर्दा सुलाया जाता है; वहाँ। प्रश्नोत्तर अलङ्कार है। ३ वापस। ४ भाग्य के बिना माया का लेप नहीं जाता और भाग के (टुकड़े किये) बिना हीरे का लेप (चेप) नहीं जाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानी सज्जन [१]स्वापमान भुगते भी क्या नहीं जागते?,
भ्राता दुर्ग्रह दुश्चरित्र यदि हो तो सत्पथी त्यागते ।
यों निर्धार तभी विभीषण उठे, दुःखी मिले [२]श्याम से,
पाता ताप-भरापतत्-[३]कुल सदा आराम आ [४]राम से ।।२७।।

[५]चरता कर देश को भगा,
[६]शुक वैतालिक जो पता लगा ।
इस भाँति अलापता रहा,
सुन ज्ञानी जन भाँपता रहा ।।२८।।

"सुमरन [७]सहकार का दिलाया,
तदपि न सो [८]परभृत् ! तुम्हें सुहाया ।
अति [९]परभृत ने अहो! निभाया,
वह अपमानित हो निदान आया" ।।२९।।

अन्तर्याम-[१०]प्रभाव से प्रथमतः हाँ, राम अभ्यस्त थे,
एवं पूर्णतया नवीन हनुमत्-[११]संदेश-विश्वस्त थे ।
तो भी प्रेरित राजनीति-विधि से अन्तः-सभा को बुला,
अन्तर्मन्त्र विभीषण-ग्रहण में लेने लगे ही [१२]खुला ।।३०।।

सुग्रीवादिक सर्व मन्त्रिगण ने सामान्यता से कहा,
वैरी का अनुजात आज तक जो तत्सङ्ग ही में रहा ।
कैसे विश्वसनीय हो वह प्रभो ! तत्काल आया हुआ,
लोहा भी ज्वलिताग्नि-संगत रहा कैसा तपाता छुआ? ।।३१।।

---

१ स्व+अपमान=अपना अनादर और स्वाप-मान=नींद का अंदाजा। । २ राम से। ३ गिरते हुओं का वर्ग और पक्षियों का समूह। ४ आकर राम से और आराम=बाग से। ५ जासूसी । ६ शुक-नामक रावण का जासूस । ७ आम्र की ओर संकेत है)। ८ हे पर-पोषक (काक!) (रावण की ओर संकेत है)। ९ परपुष्ट (कोयल) ने (विभीषण की ओर संकेत है)। १० घट घट की जानकारी के प्रभाव से। ११ हनुमान के लाये हुए संदेश से (विभीषण पर) भरोसा रखे हुए। १२ स्पष्ट (मन्त्र)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारासार विचार, पा क्रम, कहा ज्ञानी हनूमान ने,
वैसे तो चिर काल नाथ! लगता हृद्-वृत्ति को जानने ।
वैरी के रिपु-भूत बन्धु-जन को तो किन्तु स्वीकारिए,
[1]लोहावत् जल-वायु सेवन करा कार्यार्थ निर्धारिए ।।३२।।

इच्छा के अनुसार शोभन बना सत्कार्य लेते रहें,
पूरी हो बल-[2]वृद्धि, भीतर इसे जो स्थान देते रहें ।
साधे ही सधते तथा बिगड़ भी जाते बिगाड़े सभी,
होते हैं व्यवहार-निर्भर सुहृद्, वैरी, उदासीन भी ।।३३।।

दूत-ध्वंस-प्रथा-विधानक-कथा की थी इसी ने वृथा,
मैंने क्योंकि व्यथा मचाकर मथा अक्षादि का वर्ग था ।
लङ्का में यह एक था शुभ-[3]पथालम्बी, नहीं अन्य था,
माता की मिलती यथार्थ न कथा, मैं भी नया अन्यथा ।।३४।।

+[4]वह धर्म-पुस्तक को डलाता, किन्तु [5]यह लाता स्वयम्,
वह डगमगाता कीर्तनों में, भक्त [6]गम गाता स्वयम् ।
वह लड़खड़ाता मत्त हो, यह तो लखाता सार ही,
वह तो तड़पता [7]विप्रयोगी, किन्तु तपता है यही ।।३५।।

[8]क्रिया [9]डकारों से सहित उसकी विविधाऽऽपान से ।
गत-डकार इसकी प्रभो ! नित्य आपके ध्यान से ।।३६।।

अहह! [10]डकार लिया तभी उसने बहु पर-द्रव्य ।
इसने न किसी का कभी, परखें भव्य अभव्य ।।३७।।

★ ★ ★

---

१ जलते अग्नि में तपे हुए लोहे के समान। २ सैनिक-शक्ति की और लोह-पक्ष में शारीरिक शक्ति की वृद्धि। ३ सुमार्गगामी। ४ रावण (रावण विभीषण की प्रकृति भिन्नता बताई गई है)। ५ विभीषण। ६ ग=गान्धार स्वर म=मध्यम स्वर। ७ विरही और ब्राह्मणों का सङ्गी। ८ धातु से बना पद और काम। ९ वायु आदि कारणों से मुँह से निकलने वाले शब्दों से और 'ड' अक्षरों से। १० हड़प कर गया। +इस पद्य में रावण की क्रिया (धातु की और काम) डकार-सहित और विभीषण की क्रिया डकार-रहित मिलेगी। कारण भी इसी के आगे मिलेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीअञ्जना-तनय के नय को बखाना-
रामादि की समिति ने, वह मन्त्र माना ।
सम्मान-पूर्वक विभीषण को बुलाया,
श्रीराम ने भरतवत् उर में लगाया ।।३८।।

ज्ञान-निधान मुझे पहिचान स्व-जीवन को अप-[१]जीवन खोये,
हाय! घिनायँ, नहीं अपनायँ, अहो ! यह जान विभीषण रोये ।
ताप तथा अनुताप-कलापक भाँप दयानिधि के दृग कोये-
पूर्ण हुए जल से, [२]वह मात्र गिरा, न गिरा कह वे [३]सब धोये ।।३९।।

★ ★ ★

दिन तीन उजागर सागर को मति-सागर ने अविराम अराधा,
पर शान्त नहीं व न दान्त हुआ, पर भ्रान्त हुआ धर ऋद्धि अगाधा ।
तब शोषण-अस्त्र चढ़ाकर [४]यावत प्रस्तुत की उसके प्रति बाधा,
वह [५]तावत दीख पड़ा अति-नम्र, अहो! जड़-जाति [६]सुदण्ड-सुसाधा ।।४०।।

सिन्धु ने स्वकीय हाथ जोड़के कहा कि, नाथ !
सगर-सुतों के हाथ जन्म मम जानिए;
यदपि विलम्ब-प्राप्त, तदपि हूँ वंश-प्राप्त,
चरण-शरण-प्राप्त, मुझे क्षम्य ठानिए ।
हे दिनेश-वंश-केतु! मातृ-वर-प्राप्ति-हेतु
नल को स्वभक्त सेतु-बन्ध-शक्त मानिए;
म्लेच्छ-भूमि-बीच-इस शर की [७]विसृष्टि कर
मरु-भूमि-सृष्टि कर शिव को बखानिए ।।४१।।

★ ★ ★

सिन्धु-वचन स्वीकार कर किया उसी अनुसार ।
राघव ने की शम्भु-नुति[८] लाघव दिखा उदार ।।४२।।

★ ★ ★

१ दुर्व्यवहारों से बिताये। २ जल। ३ ताप और पश्चात्ताप के समूह। ४ ज्यों ही। ५ त्योंही। ६ मूढ जाति पूरे दण्ड ही से मानती है। ७ विसर्जन। ८ स्तुति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपप्रतान ५

–मारवाड़ की महिमा–

जय जय राजस्थान ! भारत माता के हृदय ।
श्रीहरि ज्यों [१]सुशयान अजयमेरु-[२]शेषाङ्ग पर ॥१॥

श्रीरवि-वंश रत्न रघुवर ने अपने शर के द्वारा–
जिस प्रदेश को कर सु-पवित्रित डाली शुभ-दृग-धारा ।
उस मरु-महि की महिमा ही तो मुझसे कुछ कहलाती,
मोदमयामृत बरसाकर मम मुरझा मन बहलाती ॥२॥

श्रीराठोड़ वंश के भूषण वीर नृपों के बल से–
पा अभेद्य विधि अधिक मानता मरु को [३]मेरु अचल से ।
फिर यह मात्रा-रहित भला क्यों, वह क्यों मात्रा-शाली?,
इसमें मात्रा नहीं कनक की, मात्रा अतः निकाली ॥३॥

विशालता के कारण यह स्थल गगन-स्थल के सम है,
यह कवियों का कविता-कारण [४]कल्पन केवल भ्रम है ।
केवल एक दिखाई देता दिन में [५]अर्क वहाँ पर,
कितने अहो! दिखाई देते निशि-दिन [६]अर्क यहाँ पर ॥४॥

[७]मेष, मीन, वृष, और कर्कटक, कन्या, सिंह, मकर भी,
तुला, कुम्भ, धनु, मिथुन व वृश्चिक वहाँ एक शशधर भी ।

---

१ सुख से सोनेवाला। २ अजमेर रूप शेष=बाकी रहे अंग पर। श्रीहरि पक्ष में शेषनाग के अंग पर। ३ 'मरु' और 'मेरु' में केवल मात्रा का अन्तर है, मरु में कनक=(सोने या धतूरे) की मात्रा अर्थात् परिमाण नहीं है फलतः वे दोनों अपरिमित हैं। ४ कवि होने के कारण कल्पना करना। ५ सूर्य। ६ आक। ७ मेष आदि १२ राशियाँ और शशधर अर्थात् चाँद। मारवाड़ में मेष (भेड़), तुला (तकड़ी), मिथुन (स्त्री-पुरुष का जोड़ा) आदि प्रत्येक समूहों में हैं। आकाश में–शशधर चाँद और मरुभूमि में-शश (खरगोश) और धर (पर्वत)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक-एक की कई राशियाँ यहाँ दिखाई देतीं,
सदा समा-[१]न-क्षत्र-मण्डली प्रिय [२]राजा को सेती ॥५॥

चाँद-चाँदनी-चन्दन-चर्चित शुचि बालू का टीला,
पूर्ण पवन के [३]परिष्कार के कारण बन लहरीला ।
मञ्जु मरुमही-महिला की मन-मोहन महती साड़ी–
बन जाता है, जिस पर बूँटी हरी-हरी है बाड़ी ॥६॥

कूनट, पीलु, करील, खेजड़ी और बबूल भले ही–
ऊपर से हों कठोर भी पर हैं भीतर से [४]स्नेही ।
क्योंकि, न आशा-भरे अतिथि को ये जाने दें खाली,
बाड़ी का तो क्या कहना फिर जहाँ सुमति [५]वनमाली ॥७॥

माला फेर-फेर भीतर से जो नित अमृत निकालें–
उसे पिला, न कि केवल [६]क्षेत्रज संतति ही को पालें ।
किन्तु सदा जो अन्य निजाश्रित पात्रों को भी भरते,
मारवाड़ के रहट महात्मा रिपु को 'हट-हट' करते ॥८॥

अन्य-अन्य देशों को वाञ्छित वर देते ब्रह्मा ने,
मरु-भू को जल-वायु सु-निर्मल दिये अहा ! मन-माने ।
यहाँ इसी से महा-मारियाँ नहीं फटकने पातीं,
जहाँ अश्विनी-[७]कुमार हों, क्या वहाँ व्याधियाँ आतीं? ॥९॥

शिव-शंकर ने शिव-शंकरमय मारव देश बनाया,
नव दुर्गा ने [८]नवदुर्गात्मक जग में इसे जनाया ।

---

१ आकाश के पक्ष में समा=सब नक्षत्र-मण्डली। मरुभूमि के पक्ष में स-समान (मान-सहित) क्षत्र-मण्डली। २ नरपति और चन्द्र। ३ सफाई के। ४ चीकने और प्रेमी। ५ वन का माली और श्रीकृष्ण। ६ खेत में होने वाली सम्पत्ति और स्त्री से अन्य-द्वारा उत्पादित संतान। ७ स्वर्गीय दोनों वैद्य। ८ नौ-कोटी मारवाड़।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमरकोट, नागार, मेड़ता विधि ने यहाँ बताया,
अमर-[1]नागपुर-मर्त्यपुरात्मक पूर्ण त्रिलोक जताया ॥१०॥

मधुर-मधुर है प्रियजन-दर्शन, मधुर-मधुर हैं बानी,
मधुर-मधुर रति-रङ्ग-रूप रस मधुर-मधुर है पानी ।
है माधुर्य-शब्द के 'मा' से मारवाड़-पद-रचना,
अरे! खार ! तू तो मत आना साँभर ही में बचना ॥११॥

मारवाड़ के कृषिक धन्य हो, जो तुम [2]आँसू बरसा-
बरसा को बरसा लेते हो जान देश को घर-सा ।
मारवाड़ के धन्य जुलाहे, धन्य तुम्हारी खादी,
कीर्तिरूप बनकर जो जिसने कर-करतूत बतादी ॥१२॥

इधर-उधर से मधुर-मधुर मधु-संचय कर मधु-पायी-
स्व-मधुकोष ज्यों भरते-रहते सहते विपदा आयी ।
उसी भाँति ये भाँति भाँति के प्रान्तों से धन भारी-
संचित करके समृद्ध करते मरु को मरु-व्यापारी ॥१३॥

सागर का जल-दधि मथ जिसने माखन अमृत निकाला,
भक्त देव-बालों में [3]उसको फिर विभक्त कर डाला ।
वही 'दधिमथी'-नाम 'मोहिनी' जहाँ सुपूज-[4]कपाला,
कहलाता जग-बीच [5]'दाधिमथ' उसको भजने वाला ॥१४॥

रेल-शकटि मरुधरार्धाश की मानो कीर्ति-पताका,
अथवा मञ्जु प्रकार दीखता जंगम कल्पलता का ।

---

१ अमरपुर (अमरकोट) और नागपुर। २ भोले भाले शुद्ध, हृदय कृषकों की आर्त पुकार से इन्द्र बरस जाता है। ३ अमृत रूप माखन को। ४ जिसका कपाल सुभीते से पुजता है। 'दधिमथी मन्दिर' कपाल पीठ कहलाता है। सुपूजक-पाला-पूजकों (पालने वाली यह भी ध्वनित है।) ५ दाहिमा यह शब्द 'दधिमथी' की उपासना के कारण बना है; अत एव ब्राह्मणों से इतर भी 'दाहिमा' कहलाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वा रिपुओं को 'धिक्-धिक्' करती क्रोधानल से जलती–
मूर्तिमती राठोड़-शक्ति यह फिरती [१]धूम उगलती ॥१५॥

मरुधरेश की गंभीरता से रीझे रत्नाकर ने–
[२]बाल सिन्धु बहु भेजे मानो नृप की सेवा करने ।
जिनके जलसे सिंचकर निशिदिन अनुपम अधिक अनारें–
रत्नाकर-उपहार लाल मणि देतीं, रसिक निहारें ॥१६॥

राव जोध ने स्व-राजधानी जोधपुरी की वासित,
[३]निर्मल तम दमयन्ती विद्युत की सुमेरु ने भासित ।
[४]इन उम्मेदसिंह मरु-नृप ने नल से उसे मिलाया;
[५]ज्यों हनुमत ने जनक-सुता को रामेन्दु से मिलाया ॥१७॥

मेरा तो मन माँग रहा है माता मरु-सुमही से,
बालक को वञ्चित मत करना अपने दूध-दही से ।
परदेशी भी अभ्यागत का स्वागत तू करती है,
उसके कारण मरती है पर उसको तू भरती है ॥१८॥

★ ★ ★

गौरी-गणेश-शोभी हैं शम्भु नैन-लोभी ।
प्रिय हैं स्वचित्त को भी, जय जय दयालु शङ्कर !
धर देव-सिन्धु-धारा, फिर चन्द्र-मौलि प्यारा ।
आकाश-रूप धारा, जय जय दयालु शङ्कर ।।

---

१ धुआँ और ऊधम। २ बहुत से बाल समंद । ३ जोधपुर में बिजली की रोशनी महाराजा श्रीसुमेरुसिंहजी ने अपने शासन में भासित की=चमकाई थी। 'तम दमयन्ती' अर्थात अँधेरा मिटाने वाली। 'निर्मल' और 'तम' दमयन्ती' दोनों 'विद्युत' के विशेषण हैं। निर्मल-तम=श्रेष्ठ सचरित्र दमयन्ती नल राजा की महारानी थी। ४ उसे नल से मिलाया यह ध्वनित अर्थ है। 'स्थान-स्थान पर पानी का नल जारी किया' यह प्रस्तुत अर्थ है। ५ इसका दूसरा ध्वनित अर्थ महाराजा श्रीहनुमन्तसिंहजी के द्वारा उनके आधिपत्य में बड़ोदा महाराज कुमार के साथ जनक-सुता=बहिन श्री राजेन्द्रकुमारी का विवाह करना प्रकट करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रवि-चन्द्र-अग्निलोचन धरके त्रिताप-मोचन ।
प्रकटा रहे सु-[1]रोचन, जय जय दयालु शङ्कर ॥

हाँ, आप साँप धरते, पर भक्त-भीति हरते ।
भगवन् ! कमाल करते, जय जय दयालु शङ्कर ॥

विष आप पान करते, अमृत-प्रदान करते ।
अद्भुत महान करते, जय जय दयालु शङ्कर ॥

शिव! ब्रह्म-रूप को ले, कहलाँय आप भोले ।
भरदें अटूट झोले, जय जय दयालु शङ्कर ॥

जो [2]पाथ आप ही हैं, जल-नाथ आप ही हैं ।
फिर सेतु चाप ही हैं, जय जय दयालु शङ्कर ॥

टूटा धनुष सो माना, भोले ! उसे भुलाना ।
अब क्या कठिन बनाना, जय जय दयालु शङ्कर ॥

मृत्युञ्जयेतिवाला, शिव-मन्त्र है निराला ।
जिसने कि काल टाला, जय जय दयालु शङ्कर ॥४३॥

★ ★ ★

शिव-सम्मान-समाप्ति पर उठकर वानर-राज ।
बोले सैन्य-समाज में कर गुरु गौरव-गाज ॥४४॥

★ ★ ★

प्रथम रवि ही नहीं निकला, परन्तु ज्ञान भी उजला ।
जहाँ पर शील है पहला, हमें है मान भारत का ॥

जहाँ के विज्ञ हैं नामी उन्होंने क्या रखी खामी? ।
पथिक भी हो रहे [3]धामी, हमें है मान भारत का ॥

---

१ विनोद का। २ जल। ३ घरवाले।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहा! क्या देश है पावन, सदा मानो जहाँ साधन ।
मनों के भाव शुभ-[१]भावन, हमें है मान० ।।

जहाँ की राम ने लीला, रही जो भूमि जय-शीला ।
वहाँ जन क्यों न फुर्तीला, हमें है मान०।।

हिमालय मौलि-छवि पाता, कमण्डल ब्रह्म दिखलाता ।
अभय-भू [२]भारती माता, हमें है मान०।।

अहा! ये पाद प्यारे हैं, जलधि-जल से पखारे हैं ।
मनोरथ सिद्ध सारे हैं, हमें है मान०।।

अहो! वीरो! उठो, आओ, कमर कस, काम जुट जाओ ।
जयश्री को लिवा लाओ, हमें है मान०।।

रहे निज जाग वा सपना, हराया मान जो अपना ।
वही है नारकी तपना, हमें है मान०।।

कहाते वीर भारत के, धरो पथ वीरता-व्रत के
न भूलो भाव निज पत के, हमें है मान भारत का ।।४५।।

★ ★ ★

[३]योधाद्रि-माला स्थिर जो रहेगी,
सो इन्द्रवज्रार्थ तता जगेगी ।
वही पुरस्कार सकीर्ति लेगी,
उपेन्द्र वज्राप्त जिता जगेगी ।।४६।।

★ ★ ★

१ शुभकारी। २ भारत की (भूमी) और सरस्वती। ३ जो योद्धाओं-रूप पर्वतों की माला (पंक्ति) डटी रहेगी, वही इन्द्र के वज्र के लिए तता=विस्तार पाई हुई जागेगी अर्थात प्रतिभट के शस्त्र का सामना करेगी, वही कीर्ति-सहित इनाम पायेगी। वह जिता=जीती हुई उपेन्द्र-वज्राप्त=भगवान् के (हाथके) वज्र=हीरे को पाकर जीती जागती रहेगी। छन्द की ओर त, त, ज, गुरु-गुरु इन्द्रवज्रा और ज, त, ज, गुरु-गुरु उपेन्द्रवज्रा छंद होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समस्तसैन्य, नल-नील ने, [१]सुदृढ़ बनाया सेतु ।
[२-३]सुन्दर रचना देखकर, हरषे रघुकुल-केतु ।।४७।।

[४]प्लवगमनित अप्लव-गमन विपुल सपुल भी साथ ।
समल अच्छभल्लाकुलित अक्षत था, जलनाथ ।।४८।।

पाव तरे जल-बीच, यथा शुचि-[५]भाव तरें भव में रख चारा,
पा उनका शुभयोग तरे कपि, ज्यों कि [६]तदीय समाज सुधारा ।
वे सब त्यों पहुँचे स्व-समीहित संश्रय को, उस ही पुल-द्वारा,
ज्यों पहुँचे वर-शिष्य-[७]कदम्बक पा गुरु का अवलम्बन प्यारा ।।४९।।

★ ★ ★

रिपु-देश-[८]सदेश अशेष-दिशा-[९]गत सैन्य-[१०]निवेश विशेष सजाया,
कपि-मण्डल ने निज मण्डल-मण्डल बाँध निवेशन-वाद्य बजाया ।
उस काल न केवल रावण से, घट-कर्णक से [११]अतिशाय तजाया,
[१२]लोक विलोक-विलोक उसे, प्रति-[१३]लोकन पाव स्व-[१४]रोक, लजाया ।।५०।।

अटारियों में विकटारियों की-
स्त्रियाँ, यथा पङक्ति कटारियों की ।
दीखी न क्या पद्गहि-[१५]चमू-सरीखी?,
तीखी हिया-वेधन-कर्म सीखी ।।५१।।

---

१ सेतु का आकार बना दिया। २ साफ-सुथरा मार्ग। ३ जहाँ आँधी (बाधकों की बाधा) मार्ग को नहीं भुला सके। ४ इन पदों में एकदूसरे पद के साथ विरोध झलकाया गया है। अप्लव-गमन=जहाँ छोटी नावें नहीं चलती थी।, प्लवग=मनित-वानरों से विदित। समल=मट्टी से मैला अच्छ=निर्मल। अच्छभ०=भालुओं से आकुल किया। और भल्लाकुलित=भाले से बिंधा और अक्षत। विपुल=पुल रहित और बड़ा। ५ शुद्ध है भाव जिनका अर्थात् महात्मा। ६ उन (महात्माओं) का । ७ समूह। ८ समीप। ९ आठों दिशाओं में स्थित। १० निवेश। ११ अतिशाय (बड़प्पन) और अत्यन्त सोना। १२ शत्रु के जासूस। १३ शत्रुओं द्वारा अपना दर्शन। १४ अपनी रुकावट। १५ पैदल सेना-सी (पंक्ति-बद्ध)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छींक, डकार तथा हिचकी जिसकी सुनते सुर भी दहलें,
लोकप-लोक पदाश्रय को तजते न कभी, करते टहलें ।
जो इस रावण के न अड़े अपकर्म-कुमार्ग, [१]न धर्म खलें,
[२]यों निकलीं सुख राज्य को पा प्रभु-हृत्-क्रतु-कुण्ड कृशानु-झलें ।।५२।।

★ ★ ★

गूढचर-वृत्त सुन पूर्व [३]श्रवणाधिरूढ,
चकित दशास्य मूढ बोला मतवाला क्या;
[४]वारुणी का गर्व गाल भिक्षु ने समस्त काल
[५]वरुण के अम्बु-पाल मद को भी गाला क्या? ।
[६]सागर नदीश सिन्धु अप्-पति समुद्र अब्धि
अर्णव मणीधि वार्धि तिमि तर डाला क्या?,
सत्य सत्य बात कह, आँखों-देखी बात यह?,
अथवा प्रहास, स्वप्न, इन्द्रजाल-[७]माला क्या? ।।५३।।

★ ★ ★

अक्ष-मरण से व्याकुलित मन्दोदरी विचार ।
[८]अक्षम रण-[९]सेव्याकुलित पति से बोली हार ।।५४।।

प्राणपति! सहधर्मिणी का विनय मत बिसराइए,
भीरु की कातर-कथा कह बात मत ठुकराइए ।
जानकी को शील की शुभ केलि-शाला जानिए,
शक्ति-निधि रघुवीर की है शक्ति-तनु-धर मानिए ।।५५।।

---

१ तो धर्म नहीं गिरें। २ यों सुखमय राज्य को पाकर और सुखर+आज्य=ताये घी को पाकर प्रभु०राम के हृदय रूप यज्ञ-कुण्ड के अग्नि की ज्वालायें उठीं अर्थात् हृदय-कोपाग्नि धधकी। ३ पहले कानों पड़ा हुआ। ४ मदिरा का। ५ समुद्र के सेतु बन्धन का संकेत है। ६ यहाँ से दसों मुखों से निकले समुद्र के दस पर्याय हैं। ७ जादू का सिलसिला। ८ असमर्थ (मन्दोदरी-विशेषण) अथवा अक्षम=क्षमा रहित, क्रुद्ध (पति-विशेषण)। ९ स्वयं सेवियों (योद्धाओं से) वेष्टित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूतने जिसके मथा कितना हमारे पक्ष को,
मार डाला सुदृढ़ भी [1]सुकुमार मेरे अक्ष को ।
दाह लङ्का का किया क्या, हृदय ही का कर दिया,
नाथ मैंने प्रबलतर प्रतिपक्ष को तब स्थिर किया ।।५६।।

राम को प्राकृत मनुज मत मानिए, विभु जानिए,
लख अलौकिक सत्त्व को कुछ तत्त्व को पहिचानिए ।
जो तनी सो तन चुकी, हे नाथ ! अब मत तानिए,
जानकी का प्रति-समर्पण शीघ्रता से ठानिए ।।५७।।

हो अमर्यादित किसी की स्वैरिणी यदि त्यागिता,
तदपि सत्पथ-पान्थ की उससे न हो अनुरागिता ।
छद्म से हरना सती का [2]मङ्गलान्त अनर्थ है,
सम्हलिए अब भी प्रभो! अप-हठ बढ़ाना व्यर्थ है ।।५८।।

★ ★ ★

बोला राक्षस-केसरी, सहचरी मन्दोदरी! आसुरी-
होके उक्ति धरी अरी ! भय-भरी, ज्यों वानरी कुक्कुरी ।
जी में हो यदि कायरी, अनुचरी हो [3]देवरीया खरी,
चाहे आय हरीश आदि [4]त्रिसुरी, दूँगा न री! सुन्दरी ।।५९।।

★ ★ ★

बोले राघव से विभीषण, प्रभो! होगी कृपा पावनी,
जो श्रीअङ्गद-दौत्य से फिर उसे दें आप चेतावनी ।
वैसा ही करके निजोत्तर दिया स्वीकार का राम ने,
शिष्टों का दृढ़ प्रेम कार्य करता, व्याख्या नहीं सामने ।।६०।।

---

१ कोमल और सुपुत्र। सुदृढ और सुकुमार (कोमल) व्यक्त होने से विरोधाभास।
२ मङ्गल-नाशक। ३ देवर (विभीषण) की अनुचरी (अनुगामिनी)। ४ तीनों देव ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अङ्गद मत्त मतङ्गज ज्यों [१]निकपाङ्गज-राज-समीप सिधारे,
क्या कपि-नायक-सैन्य-प्रभाव [२]प्रबोधन को पहुँचा वपु धारे ।
रावण के दृग-पात पड़े उनपै कुटिलाकृति क्रूर करारे,
ज्यों [३]वसुधाधर पै वसुधाधर-[४]कर्शन के दृग-दर्शन खारे ।।६१।।

देख उन्हें दशकन्धर ने गिरि-मन्दर-से, मन-बीच टटोला,
क्या तपनीय-[५]महीधर ने कमनीय कलेवर सम्मुख खोला? ।
क्या सुर-राज-पराजय से विधि-प्रेषित आ धमका शिव भोला,
यों अति-तर्क-वितर्क मना रण-कर्कश रावण कर्कश बोला ।।६२।।

आकर कौन समौन खड़ा, यह थम्भ खड़ा [६]उत दम्भ खड़ा है;
क्या पकड़ा न गया पथ में, अकड़ा अति ज्यों यम का छकड़ा है ।
बोल नहीं सकता, छकता अथवा भय से कुछ कण्ठ अड़ा है;
क्या मम घोर प्रभाव पड़ा, हृदयाशय का पचड़ा बिगड़ा है ।।६३।।

बोले अङ्गद, मैं रघूत्तम-सखा सुग्रीव का दूत हूँ,
तारा-गर्भज हूँ, कपीश्वर उन्हीं श्रीबालि का पूत हूँ ।
खेले आप सुकक्ष में कि जिनके, जैसे कि मैं अङ्क में,
हूँ मैं स्तम्भ अचाल्य, काल-रथ वा, लङ्केश! निःशङ्क मैं ।।६४।।

बोला क्रुद्ध दशास्य, हे प्रियभटो! धक्का इसे दीजिए,
[७]वातारोध मिटाइए, तड़पता जी, शीघ्रता कीजिए ।
बीसों वीर जुटे, हटा न तिल भी पाये, लगे हाँपने,
स्वामी-सम्मुख झेंपने सब लगे, एवं लगे काँपने ।।६५।।

राजाने झुँझला झला व्यजन को, पीछे कहा युक्ति से,
श्रान्तागन्तुक को न [८]श्रान्त करिए, पूछा भली उक्ति से ।
कैसे आगम आपका कपि! हुआ, क्या चाहते आप हैं?,
बाली भिक्षुक-हाथ से यदि मरा तो व्यर्थ [९]उल्लास हैं ।।६६।।

---

१ निकपा के पुत्र राक्षसों का राजा। २ चेताने के लिए। ३ पहाड़ पर। ४ इन्द्र। ५ स्वर्ण-पर्वत (सुमेरु) । ६ अथवा। ७ वाताऽऽरोध= पवन की रुकावट। ८ दुखी। ९ शान से बोलना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोले अङ्गद द्वारपाल-कुल को मैं डाँटता आ डटा,
मैं रक्षोधिप! चाहता कि, न पिले पौलस्त्य-वंश-च्छटा ।
मारे जायँ उसी सुभिक्षु-कर से क्यों आप ओधे चले?
जो भूले-भटके दिनान्त पर भी ले मार्ग, वे भी भले ।।६७।।

क्यों ऐसा कु-विचार हो कि जिससे दुर्वासनोद्गार हो,
शिष्टों का अपकार हो, फिर सती नारी-तिरस्कार हो ।
क्यों ऐसा हठ-चार हो, स्वजन का भी मन्त्र बेकार हो,
सीता-प्रत्युपहार हो यदि अभी, क्यों वीर-संहार हो? ।।६८।।

हे लङ्केश्वर! मैं तुम्हें कह रहा हूँ बन्धु-[1]सम्बन्ध से,
क्यों श्रीराम-शराग्नि को शलभवत् हो गाहते अन्ध-से ।
चापाकर्ष, रिपु-प्रधर्ष उनकी कोपाग्नि-चिंगारियाँ-
भावी हैं बतला रहीं, समझिए, आई महा-मारियाँ ।।६९।।

यों सुन अतीव रुष्ट बोला दशकण्ठ, घुष्ठ-
करता दिगन्त अष्ट बालि-[2]कुल-मण्डी को;
क्या रे कपिवंश-काक! तू भी रखता है नाक,
नीति क्या सिखाता खाक देव-कुल-खण्डी को ।
[3]मान से मचे को मार, [4]देह से पचे को मार,
तेरे भी चचे को मार समझूँगा [5]दण्डी को;
स्व-शिर चढ़ाके चण्डी-पति को सुतृप्त किया,
तर्पित करूँगा रिपु-सीस चढ़ा चण्डी को ।।७०।।

"श्रीमन् ! केवल आपने जगत में ऐसा अनोखा किया,
लङ्काधीश्वर! ओपि-[6]नाक रखना जो पूर्ण ठेके लिया ।

---

१ बन्धु सम्बन्ध का बतलाना लोकोपचार है, अथवा जिसकी काँख तुम खेले, उन्हीं की गोद में मैं इस पूर्वोक्त युक्ति से। २ अङ्गद की। ३ विभीषण को झलकाया है । ४ लक्ष्मण वा किसी भी वीर को। ५ संन्यासी (राम) को। ६ ओमदार (भड़कीली) नाक का रखना और ओ! -सम्बोधन-वाची पृथक् करके पिनाक रखना अर्थात् शिव-धनुष को न तोड़ना अर्थात् पिनाक के न तोड़ने से आप नाक रखते हैं, यों ताना दिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]अन्तर्भाव स्वभाव-सिद्ध उसमें होता हमारा अहो!,
[२]ईशार्थ प्रिय-सीम-दान पहले ही से विचारा अहो? ॥७१॥

भाभी तथा भैया विभीषण नीति-शिक्षक हैं जहाँ,
अपनी [३]तिधारा के वशी! मेरी न चल सकती वहाँ ।
कर्तव्य मेरा तो यहाँ संदेश देना मात्र है,
सो कर चुका, अब शेष मति-संदेश लेना मात्र है'' ॥७२॥

यों सुन अङ्गद के वचन ताने-भरे अशेष ।
रोषावेश-विशेष से फिर बोला लङ्केश ॥७३॥

जाना मर्म न, रे अकर्म-पटु! तू ताना वृथा दे रहा,
मानामान-प्रधानता न परखी, माना जनों का कहा ।
नाना-स्त्री मणिवत् वरोरु-[४]मणि का लाना मुझे इष्ट था,
दानार्थी बनना विदेह-नृप का मानाप्त को [५]द्विष्ट था ॥७४॥

स्वार्थ-हेतु बनते सभी पुत्र, पौत्र अनुजात ।
विपद पड़े ये ही सहज होते दिन के रात ॥७५॥

[६]भङ्गास्वाद-रसी विभीषण हुआ उन्मत्त हो मान से,
तू तारा-[७]क्षय चाहता कपि! किया हो अन्ध अज्ञान से ।
दोनों ही कुल को कलङ्कित किया हो चाहते जानके,
हाँ, [८]आसन्न-विनाश कौन न बने आधीन अज्ञान के ॥७६॥

---

१ उसी में आ जाना । २ शिव के लिए और स्वामी (राम) के लिए। ३ अपनी नीति के साथ त्रि-धारा के और अप-नीति-धारा के ध्वनित है। ४ स्त्री-रत्न (सीता) का। ५ अनिष्ट। ६ भङ्ग=नाश के अस्वाद का रसिक और भङ्गा के स्वाद का रसिक । ७ तारा-नामक माता का नाश और आँख की तारा का नाश। यहाँ भङ्गा स्वाद के पहले ही उन्मत्तता और ताराक्षय के पहले ही अन्धता बतलाना विचित्रता-द्योतक है। ८ जिसकी मौत नजदीक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

''[1]लाना ओह! जहाँ कहा, यह कहो-'चोर लाना छिपे ही',
बोलो वञ्चक से इसी विषय को नो कि शार्दूल से ही ।
अष्टप्रास दिखा रहे फिर यहाँ, पूर्व क्या! हो गया था,
जो है वस्तु, अवस्तु हो न सकता, पीटं लो क्यों न माथा'' ।।७७।।

यों कह चट अङ्गद मुड़े, आये प्रभु के पास ।
बोले झुक, हा! चाहता प्रभु-कर से खल नाश ।।७८।।

दर्प धरता दर्प जब कन्दर्प भी तबं मन्द होता,
कु-हठ भी जब बाँधता हठ दैव-हठ भी बन्द होता ।
चाहता न दिया सती को सम्प्रबोधित भी किसी से,
वर्ग को वह चाहता प्रभु-हाथ [2]अपराजित इसी से ।।७९।।

★ ★ ★

मित्र-विभीषण-सम्मति से तब पा प्रभु का कपिराज इशारा-
[3]व्यूह लगे रचने, बल-नाथ लगे सजने धर सैन्य सँवारा ।
सङ्गर-[4]सङ्ग-प्रसङ्ग-प्रबोध बजा झट उत्कट युद्ध-नँगारा,
यत्न बिना घटकर्ण के कर्ण-कपाट खुले उसके रव-द्वारा ।।८०।।

श्रीसीतेश्वर ने प्रबोधित किया होते रणरम्भ के,
वीरो! धार्मिक युद्ध में न रखना नामाँश भी दम्भ के ।
ऐसे ही व्यवहार से कर-गता होती जय-श्री स्वतः,
होती हार अधर्म से, विजय का तो लाभ है धर्मतः ।।८१।।

★ ★ ★

---

१ अङ्गद उत्तर दे रहा है:-'शार्दूलवि'० में जो अष्टप्रास दिखाने के कारण 'लाना' कहा, वहाँ 'चोर लाना कहो। इसीलिए शार्दूल छन्द से मत कहो, 'वञ्चक' छन्द होता है। ध्वनित यह किया गया है वञ्चक-से=शृगाल के समान बोलो, न कि शार्दूल से-बाघ के समान। अष्ट प्रास-आठ भाले राम के सामने दिखाने थे। २ बिगाड़ा और अपर (अन्य से) अजित=नहीं जीता गया। ३ मोर्चा । ४ युद्ध में मुठ-भेड़ मचाने का सूचक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रिपु का आशय जान यह बोले क्रमानुसार ।
लक्ष्मण, राम, [१]रुमारमण, अङ्गद, पवन-कुमार ।।८२।।

दुष्ट नहीं खण्ड-खण्ड भण्डन से माने चण्ड
दण्ड को अखण्ड देके आज मुख मोड़ूँगा;
नहर-लहर-सम ठहर-ठहर कर
चलने की चाल-वाली नीति-रीति तोड़ूँगा ।
बाण चाहे व्यर्थ जायँ, प्राण चाहे क्यों न जायँ,
वाणी नहीं व्यर्थ जाय, प्रण को न छोड़ूँगा;
जाग जागरूक चाहे [२]नाग के न टूक-टूक-
[३]तार्क्ष्य करे, किन्तु [४]बल-रोक को मैं फोड़ूँगा ।।८३।।

उसी सिंहनाद-काल नेत्र हुए लाल-लाल,
अधर-प्रबाल चाल-[५]लग्न रघुराज के;
दाहिन उठाके बाहु वैरि-कुल-कालराहु
बोले उप-[६]जानु-बाहु सिंह-सम गाज के ।
व्यंसक-[७]निशाट-वंश-दंशन का ध्वंस कर
वैर लूँगा शुद्धि-हेतु वीर! दिन आज के;
[८]कौशिक को मार कर, [९]कौशिक को तारकर,
[१०]कौशिक को वृत्त शुभ दूँगा स्व-समाज के ।।८४।।

प्रथम, [११]प्रतीत-कीर्ति पातिव्रत-पूत-मूर्ति
अपर-[१२]असाध्य-पूर्ति भारत की नारी के;
दूसरे प्रणैकवीर कष्ट-सहनैक-धीर
निमिकुल-हीर [१३]सीरध्वज की कुमारी के ।

---

१ रुमा (सुग्रीव पत्नी) का रमण=पति। २ नाग सर्प यहाँ रावण। ३ गरुड़ यहाँ राम। ४ बल-रोक=सेना रूप उसकी रुकावट व बिल को (जिसमें रावण-नाग छिपा है)। ५ फड़कने लगे। ६ घुटनों तक के भुजवाले (राम)। ७ धूर्त राक्षस (उल्लू) कुल के कवच (रावण) का। ८ उल्लू (रावण) को। ९ इन्द्र को। १० विश्वामित्र को। ११ प्रसिद्ध। १२ दूसरे से जिसकी त्रुटिपूर्ति न बन सके। १३ जनक की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीसरे, धृतैकमत्य पालितैकनारीव्रत्य
मूर्तिमान मानो सत्य राघव की प्यारी के;
छद्मयुत छीनने का बदला चुकाये बिना
तोड़ूँ न तुड़ाऊँगा न फल [१]फलधारी के ।।८५।।

सुनिए कनिष्ठ तात! जब से सुनी है बात
हृदय-विदार-जात लेता नित साँस को;
प्रभु के निदेश बिना, आशय-विशेष बिना,
पूर न सका हूँ हाय निज अभिलाष को ।
लक्ष्मण [२]शरास को न, आप [३]चन्द्रहास को न,
राघव [४]प्रयास को न, जाँचें इस दास को;
राम-जय-साथ गाज देखते सभी के आज
दुष्ट को घसीट लाऊँ, साथ रविनास को ।।८६।।

देश को, [५]नदेश को, व गगन प्रदेश को भी-
लाँघ सकूँ, किन्तु नहीं प्रभु के निदेश को;
उनके निदेश को न, भ्रू-[६]विलास-लेश को ही
पाके तो दिखाऊँ ऐसे विक्रम-विशेष को ।
सहठ घसीट लाऊँ सुर-असुरादि-युक्त-
शासन-नियुक्त उस सजग सुरेश को;
उसी अवलम्ब ही का केवल विलम्ब बस,
पल ही में पेल डालूँ रजनीचरेश को ।।८७।।

ऋक्षपति जाम्बवान बोले, भगवान आन-
वृद्ध की रखेंगे क्या न, शपथादि खाऊँगा?;
जरठ जटायु जैसे हो गये [७]स्थिरायु ऐसे,
मैं न अब शौर्य कैसे मरते दिखाऊँगा? ।
करोड़ों को काल-धाम दिखा के, अनोखा काम-
साधके जाने में नाम प्रथम लिखाऊँगा;

---

१ फली वक्ष के। २ धनुष को। ३ खड्ग को। ४ परिश्रम को। ५ समुद्र को। ६ भौंह के संकेत मात्र को। ७ (कीर्ति से) अमर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत-प्रसू की भव्य सकल प्रजा को नव्य-
वीर-पाठ [१]शिक्षितव्य सविधि सिखाऊँगा ॥८८॥

★ ★ ★

पुर-भीतर भी तरवारि धरे रिपु जान पड़े जब, कोट-कँगूरे-
झट रोक लिये कपि-ऋक्ष-पृथग्-दलने करने उनके तब चूरे ।
जब [२]गोफन-वृष्टि पड़ी इन पै तब [३]अश्म पड़े उनपै न अधूरे,
सच, बीज-प्ररोपण जो करते, उनको मिलते [४]उनके फल पूरे ॥८९॥

वानरी और नैशाचरी वाहिनी
वीरता-वाहिनी भीरुता-दाहिनी ।
सोहती जोहती आमने-सामने;
अक्षमी थे सभी अस्त्र को थामने ॥९०॥

निज-निज सेनाधीश का पाकर भट संकेत ।
शत्रु लगे सँहारने ज्यों टिड्डी-दल खेत ॥९१॥

फिर क्या था, छिन ही में दीखा आपस में घमसान मचा,
क्या कोपाकुल क्रूर काल ने महा भयङ्कर प्रलय रचा ।
गदा, शक्ति, तोमर, तलवारें, भाले, बरछी आदि चले,
शैल अखण्ड व [५]गण्डशैल भी असुरों के टाले न टले ॥९२॥

भू से लेकर [६]ख तक अथक उन शस्त्रास्त्रों की वृष्टि मची,
क्या तल, ऊपर, मध्य-व्यापिनी [७]भूख काल से गई रची ।
बिना मेघ-पटली के झट ही दारुणतर दुर्दिन छाया,
अस्त्र-शस्त्र की टक्कर ही ने विद्युत को अति चमकाया ॥९३॥

ईर्ष्या, द्वेष, कोप के सम्मुख न रहा क्षमा-दया का नाम,
जहाँ दाव-पावक की लपटें, वहाँ शीतता का क्या काम? ।

---

१ सीखने योग्य। २ गोफनों से वर्षा। ३ पत्थर। ४ उन बीज-प्ररोपणों के । ५ पर्वतों के खण्ड। ६ आकाश। ७ भू और ख के मिलने से ही 'भूख' की रचना होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योद्धाओं के श्रम के सम्मुख विश्रम ने पाया विश्राम,
वीरों के लख वीर-भाव को गई [1]वीरता वनिता-धाम ।।९४।।

भट आक्रमण को [2]संरमण प्रिय-सङ्ग को पहिचानते,
मुठ-भेड़ को रस-छेद ही उत्साह-रस में जानते ।
गल-चन्द्रहास-प्रहार को भी हार-धारण मानते,
रण-रङ्ग को इस भाँति उत्सव-रङ्ग पूर्ण बखानते ।।९५।।

जब भाग जाना शुभ भटों ने, भाग जाना फिर कहाँ?,
अपना मचलना हित जहाँ, अप-नाम चलना कब वहाँ? ।
शुभ [3]पीठ लेना इष्ट था, न कि पीठ देना इष्ट था,
आदिष्ट था ज़ो लक्ष्य, उस पर सुमुख [4]स्थित आदिष्ट था ।।९६।।

क्या भड़कावे भीड़-भड़क्का?, क्या धड़कावे धूम-धड़क्का? ।
कोई न हुआ हक्का-बक्का, रहे जमाये सब पग पक्का ।।९७।।

★ ★ ★

कोई खड्ग-ढाल लेके, कोई [5]भिन्दिपाल लेके,
कोई पाश-जाल लेके लड़ते उमङ्ग से;
कोई निज पाँव रोप धारते प्रचण्ड कोप
दागते अखण्ड तोप समर-प्रसङ्ग से ।
झोंकते त्रिशूल कोई रोकते न मूल, कोई-
चौंकते न भूलकर, चीरते विढंग से;
नीच रजनीचरों का जंग-रंग-ढंग देख
पटु भी प्लवंग कई रह गये दंग-से ।।९८।।

★ ★ ★

---

१ स्त्री होने के कारण स्त्रियों में जा मिली, वीरता स्त्रीलिंग है, अतपव यों कहा गया। अर्थात् स्त्रियों में भी तब वीरता व्याप उठी। २ अच्छा । ३ आसन अर्थात ऊँचा दर्जा। ४ दिष्ट=दैव सम्मुख आके बैठा था । ५ गोफन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुच्छ-तुच्छ राक्षसों को अच्छमल्ल मच्छ-सम
पकड़ पछाड़ लेते [१]जङ्घिकापसार से;
बाघ ज्यों कुरङ्गकों को, [२]सरिभ तुरङ्गकों को,
भगाते प्लवंग वैसे पुच्छ-फटकार से।
घोर रण-रङ्ग-बीच भीड़ में से खींच-खींच
ढोंगियों का भङ्ग किया विविध-प्रकार से;
चण्ड रिपु-झुण्ड का तो रुण्ड-मुण्ड छिन्न-भिन्न
करते थे गण्डशैल-प्रबल-प्रहार से ॥९९॥

★ ★ ★

सिन्धु में [३]तिमिंगिलेन्द्र ज्यों, वन में ज्यों मृगेन्द्र,
व्योम-बीच ज्यों खगेन्द्र, ओर-छोर छानने-
यत्न भरपूर किया युद्ध-बीच, झूर लिया,
शत्रु-दल चूर लिया, वीर जाम्बवान ने।
[४]कूर्म का सुभिल्ल ज्योंकि भल्ल द्वारा शत्रु-मल्ल-
वृद्ध [५]भल्ल का भी [६]भल्ल-कर्म लगे ठानने;
किन्तु शस्त्र-नाश कर आपको हताश कर
लगे उन्हें खास कर मन में बखानने ॥१००॥

★ ★ ★

करके प्रणाम राम-पद को अपूर्व-धाम
वायु-सुत [७]योद्धुकाम मेघ-सम गाजके;
मारते छलाँग, तुच्छ खलों को भगाते पुच्छ-
गुच्छ को लगाते, उच्च, युद्ध-साज साज के।
देने लगे वीरता का परिचय धीरता का,
अरि-चय चीर बाँका, नाशी रण-खाज के;

---

१ टँगड़ी पकड़ कर। २ भैंसे ज्यों टट्टुओं को। ३ बड़ा भारी मगरमच्छ। ४ कछुए का। ५ बूढ़ा भालू (जाम्बवान)। ६ नाश। ७ लड़ने को उद्धत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रोपकर पाँव पक्के छिन में छुड़ाये छक्के–
हथौटी से, हक्के-बक्के असुर-समाज के ॥१०१॥

★ ★ ★

विकट सुकण्ठ वीर ऐसे भिड़े युद्ध-धीर,
व्यूह-व्यूह चीर-चीर पीछे पड़े जिनके;
कोप कर [१]सातिरेक पूर्ण करने को टेक
मानो क्रूर काल एक पीछे पड़ा तिनके ।
ऐसे लगातार किये शिखरि-प्रहार, हिये–
हिल गये गाढे किये, कौन कहे गिनके;
खलों को न बार दिया, इतना सँहार किया,
युद्ध बहु पार किया अस्त होते दिन के ॥१०२॥

★ ★ ★

अङ्गद ने [२]यातुधान-भङ्गद उमङ्ग ठान
[३]कूट ले द्वि-कूट किया बेचारे त्रिकूट को;
एक-एक मत्सरीको, करी को मृगेन्द्र जैसे–
[४]तल से, [५]उसी से किया ध्वस्त, वा ज्यों [६]ऊँट को ।
घेर-बीच घूम-घूम भीषण मचाई धूम,
करते-नचाई [७]लूम-वैरि-बल-लूट को;
वीरता की बानगी को देख था दशास्य दंग,
ले सका न एक भी तो वीर-पान-घूँट को ॥१०३॥

★ ★ ★

राम उठ सत्यसन्ध करके कटीय बन्ध
युद्ध-हेतु सप्रबन्ध चले रण-रङ्ग को;
अप्रधान यातुधान सूचना-प्रदान-मिष
भागे भीत-भीत लख भीषण भ्रू-भङ्ग को ।

---

१ अधिकता के साथ। २ राक्षसी की नाशक। ३ शिखर । ४ हत्थे से। ५ कूट ही से । ६ करी को या ज्यों ऊँट को। ७ पूँछ। वैरि-बल-लूट को करते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आया कुम्भकर्ण ढाल क्रूर [१]करवाल आदि
आयुध सम्हाल, धारे चाप व निषङ्ग को;
थाम नेत्र के निमेष सामने बुलाते मानो
रामने त्यों उसे ताका सिंह ज्यों [२]मतङ्ग को ।।१०४।।

दोनों वीर छोड़ा किये, दोनों धीर तोड़ा किये,
आपस में सज्ज किये निश्चित नाराच को;
राम जो प्रचण्ड शैल, वह भी था गण्डशैल,
कौन गिने होके शैल कर्कश भी काच को ।
[३]त्वाच-कोश की प्रकाम जाँच को जमाते राम
वाचको! क्या ज्वालामुख समझे पा आँच को?,
तभी तो महेन्द्र-[४]शस्त्र छोड़ के उन्होंने तूर्ण
धूल में मिलाया पूर्ण सारे रिपु-नाँच को ।।१०५।।

★ ★ ★

मान असमान धाम, जान अविषह्य नाम,
ठान इन्द्रजीत-नाम-रिपु-[५]परिपेष को;
ऊर्मिलेश को विशेष वीर-महावेश और
क्रोध-भरावेश हुआ ज्यों कि [६]हृषीकेश को ।
जानने को सारासार मथ आ-[७]अवार-पार
शत्रु-[८]शिशुमार क्षार-सैन्य-सलिलेश को;
चित्त-बीच राम-पाद ध्याते, कर सिंहनाद
और [९]ज्या-निनाद, दिया, चुनौती-विशेष को ।।१०६।।

घटित-[१०]घमण्ड-घोर लक्ष्मण-समीर-जोर-
शोर पाके ओर-छोर सैन्यमयाकाश में;
सज्जित हो [११]मेघनाद बढ़ने प्रवृत्त हुआ,
मित्र-मोर-वृत्त हुआ [१२]रण के हुलास में ।

---

१ तलवार । २ हाथी । ३ शरीर-त्वचा के आवरण की । ४ पहाड़ पर इन्द्र-शस्त्र ही काम दे। ५ पूर्ण नाश । ६ विष्णु को । ७ आरम्भ से लगा अन्त तक (मथकर)। ८ शत्रु रूप मकरवाला ९ पनच-टंकार। १० बने हुए घमण्ड से भयङ्कर। ११ इन्द्रजित् और मेघ-शब्द। १२ युद्ध और शब्द।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेज तलवार-धार-विद्युत भी बार-बार
सोहती थी सु-प्रकार उस ही के पास में;
देखते-देखते दृष्टि-गत हुई बाण-वृष्टि,
वीर-रोम-रोह-[1]हृष्टि, भूमि के उसास में ।।१०७।।

रण-भू-अरण्य में से ज्यों मदान्ध हाथियों को,
सैन्यपति-साथियों को पूर्व ही मुड़ा दिया;
जिसने सुरेश के भी-सिंह प्रति-सिंह के ज्यों,
विक्रम-विशेष द्वारा पैरों को छुड़ा दिया ।
[2]मृगायैकवीर जैसे लक्ष्मण ने चाप धर
उस ही का पूर्ण पीछा ऐसे धीर हो किया;
जिससे विशाल-गाढ़ बाढ़ से तमाल जैसे,
उखड़ा कमाल वैसे इन्द्रजीत का हिया ।।१०८।।

करके प्रपञ्च-त्याग देते बलि मत्त छाग
साधकर चण्डी-याग अटल उमङ्ग से;
अन्य दिन पूर्व काल सज्जित [3]दशास्य-बाल
लौटा विकराल-भाल [4]हूति देता [5]व्यङ्ग से ।
भीष्मता भुजङ्ग की-सी भूरि ही दिखाई किन्तु
हार खाई उग्रतर ऊर्मिला-[6]भुजङ्ग से;
अन्त में फणीन्द्र-पाश-द्वारा बद्ध किया इन्हें-
मूर्च्छित निहार मित्र हारे बल-भङ्ग से ।।१०९।।

विष्णु का सहारा शेष, राम का जो ऊर्मिलेश,
हारा, न निहारा जाय वाहन खगेश से;

---

१ वीर के रोमाँकुरों का हर्षण। असुरों के भार से भूमि का उसास उचित है और प्रथम, वृष्टि के कारण भूमी से भाप निकलने के बाद अँकुरों का विकास हो ही जाता है। २ वीर शिकारी। ३ इन्द्रजीत। ४ पुकार । ५ अप्रकट अर्थ को जतानेवाले शब्द से। ६ ऊर्मिला के भुजालिङ्गक (कान्त) लक्ष्मण से। ध्वनितार्थ सर्प-विशेष से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्य को निहारकर तीव्र वेग धारकर
आये व्योम पार कर गगन-प्रदेश से ।
कर्तक कृपाणी-द्वारा तूल-पाश को कि जैसे,
तार्क्ष्य ने भुजङ्ग-पाश काटे [१]चञ्चु-पेप से;
लक्ष्मण अभीक उठे, उसी से अनीक उठे,
जैसे पुण्डरीक उठे [२]साब्ज दिवसेश से ।।११०।।

राम को प्रणाम कर वीर न विराम कर
देने लगे चाप धर आहुति-[३]सुवाद को;
पाकर अतीत जीत प्रीत अति इन्द्रजीत
आया भावि-भव्य चीत कर सिंह-नाद को ।
दोनों ने अतीव क्रुद्ध होते युद्ध किया, अस्त्र-
विद्ध-प्रतिविद्ध किया, लक्ष्मण ने बाद को;
मङ्गल विषाद को ज्यों, मृगयु [४]मृगाद को ज्यों,
[५]ऊर्ज मेघनाद को ज्यों, मेटा मेघनाद को ।।१११।।

हो निष्पुत्र विलाप-ताप करती मन्दोदरी यों सदा,
हा! पौलस्त्य-[६]महाङ्ग ही मय-[७]सुता-सौभाग्य में था वदा ।
हा! ! मैं तो अब जानकी-रघुप के आदर्श-दाँपत्य की-
श्लाघा को करती रहूँ मगन हो, ज्यों शारदा सत्य की ।।११२।।

★ ★ ★

आग घृत-पात जैसे, पाके वृत्त तात वैसे-
मन्द मन्द-तेज हुआ किन्तु तेज बाद में;
होठ डस दाँत घिस, आशीविष ज्यों उसास-
लेके बोला, शत्रु-प्राण लूँगा पुत्र-याद में ।

---

१ चोंच के प्रहार से। २ कमलों सहित (पुण्डरीक=श्वेतकमल)। ३ आह्वान-रूप शुभ-सूचना। ४ चीते को। ५ कार्तिक ज्यों मेघ-शब्द को। ६ महाशरीर रावण ही और रावणरूप ऊँट । ७ मयासुर की पुत्री और ऊँट की बेटी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या था फिर, आके तीर बरसाये, किन्तु वीर–
लक्ष्मण ने चीर–चीर मारा एक पाद में;
दैत्य ने सो वीर–शक्ति जान के, चलाई शक्ति–
तान के, [1]विचित्त छाई राघव–[2]दायाद में ।।११३।।

छू–छूकर अङ्ग–अङ्ग, देख कर रङ्ग–ढङ्ग
राघव अधीर होके करते विलाप को;
सोदर! तुम्हारे बिना सारे अँधियारे मम–
प्यारे नैनतारे! कब दोगे स्व–मिलाप को? ।
धरके उमङ्ग आई सम्मुख सुमित्रा माई–
पूछेगी कहाँ है भाई, दूँगा शेष चाप को;
लाज जाय, राज जाय, जानकी भी क्यों न जाय,
अब न रखूँगा हाय! आप भी मैं आप को ।।११४।।

एक ओर वाह–वाह! अन्य ओर आह! आह!
छा गये उछाह–दाह–शत्रु–मित्र–दल में;
लाये गये ऊर्मिलेश, होने दी न [3]ऊर्मिलेश–
मात्र, की निवेश में भी शय्या ज्यों महल में ।
बोले यों सुषेण, राम! आप न विलाप करें,
अभी सु–मिलाप करें, नाड़ी–बल थल में;
मेरी जतलाई जीवनौषधि अमोघ एक–
लायँगे महाविवेक वायु–पुत्र पल में ।।११५।।

बात की बात में वात–जात आये, लाये साथ
हाथ में जड़ी स नाथ ओषधि–गिरीश को;
ओषधि बनाई गई देर न जनाई गई,
सेवन कराई गई, ऊर्मिला–सतीश को ।

१ बेचेती। २ राम–भ्राता (लक्ष्मण) में । ३ पीड़ा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्च्छित को चेत क्या था, उदय ही [४]चन्द्रका था,
[१]चन्द्रोदय था न किन्तु, धन्य [२]ओषधीश को;
धन्य उस [३]ज्ञान को कि धन्य [४]तद्विधान को कि;
धन्य हनुमान को कि धन्य सृष्टि-[५]ईश को ॥११६॥

"दुष्ट ने जो हा-हाकार रचाया हमारे द्वार,
मैं भी अब युद्ध-द्वारा स्वाहा-[६]कार जोड़ूँगा;
काल के कराल-तुण्ड-रूप यज्ञ-बह्नि-कुण्ड-
बीच रिपु-रुण्ड-मुण्ड आहुति [७]उलोढूँगा ।
वंश-अवतंस-[८]गुरु हंस ही के साक्ष्य पर
पूर्णाहुति कर्म कर स्वीय मुख मोड़ूँगा;
खण्ड-पर्शु चाप-[९]काण्ड ले भले [१०]अकाण्ड पर
काण्ड रचे [११]खण्डनार्थ, मैं न प्रण छोड़ूँगा" ॥११७॥

यों कह कोदण्ड-काण्ड-मण्डित-स्वबाहु-दण्ड
चण्डकर-वंश-[१२]मण्ड आये रण-रङ्ग में;
रसकी सिंचाई [१३]ओह! पाके रोम-रोम-रोह
मूल से ले [१४]आऽधिरोह फूले अङ्ग-अङ्ग में ।
क्रूरदृष्टि-बाण-सङ्गी भौंह-चाप-युग्म-रङ्गी
मानो वे त्रिचाप-[१५]सङ्गी हुए कोप-सङ्ग में;
होठ पर मन्द-मन्द [१६]स्पन्द था कि मन्द रिपु-
हूति [१७]अन्तरङ्ग-जप दीखा [१८]बहिरङ्ग में ॥११८॥

---

१ चन्द्रोदय-नामक औषध का प्रयोग भी नहीं था इस अर्थ से विरोधपरिहार । २ वैद्य (सुषेण) को। ३ आयुर्वेद-ज्ञान को। ४ उसकी क्रिया को। ५ उनके सृष्टि-कर्ता को। ६ शत्रुओं को स्वाहा करने का ताँता बाधूँगा। ७ उल्लोडन=डालना=डालूँगा। ८ वंश के भूषण गुरु परमहंस और पूज्य सूर्य की मौजूदगी में। ९ धनुष बाण। १० बे-मौके। ११ संसार के लिए अथवा मेरी बात न चलने देने के लिए। १२ सूर्यवंश-भूषण (राम)। १३ आहा! । १४ ऊपर तक। १५ दोनों भौंह चाप और स्वाभाविक धनुष से। १६ फड़क। १७ मन्द शत्रु (रावण) के बुलाने का मानसिक जप। १८ बाहिरी अङ्ग (होठ) पर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो हुँकार-विधान था रघुप का सो ओं-पदोत्थान था,
मित्रों को रस-पान था, अहित को युद्धार्थ आह्वान था ।
आशापूर्ति-[१]निपान था जगत को, जो प्यास से म्लान था,
सीता को धृति-दान था शुभ, जय श्री-हेतु सम्मान था ।।११९।।

फूला रावण यान-[२]ऊपर चढ़ा, जैसे अनुस्वार हो,
तो भी राम विसर्ग ज्यों द्विगुण ही दीखे [३]पदाधार हो ।
भेजा मातलि को तुरन्त रथ ले श्रीदेवता-नाथ ने,
ज्यों ही [४]शूर चढ़े सुरार्चित, लगा [५]दोषेश क्या आँथने? ।।१२०।।

भीषण भुजङ्ग जैसे, काढ़ता था साँस वैसे,
गाढ़ता, से बास लाता मदिरा-प्रपान की;
दाढ़ों को दिखाता, शौर्य-[६]गाढ़ों को बताता क्रौर्य,
बाढ़ों को जताता चौर्य-वीर्य-अभियान की ।
सीसों को उठाके, बीसों भुजों को बढ़ाके दूर,
आँखों को क्रूर-चूर निज पहिचान की;
दारुण दशास्य प्रणगीति को गवाता यह
'परवा न जान की है, जाय नहीं जानकी' ।।१२१।।

कुछ ही पलों बाद कानों पड़े ज्या-निनाद,
दोनों ओर व्योम-[७]छाद बाण-वृष्टि छा गई;
ग्रहण-समय-का-सा मन्द था प्रकाश खासा,
दीखती न शुद्ध [८]आशा मानो आँधी आ गई ।
कोशलेश-राक्षसेश-युद्ध देखने सुरेश-
आये, पर निर्निमेष दृष्टि हार खा गई;
खोल तीव्र युद्ध-द्वार तोलती अतोल सार
नियति भी एक बार तोलन भुला गई ।।१२२।।

---

१ निवान। २ सवारी के ऊपर। ३ पैरों पर खड़े हुए और पद के सहारे। ४ वीर (राम) और सूर्य। ५ दूषणाधिकारी (रावण) और चाँद। ६ धीर-वीरों को । ७ आकाश को ढकनेवाली। ८ दिशा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा मचा जोर-शोर युद्ध-बीच दोनों ओर
देख वह काण्ड घोर दिक्प घबरा गये;
दोनों वीर काल-कल्प पा-सके न थाह अल्प,
सैनिक के भी अनल्प चित्त चकरा गये ।
विक्रम-[१]निधान पर और [२]यातुधान पर
शस्त्र थे न कारगर बीच टकरा गये;
जान मानो दैव-[३]छन्द होते हुए मन्द-मन्द
आज दिन युद्ध बन्द सूरज करा गये ।।१२३।।

करके प्रशान्त मन आपस का वीरपन
दोनों ने सराहा घन नींद के प्रवेश में;
सुमुनि-अगस्त्य-दत्त सूर्य-मन्त्र अप्रमत्त
जप के हुए सु-[४]मत्त राम रात्रि-शेष में ।
सुहृद-विभीषणोक्त [५]मर्म पहिचान, [६]मान-
देके उन्हें, सावधान हुए स्व-निवेश में;
पूर्णविधि सत्य-सन्ध पालते चरित्र-[७]बन्ध,
आये कर [८]श्रोणि-बन्ध समर-प्रदेश में ।।१२४।।

सामने निहार कर राम ने प्रहार-कर
रिपु के लगाया शर पूर्ण मुख्य मुण्ड में;
मन्त्र-[९]पूयमान कर दूसरे को तानकर
छोड़ा अवधान कर तीव्रतर तुण्ड में ।
सीस-[१०]राज्य-पातनेच्छु बीस राक्षसास्त्र काट
तीसरा पितामहास्त्र छोड़ा नाभि-[११]चुण्ड में;
शैल को ज्यों शृङ्ग-झुण्ड, छोड़ के प्रचण्ड रुण्ड-
सारे गिरे शत्रु-मुण्ड खेत-यज्ञ-कुण्ड में ।।१२५।।

---

१ राम पर। २ रावण पर । ३ विधाता की इच्छा। ४ भारी आनन्दित। ५ रावण के प्राण-हरण का रहस्य। ६ धन्यवाद-स्वरूप। ७ गठन। ८ कटि। ९ मन्त्र से पवित्र। १० (अपने) शिर के राज्य को गिराने में उद्यत। ११ नाभिरूप गहरे कुएँ में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानव-चरित्र-पाल बोले राम सिद्धि-काल,
बोलो [१]जयकार-जाल [२]विधि व अगस्ति का;
उस ही के साथ-साथ त्रिभुवन-कीर्ति-गाय
तात रघुवंश-नाथ अहिम-[३]गभस्ति का ।
बोल यह, वाति बोले बोलो रघुराज का भी,
क्योंकि दिक्-[४]चतुष्क-मुख [५]चारों की प्रशस्ति का-
दे रही है दिक्-[६]प्रदर्श राम-हस्त-[७]प्राप्त-धर्ष
धन्य दैत्य की [८]सरक्त नाभि व्यक्त-[९]स्वस्तिका ॥१२६॥

आये विधि व्योमकेश, साथ में थे देवतेश,-
शेष सुर, [१०]कोशलेश विरदाया राम को;
उन्होंने प्रणाम कर वर-अनुरोध-पर-
[११]सैन्य को सजीव किया, गाया गुण-ग्राम को ।
वीर से [१२]प्रबर्धिताश सीता को बुलाया पास,
अग्नि-शुद्धि से प्रकाश किया सती-नाम को;
[१३]भक्त को दे राज और विदा देवराज को दे,
चले सु-विमान-द्वारा प्रभु निज धाम को ॥१२७॥

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता त्रयोविंश प्रतान समाप्त ।

---

१ जय-शब्द-समूह। २ ब्रह्मा। ३ सूर्य का। ४ जिसका मुँह चारों दिशाओं में हैं, (ऐसी नाभि)। ५ पूर्वोक्त तीन और राम की प्रशस्ति का। ६ दिग्-दर्शन। ७ जिसने राम के हाथ से मृत्यु पाई। ८ रुधिर से भरी। ९ जिससे स्वस्तिक (◈) प्रकट हो (ऐसी नाभि)। १० दशरथ। ११ मरी हुई सुग्रीव-सेना को। १२ हनुमान-द्वारा जिसकी आशा बढ़ाई गई। १३ विभीषण को।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम

चौबीसवाँ प्रतान

प्रवेशिका

प्रवास-समाप्ति पर श्रीराम का पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हुए मुनि भरद्वाज-आश्रम में आना, हनुमानजी को पूर्व सूचना देने के लिए भरतजी के पास भेजना, अयोध्या में सर्वत्र आनन्द, भरतजी, शत्रुघ्नजी, सभी माताओं, गुरुजनों, पुरवासियों से श्रीराम सीताजी तथा लक्ष्मणजी का स्नेह-मिलन, गुरु वशिष्ठ का श्रीराम के राज्याभिषेक का शुभ-मुहूर्त-संकेत, का इस प्रतान में वर्णन है। गणेशजी के स्तवन के साथ सिंहासन पर आसीन सीता-रामजी की गुरु वशिष्ठ द्वारा आरती, देवगण का उस अवसर पर अयोध्या आना, सियाराम जी की मनोहर झाँकी देखकर कृतकृत्य होना, श्रीराम का धर्म-पालन के सम्बन्ध में प्रेरक उद्‌बोधन एवं अभिषेक-उत्सव-छटा इसके अन्य वर्ण्य विषय हैं। भक्त सुग्रीव, जामवन्त, हनुमान, अङ्गद, विभीषण, निषाद आदि की सेवा और श्रीराम का उनके प्रति कृपा-भाव, श्रीसीताराम-विनोद के लिए स्वर्गभूमि और भारतभूमि का संस्कृत-हिन्दी में संलाप उल्लेखनीय है। कवि ने उपप्रतान में अपना वंश-परिचय तथा उपसंहार में हिन्दी कविता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना, जोधपुर में अपने आवास तथा 'रामकथा-कल्पलता' के माहात्म्य का संकेत कर दिया है।

विशेष : समाधिस्थ मन- सीताजी के श्रीमुख से शुक (नित्य कवि ध्वनित) के लिए सम्बोधन 'अहो मम नित्य सुनन्दन कीर' कवि की उच्च कोटि की समाधिस्थ दशा का निदर्शन है। इसी प्रकार श्रीराम भक्ति में पूर्णतः पगे कवि को ग्रन्थ-रचना के लिए इष्टदेव का प्रसाद परम आह्लादकारी है।

हिन्दी-संस्कृत समन्वय : हिन्दी-संस्कृत समन्वय के पक्षधर कवि का काव्यात्मक अनुष्ठान सराहनीय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौबीसवाँ प्रतान

वसन, अशन नव, पान नव, तन, मन, धन, सब वस्तु ।
वचन-रचन, संयम-नियम श्रीरामार्पणमस्तु ।।२४।।

"आज प्रवास समाप्त हुआ, घर प्राप्त हमें कल ही करना है;
जीवन! जो तुमको कुम्हिले भरताम्बुज में रस को भरना है ।
लक्ष्मण को बुझते गृह-दीपक में अब [१]स्नेह अहो! झरना है;
नाथ! मुझे प्रिय-माण्डविका-[२]ऽन्त्य-निवेदन को अब आदरना है"।।१।।

यों सुनते गृहिणी वचनावलि को, निज-वत्सलता-रस-घोले
धन्य अनन्य बखान कृपा-रस-खान महाशय स्वाशय बोले ।
मैथिलि! मध्य-प्रयाणक में प्रियमित्र-प्रतीक्षि-परिग्रह को ले-
यावत सूर्य नहीं ढलते, चलते घर को, कुछ विश्रम होले ।।२।।

दीख रही वह दूर पुरन्दर-मन्दिर-सी अति-[३]सुन्दर-जाता,
पूर्ण [४]सुवासित कुन्द-कली सम मित्र-सुकण्ठ-पुरी [५]अवदाता ।
देख इसे, यह जान कि, जानकि! है ठहराव यहाँ मम आता,
पुष्पक-रूप मधुव्रत सु-[६]व्रत [७]तीव्रतर-क्रम से मँडराता ।।३।।

वेग महा ठहरा-ठहरा यह, क्या गहरा तल पै ठहरा है,
यद्यपि देवि! विमानक है, पर मान ओह ! इसमें गहरा है ।
राक्षस-नायक ने उस यक्षक-[८]नायक से कर दम्भ हरा है,
किन्तु विभीषण का इस पै अब तो विजय-ध्वज आ फहरा है ।।४।।

★ ★ ★

---

१ प्रेम और तेल । २माण्डवी की अन्तिम प्रार्थना को। ३ अत्यन्त सुन्दर बनी हुई। ४ पूरी बसाई गई और पूर्ण सुगन्धित। ५ श्वेत। ६ अच्छे नियमवाला। ७ अर्थात् गहरे घेरे का क्रम बाँधता हुआ। ८ कुबेर से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्लवग-पति ने पत्नी-भ्राता-सखा-युत राम को,
विनय-विधि से पूजा, पूरा किया सब काम को ।
रघुतिलक ने किष्किन्धा से लिया सब को लिया,
चलकर [1]भरद्वाजाज्ञा को सुपालित भी किया ।।५।।

मुनि-वसति से भेजा वीराग्रणी हनुमान को,
भरत उनसे पाके मानो स्व-जीवन-दान को ।
प्रमुदित हुए, ऐसे गाढ़े मिले कि दिया हिया,
'उरिन न हुआ' बोले, ये भी [2]ढले कि, सभी दिया ।।६।।

उमङ्ग जनता आगे स्वामी-विमान-निकास को-
उपरि-मुख हो देखा की, ज्यों नवेन्दु-विकास को ।
जब तक नहीं दीखा, पूरी रही अति-बेकली,
बरस निकले आशा से, क्या यही क्षण था बली? ।।७।।

कलकल मचा, ज्यों ही [3]दीखा, अहा! जय राम की,
जय दशमुख-ध्वंसी की हो, सुपावन-नाम की ।
जय अनुपमा आदर्श-स्त्री सनातन जानकी!,
जय जय जय भ्राताओं की तथा हनुमान की ।।८।।

[4]स्थविर कहते, ब्रह्मा का क्या सु-वाह मराल है?,
नहिं, गरुड़ है श्रीभर्ता का सुवर्ण-[5]विशाल है ।
अहह! यह तो स्वामी ही का समक्ष विमान है,
अतुल-गति जो रत्न-श्री से महाद्युतिमान है ।।९।।

तरुण कहते ब्रह्माजी ने सुडौल इसे गढ़ा,
युवति-कुच ज्यों कैसा [6]दीखा क्रम-क्रम से बढ़ा ।

---

१ इधर होते जाना, इस आज्ञा को। २ हनुमान भी (ऐसे) अनुकूल हुए। ३ अर्थात् विमान। ४ बूढ़े। ५ सुन्दर वर्णमाला होते हुए विशाल। ६ दूर से निकट आती हुई कुछ भी वस्तु क्रम से बढ़ी जान पड़ती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चटल [1]वटु तो यों बोले ये, कटा सु-पतङ्ग है,
अमर-वटु के हाथों ढाला सुकन्दुक [2]चङ्ग है ।।१०।।

★ ★ ★

तब भरत के भेजे भ्राता रिपुध्न [3]पुरी अहा !-
प्रथम पहुँचे, सोत्कण्ठों में सुवृत्त तथा कहा ।
इकटक उन्हें [4]देखा ज्यों, त्यों नहीं रघुवीर को,
जन जलद को जोहें जैसे तृषार्त, न नीर को ।।११।।

रघुकुल-धनी नन्दिग्राम-[5]स्थितानुज-बोधि से-
[6]वट इव मिले, उल्लासी हो लगा स्व-[7]शिरोधि से ।
फिर हर जटा सोहे; सीता तथा शुचि माण्डवी-
प्रमुदित मिली दोनों धारे सुवर्ण-लता छवी ।।१२।।

★ ★ ★

गुरु, जननियों, पूज्यों ही की कृपा-[8]तरि से तरा-
प्रण-जलधि को मैंने, ऐसे जता करते स्वरा ।
रघु-तिलक ने पादाम्भोज-प्रणाम उन्हें किया,
मुदित सब ने [9]स्वाशीर्वादाभिनन्द इन्हें दिया ।।१३।।

★ ★ ★

शत्रुञ्जय-द्विरद जो अपने लिये था,
जो [10]ऊर्ध्व हर्ष-[11]नति से कर को किये था ।
स्नेहार्द्र हो [12]सुहृद को उस पै चढ़ाया
आत्मीय प्रेममय गौरव को बढ़ाया ।।१४।।

स्पन्दन में दशस्यंदन-नन्दन प्रीत विनीत ससीत बिराजे,
काञ्चन-भूधर-सुन्दर-कन्दर में [13]सशचीक पुरन्दर लाजे ।

---

१ चपल बालक। २ सुन्दर। ३ अयोध्या। ४ कर्ता है :-सोत्कण्ठों (पुरवासियों) ने। ५ नन्दिग्राम में रहे छोटे भैया (भरत)-रूप पीपल से। ६ वट-वृक्ष के जैसे। ७ अपनी ग्रीवा से। ८ कृपा-नौका से। ९ शुभाशीष व बधाई। १० ऊपर। ११ हर्ष और प्रणाम के कारण। १२ सुग्रीव को। १३ इन्द्राणी सहित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वल्प न थे कवि-कल्पन-जल्पन, अल्प नहीं जय-जल्पन गाजे,
धौकृति, झंकृति, भंकृति, पेंकृति-युक्त चतुर्विध [१]वादन बाजे ।।१५।।

उन्हें देखती जालिका-लोचनों से,
बुलाती पताकाङ्गुली-चालनों से ।
मुख-द्वार माला धरे सम्मुखीना,
अयोध्या मिली, [२]औत्सुकी थी नवीना ।।१६।।

सफल जगतियों के नाथ भी पुण्य-भागी,
यह अब मम ही है राम पूर्णानुरागी ।
न इस मनन का जो [३]मध्य उ[४]त्सेक माया,
उस समय अयोध्या के बहिः दृष्टि आया ।।१७।।

★ ★ ★

श्रीशत्रुञ्जंय-कुञ्जरासन यहाँ जो राम का ज्ञात था :
चौथे खण्ड चढ़ा अतः भवन के स्त्री-बालक-[५]व्रात था ।
देखा किन्तु इन्हें रथस्थ उसने आ [६]दूसरे में तभी,
पाते [७]सप्तम-भूमिकास्थ जिनको साधे तपस्या सभी ।।१८।।

कोई अञ्जन डालती नयन में स्त्री दौड़ [८]संभ्रान्ति से,
पाके पूर्ण निरञ्जनामृत, हुई दिव्येक्षणा शान्ति से ।
स्वामी को उस काल देख न सके [९]कैदार-लीला रसी,
जो तत्काल-सुवृत्त जान न सके अज्ञानता के वशी ।।१९।।

स्वामी को लख [१०]लाज त्याग हरखी तत्काल लज्जावती,
लङ्का [११]राजवती कि ज्यों तब वहाँ लङ्केश को त्यागती ।

---

१ वाद्य। २ उत्सुकता। ३ भीतर (अयोध्या के)। ४ गर्व और पानी का छिड़काव। ५ स्त्रियों और बालकों का समूह। ६ दूसरे खण्ड में (आकर)। ७ ज्ञान की सप्तम भूमिका में रहे हुए। उन्हीं को ईश्वर साक्षात्कार होता है। ८ हलबली में। ९ कै=कितने, दार-लीला-रसी=स्त्री-विहार के रसिक स्वामी को देख न पाये, इस प्रश्न का उत्तर इसी में है, कि कैदार-लीला-रसी=क्षेत्रों के लीला रसिक अर्थात् अभिसारी। अभिसारिकाओं के संकेत-स्थानों में क्षेत्र प्रधान है। १० अक्षतों को और लज्जा को। ११ दुष्ट राजावाली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुष्पों को बरसा अपुष्पवतियाँ साफल्य को पा गई,
देखा की रह छन्न [1]पुष्पवतियाँ, शुद्धात्मता छा गई ।।२०।।

★ ★ ★

ज्यों ही लक्ष्मण-ऊर्मिला-युग मिला, हृत्पद्म ऐसा खिला,
मानो शैलशिला-विलात्मक [2]किला जीता व बैरी पिला ।
वैसा तो अनिलात्मजादि [3]निखिलाङ्गों से मिलाया मिंला,
सीताराम-मिलाप-काल कुम्हिला हृत्पद्म भी तो खिला ।।२१।।

दोनों ने साथ कहा, अहो! बधाई! तुम्हें शुचि-[4]प्रीते! ।
कैसे गुरु-सेवा से विरह-बरस भी सरस बीते ।।२२।।

★ ★ ★

आचार्य ने जन-समीहित को जताया,
रामाभिषेक-सुमूहूर्त तभी बताया ।
हाँ, तुष्ट ये गणप, किन्तु पुनः मनाया,
होता सभी सजग, जो पहले ठगाया ।।२३।।

रुन्द-[5]तुन्द ! तव सिद्धि-सुन्दरी,
वन्द्य-पाद ! फिर ऋद्धि-सुन्दरी ।
मन्द-मन्द मुसकान को धरे,
मन्दिरस्थ मम मन्दता हरे ।।२४।।

भजो मन ! सब से प्रथम गणेश !
कहो मन ! जय जय सिद्धि गणेश !
जगत-जनन के समय जिन्हें झट जपते प्रथम प्रजेश ।।
सकल-सुरासुर-समय-समय में सुमिरें सविधि सुरेश ।

---

१ एकान्त-स्थित रजस्वलायें। अपुष्प-वतियों का पुष्प बरसाना वैचित्रीसूचक है। २ पहाड़ी गुफा का गढ़। ३ हनुमान आदि सहायभूत अंगों से । ४ हे शुद्ध प्रेमवाले और शुद्ध प्रेमवाली। पुं० स्त्रीलिङ्ग में सम्बोधन के एक वचन में रूप समानता रहती है। ५ हे लम्बोदर (गणेश।)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रटन-रीति रचते रक्षा में रक्षा-रसिक रमेश ।।
संहारण के समय सुमिर कर स्मरण सिखायँ शिवेश ।
शुभ सिन्दूर-पूर से सुन्दर शुण्डा-दण्डविशेष ।।
[1]ललितलोम-लम्बोदर षटमुख-सोदर सुन्दर-वेश ।
गुण-गण के गुरु-गहन-गान से थके शारदा-शेष ।।
कइयों के करुणा-निधान ने काटे कर्कश क्लेश ।
नित्य ब्रह्म-[2]नन्दन के अब प्रभु ! विघ्न हरो विघ्नेश ! ।।२५।।

★ ★ ★

श्रीगणेश! कर तापहर रखिए मन शिर आज ।
श्रीगणेश [3]करता, पहर हो शुभ यह मम काज ।।२६।।

★ ★ ★

''दशतुण्ड-[4]जयैकधर्म के
न धरे जी! जिसको न छू सके ।
अब तो अपनाइए इसे,
यह राज्यर्द्धि कहे भला! किसे''? ।।२७।।

यों एक [5]वैतालिक-भारती कढ़ी
अहो ! [6]समानाऽपरवक्त्र पै चढ़ी ।
स्वरूप किंचित् पलटे कहीं-कहीं
ऐसे सुनाई पड़ने लगी वहीं ।।२८।।

---

१ सुन्दर रोमवाला लम्बा-चौड़ा जिसका उदर हो। २ ब्रह्मा के पुत्र (वशिष्ठ) और नित्यनामक ब्राह्मण-कुमार के। ३ मैं प्रारम्भ करता हूँ। ४ रावण विजय-रूप एक धर्म अर्थात स्त्री-धर्म (रजस्वलापन)। ५ वैतालिक-वाणी और वैतालीय छन्द की वाणी। ६ अपने समान दूसरे वैतालिक के मुख पर चढ़ी हुई और समानता रखने वाले अपरवक्त्र (छन्द) पर चढ़ी हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"दशमुख-[१]विजयर्तु से नहा
प्रिय-[२]भरताशय-चिह्निता अहा! ।
रघुकुल-प्रभुता स्वयं मिले-
रघुवर से, जन-हृत्-कली खिले" ॥२९॥

★ ★ ★

क्यारी-क्यारी सुधान्याऽक्षत-वर-सरसों-तन्दुलों की सुधारी,
झारी-झारी [३]बिदारी-प्रमुख-बहुप्रकारोषधी-सत्त्व-धारी ।
प्यारी नारी-कुमारी-कुल-पण-युवती-[४]गान-वीणादि-हारी,
भारी सारी तयारी रघुवर-नृपता-प्राप्ति की थी पसारी ॥३०॥

अहा! मुख-द्वार [५]सपत्ररेख था,
विशेषक [६]स्वागतसूचि-लेख था ।
भित्तिस्थ [७]आदर्श तथा कपोल थे,
सुहावने दर्शन भी अमोल थे ॥३१॥

★ ★ ★

सुगन्ध से गन्धित थे [८]उशीर के,
सुवर्णकुम्भ-स्तन तीर्थ-नीर के ।
कस्तूरिका-कुङ्कम-पङ्क-गन्धिनी
[९]रम्भादि से सेवित माल्यबन्धिनी ॥३२॥

सुनर्तकी-नर्तन से अलङ्कृता
सुमञ्जु मञ्जीर-रवादि-झङ्कृता ।

---

१ विजयरूप-ऋतु के कारण नहाकर। २ प्रिय भरत के आशय से और प्रियभ-रताशय=प्रिय से शोभा देने वाले रत से चिन्हित। २७वें पद्य में जिसको कर्म बताया गया उसी को २९वें में कर्ता बतलाकर सामयिक नायिका-रूप में भी अन्तर दिखा दिया गया। ३ एक प्रकार की ओषधि। ४ वेश्या गान और वीणादि से सुन्दर। ५ पत्तों की पंक्तियोंवाला और पत्ररेखा=रचना विशेष से युक्त। ६ स्वागत-सूचक लेख विशेषक=तिलक था। ७ दर्पण। ८ खश के सुगन्ध से। ९ केले आदि से और रम्भा आदि अप्सराओं से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या राज्य-लक्ष्मी-मद देख के मही
[१]सुपूर्व के यौवन को जता रही ।।३३।।

वहाँ [२]आचार्यानी सकल-कुशलाचार-विधि में-
स्वयं थी [३]आचार्या, जिस विधि रमा क्षीर-निधि में ।
[४]उपाध्यायानी थी निखिलशुभ-गीतानुमति में-
[५]उपाध्याया, ब्राह्मी जिसविधि विधाता-[६]वसति में ।।३४।।

★ ★ ★

मनोरथ सबके आज पुराये ।
धर अभिषेक पीत पट पहिने राम नृपासन आये ।।
सीता साथ विनीता प्रीता सुन्दर वेष सजाये ।
साथ विराजे ज्ञान-सम्पदा मानो मूर्ति बनाये ।।
भरत शील-सम सेवा में थे सिंहासन के दाँये ।
तेज-प्रताप-प्रतिम थे दोनों [७]सहज उसी के बाँये ।।
चरण-शरण मानो कि सिद्धि-मुख थे हनुमान सुहाये ।
सम्मुख पुण्य-पुञ्ज कुलगुरु ने तिलक-मुकुट सरसाये ।।
राजतिलक रघुवंश-तिलक का लख सुर-तिलक लजाये ।
पूरें प्रकटित नित्य-मनोरथ थे मङ्गल मन-भाये ।।३५।।

रघुवर का कुङ्कुम-तिलक श्वेताक्षत-कण-पूर्ण ।
सोहा, ज्यों हेमार्घ-पुट धृत-[८]गजमौक्तिक-चूर्ण ।।३६।।

अमृतवर्षि-प्रभु-शीश पर चमका मुकुट मुहान ।
ज्यों [९]धाराधर-ओट से निकला कला-निधान ।।३७।।

---

१ बहुत पहले के। २ आचार्य-स्त्री (अरुन्धती)। ३ आचार्य का काम करनेवाली। ४ उपाध्याय की स्त्री। ५ शिक्षिका। ६ ब्रह्मलोक में। ७ लक्ष्मण-शत्रुघ्न। ८ जिसमें गजमोतियों का चूर्ण ढाला हुआ हो। ९ बादल की ओट से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]उस पर शरदाकाश-लव ज्यों तारकों समेत ।
इस पर मुक्तामणि-कथित छत्र-छटा थी श्वेत ।।३८।।
डोल रहे थे वह चँवर इधर-उधर सविशेष ।
लोम-विलोमानिल-[२]चलित ज्यों शरदाम्बुद-लेश ।।३९।।
[३]साश्रु चरण में जानु-[४]नत सोहे पवन-कुमार ।
स्वर्ण-जटित ज्यों दक्षिणावर्त शंख [५]जलझार ।।४०।।

राज्यासनस्थ रघुनन्दन और सीता
पूरा करें मम मनोरथ चित्त-चीता ।
श्रीवायुपुत्र जिनके पद के सहारे
हो पूज्य साध सकते मन के विचारे ।।४१।।

ब्रह्माण्ड है समय-सूचक यन्त्र भारी,
काँटे दिवाकर-निशाकर मध्यचारी ।
अन्योन्य-आश्रित रहे पुरजे धरादि,
कर्ता तुम्हीं रघुपते! इसके अनादि ।।४२।।

इत्यादि-भव्य-भावों की सराह कवि-भारती ।
उतारने लगे ऐसे वसिष्ठ मुनि आरती ।।४३।।

★ ★ ★

जय मङ्गलकारी
जय दशमुख-दारी;
सरयूतट-वनवीथि-बिहारी जय शुभ-पथ चारी ।
जय जगदीश! जानकी-जीवन ! दीन-दयाधारी;
हे भव-सागर-तारक! तुमने तारी मुनि-नारी ।।
मारी, किन्तु ताड़का तारी, शबरी क्या तारी;
दशा सुधारी खलजन की भी, नाथ ! कृपा भारी ।।

---

१ चन्द्रमा पर। २ सीधी ओंधी पवन से चलाये गये (शरद=शरद् के बादल के टुकड़े) ३ हर्ष के आँसुओं को बहानेवाले। ४ घुटनों के बल (चरण में)। ५ जिसमें से पानी झरता हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभु-समान न दयालु दूसरा, मुझ-सा न कुचारी;
नित्य-नियम निज भूल जायँ यदि, तो गति अँधियारी ।।
खल-खण्डन-हित हित-मण्डन-हित मनुज-देह धारी;
मर्यादा-पालन के कारण यह लीला सारी ।।
अन्त-समय में नाथ ! तुम्हारी झाँकी यह प्यारी;
नित्य-नैन-पथ-चारी हो तो, न बने संसारी ।।४४।।

रघुप ने प्रिय लक्ष्मण की खरी—
सुरुचि को लख धार्मिक-केसरी ।
भरत को युवराज बना लिया,
उचित [१]रोचित [२]रोप दिखा दिया ।।४५।।

★ ★ ★

ब्रह्मा और सरस्वती तुरत ही हंसस्थ हो आ गये,
जो वैमानिक इन्द्र आदि सुर थे, वे भी अहो! आ गये ।
बूढ़े वाहन से विलम्बित श्री गौरीश की [३]वर्धना—
सभ्यों ने [४]बढ़की, कि कार्य भगवन् ! [५]हेरम्ब ही से बना ।।४६।।

भारी नृत्य-बारी काढ़ [६]नटी दिव्य बार-नारी
करती प्रणाम जब अन्तिम गणेश को;
वाहन तदीय [७]आखु वेणि को भुजङ्ग जान
सहारा बनाने लगा नाभि-रन्ध्र-देश को ।
चन्द्रमुखी चौंक पर चञ्चल चलाती कर
इधर-उधर वह [८]बिचलाती वेष को;
सभी को हँसाने लगी, चित्र को लिखाने लगी,
आप ही दिखाने लगी नर्तन-विशेष को ।।४७।।

---

१ अर्थात् अन्यों द्वारा भी पसन्द किया गया। २ नियुक्ति। ३ अभिनन्दन (बधाई)। ४ सम्मुख जाकर। ५ गणेश। ६ फिर नाँच करने के लिए इनकार करती हुई। ७ चूहा। ८ विचल करती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे दिव्य दृश्यों पर पूर्व से अधिकतर
कोशलेश-दम्पति का जो कि मुसकान था;
धवल-धवल प्यारा दोनों ओर न्यारा न्यारा
सुधा की विभिन्न धारा ज्यों [1]प्रतीयमान था ।
उसको स्व-दृश्य-जन्य समझा जनों ने धन्य,
क्योंकि अट्टहास तब स्त्रियों का महान था;
कारण प्रणाम-हर्षी वायुपुत्र का प्रकर्षी
आकस्मिक व्योम-पर्शी पुच्छ वर्धमान था। ।।४८।।

निरख मन! राम-सिया की झाँकी;
योगिजनों ने लगा टकटकी मन भर-भर जो आँकी ।
जिनका रचना-कला-बानगी दीख रहा [2]प्रचलाकी;
है नख-मिष पद-बीच कला-[3]निधि, क्या स्तुति उस [4]सुकला की ।
ब्रह्मा की अँखियों ने आँकी, ठहरे रहे पिनाकी;
नाकीशादि देवता कीलित, कोई रहा न बाकी ।
चतुर चितेरी चतुराननजा चित्रण करती थाकी;
जिसे नित्य कोशल की जनता निरख-निरख निरखा की ।।४९।।

राज-तिलक पर कर सकल वन्दी-गण को मुक्त ।
बोले मंत्री-सुमन्त्र तब कर कर-युग संयुक्त ।।५०।।

कहो प्रभु! कब काटोगे जेल?;
भूरि-भूरि भ्रम-जाल अँधेरा वन्दी ठेलाठेल ।
बेचारे सारे दुख-हारे भव-संकट को झेल;
दिखता तनिक न कहीं उजाला ताला लगा अमेल ।
काम, क्रोध, मद आदि सिपाही धमकाते [5]अतिबेल;
मोह-महा-महिपाल-दुहाई फैली अमित अपेल ।
यहीं असाधु-साधु व्यभिचारी-चोर जुआरी मेल;
खोटा खरा खुलासा करते खूब दिखाया खेल ।
मुझको दुष्ट सतावें कैसे, कोल्हू में तिल पेल-
करो विलम्ब नहीं प्रभुवर अब, फैल गई है बेल ।
कहो प्रभु! कब काटोगे जेल ?

---

१ मालूम हो रहा। २ मोर। ३ चन्द्र। ४ परमोत्कृष्ट विभूति। ५ अत्यन्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

* * *

जैसे स्वाहायुत अनल को यज्ञ के कर्मचारी,
ज्यों इन्द्राणी-युत सुरप को स्वर्गवासाधिकारी ।
जैसे गौरी-युत गिरिश को भूत, त्यों वे पुजारी-
सोहे सीता-युत रघुप को पूजके सिद्धि-धारी ।।५१।।

* * *

तदनन्तर देने लगे भाषण श्री रघुराज ।
स्वहित समझ सुनने लगा [1]समुदित मुदित समाज ।।५२।।

वन्द्य-वृन्द! अथ राज-प्रजागण! प्यारे!,
धन्य दिवस है, हैं समुदित हम सारे ।
सभी जनों ने जो प्रस्ताव सराहा,
पूज्य पिता के समय यदपि था चाहा ।।५३।।

किन्तु दैव ने उसे न तब स्वीकारा,
वैसी स्थिति पर न था मुझे भी प्यारा ।
उस घटना ने तुम्हें अतीव दुखाया,
भरत-वत्स को ग्रीष्म-समान सुखाया ।।५४।।

उस पर केवल मुझे पड़ा समझाना,
मम हितोक्ति को आप सभी ने माना ।
धन्यवाद है, तुमने जो व्रत पाला,
आज अकण्टक मैंने राज्य - सम्हाला ।।५५।।

राज-प्रजागण निज-निज अधिकारों को-
पाकर पालें निज-निज आचारों को ।
उभय-[2]चक्रगति-संगति से रथ चलते,
नीच-ऊँच [3]अति व्यवहारों से खलते ।।५६।।

---

१ एकत्र हुआ। २ दोनों पहियों की गति अनुकूल होने से। ३ अत्यन्त नीचे और अत्यन्त ऊँचे बरतावों से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाँ, स्थितियों पर निम्नोन्नत भी होते,
[१]मर्यादातिग किन्तु हुए गति खोते ।
पथ-सुधार ही अतः उचित है पहले,
फिर सुख-यात्रा करे परस्पर बहले ।।५७।।

आश्रम निज-निज [२]वेलातिक्रम न करें,
जैसे सागर, लोक-हितों पर उतरें ।
निज निज चारों वर्ण व्रतों को पालें,
जीवन-रथ को बनकर चक्र निकालें ।।५८।।

मनुज-कर्म है प्रथम धर्म का पालन,
उसी सुपथ से उसका हो सुख-चालन ।
स्मरण रखो बस, उसे कदापि न त्यागो,
सजग रहो, निज कर्तव्यों पर जागो ।।५९।।

सभाधीश गुरु रामवचोऽमृत घोले-
यों तार-[३]स्वर वचन समर्थक बोले ।
रामरूप हे जन-समाज! सब सुनिए,
रघुवर-भाषण-भव्य-भावना चुनिए ।।६०।।

सार यही है, ऐसा स पथ बना लो,
आपस में तुम मानस-तन्तु सना लो ।
ऊँच-नीच-दुर्भाव नहीं हो पावें,
मन-मुटाव-मय कीच नहीं जम जावें ।।६१।।

जीवन-यात्रा-सु रथ कहीं न खलेगा,
फिर तो सीधा सिद्धि-[४]पुरान्त चलेगा ।

---

१ मर्यादा के बाहिर निकले। २ अपने अपने मर्यादित समय का उल्लंघन, सागर की ओर तीर के बाहिर जाना। ३ उच्च-स्वर। ४ सिद्धिपुर (मोक्ष) तक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी सिद्धि के लिए तरसते योगी,
राम-कृपा से केवल कर-गत होगी ।।६२।।

इस ही को तो राम-राज्य हैं कहते,
सभी चराचर इस में सुख से रहते ।
करो सभी मिल मुदित रामजय-गर्जन,
साथ उसी के समुचित सभा-विसर्जन ।।६३।।

★ ★ ★

दम्पति ने झुक-झुक किया पूज्यों को [1]प्रणिपात ।
समुद अशीषा सकल ने, गुरु बोले शुभ बात ।।६४।।

पुरुष-प्रकृति साक्षात्, क्या कहूँ, राम-सीता-
युगल नित जयी हो जागता और जीता ।
तुम निज-निज चाहे खेलना खेल खासा,
कुशल-वर-[2]खजाना ! पूरना नित्य आशा ।।६५।।

★ ★ ★

स्वामी की अभिषेक-उत्सव-छटा आये सभी देखने,
यों मैं केवल क्या कहूँ, कह दिया वाल्मीकि-उल्लेख ने ।
श्रीसङ्केत-निकेत केतन-भरा साकेत पाके तजा-
[3]स्वः सम्मान, विमान-मान मन से वैमानिकों ने लजा ।।६६।।

ऐसा उत्सव था अपूर्व, जिस में सुझी न स्व-स्थान की,
सच्चा था अतिथित्व, जो न तिथि थी आयान-प्रस्थान की ।
जो थे वानर वे नराङ्ग, उनकी थीं नारियाँ [4]नारियाँ,
आती थीं उपभाग में नित नये सम्मान की बारियाँ ।।६७।।

---

१ प्रणाम। २ हे कुशल के श्रेष्ठ निधान! और 'कुश-लव' का युगल (समाहार द्वन्द्व) रख जाना' यह ध्वनित है। ३ स्वर्ग का सम्मान । ४ स्त्रियाँ-नर-स्त्रियाँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा वास-प्रबन्ध था कि जिस में न न्यूनता-गन्ध था,
ऐसा भोज्य-प्रबन्ध था कि जिसमें पीयूष-सम्बन्ध था ।
कोई न प्रतिबन्ध था तब कहीं, मंत्री न जो अन्ध था,
राजा भी दृढ-[१]सन्ध था, कृति-धुरा-[२]वाही दृढ़-[३]स्कन्ध था ।।६८।।

सेवायें कर उन औध-वासियों ने,
अन्तः [४]स्थ-स्तुति प्रकटा प्रवासियों ने ।
आत्मा को सब जग में सुधन्य माना,
प्रेमी का परिचय है सु-भाव [५]पाना ।।६९।।

बीता था बरस, रस-प्रवर्षणा से-
जाने थे छिन, सब राम-दर्श-प्यासे ।
स्वर्गी का दिन नर-वर्ष एक होता,
श्रीरामाश्रित सुख-नींद [६]नित्य सोता ।।७०।।

★ ★ ★

कभी प्रभात-कृत्य से निबटे प्राणेश के पिछाड़ी-
गो-पूजन कर सिया जा रहीं पहिरे सुहाग-साड़ी ।
उन्हें देख, जब राजासन पर दोनों साथ विराजे,
वन्दन कर बन्दी यों बोला साज सभोचित साजे ।।७१।।

[७]सुहल-विलक्षण-पद्धति से यह प्राप्त अलौकिक-सीता,
धर्म-मूर्ति [८]श्रीरामभद्र की अनुगामिनी पुनीता ।

---

१ मर्यादा के पालन में दृढ़। २ भार के ढोनेवाले कोटवाल फौजदार। ३ मजबूत कन्धेवाला अर्थात् कार्य-भार-धारण में समर्थ। ४ भीतरी प्रशंसा (औधवासियों की धन्यता)। ५ सद्भावना का मिलना। ६ सदा की सुख-नींद अर्थात् मुक्त होकर सोता है, उस पर काल का प्रभाव ही क्या पड़ सकता है?। ७ अच्छे हल की विचित्र रेखा से जनमी हुई और सु, ह, ल, वि, लक्ष्मण (नाम) वालों (सुग्रीव, हनुमान्, लक्ष्मण और विभीषण) की बताई हुई राह से मिली हुई यह ध्वनित है। ८ रामचन्द्र और शोभा-रम्य वृषभ (धर्म) जन्म-भूमि-पक्ष में भद्र=कल्याण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मर्यादा ज्यों देती है फल रसमय कुशल, [१]वदाता,
माता जन्मभूमि, वा माता गौ, वा सीता माता ।।७२।।

सुग्रीव, हनुमत-वीर-श्रीलक्ष्मण,-विभीषण ने सुना-
ज्यों ही कि; इसके सार-गर्भित अर्थ को चटपट चुना ।
सकुचा तनिक उन राज-दम्पति को प्रणति करने लगे,
देने लगे कवि को कनक, बोला वचन वह रस-रँगे ।।७३।।

वीरो! मैं कम [२]लेश का न कवि हूँ, हूँ पूर्ण [३]पद्मेश का,
वा हूँ मैं अवधेश का अब यहाँ, हूँ मैं नहीं [४]शेष का ।
तो क्या [५]पुण्यजनेश का बन सकूँ, जो मैं न देवेश का,
कोई वाक्य-विशेष का [६]क्षण नहीं, क्या काम है क्लेश का? ।।७४।।

मैंने अन्य प्रभु-स्थली न कुचली, जो दैव रूठा बली,
तो भी व्यर्थ गली-गली न उथली, की राम-[८]गाथा भली ।
वाणी [९]पातक-लीन के न उगली, हाँ, भक्त के अर्थ ली,
मर्यादा प्रबलीश केवल पली, पादाब्ज का हूँ अली ।।७५।।

बोले राम, कवे! महा मुदित हूँ, दूँ राज्य तो, हर्ष क्या?,
सो बोला, प्रकृति-प्रसन्न [१०]कृति से हों ही, ममोत्कर्ष क्या? ।

---

१ शुद्ध। यह सीता का विशेषण है या कुशल-शब्द को स्त्रीलिङ्ग माना जाय तो उसका। अर्थात् कुशल रूप फल देती है। ध्वनित अर्थ है:-कुश-लव-दाता=कुश-लव को देने वाला फल (लाभ)। २ तुच्छ, टुटपुंजिये इस अर्थ से विरोध-परिहार। ३ नारायण का और पद्मनिधि के स्वामी का। ४ बाकी रहे हुओं का और शेषजी (लक्ष्मण) का, यह ध्वनित है। ५ राक्षसेश (विभीषण) और पुण्यवान् (जन) का। ६ अवसर, अर्थात् कुछ कहने का मौका नहीं है। ७ अर्थात् देने लेने की तकलीफ का। ८ राम-गुण वर्णन। ९ पापी के (यहाँ)। १० स्वभाव-संतुष्ट आप मेरी रचना से प्रसन्न हों ही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन्दी को तुकबन्दियों पर मिलें सर्वज्ञ की [१]बिन्दियाँ,
तो भी जो प्रभु! दें, मुझे बरस दें पत्-[२]कान्ति-कालिन्दियाँ ।।७६।।

बोले राम, सुकण्ठ आदि सुकृती सङ्कोच से क्यों लिपे?,
सु-[३]प्रख्यात सुषेण प्राणद अहो! सौमित्रि के, क्यों छिपे? ।
मैं तो सौंप चुका [४]इन्हें हृदय ही, एवं हनुमान को,
यों [५]शङ्गी प्रभु की बुली स्तुति, यहाँ पाते सभी स्थान को ।।७७।।

★ ★ ★

सीता हाथ लिये स्व-हार कहतीं वीरेन्द्र से, क्या कहूँ,
स्वामी ने जय के दिये मुकुट ही, मैं दे रही [६]हार हूँ ।
वे बोले जय [७]दे पिता मुदित हो, माता सदा हार दे,
मेरा भाग्य अपूर्व है कि, तुमसी मा तुष्ट सत्कार दे ।।७८।।

प्रातः स्मरणीय नित्य माता का सतीत्व सत्य–
[८]सत्यक भी सत्य-सत्य कह न पाय, हारे;
अन्य-गृह-वास-दोष शोधने आपने किया–
चिता में प्रवेश जब आत्मिक बल धारे ।
माता के तपों के बल पावक के ताप लुप्त–
होके रहे, ज्यों दिनेश-उद्‌गम-बल तारे;
अति उक्ति ख्यात नहीं, कानों-सुनी बात नहीं;
आखों-देखी बात सही, यह थे क्या न सारे? ।।७९।।

---

१ शून्य। दृश्यमान कुछ नहीं अर्थात् मोक्ष (ध्वनित है)। २ चरण-कान्तिरूप यमुना-प्रवाह। ३ "सुहलविलक्षण" इस पद्य में 'सु' से प्रकट किये सुग्रीव तो दीखे पर 'सुषेण नहीं'। ४ सुषेण को। ५ इस प्रकार सुषेण को हृदय का दिया जाना बतलाये बाद हनुमान को भी दिया जाना घोषित करने पर संकोच को प्राप्त हुए प्रभु की स्तुति उंचरी कि 'यहाँ' इस सुविशाल हृदय में सभी स्थान पाते हैं। पर जिनका नाम घोषित किया गया, उनका परम सम्मान व्यक्त होता है। ६ मोतियों की माल और पराजय। ७ पिता पुत्र की जय से प्रसन्न होता है और माता, जो पुत्र उस (माता) से हार माने रहे, उससे प्रसन्न होती है। ८ सत्यस्वरूप ब्रह्मा भी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभु-रुख लख बोली सिया साक्षी हैं भगवान ।
न पिता से तुम कम रहो, अमर रहो हनुमान! ।।८०।।

संकोची उस मान से रघुप हो बोले हनूमान से,
तीनों जीवन-दान से हम ऋणी, क्या एक हृद्दान से? ।
तीनों हृत्-प्रतिदिन से अनृण हों, जो आप आदान से-
हों संतुष्ट, प्रधान सेवक तुम्हें मैं मानता ध्यान से ।।८१।।

★ ★ ★

इस पर सकुचाते वीर धीरत्व खोते
निज नयन-जलों से कुङ्कुमालेप धोते ।
रघुपति-चरणों में जा गिरे, कण्ठ खोले-
अधिक कठिनता के साथ, यों वाक्य बोले ।।८२।।

मुझ छल-यति-वेषी [1]कीश को भी न त्यागा,
किस विधि अपनाया, स्वर्ण ने ज्यों सुहागा ।
रघुपति! मुझ-से-क्या जीव साफल्य पाते?,
यदि न प्रभु कृपा की बानगी को बताते ।।८३।।

कुसमय दुहराया मैं गया 'राज-मन्त्री',
यह पद निबहे क्या, जो न हों आप [2]यन्त्री? ।
रघुवर! मुझ-से क्या शुद्ध मन्त्री कहाते?,
यदि न प्रभु कृपा की बानगी को बताते ।।८४।।

वह जलनिधि-वेला और सो क्रूर [3]वेला,
तिस पर विरदाया मैं गया था अकेला ।
अहह! तब विनाशोपाय ही दृष्टि आते,
यदि न प्रभु कृपा की बानगी को बताते ।।८५।।

---

१ वानर। २ यन्त्र-संचालक। ३ समय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कपिपन धर मैंने बैरि-बाड़ी उजाड़ी,
स्थिति सकल बिगाड़ी रक्षि-सेना उखाड़ी ।
रिपु-[१]सुत मुठ-भेंड़ें बाँध क्यों हार खाते,
यदि न प्रभु कृपा की बानगी को बताते ॥८६॥

नृप-दशमुख-द्वारा जो गया था विचारा,
फिर नृपति-सभा में जो गया था उचारा ।
मम वध; उससे क्या श्री [२]विभीषी बचाते,
यदि न प्रभु कृपा की बानगी को बताते ॥८७॥

जिस समय सुमित्रा-पुत्र ने चेत त्यागा,
तब यह जन जागा और सोत्साह भागा ।
पर न सफल होता ओषधी-शैल लाते,
यदि न प्रभु कृपा की बानगी को बताते ॥८८॥

जब-जब विपदा ने आ मुझे नाथ! घेरा,
तब-तब तुम ही ने तो दिया साथ मेरा ।
अहह! स्वजन कोई भी नहीं काम आते,
यदि न प्रभु कृपा की बानगी को बताते ॥८९॥

यह मनुज मनाते पूर्ण पूजा बनाते,
हरि-चरित सुनाते, वीर-गाथादि गाते ।
फिर सुर अपनाते क्यों भला! कौन नाते?,
यदि न प्रभु कृपा की बानगी को बताते ॥९०॥

अहो! राम [४]सरकार यह कैसे हैं सम-[५]कार ।
[६]अमर-कार होकर मुझे दिया अतुल सत्कार ॥९१॥

---

१ इन्द्रजित् और अक्ष। २ विभीषण। ३ इस प्रकार भगवान के जो माने उपकार। वह पावे हनुमान ज्यों सर्व सिद्धि-उपहार ॥१॥ ४ शासक और रेफ-सहित। ५ बराबर न्यायकारी और मकार-सहित। 'राम' में रकार और मकार दोनों हैं। ६ अमर बनाने वाले और मकार-रकार-रहित, यों विरोधी राम अर्थात् मङ्गलमय विष्णु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा राम ने, उस ईश्वर के भक्त निमित्त न बनते,
वे तो जग-घटना को उसकी लीला एक बरनते ।
अत:स्वत: सिद्ध है तुम-से यति का हृदय-विचारा,
मौत मशक से रिपु की [१]तय की, [२]मच्छर ने ही मारा ।।९२।।

★ ★ ★

तब आ [३]शुक विज्ञात द्विज बोला जय सप्रणाम ।
गोद बिठा बोलीं सिया, सुना किये श्रीराम ।।९३।।

अहो! मम नित्य [४]सुनन्दन कीर!;
कल [५]कण्ठी तब गले बिराजे तुलसी-[६]रङ्ग शरीर ।
भव-पञ्जर से मुक्त हुआ तू होना अब न अधीर;
आत्माराम! राम में रमना, जय स्वच्छन्द उदीर ।
विचर कहीं कोशल-कुञ्जों में, चाहे सरयू-तीर;
सिद्धि-प्रिया-कर के फल चखना, पीना अमृत-सुनीर ।
रामकथामय कल्पलता में रमना द्विज-कुल-हीर!;
नित्य जानकी-सम्मुख रटना राम राम रघुवीर ।।९४।।

प्रभु ने माता से कहा, मम सुग्रीव-विभीष ।
दोनों भुज, जिनसे कटे विंशति [७]भुज-भुज बीस ।।९५।।

कौन कर पाय मात! अश्विनी-कुमार-जात
द्विविद व मैन्द वैद्य-युग के बखान को;
जिन्होंने सुधारे क्षत-विक्षत प्लवङ्ग-सैन्य
दूर कर दैन्य किया स्वस्थता-प्रदान को ।

---

१ देखो २२वें प्रतान का रावण-हनुमत्-संवाद-'जरा सोचो' इस शिखरिणी के अन्त में कहा है कि "काल निगले"। २ मत् शर=मेरे बाण ने और मशक ने। ३ आशुकवि भी। ४ सुपुत्र और नित्यानन्द (ध्वनित)। ५ कण्ठी शुक के गले में हुआ करती है, कवि के गले में वाणीरूप कोयल। ६ शुक की ओर तुलसी के जैसे हरे रंगवाला, कवि-पक्ष में तुलसीदास का सा रामभक्ति-रंग। ७ रावण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि न सुषेण होते, [1]मोह से विसंज्ञ होते–
    लक्ष्मण का कौन खोते घोर [2]तिरोधान को;
भूलुँ न कदापि बार-बार उपकार-कार
    तीनों के भी प्राणाधार वीर हनुमान को ।।९६।।

जाम्बवान अङ्गद तथा ये मम प्रियता-[3]पात्र ।
रक्षणीय सविशेष हैं जैसे सु यश व गात्र ।।९७।।

माता बोलीं वत्स! तुम एवं सब कपि-ऋक्ष ।
मम प्रिय ज्यों सुर-[4]वीथि के चन्द्र व तारक-[5]ऋक्ष ।।९८।।

★ ★ ★

तदनु विभीषण-भक्त सुग्रीवाङ्गद-जाम्बवन्त ।
प्रभु-पद पङ्कज-रक्त क्रमसे स्तुति करने लगे ।।९९।।

हा! हा! प्रभु! मैंने यों ही आयु बिताई ।
पहले-पहल महल में नव-[6]निश चहल-पहल से बीता;
राम-जयन्ती-सुमहोत्सव भी निकला व्रत से रीता । हा! हा!
पर्शुराम की जयन्तिका भी कर नव भोज निकाली;
व्रत-उपवास-नियम से निर्जल-एकादशी न पाली । हा! हा!
गुरु-पूनो भी गुरु-पूजा से हाय! रह गई खाली;
चन्द्रमुखी-मुखचन्द्र-कान्ति से सावन-तीज उजाली । हा! हा!
रति-रसियों की चीज समझकर भादों-तीज मनाई;
प्रेम-पात्र के प्रीति-भोज से श्राद्ध-सुरीति जनाई । हा! हा!
रति-दीपों से गृह-लक्ष्मी को पूज दिवाली पाली;
[7]गौरी-गहन-गान से अगहन-रोते गई निकाली । हा! हा!

---

१ मूर्च्छा। २ छिपाव को। ३ प्रीति-पात्र। ४ आकाश के। ५ तारे और नक्षत्र। ६ नवरात्र। ७ गौराङ्गियों (स्त्रियों) के।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पौष्टिक-[१]विधि से पौष मास का दिन भी एक न रीता;
माघ मास में उत्तेजक खा, जाना; मैं ही जीता । हा! हा!
सुन वसन्तपञ्चमिका-बाजा मत्त हुआ मन-राजा;
फागुन में होली का दिन तो गाली गाते गाजा । हा! हा!
विषय सुखों से नाथ! दिवस-सम बहुतर बरस बिताये;
शरणागत की लाज रखा प्रभु! क्या हो अब पछताये । हा! हा!

★ ★ ★

प्रिय विभीषण! राघव-सा कहीं–
प्रभु मिले जग-बीच कभी नहीं ।
अभय रावण भी यदि माँगता,
न इनका इनकार [२]उचाटता ।।१००।।

न भगवन् कुछ अन्य सराहते,
प्रभुपदाश्रय केवल चाहते ।
विमल नित्य बने इस ही दया–
लहरि से हरि! सेवक भी नया ।।१०१।।

मम घनी [३]विषयान्तर-वासना,
प्रभु करें उसकी जड़-नाशना ।
भगवदाश्रय-[४]पावक से छुई–
उजड़ती [५]जड़ तीव्र जमी हुई ।।१०२।।

स्मरण केवल है अवधेश का
प्रमुख दायक ज्ञान-विशेष का ।
हृदय से प्रभु का न कभी [६]खले–
सुमरना, मरना फिर हो भले ।।१०३।।

---

१ पुष्टिकारक पाकों की तैयारी। २ निरुत्साह करता। ३ विषयों के भीतर। ४ भगवान् की शरणागतिरूप आग से। ५ विषय-वासना की जड़। ६ गिरे, नष्ट हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[1]श्रीराम! शान्तिमय अन्तिम काल मेरे–
श्रीराम–नाम रसना–पर पाय डेरे।
हो नेत्र–सम्मुख प्रभो! भवदीय झाँकी,
कानों पड़े टपक राम–कथा–सुधा की ।।१०४।।

जो पङ्गु पार करता गिरि–राज को भी,
जो जीतता [2]जड़ मनीषि–समाज को भी।
जो मूक वाक्पति बने, फिर अन्ध [3]दर्शी,
सो है प्रसाद प्रभु का अमृतैकवर्षी ।।१०५।।

★ ★ ★

हे राम! सीता अयि! राम–[4]सीता–
पदाक्षर–प्रासभरी पुनीता
सुनायें छाँटी यह अश्वघाटी,
घाटी जड़ों की कवि की सु–वाटी ।।१०६।।

सारा भयङ्कर पसारा जहाँ, न कुछ आराम की अटलता,
धारा–[5]प्रवाह परिवारा–नुसार [6]दुखभारान्तराय फलता।
[7]स्फारान्धकार भव–कारा–निवास यह खारा अतीव लगता,
हा राम! रक्ष, अति हारा, तथापि मन [8]मारादि से न जगता ।।१०७।।

कामान्ध हो पद–प्रणामादि–रूप मृदु सामाद्युपाय करके
क्या मानिनी–विजय पा मान तू धर रहा [9]मानसाऽज्ञ! डरके।
नामातिदृप्त अविरामाभिमान इस कामादि–शत्रु–चय को,
रामाश्रयादि–बल–सामान से मथ, महा–[10]मान पा विजय को ।।१०८।।

---

१ श्रेयः सुधारसमये समयेऽन्तिमे मे,
श्रीराम! नाम भवतो रसनातिथिः स्यात्।
दृग्गोचरीभवतु मे तव मूर्तिरेष,
भव्या कथा श्रुतिपथानुगता तथास्तु ।।

२ मूढ। ३ देखने वाला। ४ राम–सीता पद के अन्त अक्षरों के अनूप्रासों से पूर्ण। ५ धारावाही अर्थात् लगातार। ६ दुखभार–रूप विघ्न। ७ बहुत अन्धियारा। ८ कामादि शत्रुओं से। ९ हे मूढ–मन। १० बड़े सम्मान की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसीन हे अवध-[१]वासी! रहो मम विकासी-सुधी-अवध में,
[२]प्यासी रही, जब प्रवासी विहार-वन-वासी रहे मगध में ।
खासी सही विरह-फाँसी, रही मन-उदासी सदा विपद में,
आशीष दें, अब कि [३]दासीय कोटि पर आसीस टेक पद में ।।१०९।।

रीता अहो! समय बीता महा, पर न गीतादि ज्ञान बरता,
जीता गया न मन, प्रीता लगी सु-विपरीता अहो! [४]स्वजनता ।
की तान के विरति, ली तात की शरण, दी [५]तार दृष्टि निखिला,
शीताँऽशु-शीत-मन-चीता प्रसाद यह सीतापते! अब मिला ।।११०।।

मैंने तो पाया मन-ही-मन निपटारा;
सीताराम! तुम्हीं हो माता-पिता, हितू गुरु-द्वारा ।
भुवननाथ! चौदह भुवनों में भटक-भटक कर हारा,
बिना आपके मुझे न कोई जान पड़ा कुछ न्यारा ।
माया के बल जीवलोक सब करता खेल बिचारा;
बिना स्वार्थ संसार-सिन्धु में नाता नहीं निहारा ।
नाथ! तुम्हें मा-बाप ठानकर पाया गोद-सहारा;
फिर क्या भय, न विरोधी-दल का चलता कुछ भी चारा ।
फिर तो जब जब बालकपन से उजड़ा पैर पसारा;
तब-तब नित्य बचाया प्रभु ने कर शुभ दृष्टि-इशारा ।।१११।।

न धर्म-पहचान की, न रुचि तत्त्व के ज्ञान की,
न भक्ति भगवान की, न रति शिष्ट-सम्मान की ।
सुकर्म-महिमा न की, न मति आत्म-[६]उत्थान की,
परन्तु प्रभु! जानकी-रमण! भोग की वान की ।।११२।।

सुभोज्य-परिधान की रति रखी तथा पान की,
रखी धन-निधान की लगन, किन्तु न ज्ञान की ।

---

१ राम! । २ वह सुधीरूप अवध (कर्ता)। ३ दास की श्रेणि में। ४ बन्धु-समूह। ५ शुद्धा।
६ आत्मोन्नति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखी न कुछ दान की स्व-रुचि किन्तु आदान की,
तथापि प्रभु! जानकी-पति! सुदृष्टि श्रीमान की ।।११३।।

प्रवृत्ति सहजा न की सुकृत में मनोऽ [१]जान की,
हृदन्तर-[२]सुजान! कीर्त्युदय-[३]पद्धती जान की ।
तथापि प्रभु जानकीरमण ने मुझे जानकी-
[४]कृपास सुत जान की यह दया, कि जो [५]जा न की ।।११४।।

हिली न मन की कली, विषय-वासना जो पिली,
शिलीमुख-[६]दशा मिली जब पदाब्ज पाये खिली ।
मिली रस-सुधा, मिली वह समृद्धि जो ना मिली,
मिली सु-निधि, मैथिलीरमण! मुक्ति यों जो मिली ।।११५।।

कदापि न सराहना मन! महेन्द्रता [७]दाहना,
भवाम्बुनिधि गाहना विरस है, तथा व्याहना ।
रहा अब उलाहना न कुछ, राम! क्या चाहना,
यही बस निवाहना, न पद से कभी ढाहना ।।११६।।

मर्यादानरसिंह! काम-गज को संहार के छोड़िए,
मेरे क्रोध-भुजङ्ग को कुचलिए, दर्प-[८]द्रु को तोड़िए ।
जो ऐंठा यह लोभ-मल्ल, उसको चीरें नखों से अभी,
ऐसा मोह-महीप को उलटिए, जागे न मात्सर्य भी ।।११७।।

---

१ मन मूढ़ की (प्रवृत्ति)। २ अन्तर्यामी! । ३ नामवरी पाने का मार्ग समझकर (प्रवृत्ति) को। ४ सीता की कृपा को पाया हुआ। ५ जो स्वयम् जाकर अर्थात् किष्किन्धा में स्वयं पहुँचकर, (किसी पर) न की। अर्थात् किसी पर कृपा की तो शरण पहुँचने पर की जैसे हनुमान् पर; पर मुझ (जाम्बवान) पर तो स्वयं पधार कर की। ६ मिली अर्थात् जन्म से प्राप्त हुई शिलीमुख-दशा=भौंरे की हालत अर्थात् भालुओं और भौंरे की स्वाभाविक कालिमा के कारण। वह दशा आपके चरण-कमल के प्राप्त होने से खिल पड़ी। नहीं तो भौंरापन जाने कौन?। ७ दाह-प्रद। ८ मदरूप वृक्ष को।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१]देव ! न जाने, कर्म या सार-वस्तु शुभ-कर्म ।
[२]सर्वज्ञाता जानते धर्माधर्म-सु मर्म ॥११८॥

कवि बोला ऋक्षेश से, धन्य तुम व मा-बाप ।
[३]उन्हें सु-नायँ सु-नाम से, तब यों कहते [४]आप ॥११९॥

सब के ऊपर राम-छत्र यह कैसा, जैसा रा जा,
अपयश कैसा प्रभु-वैरी का जैसा [५]घ न अनगाजा ।
कीर्ति-छटा रघुवर की कैसी, ज्यों कि [६]व की [७]अवदाता,
इनके आद्यन्तिम-वर्णों से जानो पिता व माता ॥१२०॥

★ ★ ★

आज्ञा तुम्हारी दृग मूँद धारी
सुनो हमारी अब तो उचारी ।
ऐसे विदा-[८]रीति, विभीति-कारी-
आगन्तु नारी-नर ने सुधारी ॥१२१॥

दे दे वरा [९]दीच्छित, किन्तु [१०]सादी
जता-जता, दीर्घ [११]धनोपदा दी ।
अन्तर्विषादी, [१२]दिखते प्रसादी,
हो स्वस्तिवादी प्रभु ने विदा दी ॥१२२॥

★ ★ ★

१ हे देव! कर्म (इस लोक का काम-काज) वा शुभ कर्म सुकर्म (पुण्य) सारवस्तु है। २ हिन्दी में-सर्वज्ञ, संस्कृत में भी वही अर्थ है। सर्वं ज्ञातं येषां ते सर्वज्ञाताः, 'जानते' और 'न जाने' ये हिन्दी-संस्कृत में एक-से हैं। ३ मां-बाप को। ४ ऋक्षेश (जाम्बवान)। ५ मेघ। ६ वगुली। ७ श्वेत। ८ विदा लेने का ढंग। ९ वर आदि चाही हुई (वस्तु)। १० मामूली जतला-जतला कर। ११ धनोपहार। १२ उनके होने वाले वियोग के कारण भीतर से खिन्न किन्तु ऊपर से प्रसन्न प्रतीत होते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहग विभीषण ने किया महावीर से [१]नर्म ।
तुम-प्रभु तलुआ चाटते न कि हलुआ, यह मर्म ।।१२३।।

चाटा [२]द्विजिह्व जन का, दशतुण्ड का भी–
दीखा सु-रक्त तलुआ, पर था न लाभी ।
श्री राम का [३]यह [४]परैकरसज्ञ-चाटा–
है पूर्ण रक्त कि जहाँ कुछ भी न घाटा ।।१२४।।

★ ★ ★

श्रीराम-राज्य-प्रभाव से पर्जन्य स्मृति-[५]सहजन्य था,
श्रीराम-शासित देश को छूकर अनिल शुचि धन्य था ।
सु-[६]प्राप्त सब व्यवहार-[७]समुचित, खाद्य-पेय पदार्थ थे,
आश्चर्य क्या, जो हृष्ट-पुष्ट-स्वस्थ तब जन-सार्थ थे ।।१२५।।

मन्त्री वृत्ति-सुचाल हो व उसकी सर्वत्र सँभाल हो,
दुष्टों की न कुचाल हो, न [८]जिससे सच्चित्त में शाल हो ।
ऐसा न्याय विशाल हो कि न जहाँ, अन्याय का जाल हो,
तो कैसे अप-[९]काल हो फिर वहाँ, धर्मी धरा-पाल हो ।।१२६।।

दीनों का प्रतिपालनादि करना सन्तान की शिक्षणा,
गो-विद्या-धन-रक्षणादि करना, न व्यर्थ ही भिक्षणा ।
जी से आश्रित को घना समझना, स्त्री-जाति को मानना,
साथी से न बिगाड़ना, न गुरु से, सद्-वृत्ति यों जानना ।।१२७।।

शास्त्रों बीच यथा कहा, वह तथा छाया हुआ धर्म था,
जो देशादि-प्रथानुसार कुछ था, सो भी भला कर्म था ।
कोई रुग्ण न था, भयाकुल न था चिन्तार्त शोकी न था,
सुप्रारब्ध-समाज था, सुकृत था, तो क्यों व्यथा की कथा? ।।१२८।।

---

१ मजाक। २ चुगुलखोरों का और दुजीभों का चाटा भी सरक्त=लाल और राजी । ३ तलुआ। ४ सर्वोत्तम एक रस के ज्ञाताओं का और उत्तम इकजीभों का चाटा भी पूर्ण रक्त=पूरा लाल और राजी। जिह्वा और रसज्ञा समान-पर्याय हैं। ५ याद करने के साथ उत्पन्न होने वाला। ६ बहुत सस्ते। ७ काम में आनेवाली सब चीजें। ८ सँभाल के। ९ असामयिक मृत्यु का दुर्दिन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारासार विचार विज्ञ-जन ने निःसार संसार को–
माना था, पर राम-राज्य लखते पा शान्ति-संचार को ।
ऐसा निर्णय एक साथ पलटा, संसार भी सार है,
है निष्कर्ष कि राम-राज्य-रचना ही शान्ति का द्वार है ॥१२९॥

क्यों योग आय जन-[१]पर्षद जागने का?,
वा राज्य-शासक-सभोत्तर माँगने का ।
थे राम एक सम-दृष्टि जहाँ कि राजा,
क्या नाग-राज सुर-राज न आज लाजा? ॥१३०॥

क्या कर सकता नित्य कवि रघुवर-राज्य-बखान? ।
[२]बहुलगान-युत जो तदपि था परिमित-कर-दान ॥१३१॥

★ ★ ★

कभी वहाँ पर स्वर्ग-भू-भारत-भू-संलाप ।
सुनते रहे विनोद से त्रिभुवन के मा-बाप ॥१३२॥

[३]भर्तुर्भारतभूमि! भो भगिनि! किं तृप्तासि नाद्याप्यये!,
होता क्या परितृप्त राम-प्रभु से कोई उदाराशये?! ।
[४]नो स्याद्, राम-समेश-सङ्ग-विरतिः, स्यात् किन्तु सीमोचिता,
भावी को यदि जान पाय जग में, तो एक विश्वेशिता ॥१३३॥

[५]दिष्ट्या! धन्यतमेऽखिलेशजननि! त्वं वर्धसे श्रेयसा,
स्वर्भूमी! तुम भी यहाँ नित रहो, जो हो लगा प्रेय-[६]सा ।
[७]काऽहं, मुक्तिरपीह खेलति जिता त्वच्चूडयाऽयोध्यया,
जो सन्तान-समेत मैं सफल हूँ, है राम ही की दया ॥१३४॥

---

१ लोक-परिषद (पर्षद्-शब्द भी शुद्ध)। २ बहुत लगान से युक्त इस अर्थ से विरोध झलकने पर बहुल-बहुत से गान से युक्त इस अर्थ से उसका परिहार जानिए। ३ हे बहिन भारतभूमि! क्या अब तक तुम अपने भर्ता से तृप्त नहीं हुई। ४ राम-सरीखे स्वामी के संग से परितृप्ति हो ही नहीं सकती किन्तु कुछ समय की अरुचि भी तो होनी चाहिए। ५ हे परम धन्य, विश्वेश को जन्म देने वाली भारत भूमि! तुम्हें इस श्रेय से बधाई है। ६ बहुत सुहावना-सा। ७ मैं क्या, तुम्हारी शिरोमणि-भूत इस अयोध्या से जीती गई मुक्ति भी तो यहीं खेल रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी-दर्शन-[१]रहित है, संस्कृत प्रगति-[२]विहीन ।
प्रकृति-पुरुष ज्यों यदि मिलें, तो फल सु-समीचीन ।।१३५।।

★ ★ ★

नर-वेषी भ्रम-[३]पड़े, [४]स्वर्गी स्त्री-पुंस युक्ति [५]से ।
यों मिश्र बात करते हिन्दी-संस्कृत-उक्ति से ।।१३६।।
[६]अहो! आया सित-वन-धाम मन्द विलम्ब से ।
उदारमति साकेताधीश एक स्व-कार से ।।१३७।।
हिन्दी-संस्कृत-भावसाम्य ।।

★ ★ ★

ज्यों जीवात्मा मतिहर महामोह को मार होता-
शुद्धात्मा में अनुरत तथा हे त्रिलोकी-प्रसोता! ।
श्रीवैदेही-हरण रिपु को मार साकेत-[७]रन्ता
[८]होते साक्षात् तुम रघुप!, यों गा रहे कीर्ति [९]नन्ता ।।१३८।।
[१०]उन्हें नित्यानन्दामृत-निधि अमन्दा बरसते,
[११]पिलाते भी, प्यासे लख-लख कृपा से निरखते ।
पिता-माता सीता-रघुवर सुखी ताप हरते-
यहीं का क्या, [१२]सारा भुवन-भर का राज्य करते ।।१३९।।

---

१ तत्त्व-विद्या (ओं-स्वरूपादि) से वञ्चित और अन्ध। २ प्रचार-रहित और पङ्गु। ३ यही व्यक्ति यहाँ का है या स्वर्ग का यों भ्रम में पड़े। ४ स्वर्ग के स्त्री-पुरुष (अभिसारिका और अभिसारी)। ५ जिसमें हिन्दी-संस्कृत दोनों भाषा के एक-से भाव झलकते हों। ६ अभिसारिका नायक से संस्कृत में कह रही है :--"अहो! आयासि तव न धाम मन्द! विलम्बसे" अर्थात् आलसीजी! खेद है, तुम अपने (बताये) स्थान पर पहुँचते नहीं, देर करते हो। इसका उत्तर अभिसारी संस्कृत ही में दे रहा है:-"उदारमत्ति साकेताधीश एक-स्वका-रसे"। अयोध्याधीश (राम) एक अपनी नायिका (सीता) के रस में भली-भाँति रम रहे हैं, अर्थात् ऐसे स्वामी के राज्य, निकलकर वहाँ पहुँचना कठिन पड़ गया है। इसी की ओर से हिन्दी में भी अर्थ झलकता है कि, मैं वन की उस सफेद कुटी को कुछ देर से पहुँचा, क्योंकि उदारमति! राम स्व-कार से (अपनी मर्यादा से) एक ही हैं। अर्थात् इसी से अवसर शीघ्र न मिलने के कारण मुझे कुछ देर हो गई। हिन्दी में दोनों की उक्ति-प्रत्युक्ति भी हो सकती है। ७ अयोध्या में रमनेवाले। ८ साक्षात् होते अर्थात् दीख पड़ते हो। ९ भक्त। १० उन भक्तों को। ११ अपने शुभ-दर्शन-रूप ब्रह्मानन्दामृत की निधि बरसते और पिलाते हुए भी अर्थात् उन्हें (भक्तों को) प्यासे ताड-ताड कर कृपा दृष्टि से देखते हुए। १२ वह राज्य का विशेषण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपप्रतान ६

(वंश-परिचयादि)

मरु राज्यान्तर्गत जैतारण शाखापुर में मेरे–
द्विज दाधीच-वंश्य [1]कासलिया जो थे व्यास बड़ेरे ।
उनमें नत्थू-सुत दामोदर दामोदर-प्रणामी–
जयपुरीय छिर में जा पहुँचे पुरखों के अनुगामी ।।१।।

उनके गोत्र-जात हरजी के गुह-गणेश की नाई–
पुत्र कान्हजी वीरमजी थे, ख्याति जिन्होंने पाई ।
छज्जूराम कान्ह के सुत थे, अमरचन्द थे उनके,
रामवक्ष सुखदेव पुत्र थे उनके, भाजन गुन के ।।२।।

पाण्डूपम उन रामवक्ष के पाँडव-सम थे बेटे,
ज्येष्ठ पुत्र थे कवीन्द्र माधव माधव-पद में लेटे ।
धीर-वीर थे युधिष्ठिरोपम सत्यपक्ष के ग्राही,
मुक्तिलहरि के निर्माता थे, चतुर्बन्धु-निर्वाही ।।३।।

[2]जयदेव-[3]श्रीरामदयालु, घनश्याम, हरि छोटे,
एक बहिन थी चन्द्रकुमारी प्रथम युगल को ओटे ।
वृन्दावन के साथ पिता ने [5]प्रथम पुत्र को पढ़ने–
जयपुर भेजा शुभ मुहूर्त में, उन्नति-पद पर चढ़ने ।।४।।

---

१ यजुर्वेद, माध्यन्दिनी शाखा, भार्गव गात्र ।
प्रवर-और्व, भार्गव तथा जामदग्न्य शुभ-गात्र ।।

२ इनका पुत्र स्व. पं. देवीदत्त। पौत्रजयराम, परशुराम। प्रपौत्र गिरिधर। ३ इनके पुत्र स्व. पं. मदनलालजी पौत्र मोहनलाल। प्रपौत्र सत्यनारायण और तेजप्रकाश। सूटवाल व्यास। ५ माधव जी को।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पढ़ते-पढ़ते गुरु [1]नरहरि के थे प्रह्लाद-सरीखे-
कृपा-पात्र हो पट्टशिष्य बन वाक्पति कवीन्द्र दीखे।
तारानाथ तर्कवाचस्पति गट्टूलाला जैसे-
विज्ञों ने अति उन्हें [2]सराहा, आज विरल हैं वैसे ॥५॥

जयपुर में तब कई उन्होंने बनकर गुरु-अनुगामी-
राजसभा में पुरस्कार पा पाया पद उन्नामी।
सुविवाहित कर [3]स्व-जयदेव को मिश्रराज-[4]तनया से,
भगिनी को गुरु-[5]कथाभट्ट से अपनी प्रभाविता से ॥६॥

दे पद रामदयालु बन्धु को अत्यनुरोध बुलाये-
घनश्याम को रामदान-[6]सुत करने [7]भटपुर आये।
[8]राजाराम-दैवविद्-बहुमत नृप-यशवन्त-सभा में-
उल्लासित वे यहीं रहे ज्यों सरसिज सुर-सरिता में ॥७॥

उनके [9]भगवतिलाल, व मैं सुत हुए चन्द्रिकाऽम्बा से,
ज्यों रघुवर के कुश-लव नन्दन जनमे सीताऽम्बा से।
गोत्र कान्हजी का कह डाला, वीरमजी का सुनिए-
सोदर-बाँधव-सुसम्बन्ध को दोनों ही के चुनिए ॥८॥

वीरम-सुत थे गङ्गाराम व शालग्राम विचारी,
शिवजीराम ज्येष्ठ के सुत थे, [10]उनके सुत गिरिधारी।

---

१ राजगुरु ओझाजी। २ अमुष्यां सभायां ममैषा प्रतिज्ञा भुजङ्गप्रयातैर्बिना वाग् न वाच्या" इत्यादि प्रतिज्ञा-वचनों को अस्खलित निभाने के कारण। ३ भाई। ४ पुरुषोत्तमरायजी की पुत्री (सूर्यकुमारी) से। ५ राजगुरु कथाभट्ट चन्द्रदत्तजी से; उनके पुत्र स्व. कृष्णचन्द्रजी के सुपुत्र जगदीशचन्द्र शास्त्री, कवि के भतीजे अभी वहाँ ऑनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। ६ राजकथाव्यास रामदान जी के दत्तक पुत्र बनाने। ७ जोधपुर। ८ राज-ज्योतिषी राजारामजी इनके मित्र थे। ९ कवि को शिक्षित करने का भार ७वें वर्ष से १६वें वर्ष तक इन्हीं ने झेला। कवि के अन्यान्य काव्यों के टीकाकार यही हैं। इनसे छोटी और कवि से बड़ी 'गुलाब कुँवरी' एक बहिन थी तथा इनका पुत्र स्व. राममनोहर। १० शिवजीरामजी के।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामरत्न फिर [१]वैद्यनाथ ये; शालग्रामात्मज थे–
महाराम हरदेवः रामसुख महाराम-देहज थे ॥९॥

रामसुखज कल्याण व बदरी कोई न रहा [२]तनयी,
वैद्यनाथ-[३]फैफा-दम्पति तब हुए मन्त्र कर विजयी ।
'राधाकृष्ण' नाम से मुझ को दत्तक-पुत्र बनाया,
खानदेश की स्व-कृत, यहाँ की श्री का अधिप जनाया ॥१०॥

दोनों मा-बापों की धरता मैं कृतज्ञता भारी,
श्री-हरि सियाराम का जिससे पूर्ण हुआ परिचारी ।
पूज्य ज्येष्ठ!, प्रिय राममनोहर! गिरिजे!, जिसे अधूरा–
सुनते तुम चल बसे; उसी को आज कर सका पूरा ॥११॥

[४]बालकृष्ण का, [५]शान्ति, [६]ओम का जो अवलम्ब तुम्हारा–
मनोऽभिमत था, उसे लक्ष्य कर मैं कर पाया सारा ।
खानदेश का कार्य-भार जो [७]श्याममनोहर पर है,
राम-कृपा है, उसी नाव से तरा आज सागर है ॥१२॥

विद्याभूषण विज्ञ भगवतीलाल ज्येष्ठ मम भ्राता,
शिक्षा-प्राप्त व पदाप्त जिनका शिष्यवर्ग गुण गाता ।
काव्यावलि के टीका-कर्ता पुरश्चरण-व्रत-चारी,
प्रातः-स्मरण-योग्य थे, उनका मैं कृतज्ञ हूँ भारी ॥१३॥

प्रथम राजकुँवरी फिर यमुना धर्मपत्नियाँ मेरी–
ज्यों संस्कृत-हिन्दी-भाषायें–थीं अधिकृत विधि-प्रेरी ।

---

१ 'बोद्‌जी-नाम से वैद्यनाथजी की प्रसिद्धि थी। २ पुत्रवान् ३ कवि की माता, जिन्होंने पति के मंत्रानुसार दत्तक लिया। ४ कवि का कनिष्ठ पुत्र। अपने इकलौते युवक पुत्र के राजयक्ष्मा से ग्रस्त हो जाने के कारण पुत्र के दुख पर श्री भगवतीलालजी ने इसी पर आशा-भरोसा कर लिया था। ५ श्रीभगवतीलालजी के पुत्र राममनोहर की इकलौती लड़की। ६ गिरिजा बाई (कवि की बेटी) का इकलौता पुत्र। ७ कवि का ज्येष्ठ पुत्र।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्याममनोहर, बालकृष्ण सुत-युग जिनका उदयित है–
काव्य-युगल ज्यों, द्वितीय भगवतीलाल! तुम्हें अर्पित है ॥१४॥

[1]सहज भगवती ! लालसा तव कृपया मम सिद्ध ।
[2]सहज भगवती लाल-सा मिला वयो-गुण-वृद्ध ॥१५॥

जो था महावीर [3]प्रसाद आप का सरस्वती-सेवन अन्त ताप का ।
नहीं मुझे ही सब को हितू रहा, न भूल पाते उसको कभी अहा! ॥१६॥

(उपसंहार)

भगवन् ! यदि तुलसी नहीं आज, समय-अनुकूल ।
तो स्वीकृत कर लीजिए नवल नित्य के फूल ॥१७॥

हे जनता-जगदीश! सर्वविध वस्तु आप अपनाते,
भली-बुरी कैसी भी हो, पर मुख न कदापि बनाते ।
मणि-ग्राहक भी आवश्यकता पड़े काच भी चाहें,
तो फिर मेरी तुच्छ वस्तु की स्वीकृति क्यों न सराहें ॥१८॥

प्रथम [4]अयोध्या-सेवा तुमने नानाविध स्वीकारी,
नाथ ! [5]सुमित्रानन्दन-सेवा अनुसृत-प्रकृति विचारी ।
प्रिया [6]मैथिली-सेवा तन्मय-भाव-समेत निहारी,
आज नित्य की सेवा तो यह अमिली-[7]मिली सुधारी ॥१९॥

महाकाव्य रच देना कोई हँसी-खेल की बात नहीं,
राम-कृपा यदि साथ रही तो कवि-प्रतिभा हो ज्ञात नहीं ।

---

१ मम लालसा (उत्कट इच्छा) तब कृपया सहज (आसानी से)। २ सहज-सगा भाई। ३ श्रीहनुमान और द्विवेदीजी भी। ४ अयोध्या पुरी की और श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय की। ५ लक्ष्मणजी की और श्रीसुमित्रानन्दन पन्त की। ६ सीताजी की और श्रीमैथिलीशरण गुप्त की। ७ जोड़-बेजोड़ की तथा अयोध्या, सुमित्रा, मैथिली की प्रथम, द्वितीय, तृतीय दृष्टि से मिली हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवि-प्रतिभा चाहे न ज्ञात हो, राम-कृपा ही ज्ञात सही,
राम-कृपा को गौरव देते कवि ही की गुरु बात रही ॥२०॥

हे हिन्दी-कविता! बिता रसवती [1]वेला, भले ही मिली,
तो भी राम-रसाप्लुता सुर-गिरा उत्सङ्ग में थी खिली ।
है तू धन्य, हुई सु-तृप्त [2]जननी-आभार को मानती,
पुण्य-प्रीति बखानती, न उससे तू सौत ज्यों तानती ॥२१॥

[3]दुर्गा-मन्दिर- शृङ्ग-मौलिमणि से शोभा बढ़ाता हुआ,
ढा देता जिसका कि दुर्ग-शिर ही वैमानिकों को छुआ ।
श्री राठोर-उमेदसिंह-नृप की सो राजधानी सही,
चण्डी जोधपुरी निदान उनको पैरों गिराके रही ॥२२॥

[4]निहारने हेतु चढ़ी महेश्वरी
महेश्वरीया सु-जटा छटा-भरी ।
पा योग गङ्गा यह चाँदबावड़ी,
दबा बड़ी शम्भु-पद-स्थली अड़ी ॥२३॥

इसी किनारे पर नित्य की कुटी,
श्रीराम-सीता-छवि-चित्र की पुटी ।
श्रीराम के पञ्चवटी-कुटीर की
करा रही जो स्मृति, नीर-तीर की ॥२४॥

नृप-उमेद-राज्याऽन्त्य-दश-वर्षों का यह काम ।
पाता नृप-हनुमन्त के तिलक-समय उपराम ॥२५॥

---

१ अनुकूल समय और रसोई का समय। २ माता संस्कृत के। ३ जोधपुर-राजधानी का वर्णन है। चामुण्डा-मन्दिर-शिखर-रूप मुकुट से शोभा देता जिसका गढ़-शिर ही छुआ हुआ विमानचारियों को (देवों को) ढा देता है। जो उनकी (वैमानिकों को) अर्थात् जहाँ पर हवाई अड्डा होने से पैरों में गिरा कर रही। ४ कवि अपना जोधपुर का पता दे रहा है :- चाँद बावड़ी (चौहान-बावड़ी) के ऊपर एक शिवालय बना हुआ है, जहाँ चौ-घेरे के बीच शिव हैं, उनके ऊपर की ताक में पार्वती हैं, उस पर कवि कल्पना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामकथा-कल्पलता विमल-वासना-
वासित भासित हो दुरित-नाशना ।
श्रावक क्या, वाचक क्या सफल-काम हों,
राम कहो, प्रीत रहो, मम प्रणाम हो ॥२६॥

हे मित्रो! मुख बन्द हो न, उस में रामामृत-[1]स्पन्द हो,
प्याले में गुलकन्द हो भरित ज्यों वा ज्यों, कलाकन्द हो ।
वा जैसे मकरन्द हो कमल में, वा व्योम में चन्द हो;
आत्मा निर्मल [2]छन्द हो, हृदय में भी नित्य आनन्द हो ॥२७॥

इति नित्यकविकृत रामकथा कल्पलता चतुर्विंश प्रतान समाप्त ।

---

१ रस-प्रवाह (रामनामोच्चारण)। २ शुद्ध आशयवाला ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्म तिथि : १२ जनवरी १९३९

जन्म स्थान : विलसी, जिला वदायूँ (उत्तर प्रदे

शैक्षणिक योग्यता : एम. ए., पीएच. डी. (अंग्रेजी)

* शोध प्रवन्ध - Fictional Theories of Virginia Woo

* साहित्य शास्त्री - (संस्कृत) । * विशारद - (हिन्दी)

* रूसी भाषा में द्विभाषिक योग्यता का डिप्लोमा ।

भारतीय विदेश सेवा (IFS) से १९९७ से सेवा निवृत

प्रकाशित कृतियाँ : १) रंग-विरंगे फूल २) कविताएँ ३) मिल कर कदम वढ़ायें ४) कोई काम नह मुश्किल (वाल कविता संग्रह) ५) अनमोल उप ६) वंदर की करामात ७) वावा के वोल ८) जंगल मंगल (लोक कथा संग्रह) ९) रामायण नवनीत (वाल्मी रामायण के अन्तर्गत मूल रामायण का हिन्दी काव्य भावानुवाद) १०) रामचरित मानस में भारतीय संस्कृ ११) तुलसी की दृष्टि में १२) Indian Engli Literature -A Perspective (रूसी भाषा की पुस्तक मूल से अनुवाद १३) श्री अक्षर गीता (श्रीमद्भगवतगी का काव्यानुवाद) १४) पल में वर्ष (कविता संग्र १५) भाव और चिन्तन (विविध आख्यान एवं संद १६) विश्व में हिन्दी के अनछुए संदर्भ ।

सम्मान

१) डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल स्मृति सम्मान

(१०-११ अक्टूवर १९९८) - छठा अखिल भारती हिन्दी साहित्य सम्मेलन, युवा साहित्य मंडल, गाजीयाव (हिन्दी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृति की श्रीवृ में उल्लेखनीय योगदान के लिए) ।

२) डॉ. प्रताप नारायण टण्डन सम्मान

(३१ अक्टूवर १९९८) - उत्तर प्रदेश हिन्दी साहि सम्मेलन वार्षिक अधिवेशन में (भारतीय विदेश सेवा रहते हुए हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति की उल्लेखन सेवा के लिए) ।

३) इंडो-रशियन लिटरेरी क्लव सम्मान

(७ अप्रैल २०००) - रूसी विज्ञान एवं संस्कृति केन्द्र द्व वाल रचनाओं के क्षेत्र में वहुमूल्य योगदान के लिए ।

स्थायी पता : डी-२१३, इला एपार्टमेन्ट्स
वी-७, वसुन्धरा एन्क्लेव, दिल्ली-९६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित रचनाएं

आशुकवि पण्डित श्रीनित्यानन्द शास्त्री द्वारा लिखित

१) श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् (संस्कृत - महाचित्रकाव्य) ११००/-
पुरोवाक् / सम्पादन - देवर्षि कलानाथ शास्त्री

२) श्रीहनुमद्दूतम् (संस्कृत - दूतकाव्य) ९०/-
पुरोवाक् - डॉ. रमारंजन मुखर्जी, डॉ. मानवेन्दु बैनर्जी

३) श्री बालकृष्ण नक्षत्रमाला (संस्कृत - भक्तिकाव्य) ९०/-
पुरोवाक् - देवर्षि कलानाथ शास्त्री

४) रामकथा कल्पलता (हिन्दी - महाकाव्य) ७००/-
पुरोवाक् / सम्पादन - डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

५) श्री दधीचि चरित (हिन्दी - खण्ड काव्य) ९०/-
पुरोवाक् / सम्पादन - डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

डॉ. वीरेन्द्र शर्मा के हिन्दी काव्य

६) अक्षर गीता (मूल गीता का हिन्दी काव्यान्तर) ९०/-

७) अक्षर श्रीदुर्गा सप्तशती (मूल दुर्गा सप्तशती का हिन्दी काव्यान्तर) ९०/-

•

Published by Sahitya Academi, New Delhi

1. ŚRĪRĀMCARITĀBDHIRĀTNAM of NITYANANDA SHASTRI 300/-
English Translation by Dr. Satya Vrat Shastri

प्रकाशक
आचार्य नित्यानन्द स्मृति संस्कृत शिक्षा एवं शोध संस्थान
गिरिजा निकेतन, ए-१३६, लेक गार्डन्स
कोलकाता-७०००४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi